एमएएचडी-10

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता

एमएएचडी–10

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक एवं सदस्य

संयोजक
प्रो. (डॉ.) चन्द्रकला पाण्डेय
हिन्दी विभाग
कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता

समन्वयक
डॉ. मीता शर्मा
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

- **प्रो. (डॉ.) सुदेश बत्रा**
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो. (डॉ.) जवरीमल पारख**
  अध्यक्ष, मानविकी विद्यापीठ
  इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
- **(डॉ.) कुमार कृष्ण**
  अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  हिमांचल विश्वविद्यालय, शिमला
- **प्रो. (डॉ.) रंजना बेन अरगडे**
  अहमदाबाद विश्वविद्यालय, गुजरात
- **प्रो. (डॉ.) नन्दलाल कल्ला**
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
- **डॉ. हेतु भारद्वाज**
  पूर्व प्राचार्य,
  पारीक महाविद्यालय जयपुर
- **डॉ. नन्दकिशोर आचार्य**
  वरिष्ठ आलोचक व साहित्यकार, बीकानेर

संपादन एवं पाठ्यक्रम-लेखन

संपादक मण्डल

प्रो. (डॉ.) जवरीमल पारख
अध्यक्ष, मानविकी विद्यापीठ
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

इकाई-लेखक	इकाई सं.
डॉ. सुधीर सोनी 75/75, टैगोर लेन शिप्रा पथ, मानसरोवर जयपुर	3, 19, 20, 22
डॉ. मीता शर्मा सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	4
प्रो.(डॉ.) सत्यकाम मानविकी विद्यापीठ इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली	5,14,17
प्रो. (डॉ.) जवरीमल पारख अध्यक्ष, मानविकी विद्यापीठ इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली	8, 9, 10, 16
प्रो. (डॉ.) सुभाष धूलिया जनसंचार और पत्रकारिता अध्ययन विद्यापीठ इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली	11, 12

इकाई -1, 2, 6, 17, 13 और 15 पत्रकारिता एवं जनसंचार स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम एमजेएमसी-4 से ली गई हैं। इकाई -18 एमजेएमसी-2, इकाई -21 एमजेएमसी-5 से और इकाई -23 एमजेएमसी-8 से ली गयी है।

इन सभी इकाइयों को इस इस पाठ्यक्रम में पाठ्यक्रम की आवश्यकतानुसार संशोधित और संपादित कर शामिल किया गया है।

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो.(डॉ.) अनाम जैतली**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**अकादमिक**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी,

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन - अगस्त 2009 ISBN No.-13/978-81-8496-111-9

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।व म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता

खण्ड	इकाई	खण्ड/इकाई विवरण	पृष्ठ संख्या
1		**जनसंचार की अवधारणा व स्वरूप**	
	1	जनसंचार की अवधारणा व स्वरूप	11–29
	2	जनसंचार : लक्ष्य, कार्य और प्रक्रिया	30–47
	3	जनसंचार माध्यमों की परम्परा और इतिहास	48–61
	4	जनसंचार के विभिन्न माध्यम	62–85
	5	जनसंचार की प्रौद्योगिकी	86–96
2		**जनसंचार के सिद्धान्त**	
	6	जनसंचार के सिद्धान्त	97–118
	7	जनसंचार के सामाजिक सिद्धान्त	119–138
	8	जनसंचार के संस्थान और व्यवसाय	139–151
	9	जनसंचार और भाषा	152–168
	10	जनसंचार और साहित्य	169–188
	11	जनसंचार और समकालीन परिदृश्य	189–205
3		**जनसंचार और सामाज**	
	12	जनसंचार माध्यम और जनमत निर्माण	206–216
	13	जनसंचार और समाज (भाग -1)	217–230
	14	जनसंचार और समाज (भाग -2)	231–241
	15	जनसंचार के विभिन्न आयाम	242–261
	16	जनसंचार और स्त्री-विमर्श	262–277
	17	जनसंचार और शिक्षा	278–286
4		**पत्रकारिता का स्वरूप और विकास**	
	18	पत्रकारिता का अर्थ और स्वरूप	287–297
	19	पत्रकारिता के विभिन्न रूप-(1) समाचारपत्र (2) पत्रिकाएँ	298–310
	20	पत्रकारिता के विभिन्न क्षेत्र	311–322
	21	विश्व पत्रकारिता का परिचय	323–337
	22	हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास	338–348
	23	भाषायी पत्रकारिता	349–363

पाठयक्रम परिचय

पाठ्यक्रम **जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता** एम.ए. उत्तरार्द्ध (हिन्दी) से संबंधित है । इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य एम.ए. के विद्यार्थियों को जनसंचार माध्यमों और पत्रकारिता के विभिन्न पक्षों से परिचित कराना है । जनसंचार माध्यम आज अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र बन गया है । जिसके अंतर्गत मुद्रित माध्यम और इलैक्ट्रॉनिक माध्यम आते हैं । इस पाठ्यक्रम में इन माध्यमों के बारे में बताया जा रहा है । पत्र-पत्रिकाएं, रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा और इंटरनेट जनसंचार के प्रमुख माध्यम हैं । आप आगे की 23 इकाइयों में इन माध्यमों के सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों पक्षों का ज्ञान प्राप्त करेंगे ।

खंड 1 जनसंचार की अवधारणा और स्वरूप

इसके अंतर्गत कुल पांच इकाइयाँ हैं । जिनमें जनसंचार की अवधारणा, स्वरूप, लक्ष्य, कार्य और प्रक्रिया के बारे में बताया गया है । साथ ही जनसंचार माध्यमों की परंपरा और इतिहास तथा जनसंचार के विभिन्न माध्यमों और उनकी प्रौद्योगिकी के बारे में भी बताया गया है ।

इकाई - 1 जनसंचार की अवधारणा और स्वरूप इस इकाई में आप संचार और जनसंचार के विभिन्न रूपों, जनसंचार की अवधारणा और स्वरूप तथा जनसंचार के स्वरूप को निर्धारित करने वाले विभिन्न तत्वों की जानकारी दी गयी है ।

इकाई - 2 जनसंचार लक्ष्य, कार्य और प्रक्रिया इस इकाई के अंतर्गत आप जनसंचार के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक लक्ष्यों की जानकारी दी गयी है । जनसंचार के तीन प्रमुख कार्य माने जाते हैं-सूचना, शिक्षा और मनोरंजन । इस इकाई में इनके बारे में भी बताया गया है । साथ ही जनसंचार की प्रक्रिया के विभिन्न चरणों की भी जानकारी इकाई में दी गयी है ।

इकाई - 3 जनसंचार माध्यमों की परंपरा और इतिहास इस इकाई में जनसंचार माध्यमों की परंपरा और जनसंचार के विभिन्न माध्यमों के इतिहास के बारे में बताया गया है । इसी इकाई में भारत में जनसंचार के इतिहास और जनसंचार और उससे संबंधित सरकारी तंत्र की भी जानकारी दी गयी है ।

इकाई - 4 जनसंचार के विभिन्न माध्यम. इस इकाई के अंतर्गत समाचारपत्र-रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा और इंटरनेट की अद्यतन जानकारी दी गयी है । साथ ही इन विभिन्न माध्यमों के लेखन के बारे में भी बताया गया

इकाई - 5 जनसंचार की प्रौद्योगिकी इस इकाई में जनसंचार के परंपरागत माध्यमों और जनसंचार की आधुनिक प्रौद्योगिकियों की जानकारी दी गयी है । साथ ही इस इकाई में प्रौद्योगिकी के कारण जनसंचार के स्वरूप में होने वाले परिवर्तनों की भी जानकारी दी गयी है ।

खंड - 2 जनसंचार के सिद्धांत

इस खंड के अंतर्गत कुल छह इकाइयाँ शामिल की गई हैं । जिसमें जनसंचार के विभिन्न सिद्धांतों के साथ जनसंचार के संस्थानीकरण और व्यावसायीकरण पर विचार किया गया है । इसी खंड में भाषा और साहित्य के संदर्भ में जनसंचार माध्यमों पर विचार किया गया है । इस

खंड की अंतिम इकाई में अंतर्राष्ट्रीय, भारतीय और हिन्दी मीडिया के संदर्भ में समकालीन परिदृश्य के बारे में बताया गया है ।

इकाई - 6 जनसंचार के सिद्धांत इस इकाई में जनसंचार के सिद्धातों के आधार और उनके विकास का परिचय दिया गया है । जनसंचार की विद्युतीय प्रक्रिया के साथ-साथ जनसंचार के स्रोतों, संदेशों और ग्रहीताओं के बारे में भी बताया गया ।

इकाई - 7 जनसंचार के सामाजिक सिद्धांत इस इकाई में जनसंचार के विभिन्न सिद्धांतों का परिचय दिया गया है । इनमें प्रमुख हैं- सम्प्रेषणीय सिद्धांत, अर्थगत सिद्धांत, सामाजिक सिद्धांत और सांस्कृतिक सिद्धांत । इनके अध्ययन से आपको जनसंचार के सैद्धांतिक पक्ष को समझने में मदद मिलेगी ।

इकाई - 8 जनसंचार के संस्थान और व्यवसाय इस इकाई में जनसंचार माध्यमों के सस्थानीकरण और व्यावसायीकरण के विभिन्न पक्षों के बारे में बताया गया है । आप इस इकाई में जनसंचार माध्यमों के स्वामित्व के स्वरूप और संस्थानीकरण और व्यवसायिकता में सरकार की भूमिका के बारे में भी आवश्यक जानकारी प्राप्त करेंगे ।

इकाई - 9 जनसंचार और भाषा भाषा जनसंचार का आधारभूत माध्यम है । इस इकाई में भाषा के विकास के साथ-साथ भाषा की प्रौद्योगिकी और संप्रेषण में उसकी भूमिका, भाषा संप्रेषण में व्यक्त वैचारिक वर्चस्व और भाषा संप्रेषण के अध्ययन के बारे में बताय। गया है । इस इकाई में अंग्रेजी भाषा के वर्चस्व के संदर्भ में भारतीय मीडिया की भूमिका पर भी विचार किया गया है। मीडिया से जो संदेश प्रसारित होते है उनमें व्यक्त होने वाले नस्लीय, धार्मिक और स्त्री विरोधी पूर्वाग्रहों के बारे में भी आप जानकारी प्राप्त करेंगे ।

इकाई - 10 जनसंचार और साहित्य : इस इकाई में साहित्य की विभिन्न विधाओं और संप्रेषण, मीडिया के इस दौर में साहित्य की प्रासंगिकता, साहित्यिक रचना और उसके विभिन्न पाठ आदि के बारे में बताया गया है । जनसंचार के विभिन्न माध्यमों के संदर्भ में साहित्य के रूपांतरण की समस्या पर भी इस इकाई में विचार किया गया है ।

इकाई - 11 व इस इकाई के अंतर्गत जनसंचार के समकालीन परिदृश्य पर ऐतिहासिक और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में विचार किया गया है । इस इकाई में वैश्विक मीडिया, भारतीय मीडिया और हिन्दी मीडिया के संदर्भ में समकालीन परिदृश्य की विशेषताओं को प्रस्तुत किया गया है ।

खंड - 3 जनसंचार और समाज

इस खंड में कुल छह इकाइयाँ हैं जिनमें जनमत निर्माण में जनसंचार की भूमिका, जनसंचार और समाज के पारस्परिक संबंध, जनसंचार के विभिन्न आयाम, स्त्री-विमर्श और शिक्षा के संदर्भ में जनसंचार माध्यमों की भूमिका पर भी विचार किया गया है ।

इकाई - 12 जनसंचार माध्यम और जनमत निर्माण सूचना, शिक्षा और मनोरंजन जनसंचार के तीन प्रमुख कार्य स्वीकार किये गये हैं लेकिन अब इसमें एक कार्य और जुड़ गया है जिसे जनमत निर्माण कहा जाता है । मीडिया विशेष रूप से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया जनता के विभिन्न हिस्सों को खास राजनीतिक उदेश्यों के लिए एकजुट करने का काम भी करने लगा है । इस

तरह जनसंचार ने प्रचारक की भूमिका स्वीकार कर ली है । इसी पक्ष के बारे में आप इस इकाई में अध्ययन करेंगे ।

इकाई - 13 जनसंचार और समाज (भाग-1) इस इकाई के अंतर्गत समाज और जनसंचार के परस्पर संबंधों को समझाया गया है । साथ ही समाज में जनसंचार के महत्व और जनसंचार पर समाज के प्रभाव की विवेचना की गई है ।

इकाई - 14 जनसंचार और समाज (भाग-2) इस इकाई में जनसंचार में जन की अवधारणा, सूचना समाज और भारत में जनसंचार माध्यमों के स्वरूप और चरित्र पर प्रकाश डाला गया है । साथ ही स्त्री और ग्रामीण यथार्थ के संदर्भ में भी जनसंचार और समाज के पारस्परिक संबंधों पर इकाई में विचार किया गया है ।

इकाई - 15 जनसंचार के विभिन्न आयाम : इस इकाई में नयी संचार प्रौद्योगिकी के संदर्भ में संचार के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आयामों पर विचार गया हैं ।

इकाई - 16 जनसंचार और स्त्री-विमर्श. इस इकाई में साहित्य और पत्रकारिता, सिनेमा, टेलीविजन और इंटरनेट पर प्रस्तुत स्त्री की विभिन्न छवियों पर विचार किया गया हैं । साथ ही, इन विभिन्न माध्यमों में स्त्री की मौजूदगी के बारे में भी जानकारी दी गयी है ।

इकाई-17 जनसंचार और शिक्षा, शिक्षा के प्रचार-प्रसार में जनसंचार माध्यमों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है । इसका कारण वह नयी प्रौद्योगिकी है जिसने शिक्षा को सर्वसुलभ बना दिया है । शिक्षा के अंतर्गत औपचारिक और अनौपचारिक दोनों तरह के शिक्षण पर विचार किया गया है ।

खंड-4 पत्रकारिता का स्वरूप और विकास

इसके अंतर्गत कुल छह इकाइयाँ हैं जिनमें पत्रकारिता के अर्थ और स्वरूप, पत्रकारिता के विभिन्न रूप और क्षेत्र तथा विश्व पत्रकारिता, भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता और हिन्दी पत्रकारिता का भी परिचय दिया गया है ।

इकाई - 18 पत्रकारिता का अर्थ और स्वरूप. इस इकाई में पत्रकारिता का अर्थ और स्वरूप तथा विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के महत्त्व के बारे में बताया गया है । इसी इकाई में पत्रकारिता के लिए लेखन और निरंतर बदलने वाली पत्रकारिता पर भी प्रकाश डाला गया है ।

इकाई - 19 पत्रकारिता के विभिन्न रूप-(1) समाचारपत्र (2) पत्रिकाएं. इस इकाई में समाचारपत्र और पत्रिकाओं के बारे में जानकारी दी गई हैं । इसके साथ ही समाचारपत्रों के लिए विभिन्न तरह के लेखन करने की प्रविधियों के बारे में भी बताया गया है ।

इकाई - 20 पत्रकारिता के विभिन्न क्षेत्र : इस इकाई के अंतर्गत खोजी पत्रकारिता, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के लिए पत्रकारिता, ग्रामीण, बाल, विज्ञान, आर्थिक, शैक्षिक, खेल-कूद, फिल्म, साहित्यिक-सांस्कृतिक और संदर्भ पत्रकारिता के बारे में बताया गया हैं ।

इकाई - 21 विश्व पत्रकारिता का परिचय. इस इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय समाचार जगत का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में परिचय दिया गया है । साथ ही, अन्तर्राष्ट्रीय समाचार समितियां और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सूचना-राजनीति के बारे में भी विचार किया गया है । अन्तर्राष्ट्रीय पत्रकारिता के संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र संघ और उसके विभिन्न संगठनों के प्रयासों का भी इकाई में उल्लेख किया गया है ।

इकाई - 22 हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास : इस इकाई में आरंभ से लेकर वर्तमान तक हिन्दी पत्रकारिता के विकास के विभिन्न चरणों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है । साथ ही, स्वतंत्रता पूर्व राजस्थान की हिन्दी पत्रकारिता के बारे में भी बताया गया है ।

इकाई - 23 भाषायी पत्रकारिता : इस इकाई में हिन्दी और अग्रेजी के अलावा भारत की विभिन्न भाषाओं की पत्रकारिता का संक्षिप्त परिचय दिया गया है और भारत की स्वतंत्रता के संघर्ष, समाज-सुधार आदोलन और भारत की एकता और विकास में भाषायी पत्रकारिता के योगदान पर भी प्रकाश डाला गया है ।

पाठ्यक्रम-लेखन में सम्मिलित की गई इकाइयों के अतिरिक्त शेष इकाइयाँ एमजेएमसी-2,4,5 एवं 8 से ली गई हैं । इन सभी इकाइयों को इस पाठ्यक्रम में पाठ्यक्रम की आवश्यकतानुसार संशोधित और संपादित कर शामिल किया गया है । इस हेतु विश्वविद्यालय की तरफ से इकाई-लेखकों का हार्दिक आभार !

इकाई-1 जनसंचार की अवधारणा और स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

10 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 संचार और जनसंचार

1.3 संचार के विविध रूप

- 1.3.1 वैयक्तिक संचार
- 1.3.2 अंतर्वैयक्तिक संचार
- 1.3.3 लघु समूह संचार
- 1.3.4 जनसंचार

1.4 जनसंचार की अवधारणा

- 1.4.1 जन और जनसंचार
- 1.4.2 जनसंचार की विभिन्न विशेषताएँ
- 1.4.3 जनसंचार के सामाजिक सन्दर्भ

1.5 जनसंचार का स्वरूप

1.6 जनसंचार के स्वरूप के निर्धारक तत्व

- 1.6.1 संप्रेषण को प्रभावित करने वाले तत्व
- 1.6.2 संचार साधनों पर अधिकार का सवाल

1.7 सारांश

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.9 सन्दर्भ ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

जनसंचार आधुनिक क्षेत्रों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय बनता जा रहा है । इधर पिछले वर्षा में भारत में भी इस विषय पर अध्ययन का विस्तार हुआ है । अगर विचार करें तो हम पाएँगे कि इसके अध्ययन की शुरुआत का संबंध जनसंचार के विस्तार से जुड़ा है । भारत एक विकासशील देश है । यहाँ संचार प्रौद्योगिकी का विस्तार अमरीका और यूरोपीय देशों की तुलना में पीछे है । लेकिन पिछले पंद्रह सालों में इस क्षेत्र में तेजी से विस्तार हुआ है । हम यह दावा करने की स्थिति में तो नहीं हैं कि जनसंचार के माध्यमों को हमने जन-जन तक पहुँचा दिया है, लेकिन यह जरूर कह सकते हैं कि जनसंचार के आधुनिकतम और नवीनतम माध्यमों तक हमारे देश की पहुँच बन गई है । जनसंचार के इन माध्यमों का विस्तार तेजी से बढ़ रहा है । इसलिए यह जरूरी है कि हम यह समझें कि जनसंचार है क्या और इसका हमारे व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक जीवन से क्या संबंध जनसंचार माध्यमों के अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में हम इस इकाई में जनसंचार की और स्वरूप को समझने का प्रयास करेंगे । इस इकाई में हमारा मकसद जनसंचार की मूलभूत अवधारणा समझना है । स्पष्ट ही यह समझे

बिना कि जनसंचार क्या है, हम जनसंचार से जुड़े पक्षों को नहीं समझ पाएँगे। । हमारा यह पूरा पाठ्यक्रम जनसंचार के विभिन्न पहलुओं से ही संबद्ध है ।

इस इकाई को पढ़ने के बाद हम आशा करते हैं कि आप:

- संचार और जनसंचार का अंतर समझ सकेंगे ।
- संचार के विविध रूपों की व्याख्या कर सकेंगे ।
- जनसंचार की अवधारणा के विभिन्न पहलुओं को समझ सकेंगे ।
- जनसंचार के सन्दर्भ में 'जन' शब्द की व्याख्या कर सकेंगे
- जनसंचार की विभिन्न विशेषताओं को पहचान सकेंगे ।
- जनसंचार के विभिन्न घटकों का उल्लेख कर सकेंगे । और
- जनसंचार को निर्धारित करने वाले तत्त्वों को समझ सकेंगे ।

1.1 प्रस्तावना

जनसंचार के बारे में बात करने से पहले हमें यह समझना जरूरी है कि यह ' शब्द यहाँ किस सन्दर्भ में प्रयुक्त हो रहा है । जनसंचार दो शब्दों से मिलकर बना है-जन और संचार। वह शब्द अंग्रेजी के शब्द (communication) के अनुवाद के रूप में प्रचलित है । 'जन' शब्द का विचार करने से पहले संचार शब्द पर विचार करेंगे । संचार का अर्थ है संचरण करना। यानी एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना । चर का अर्थ चलने या जाने से है । स्पष्ट ही संचरण शब्द से चलने या जाने का भाव निहित है । लेकिन जिस अध्ययन क्षेत्र के सन्दर्भ में इस पर विचार कर रहे हैं वहाँ अर्थ को इसी विशिष्ट क्षेत्र के सन्दर्भ में ही रखकर देखना होगा। अंग्रेजी के कम्युनिकेशन शब्द में भाव भेजने के अर्थ में है । इसलिए हिन्दी में भी इस शब्द का एक और अर्थ प्रचलित है-संप्रेषण । बहरहाल, यहाँ संचार और संप्रेषण दोनों अंग्रेजी के कम्युनिकेशन के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुए हैं और यहाँ भी इसी रूप में इन पर विचार किया गया है । इसी सन्दर्भ में एक और शब्द संवाद की ओर भी संकेत करना जरूरी है । संवाद के लिए बातचीत शब्द का भी प्रयोग किया जाता है । जब आगे इकाई में हम संचार शब्द पर विचार करेंगे और जनसंचार की अवधारणा को समझने का प्रयास करेंगे तो हमें इस शब्द से संचार और जनसंचार के फर्क को जानने की भी जरूरत होगी ।

जनसंचार की अवधारणा के सन्दर्भ में 'जन' शब्द का भी अत्यंत महत्त्व है । 'जन' के लिए अंग्रेजी के शब्द 'मास' (Mass) का प्रयोग किया गया है । मास का अर्थ हिन्दी में जन किया गया है । जन हिन्दी में जनता के अर्थ में प्रयुक्त होता है और जनता के लिए अंग्रेजी में एक और शब्द पीपुल का प्रयोग होता है । मास की तुलना में पीपुल ज्यादा गरिमामय शब्द है। मास में जनता एक विचारहीन समूह या भीड़ के रूप में सामने आती है जबकि पीपुल ने जनता एक विचारवान जागरूक समूह के रूप में आती है । हिन्दी का जन शब्द आमतौर पर इस दूसरे अर्थ में ही प्रयुक्त होता है । लेकिन यहाँ जन का प्रयोग मास के रूप में ही हुआ है । इस प्रकार जनसंचार शब्द को हम अंग्रेजी के मास कम्युनिकेशन के अर्थ में लेंगे और उस पर विचार भी उसी अर्थ में करेंगे । यह बात कहना इसलिए भी जरूरी है क्योंकि जनसंचार के अध्ययन की शुरुआत भले ही हमारे देश में हो गई हो लेकिन इससे संबंधित संकल्पनाओं की उत्पत्ति

प्राय: पश्चिमी देशों में ही हुई है । हम भी अपने अध्ययन के दौरान उन संकल्पनाओं पर विचार करेंगे यद्यपि हमारे सामने विचारार्थ विषय अपने देश में जनसंचार माध्यमों का विकास भी होगा ।

जनसंचार की अवधारणा और स्वरूप से संबंधित इस इकाई में हम अपनी बात को सिर्फ सैद्धांतिक रूप से ही नहीं प्रस्तुत करेंगे बल्कि कोशिश करेंगे कि विभिन्न माध्यमों के जो सर्वज्ञात अनुभव हैं, उनका हवाला देते हुए हम अपनी बात आप तक पहुँचाए । हमारी कोशिश यह भी होगी कि आपको पारिभाषिक शब्दों के जाल में न फंसने दिया जाए और सहज ढंग से हम अपनी बात कह सकें ।

1.2 संचार और जनसंचार

मैं अपनी बात हाल के एक अनुभव से शुरू करूँगा । इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय द्वारा चलाए जा रहे शैक्षिक कार्यक्रम सृजनात्मक लेखन में डिप्लोमा के विद्यार्थियों के लिए दो दिन का विस्तारित टेलीकॉन्फ्रेंसिंग का कार्यक्रम आयोजित किया गया था। टेलीकॉन्फ्रेंसिंग का अर्थ है टेलीविजन के माध्यम से लोगों से संवाद स्थापित करना । यानी कि इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के संचार केंद्र स्थित स्टूडियो से सीधे प्रसारित कार्यक्रम को उसी समय इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के क्षेत्रीय केंद्रों और चुनिंदा अध्ययन, केंद्रों पर मौजूद विद्यार्थियों द्वारा देखा गया और उनके द्वारा स्टूडियो में मौजूद अध्यापकों और विशेषज्ञों से सवाल पूछे गये और उनके जवाब भी उनको उसी समय दिए गए । यही ध्यान देने की बात यह है कि सवाल पूछने के लिए विद्यार्थियों को एस.टी.डी. और फैक्स की सुविधा उपलब्ध थी लेकिन दृश्य माध्यम की नहीं । इस प्रकार यह टेलीकॉन्फ्रेंसिंग कार्यक्रम एकतरफा दृश्य और दुतरफा श्रव्य के रूप में उपलब्ध था ।

इस विस्तारित टेलीकॉन्फ्रेंसिंग कार्यक्रम की दूसरी विशेषता यह थी कि स्टूडियो में भी लगभग बीस विद्यार्थी मौजूद थे जो दिल्ली और उसके आसपास के क्षेत्रों से बुलाए गए थे । उन्होंने कार्यक्रम के दौरान ही मौजूद विशेषज्ञों और अध्यापकों के सामने अपनी समस्याएँ रखी थीं और जिनका समाधान करने का प्रयास किया गया था ।इस कार्यक्रम की तीसरी विशेषता यह थी कि स्टूडियो में स्टेज पर मौजूद अध्यापक और विशेषज्ञ अपनी बात आपसी संवाद से रख रहे थे न कि व्याख्यान के जरिए ।

चौथी विशेषता यह थी कि इस पूरे कार्यक्रम में ऐसे अध्ययन केंद्र भी बड़ी संख्या में शामिल थे जो इस कार्यक्रम को देख तो सकते थे लेकिन जिनके पास उसी समय अपने प्रश्न पूछने का या अपनी बात रखने की सुविधा उपलब्ध नहीं थी । अब पूरे देश पर विचार कीजिए और सोचिए कि इनमें संचार के कौन-कौन से रूप मौजूद थे?

संचार का सबसे पहला रूप व्यक्ति का स्वयं से बात करना होता है । जब वह किसी की ओर तत्पर होता है या किसी से संवाद करना चाहता है तो स्वयं उसके मन में कई सवाल उठते हैं और वह उनके जवाब ढूँढता है । मसलन, विस्तारित टेलीकॉन्फ्रेंसिंग कार्यक्रम कैसा होगा? स्वयं उसकी भूमिका इसमें क्या होगी? यह जो खुद से बातचीत करना है यह संचार का सबसे पहला रूप कहा जा सकता है। संचार का यह रूप सभी तरह के मानव-संचार की बुनियाद है । इसके बिना कोई और संचार संभव ही नहीं है । जब तक हम दूसरे की बात को समझने

की क्षमता हासिल नहीं करते और उस पर विचार कर अपनी बात को दूसरे तक पहुँचा सकने में सक्षम नहीं होते तब तक दूसरे संचार संभव नहीं है । इसलिए संचार के इस रूप को तभी संचार की बुनियाद कहा गया है । यह एक तरह की मानसिक प्रक्रिया है जिसमें हम सोचने, याद रखने, समझने और विश्लेषित करने की अपनी क्षमताओं का इस्तेमाल करते हैं । यह सब हम भाषा के द्वारा करते हैं । संचार में भाषा की भूमिका पर विचार हम तब करेंगे जब हम इस बात पर विचार करेंगे कि संचार के लिए किसी माध्यम का होना क्यों जरूरी है ।

संचार का वास्तविक प्रयोग हम तभी करते हैं जब एक व्यक्ति दूसरे तक अपनी बात पहुँचाता है जब यह बात का पहुँचना एक तरफा होता है, यानी एक व्यक्ति जब संदेश भेजता है और दूसरा उसे ग्रहण करता हैं तो वह संचार तो होगा लेकिन एकतरफा । लेकिन जब दो व्यक्ति या दो से ज्यादा व्यक्ति आपस में बातचीत करते हैं यानी जब एक कहता है, दूसरा सुनता है, फिर दूसरा जवाब देता है और पहला सुनता है तो यह संचार दुतरफा होगा और इसे हम संवाद कहेंगे । यह संवाद दो के बीच हो सकता है और दो से ज्यादा लोगों के बीच भी । जब दो से ज्यादा लोगों के बीच संवाद हो तो हम आमतौर पर उसे संवाद कहने की बजाए बातचीत कहते हैं। संचार यहाँ भी है।

लेकिन जब किसी जगह इतने लोग मौजूद हों जैसे किसी नेता के सार्वजनिक भाषण में मौजूद लोग नेता का भाषण तो सुनते हैं, लेकिन हजारों लोगों से नेता की बातचीत नहीं हो सकती यह भाषण संचार के दायरे में तो आएगा, लेकिन संवाद के दायरे में नहीं ।

अब हम रेडियो से प्रसारित भाषण को या गीत को या दूरदर्शन से प्रसारित समाचार को संचार की परिधि में तो मानेंगे क्योंकि यहाँ श्रोता या दर्शक प्रसारित होने वाले भाषण, गीत और समाचार को देखता-सुनता है लेकिन वह उसी वक्त अपनी प्रतिक्रिया उन तक नहीं पहुँचा पाता या उसमें बराबर के सहभागी के रूप में भाग नहीं लेता । ध्यान देने की बात यह है कि ये सब संप्रेषण बड़े समूह के लिए हैं । विविध भारती से प्रसारित होने वाली फिल्मी गीतों को लाखों-लाख लोग सुन सकते हैं । दूरदर्शन से प्रसारित होने वाले समाचारों को लाखों-लाख लोग देख (और सुन) सकते हैं । अब ऐसे संचार को जो दो-चार लोगों के लिए न होकर लाखों-लाख लोगों के लिए हो तो उस संचार को जनसंचार की संज्ञा दी जाएगी । हां, संभव है कि उन्हें उतने लोग न देखें या सुनें जितने लोगों के लिए वह संप्रेषित हो रहा हो ।

अब आप शुरू में दिए गए उदाहरण पर विचार करें । क्या इसे जनसंचार का उदाहरण कह सकते हैं? क्या इसमें संचार के वैयक्तिक रूप मौजूद हैं? क्या इसे संवाद कहा जा सकता है?, सोचिए और तय कीजिए।

1.3 संचार के विविध रूप

ऊपर की बातचीत से आप कुछ हद तक संचार का तात्पर्य समझ गए होंगे । संचार का अर्थ है जब हम किसी विचार, सूचना और भाव को दूसरों तक संप्रेषित करते हैं । यह संप्रेषण व्यक्ति-व्यक्ति के बीच हो सकता है व्यक्ति और समूह के बीच हो सकता है और यह समूह छोटा और बड़ा हो सकता है। संचार एकतरफा हो सकता है और दुतरफा भी हो सकता है,

लेकिन इस संचार के लिए किसी माध्यम की जरूरत होती है, ताकि वह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक और एक स्थान से दूसरे स्थान तक जा सके । संचार के इन माध्यमों का बहुत महत्त्व है क्योंकि जनसंचार के अध्ययन की शुरुआत इन माध्यमों में होने वाले परिवर्तनों की वजह से हुई हैं । हम इस बारे में बातचीत आगे करेंगे । फिलहाल हम संचार के विविध रूपों को परिभाषित करें ।

1.3.1 वैयक्तिक संचार

जब कोई व्यक्ति किसी भी मुद्दे पर अपने आप से बात करता है, उस पर विचार करता है, तो इस प्रक्रिया को संचार की परिभाषा में वैयक्तिक संचार (personal communication) कह सकते हैं । जैसाकि हम आरंभ में कह चुके हैं, वैयक्तिक संचार सभी मानव संचार रूपों की बुनियाद है । शुरू में हमने जो उदाहरण दिया था, उस पर विचार करें । यहाँ यानी विस्तारित टेलीकॉन्फ्रेंसिंग में भाग लेने वाले प्रत्येक सहभागी तब तक सक्रिय रूप से भाग नहीं ले सकता जब तक कि वह वैयक्तिक संचार की प्रक्रिया से नहीं गुजरता । मंच पर बैठे हुए विशेषज्ञ अपनी बात या दूसरों की बात पर अपनी प्रतिक्रिया तभी जाहिर कर सकते हैं जब वे इसी वैयक्तिक संचार प्रक्रिया से गुजरते है । यह प्रक्रिया हमारी ज्ञानेंद्रियों द्वारा संपन्न होती है । ज्ञानेंद्रियाँ हमें जो सूचनाएँ प्रेषित करती है, हम अपने मानस में उन पर विचार करते हैं और फिर अपनी प्रतिक्रिया जाहिर करते है । इस प्रकार संचार की प्रत्येक प्रक्रिया इसी वैयक्तिक प्रक्रिया द्वारा संभव होती है । उदाहरण के लिए जब हम अपने सामने बैठे व्यक्ति की बात सुन रहे होते हैं तो हमारे कान उसकी बात पर और हमारी आंखें उसके चेहरे पर टिकी होती हैं। कान में जो शब्द पड़ते हैं और कहने वाले व्यक्ति के चेहरे पर जो भाव आते हैं उससे हम कही गई बात का अर्थ समझते हैं । यह संप्रेषण हमारी श्रव्य और चाक्षुष इंद्रियों द्वारा संपन्न हुआ है और इस पर प्रतिक्रिया इसी संप्रेषित संदेश पर हमारी मानसिक प्रतिक्रिया से तय होती है । इस प्रकार हमारी ज्ञानेंद्रियों द्वारा संचार के यह वैयक्तिक प्रक्रिया सामने आती है ।

1.3.2 अंतर्वैयक्तिक संचार

टेलीकॉन्फ्रेंसिंग के इसी उदाहरण पर आगे विचार करें । जब कार्यक्रम आरंभ हुआ और विशेषज्ञ मंच पर आ गए तो पहले सत्र में मंच पर सिर्फ एक विशेषज्ञ और एक शिक्षक मौजूद थे । विषय था रेडियो के लिए लेखन । शिक्षक ने विशेषज्ञ से एक सवाल पूछा, विशेषज्ञ ने जवाब दिया- इस तरह उन दोनों के बीच बातचीत का सिलसिला चल पड़ा । अब बातचीत के इस रूप पर विचार करें यही दो व्यक्ति एक दूसरे के आमने-सामने बैठे हैं और आपस में बातचीत कर रहे हैं। संचार के इस रूप को हम अंतर्वैयक्तिक संचार (Inter Personal Communication) कह सकते हैं । क्योंकि यह एक से अधिक व्यक्तियों के बीच घटित हो रहा है । यहाँ दोनों सहभागियों में अंतर्वैयक्तिक संचार की प्रक्रिया भी साथ-साथ चल रही है और इसी के फलस्वरूप दोनों सहभागी एक दूसरे तक अपनी बात भी पहुँचा रहे हैं । यह संचार किस वजह से संभव हुआ है? क्योंकि दोनों भागीदार एक दूसरे की भाषा समझते हैं । इसलिए भी कि दोनों एक ही भाषा हिन्दी का प्रयोग कर रहे हैं । यदि दोनों व्यक्ति अलग-अलग

भाषाओं का प्रयोग करते तब दोनों को ही एक दूसरे की भाषा समझ में नहीं आती । ऐसे में क्या संचार संभव होता? दो या दो से अधिक व्यक्तियों में संचार के लिए यह जरूरी है कि वे एक ही माध्यम का प्रयोग करें । कई बार भाषा न जानने पर व्यक्ति अंगों का इस्तेमाल करता है । हाथ से इशारा कर या आँख के द्वारा अपनी बात दूसरे तक पहुँचाने की कोशिश करता है। ये शारीरिक संकेत भी माध्यम का ही एक रूप है।

जब दो व्यक्ति एक दूसरे से बात करते हैं तो उन्हें आपस के माहौल का भी ध्यान रखना होता है । यदि दूसरों की मौजूदगी में बातचीत हो रही है तो बातचीत का स्वरूप वही नहीं होगा जो व्यक्ति बिल्कुल एकांत में करेंगे । यहाँ भी विशेषज्ञ और शिक्षक के बीच बातचीत को स्टूडियो में मौजूद विद्यार्थी सुन रहे हैं और सीधे प्रसारण की वजह से क्षेत्रीय केंद्रों और अध्ययन केंद्रों पर मौजूद विद्यार्थी भी सुन रहे हैं । जाहिर है कि दो लोगों की ऐसी बातचीत जो दूसरे लोगों के द्वारा भी सुनी जा रही हो, उस बातचीत से नितांत भिन्न होगी जो नितांत निजी हो और किसी के द्वारा नहीं सुनी जा रही हो । इसी प्रकार बातचीत पर बाहरी शोर या दूसरी तरह की बाधाओं का भी असर होता है । अगर बात करने वाले एक ही भाषा का इस्तेमाल कर रहे हैं तो भी जरूरी नहीं कि दोनों की बात दोनों पूरी तरह समझ सकें । अगर उनकी भाषा में ऐसे शब्दों का या ऐसी पदों का प्रयोग किया गया हो जो दूसरे के लिए अपरिचित हो तो भी उनके लिए बातचीत करने में मुश्किलें पेश आएँगी । इसका मतलब यह है कि लोगों की बातचीत के लिए उनकी भाषा का ही एक होना जरूरी नहीं है बल्कि उनके अनुभव क्षेत्र का भी एक समान होना जरूरी है । अब इसी उदाहरण को लें । यही विशेषज्ञ और शिक्षक दोनों का क्षेत्र एक ही था । यानी कि वे रेडियो लेखन के बारे में जानते थे, इसीलिए उनके द्वारा आपस में बातचीत करना संभव हुआ । अब इस स्थिति को थोड़ा बदल कर देखें । रेडियो लेखन के विशेषज्ञ के साथ अगर किसी ऐसे व्यक्ति को बैठा दिया जाता जिसे कि रेडियो लेखन की थोड़ी भी जानकारी नहीं है, तो क्या उसके लिए उस विशेषज्ञ से रेडियो लेखन पर बात करना मुमकिन होता ? जाहिर है नहीं । इसका अर्थ यह नहीं है कि इन दो लोगों की बातचीत का प्रभाव तभी होगा जब वे एक समान अनुभव क्षेत्र से जुड़े विषय पर बात करेंगे । इसके साथ ही उन दोनों की विषय पर गहरी और विस्तृत जानकारी और उसी के अनुरूप भाषा पर अधिकार आवश्यक है । जानकारी जितनी गहरी और विस्तृत होगी उतनी ही उनकी बातचीत भी प्रभावशाली होगी ।

1.3.3 लघु समूह संचार

टेलीकान्फ्रेंसिंग के दूसरे सत्र में मंच पर विशेषज्ञों और शिक्षकों की संख्या बढ़कर चार हो गई और पहले सत्र की तुलना में स्टूडियो में मौजूद विद्यार्थियों की भागीदारी में भी इजाफा हुआ । अब बातचीत वहाँ उपस्थित लगभग बीस-पच्चीस लोगों के बीच हो रही थी । यह अवश्य है कि एक समय में एक ही व्यक्ति ही बोल रहा था, लेकिन सभी इस बातचीत में शामिल थे । इस तरह की बातचीत को हम लघु समूह संचार कह सकते हैं । जाहिर है कि लघु समूह बातचीत में लोगों की संख्या असीमित नहीं हो सकती । ऐसी कोई भी संख्या जिसे नियंत्रित

करना नामुमकिन हो जाए वहाँ संचार भी असंभव हो जाएगा । या तो वह एक तरफा संचार होगा या फिर हो-हल्ला होगा।

1.3.4 जनसंचार

संचार का वह रूप जो एक साथ अनगिनत लोगों के लिए हो तो वह जनसंचार कहा जाएगा । जैसे किसी स्थान विशेष पर नेता द्वारा दिया गया भाषण जिसे कई लोग सुन सकते हैं । इसी तरह से रेडियो से प्रसारित होने वाला समाचार या टेलीविजन पर दिखाए जाने वाले धारावाहिक जनसंचार की श्रेणी में आएँगे । ध्यान देने की बात है कि जनसंचार के लिए किसी चैनल की, किसी माध्यम की आवश्यकता होगी । नेताजी द्वारा भरी सभा में भाषण तभी मुमकिन होगा जब वहाँ लाउडस्पीकर की सुविधा होगी, अन्यथा उस नेता की बात बहुत कम लोग सुन पायेंगे । इसी तरह रेडियो या टेलीविजन द्वारा प्रसारित होने वाले प्रसारण भी तभी लोगों तक पहुँच पाते हैं जब उनके प्रसारण के साथ तकनीकी सुविधाओं का संयोजन हो । संचार के इस विराट रूप की वजह से ही जनसंचार शब्द की जरूरत महसूस हुई ।

1.4 जनसंचार की अवधारणा

जनसंचार की अवधारणा का कुछ अनुमान अब तक हमारी बातचीत से आपने लगा लिया होगा । जनसंचार शब्द में जन और संचार दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं । जनसंचार यानी जन के लिए संचार । जनसंचार की जरूरत क्यों पड़ी, क्या आपने कभी सोचा है? आइए इस पर विचार करें ।

जनसंचार का संबंध आधुनिक युग से है । पूँजीवाद के आगमन के साथ बाजारों का विस्तार हुआ । अपना माल ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचाने और उन्हें खरीदने के लिए लोगों को प्रेरित करने के लिए यातायात और संचार के नए साधनों की जरूरत पड़ी । पूँजीवाद के उदय के साथ यूरोप के देशों में जो लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं का आविर्भाव हुआ, उसका गहरा संबंध जनसंचार के उदय से है । लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में लोगों के विचारों को अपने पक्ष में मोड़ने की जरूरत राजनीतिक दलों को होती है । इसके लिए संप्रेषण के माध्यमों का सहारा लिया जाता है । इसी तरह समाज के दूसरे वर्ग भी अपनी बात राजसत्ता तक पहुँचाने के लिए या जनता के ही दूसरे हिस्सों तक अपनी बात पहुँचाने के लिए संचार माध्यमों का सहारा लेते हैं। तार से लेकर टेलीफोन तक, रेडियो से लेकर टेलीविजन तक और प्रिंटिंग प्रेस से लेकर कंप्यूटर तक का आविष्कार इन्हीं जरूरतों की वजह से हुआ ।

आज हमारे पास संचार के इतने साधन मौजूद हैं कि अब हम सिर्फ दो साल पहले के संचार माध्यमों से इनकी तुलना करें तो हमें अभूतपूर्व प्रगति इस क्षेत्र में नजर आएगी । संचार को यह प्रगति बिना संचार प्रौद्योगिकी के विकास के संभव नहीं थी । जनसंचार की अवधारणा पर कोई बातचीत तभी सार्थक हो सकती है जब हम इस बात को भी ध्यान में रखें कि इस संचार प्रौद्योगिकी की जनसंचार की अवधारणा से क्या संबंध है? जनसंचार की अवधारणा को समझने के लिए यह समझने की जरूरत है कि जनसंचार समाज में क्या कार्य करता है । मोटे तौर पर तो हम कह सकते हैं कि जनसंचार माध्यम एक स्थान से दूसरे स्थान तक संदेश पहुँचाते हैं । लेकिन यह संदेश करते क्या हैं। यानी इन संदेशों की लोगों की जरूरत क्यों होती

है? क्या वजह है कि जब दूरदर्शन पर 'रामायण', 'महाभारत' धारावाहिक का प्रसारण हुआ था तब हिंदुस्तान के कोने- कोने में लोग करोड़ों की संख्या में सब काम धंधा छोड़कर टेलीविजन सैट के सामने आकर बैठ जाते थे? या जब टी.वी. पर क्रिकेट का प्रसारण होता है, तो लोग घंटों उसे देखते रहते हैं । आखिर जनसंचार के इन माध्यमों का हमारे जीवन पर किस तरह का असर पड़ता है? क्या हम ऐसे समय की कल्पना कर सकते हैं जब टेलीविजन नहीं होगा? क्यों ऐसा है कि हर सरकार इन जनसंचार माध्यमों को अपने नियंत्रण में रखना चाहती है? जनसंचार की अवधारणा को समझने के लिए यह जरूरी है कि हम इन सवालों पर विचार करें । लेकिन इससे पहले हम जन और जनसंचार को परिभाषित करने का प्रयास करेंगे ।

1.4.1 जन और जनसंचार

जनसंचार शब्द के लिए अंग्रेजी में 'मास कम्युनिकेशन' शब्द का प्रयोग किया जाता है। मास कम्युनिकेशन में 'मास' शब्द अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । 'मास' का अर्थ में 'जन' किया गया है। जैसा कि कहा जा चुका है कि 'जन' शब्द अंग्रेजी शब्द पीपुल के लिए भी प्रयुक्त होता है । तब मास कम्युनिकेशन को पीपुल्स कम्युनिकेशन क्यों नहीं कहा जाता मास या पीपुल का यह 48अंतर बहुत महत्त्वपूर्ण है । पीपुल यानी जनता का वही अर्थ नहीं है जो मास का है । मास (जिसे हम आगे जन ही कहेंगे) जनता को नहीं वरन् लोगों के ऐसे समूह को कहा गया है जिसकी अपनी स्वतंत्र पहचान नहीं है । लेकिन क्या जनता वास्तव में इतनी अमूर्त होती है? क्या जन में समाज के सभी वर्गों के लोग समाहित होते हैं? क्या वर्ग, जाति, लिंग, धर्म, भाषा के आधार पर उनमें जो भिन्नता है, उनको इतनी आसानी से दरकिनार किया जा सकता है? जाहिर है नहीं । फिर भी, संचार माध्यमों के सन्दर्भ में जन को परिभाषित करने की यह परम्परा काफी रूढ़ हो चुकी है ।

पूँजीवादी व्यवस्था के अस्तित्व में आने के बाद और खास तौर पर पिछले दो सौ सालों में कई ऐसे संचार माध्यम विकसित हुए हैं जो बहुत व्यापक जन समूह से संबंधित होते हैं जब कोई फिल्म निर्माता फिल्म बनाता है तो वह कुछ लोगों के लिए ही फिल्म नहीं बनाता बल्कि उसकी फिल्म सबसे लिए होती है । या कह सकते हैं कम-से-कम उस भाषाई समूह के लिए तो होती ही है जिस भाषा में वह फिल्म बनाई गई है । वस्तुत: जनसंचार का गहरा संबंध जन उत्पाद (Mass Production) और जन उपभोग (Mass Communication) से है । इस बात को एक उदाहरण से समझने की कोशिश करें । एक व्यक्ति जो कविता लिखता है उसे लिखने के लिए क्या चाहिए कागज और कलम । जाहिर है इन्हें जुटाना किसी भी आदमी के लिए मुश्किल काम नहीं है । लेकिन जब वही व्यक्ति अपनी कविताओं को किताब के रूप में जन-जन तक पहुँचाना चाहता है तो उसके लिए जो संसाधन चाहिए वह एक साधारण लेखक के बस की बात नहीं होती । तब उसे प्रकाशक के पास जाना पड़ता है । इसी प्रकार फिल्म बनाना कविता लिखने की तरह आसान काम नहीं है, इसके लिए जो संसाधन चाहिए वह प्रत्येक व्यक्ति को जो फिल्म बनाना चाहता है, आसानी से उपलब्ध नहीं हो जाते । संचार के ये कथित जन माध्यम अपने निर्माण और प्रसारण के लिए ऐसे साधनों पर निर्भर हैं जो किसी

लेखक या कलाकार की वैयक्तिक क्षमता पर निर्भर नहीं है । समाचारपत्र, टेलीविजन, रेडियो और सिनेमा के लिए जिस व्यापक तंत्र की जरूरत होती है, वह इन्हें परम्परागत माध्यमों से काफी भिन्न बना देता है

जनसंचार के माध्यम चाहे जैसे भी क्यों न हों और उन्हें प्रसारित करने वालों के मानस में जन की चाहे जो तस्वीर हो, लेकिन जनता न तो निष्क्रीय भागीदार होती है और न ही प्रत्येक संप्रेषित संदेश को आसानी से स्वीकार कर लेती है । सच्चाई यह है कि जनसंचार के इन माध्यमों का प्रभाव लोगों के जीवन पर जितना पड़ता है खुद जनता का इस माध्यमों पर उससे कम प्रभाव नहीं पड़ता । ध्यान देने की बात यह है कि जनसंचार के आधुनिकतम साधन ऐसे हैं जिनमें लोग उनको ग्रहण समूह के सदस्य के रूप में नहीं करते बल्कि अकेले या दो-चार लोगों के बीच ही करते हैं। उदाहरण के लिए सिनेमा को लें । सिनेमा एक ऐसा माध्यम है जिसका आस्वादन दर्शक सिनेमाघर में जाकर करता रहा है । जहाँ कई सौ लोग एक साथ बैठकर फिल्म देखते हैं और वहाँ मौजूद ज्यादातर लोग एक दूसरे से अपरिचित होते हैं । लेकिन आज फिल्म देखना काफी भिन्न हो गया है । किसी भी फिल्म की वीडियो कैसेट लाकर, घर पर वीडियो कैसेट या सी.डी लाकर, घर पर वीडियो प्लेयर के सहारे अपने टेलीविजन पर वह फिल्म देखी जा सकती है । इसी प्रकार की स्थिति दूसरे माध्यमों की भी है । कंप्यूटर और इंटरनेट के इस युग में कोई भी व्यक्ति अपने घर में बैठे हुए अपने निजी कंप्यूटर पर दुनिया के किसी भी हिस्से से संपर्क कर सकता है, किसी भी तरह की सूचना संप्रेषित और हासिल कर सकता है, वेबसाइट और ईमेल के जरिए अपनी सूचना लोगों तक पहुंचा सकता है । कहने का मतलब यह है कि जनसंचार के किसी साधन का उत्पादन चाहे जन उत्पादन के रूप में ही क्यों न हुआ हो, लेकिन उसका उपभोग सामूहिक रूप में हो, यह आवश्यक नहीं है । इस वजह से उस उत्पादन के प्रति लोगों की प्रतिक्रिया में भी भिन्नता आ जाती है ।

जनसंचार के एक और महत्त्वपूर्ण पहलू की चर्चा करना जरूरी है । जनसंचार से संबंधित प्रौद्योगिकी के विकास का एक पहलू यह है कि इसने संदेशों के उत्पादनों को भंडारित करने और उसका पुनरुत्पादन करने की क्षमता हासिल कर ली है । संदेश जिन्हें हम प्रतीकात्मक उत्पादन भी कह सकते हैं, संचार प्रौद्योगिकी की वजह से कई-कई बार पुनरुत्पादित किए जा सकते हैं और उन्हें भंडारित कर एक स्थान से दूसरे स्थान और एक समय से दूसरे समय से संप्रेषित किया जा सकता है । जनसंचार की यह क्षमता अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि, इसी ने इनके व्यावसायिक उत्पादन की संभावनाओं को बढ़ाया है और संचार को उद्योग का दर्जा दिलाया है । जनसंचार के इन सारे पहलुओं के सन्दर्भ में ही हम जनसंचार की अवधारणा को समझ सकते हैं ।

1.4.2 जनसंचार की सामान्य विशेषताएँ

जनसंचार पर अब तक हम जो चर्चा कर चुके हैं उसके आधार पर हम इसकी एक व्यापक परिभाषा बना सकते हैं । जनसंचार प्रतीकात्मक वस्तुओं का संस्थागत उत्पादन है जिसे भंडारित और, पुनरुत्पादित कर व्यापक जन समुदाय को संप्रेषित किया जा सकता है । इस दृष्टि से विचार करने पर हमारे सामने यह स्पष्ट हो जाएगा कि जनसंचार के वे कौन से पक्ष

हैं जिसे जानना और समझना जरूरी है । ये जनसंचार की ऐसी विशेषताएँ हैं जो जनसंचार की अवधारणाओं को स्पष्ट करने में मदद करेंगी ।

1. **संस्थागत उत्पादन :** जनसंचार की पहली विशेषता है उसका संस्थागत उत्पादन और प्रतीका- त्मक वस्तुओं के रूप में उनका प्रसारण । जनसंचार में तकनीकी माध्यम की बहुत बड़ी भूमिका होती है । इसी के जरिए कोई प्रतीकात्मक रूप निर्मित और संप्रेषित होता है । इन तकनीकी 'माध्यमों से सूचनाओं के भंडारण की क्षमता होती है । उदाहरण के लिए कागज पर लिखित सूचनाओं को, रेडियो में आवाज को और वीडियो सी.डी में आवाज और दृश्यों को, लिखित सूचनाओं को, भंडारित करने की क्षमता होती है । अगर हम स्थिति की तुलना आधुनिक युग से पूर्व के युग से करे तो हम पाएँगे कि आवाज को और दृश्यों को भंडारित करने की कोई प्रविधि पहले मौजूद नहीं थी, जबकि लिखे हुए शब्दों को भी कागज पर लिखकर सुरक्षित रखना काफी बाद में संभव हो सका । इस लिखे हुए की भी एक से अधिक प्रतियाँ बनाने में हर बार उतना ही समय लगता था । जनसंचार के अलग-अलग माध्यमों में भंडारण की क्षमता एक-सी नहीं होती । ध्यान दें तो संचार प्रौद्योगिकी ने इस क्षेत्र में उल्लेखनीय विकास किया है । अब जो नयी तकनीक इस क्षेत्र में आयी है और जिसका प्रयोग कंप्यूटरों और दूसरे तरह के मल्टी मीडिया उपकरणों में खास तौर पर किया जा रहा है वे बहुत कम जगह पर बहुत अधिक सूचनाओं का भंडारण कर सकती हैं । इस क्षमता की वजह से जनसंचार के प्रसार पर गहरा असर पड़ा है ।

2. **पुनरुत्पादन की क्षमता :** जनसंचार की दूसरी विशेषता है, पुनरुत्पादन की क्षमता । मुद्रण की मशीन के आविष्कार ने लिखी हुई सूचनाओं की हजारों प्रतिलिपियाँ बनाना इतना आसान' बना दिया है कि कुछ ही घंटों में पूरे अखबार की लाखों प्रतियाँ निकाली जा सकती हैं । जान बी. थाम्पसन का विचार है कि प्रतीकात्मक रूपों की पुनरुत्पादकता वह मुख्य लक्षण है जिसके कारण जनसंचार के संस्थानों द्वारा तकनीकी माध्यम का व्यावसायिक दोहन संभव हुआ है और जिसकी वजह से ही प्रतीकात्मक रूप को ऐसी जिस में बदला जा सकता है जिनको ये संस्थान बेचने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित कर सकें । पुनरुत्पादन की इसी विशेषता के कारण स्वयं पुनरुत्पादन पर नियंत्रण रखने के तरीकों का विकास हुआ है, कॉपीराइट कानून, बौद्धिक संपदा कानून आदि इसी व्यावसायिकता के परिणाम हैं।

3. **दिक् और काल में उपलब्ध होना :** जनसंचार की तीसरी विशेषता है इसका दिक् और काल में उपलब्ध होना । मसलन एक पुस्तक लिखे जाने के बाद छपने पर ही अपने पाठकों तक पहुँचती हैं यानी उसके संप्रेषण में समयगत दूरी अवश्यंभावी है जबकि रेडियो पर प्रसारण तत्काल संभव है जहाँ संप्रेषण और आस्वादन की प्रक्रिया के बीच समयगत दूरी की आवश्यकता नहीं रहती । लेकिन रेडियो के माध्यम को टेपरिकार्डर के द्वारा प्रयुक्त करने पर हम आवाज को स्थान और समय दोनों दृष्टियों से अपने सन्दर्भ में दूर कर सकते हैं । यानी आज रिकार्ड की गई आवाज को आज के बाद कभी भी और यहाँ से किसी और जगह पर यथावत सुना जा सकता है । सिनेमा और

टेलीविजन ने इस दूरी को दृश्यों के लिए संभव बना दिया है । उपग्रह प्रणाली कंप्यूटर तकनीक के विकास ने समय और स्थान की सही-सही दूरियों को भी लगभग समाप्त कर दिया है । विश्व के किसी भी कोने में घटित होने वाली घटना को, उसी क्षण देखा और सुना जा सकता है । यही नहीं यह संप्रेषण द्विमार्गी भी है यानी एक से अधिक स्थानों और समय के आवश्यकतानुसार विस्तार तक दोनों ओर से संप्रेषण संभव है । दिक् और काल की दृष्टि से संप्रेषण में हुए इन परिवर्तनों से प्रतीकात्मक रूपों को किसी भी स्थान तक पहुँचाना और लंबे समय तक सुरक्षित रखना ज्यादा आसान हो गया है ।

4. **सामूहिक संबोधन :** जनसंचार की चौथी विशेषता यह है कि इसमें जनता को सामूहिक रूप से संबोधित किया जाता है इसलिए इसमें प्रतीकात्मकता का अत्यधिक महत्त्व है । मसलन, टेलीफोन पर बातचीत करना एक निजी मामला है, इसलिए इसमें केवल आवाज का अबाध प्रवाह पर्याप्त है जबकि रेडियो से प्रसारित होने वाले समाचार, वार्ता या गीत को हजारों लोगों पहुँचाना होता है, इसलिए वहाँ इस बात का महत्त्व भी है कि बात को किस रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है । यही बात सिनेमा पर भी लागू होती है । जनसंचार के ये साधन इतने बड़े पैमाने पर उपलब्ध होने लगे हैं कि इस प्रतीकात्मकता को ठीक से समझने की जरूरत है । मसलन, सिनेमा को लें । एक फिल्म जिसको बनाने में लाखों और कई बार तो कई करोड़ रुपए लग जाते हैं, उसकी लागत पर लगने वाला पैसा तभी निर्माता को वापस मिल सकता है, जब उसे देखने के लिए ज्यादा से ज्यादा लोग आएँ । यह तभी संभव है जब फिल्म की प्रस्तुति इस ढंग से की गयी हो कि हर वर्ग के व्यक्ति को वह पसंद आये यानी उनमें प्रयुक्त प्रतीकात्मक रूपों में अधिकतम लोगों को प्रभावित करने की क्षमता हो ।

   जनसंचार की इन विशेषताओं के सन्दर्भ में यह बात ध्यान देने की है कि ये सभी उत्पादन जिस तरह की प्रौद्योगिकी की मांग करते हैं और इनके निर्माण और प्रसारण के लिए जिस तरह के बड़े पैमाने के संस्थागत ढाँचे की जरूरत होती है वह जनसंचार की अवधारणा को गहरे रूप से प्रभावित करता है । जनसंचार के इस पहलू का संबंध उसके सामाजिक सन्दर्भ से जुड़ा है । अगले उपभाग में हम इस पहलू पर विचार करेंगे।

1.4.3 जनसंचार के सामाजिक सन्दर्भ

जनसंचार के नए माध्यमों की उत्पत्ति सामाजिक परिवर्तन में हुई है । जहाँ एक ओर जनसंचार का विकास समाज के विकास का परिणाम है, वहीं वह सामाजिक विकास को प्रभावित करता है । लेकिन समाज और जनसंचार के बीच संबंधों की इस आधारभूत धारणा को सरलीकृत रूप में नहीं समझा जा सकता । जनसंचार के अलग-अलग रूपों का प्रभाव समाज के अलग-अलग वर्गो पर एक-सा नहीं पड़ता । उदाहरण के लिए, समाचारपत्र को लें । जब समाचारपत्रों का आरंभ नहीं हुआ था तब सूचनाओं के लिए लोगों के पास ऐसा जरिया नहीं था जिससे वे प्रत्येक सूचनाओं को उपलब्ध कर सकें । नतीजतन, सूचनाएँ समाज के शक्तिशाली वर्ग तक ही

सीमित थीं । इसी प्रकार ज्ञान के दूसरे रूप जो लिखित रूप में उपलब्ध थे वे भी सभी तक नहीं पहुँच सकते थे । लेकिन जब प्रेस का आगमन हुआ और किताबें बड़ी संख्या में छपने लगीं तब वह ज्ञान जो लिखित रूप में मौजूद था समाज के बड़े हिस्से तक पहुँच सका । जाहिर है जानने के अधिकार का प्रेस के आगमन से जो रिश्ता है उसे इसी सन्दर्भ में समझा जा सकता है । इस तरह मुद्रण प्रौद्योगिकी ने ज्ञान को समाज के किसी खास वर्ग की बपोती नहीं रहने दिया बल्कि उसे आम लोगों तक पहुँचाया है । यह ज्ञान के क्षेत्र में लोकतांत्रिक मूल्यों का प्रवेश है।

लेकिन क्या इसी से स्थिति में आधारभूत परिवर्तन हो गया है? यदि हम अपने देश का ही उदाहरण ले तो हमें वास्तविकता की बिल्कुल दूसरी तस्वीर मिलेगी । आजादी के पचास साल बाद भी देश की लगभग आधी आबादी निरक्षर है । यानी वह न तो अखबार पढ़ सकती है और न ही किताबें । इसका दूसरा मतलब हुआ कि मुद्रित ज्ञान के व्यापक पैमाने पर उपलब्ध होने का उनके लिए कोई अर्थ मतलब नहीं है । वह तो शिक्षा-जैसे बुनियादी अधिकार से ही वंचित है। अब अगर इस उदाहरण को आगे बढ़ाएँ और इस बात पर विचार करें कि समाचारपत्रों में जो कुछ प्रकाशित होता है क्या वह लोगों के जानने के लोकतांत्रिक अधिकारों के अनुरूप है? हमारा अनुभव बताता है कि ऐसा नहीं है । एक ही समाचार को अलग-अलग अखबार अलग-अलग ढंग से पेश करते हैं । समाचारपत्र सूचनाओं को किस ढंग से पेश करेंगे, उस पर बहुत कुछ निर्भर करता है । सूचनाओं को पेश करने का मामला भी सरल नहीं है । वहाँ प्रेस के मालिक के वर्गीय हित से लेकर संपादक और संवाददाता तक की वैचारिक समझ सभी का प्रभाव पड़ता है । इसलिए संचार माध्यमों के सन्दर्भ में मामला सिर्फ संप्रेषण तक सीमित नहीं है । वह किस तरह के संप्रेषण, किसके लिए संप्रेषण और किस लिए संप्रेषण सभी से जुड़ा है । यही कारण है कि जनसंचार माध्यमों पर वर्चस्व का मसला उठ खड़ा होता है ।

जनसंचार के नए माध्यमों का प्रश्न इसलिए भी उठ खड़ा होता है क्योंकि इन माध्यमों का प्रभाव इतने व्यापक और जबरदस्त ढंग से दिखाई देता है कि उसकी उपेक्षा करना लगभग नामुमकिन है । हम एक और उदाहरण से इस बात को समझने का प्रयास करेंगे । हम सभी जानते हैं कि टी.वी. एक ऐसा माध्यम है जो अपनी दृश्य-श्रव्य क्षमता के कारण एक साथ करोड़ों लोगों को प्रभावित कर सकता है । अगर इस माध्यम के द्वारा लोगों को लगातार ऐसे विचार परोसे जाएँ जो उन्हें एक खास दिशा की ओर धकेले तो क्या उन पर इसका असर नहीं होगा? हम इस बात को गणेश के दूध पीने की अफवाह से जोड़ कर देख सकते हैं । इस अफवाह को फैलाने में टी.वी. पर प्रसारित खबरों ने योग दिया था और इसका प्रभाव इतना व्यापक हुआ कि देशी-विदेशी चैनलों ने इन्हें दुनिया के हर कोने में पहुँचा दिया । नतीजतन, विदेश में बसे भारतीय भी इस अफवाह के फैलने के कुछ ही घंटों में गणेशजी की मूर्तियों को दूध पिलाने लगे । हम क्रिकेट की लोकप्रियता को भी इसी जनसंचार के प्रभाव के रूप में आंक सकते हैं । यह जनसंचार ही है जिसने सचिन तेंदुलकर को किसी भी राष्ट्रीय नेता या फिल्मी अभिनेता जितनी लोकप्रियता प्रदान कर दी है । यहाँ यह भी उल्लेख करना जरूरी है कि इस लोकप्रियता का असर कई और रूपों में भी दिखाई देता है । सचिन की इस गढ़ी हुई लोकप्रियता का इस्तेमाल बड़ी कंपनियाँ अपना माल बेचने के लिए कर रही हैं । यह सचिन के लिए

अतिरिक्त आमदनी का जरिया भी बन गया है । इस लोकप्रियता की वजह से अन्य किसी खेल की बजाय क्रिकेट को वरीयता मिलती है । समाज में खेलों के प्रति एक संतुलित नजरिया बनने की बजाए असंतुलित नजरिया बन जाता है । सारा देश सिर्फ क्रिकेट खेलता, क्रिकेट देखता और क्रिकेट पर बात करता हुआ नजर आता है । इस प्रकार वे प्रतिभाएँ जो क्रिकेट की बजाय अन्य खेलों में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर सकने में सक्षम हो सकती थीं, शीघ्र ही कुंठित होकर खत्म हो जाती हैं ।

जनसंचार के सामाजिक पहलुओं को समझने के लिए उपर्युक्त बातों का महत्त्व तो है लेकिन यह नाकाफी है । संचार के बारे में इससे नकारात्मक दृष्टिकोण पनप सकता है । जैसा कि रेमंड विलियम्स का कहना है, आज के युग में संपत्ति, उत्पादन और व्यापार की तरह समाज की चिंता के केंद्र में संचार ने भी प्रवेश कर लिया है । बहुत-से लोग संचार को दूसरे स्तर पर रखते हैं । उनका मानना है कि सबसे पहला स्थान यथार्थ का है और उस यथार्थ का संप्रेषण दूसरे स्थान पर है। लेकिन यह मानने से हमारी समस्याओं का समाधान नहीं होता । सामाजिक परिवर्तन और विकास के जितने भी साधन और संस्थाएँ मौजूद हैं उन्हें लोगों तक पहुँचाने और उनमें लोगों को शामिल करने के लिए जरूरी है कि जनसंचार के साधनों की हम सही समझ विकसित करें । यदि हम पहले से ही मानकर चलते हैं कि जनसंचार का उपयोग जनता को जागरूक बनाने और उन्हें सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में शामिल करने के लिए नहीं किया जा सकता तो इसका मतलब यह है कि हमने जनसंचार के साधनों को निहित स्वार्थों के भरोसे छोड़ दिया है ।

इसका अर्थ यह नहीं है कि जनसंचार के साधनों का जनता के पक्ष में उपयोग इतना आसान है । इसका संबंध राजसत्ता के चरित्र से जुड़ा है । राजसत्ता का जो वर्ग सबल होता है, उसी वर्ग का संचार के साधनों पर नियंत्रण और अधिकार होता है । इसका अर्थ यह भी है कि वह वर्ग राजसत्ता के साधनों का उपयोग अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए करता है । इसका अर्थ यह भी है कि संचार के साधनों का उपयोग सबल वर्ग जनता के पक्ष में करने के लिए राजसत्ता के वर्ग चरित्र को बदलने की कोशिश करनी होती है । इसका मतलब यह भी है कि जनसंचार के साधनों से जुड़े सवालों का संबंध समाज के बुनियादी ढाँचे से है ।

1.5 जनसंचार का स्वरूप

हम अब तक जनसंचार की अवधारणा के विभिन्न पहलुओं पर काफी बात कर चुके हैं। अब हम जनसंचार के स्वरूप को समझने का प्रयत्न करेंगे । अब तक हम इस बात को अच्छी तरह समझ चुके हैं कि जनसंचार के द्वारा संदेशों को किसी माध्यम के जरिए लाखों लोगों तक पहुँचाया जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि जो संदेश लाखों लोगों के लिए प्रेषित किया जाता है, उसे लाखों लोग ग्रहण करेंगे ही । इसका मतलब यह है कि इस संदेश को लाखों लोग ग्रहण कर सकते हैं । यदि संदेश सबको पसंद नहीं है तो संभव है कि उसके देखने या सुनने वाले बहुत कम हों । इसके बावजूद यह संदेश जनसंचार की श्रेणी में ही आएगा क्योंकि इसका संप्रेषण बहुत बड़े जन समुदाय के लिए किया गया है । अगर हम ध्यान दें तो माध्यम के द्वारा प्रस्तुत सभी संदेशों को माध्यम उपलब्ध रखने वाले सभी ग्रहण नहीं करते वरन् वे अपनी पसंद के ही संदेश को ग्रहण करते हैं ।

जनसंचार की प्रक्रिया को संपन्न करने के लिए कई तरह के तकनीकी साधनों, सामाजिक संगठनों और संस्थाओं की जरूरत होती है । इस बात को थोडा और स्पष्ट करने के लिए यह देखें कि संचार की प्रक्रिया कैसे घटित होती है । संचार की प्रक्रिया को दो बिंदुओं और उनको जोड़ने वाली रेखा के द्वारा समझें । मान लीजिए, क और ख दो बिंदु है । क जहाँ से संदेश प्रेषित होना है और ख जहाँ संदेश ग्रहण किया जाना है । स संदेश है जो क ख रेखा के जरिए क से ख तक पहुँचता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संचार की प्रक्रिया चार घटकों के संयोग से मिलकर घटित होती है । ये है-

1. संदेश प्रेषित करने वाले (यहाँ जिसे क द्वारा दर्शाया गया है)
2. संदेश को ग्रहण करने वाले (यहाँ जिसे ख द्वारा दर्शाया गया है)
3. संदेश (यहाँ जिसे स द्वारा दर्शाया गया है)
4. माध्यम यानी जिसके द्वारा संदेश क से ख तक पहुँचता है । (यहाँ जिसे क ख द्वारा दर्शाया गया है।

संचार के लिए उपर्युक्त चारों घटकों का होना जरूरी है । इनमें से किसी भी घटक के अभाव में संदेश प्रेषित नहीं होगा । हम सरलतम उदाहरण से इस बात को समझें । दो व्यक्तियों की बातचीत पर विचार करें । हमने इकाई के आरंभ में इसे अंतर-वैयक्तिक संचार की संज्ञा दी थी । यहाँ पहला व्यक्ति जब अपनी बात कहता है तो वह संदेश प्रेषित करने वाला होता है । यानी दूसरा व्यक्ति इस संदेश को ग्रहण करता है । संदेश को ग्रहण करने वाला यह व्यक्ति ख है । अब हम संदेश पर विचार करें । मान लीजिए पहले व्यक्ति ने दूसरे से कहा 'तुम्हारी तबीयत कैसी हैं? यह संदेश है जो क ने ख तक पहुँचाया । इस संदेश को हम स कह सकते हैं । लेकिन इस संदेश को पहुँचाने के लिए क ने किसका सहारा लिया? सबसे पहले अपनी बोलने की क्षमता का । यानी उसने मुँह से ध्वनि निकाली। यह खास तरह की ध्वनि थी जिसको हम भाषा कहते हैं । यानी भाषा वह माध्यम है जिसके जरिए संदेश क से ख तक पहुँचा । यानी भाषा यही क ख के रूप में है । इस प्रकार चारों घटक दो व्यक्तियों की बातचीत में भी मौजूद हैं । ध्यान दें कि क ने जिस भाषा में संदेश पहुँचाया वह भाषा ख को समझ में आनी चाहिए अन्यथा वह इस बात को नहीं समझ सकेगा कि क ने क्या संदेश प्रेषित किया है। इसी प्रकार क में ध्वनि को निकालने की क्षमता होना जरूरी है और ख में उस संदेश को सुनने यानी ग्रहण करने की क्षमता का होना जरूरी है । ये दोनों काम मनुष्य की ज्ञानेंद्रियाँ करती हैं। इस प्रकार संदेश का संप्रेषण और ग्रहण बिना इनकी मदद के संभव नहीं है । दृश्य-संप्रेषण में देखने की क्षमता की जरूरत होती है ।

अब इसी बात को अन्य मामलों पर लागू करें । मसलन, रेडियो का उदाहरण लें । मान लीजिए मेरे पास एक रेडियो सैट है और मैं सुबह उस पर फिल्मी गीत सुनता हूँ । मैं फिल्मी गीत सुनता हुआ फिल्मी गीत नामक संदेश को ग्रहण करने वाला ग्रहीता हो जाता हूँ । यह संदेश मेरे पास रेडियो सैट के जरिए पहुँचा है । यानी यह रेडियो सैट संदेश का वाहक यानी

माध्यम है । लेकिन हमने पहले उदाहरण में भाषा के माध्यम कहा था । क्या भाषा यहाँ माध्यम नहीं है? है, लेकिन यही भाषा नामक माध्यम को पहुँचाने के लिए, भी इस रेडियो सैट की जरूरत है । यह रेडियो सैट गीत को हम तक कैसे पहुँचाता है । यह सैट वायुमंडल में विचरण करने वाली कुछ खास ध्वनि तरंगों को पकड़ता है और उन्हें विसंकेतीकरण करते हुए हम तक गीत के रूप में पहुँचाता है । अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि वायुमंडल में ये ध्वनि तरंगें कहाँ से आती है । इसके लिये हमें स स्थान पर पहुँचना होगा जहाँ से फिल्मी गीत को ध्वनि तरंगों के रूप में वायुमंडल में भेजा गया था । यानी रेडियो स्टेशन वह स्थान है जहाँ संदेश को कुछ तकनीकी यंत्रों द्वारा रिकार्ड किया जाता है । संदेश की यह रिकार्डिंग जिस तकनीकी विधि से होती है उसे हम कोडिंग करना यानी संकेतीकृत करना कहते हैं । यानी यह रिकॉर्डिंग संदेश को कोड में बदल देती है । अब वहाँ से वह इसी कोड के रूप में यानी ध्वनि तरंगों के रूप में और खास वायुमंडल में व्याप्त हो जाती है । अब वायुमंडल में व्याप्त इस सकेंतीकृत संदेश को वे सभी रेडियो सैट ग्रहण कर सकते हैं जो स संदेश को प्रसारित करने वाली फ्रिक्वेंसी पर स्थिर किया गया है । वह वायुमंडल में से सिर्फ उसी ध्वनि तरंग को ही ग्रहण करेगा जो फिल्मी गीत की वाहक है । रेडियो सैट इन तरंगों को ग्रहण करते हुए उन्हें विसंकेतीकरण भी करता जाता है और हमें वह गीत ठीक उसी समय उसी रूप में सुनाई देता है जिस रूप में वह प्रसारित किया गया था । इस प्रकार संदेश भेजने की जो साधारण प्रक्रिया हम दो लोगों की बातचीत में देखते हैं, वही रेडियो नामक जनसंचार में कई तकनीकी संसाधनों के जरिये बड़े पैमाने पर घटित होती है ।

इस उदाहरण में हम देखते हैं कि जहाँ से संदेश प्रेषित किया जाता है और जहाँ संदेश ग्रहण किया जाता है वहाँ कई तरह के तकनीकी संसाधनों की जरूरत पड़ती है । रेडियो के मामले में रेडियो सैट संदेश ग्रहण करने वाला संसाधन है । लेकिन उसके बीच में कई और भी संवाहक हो सकते हैं जो रेडियो स्टेशन से संदेश को रेडियो सैट तक पहुँचाने में भूमिका अदा करे । मसलन, अब उपग्रह प्रणाली के आने के बाद रेडियो स्टेशन से भेजा गया संदेश पहले उपग्रह तक जाता है, फिर संभव है स्थानीय रिले केंद्र उसे ग्रहण करे और फिर वह आप तक पहुँचे । कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना है कि जनसंचार के स्वरूप पर विचार करते हुए हमें इन सभी घटकों को ध्यान में रखना होगा ।

1.6 जनसंचार के स्वरूप के निर्धारक तत्व

जनसंचार के उपर्युक्त घटक की संचार प्रक्रिया को संभव बनाते हैं । लेकिन इसी वजह से इन घटकों पर अन्य दृष्टियों से भी विचार करने की जरूरत है । पहला सवाल यह है कि क्या संदेश के संप्रेषण की पूरी प्रक्रिया निर्बाध रूप से घटित होती हैं? दूसरा सवाल यह है कि क्या संप्रेषण के सभी घटकों पर सभी का समान अधिकार होता है? इकाई के इस भाग में हम इन दोनों सवालों का उत्तर खोजने का प्रयास करेंगे ।

1.6.1 सम्प्रेषण को प्रभावित करने वाले तत्व

आप अखबार तो जरूर पढ़ते होंगे । क्या आपने इस बात पर विचार किया है कि अखबार में दिए गए समाचार किस विधि से आप तक पहुँचते हैं? एक उदाहरण से इस बात को

समझें । मान लीजिए किसी शहर में दंगा हुआ है । अगले दिन हम इस दंगे का समाचार अखबार में पढ़ते हैं । क्या यह संभव है कि समाचार ने घटना का बिल्कुल वस्तुपरक और यथातथ्य विवरण दिया होगा? ऐसा संभव भी है और नहीं भी । इस समाचार को हमारे तक पहुँचने की प्रक्रिया द्वारा समझने की कोशिश करें । दंगाग्रस्त क्षेत्र का यह समाचार किसी संवाददाता द्वारा समाचारपत्र कार्यालय तक पहुँचाया जाता है । यह संवाददाता समाचारपत्र का भी हो सकता है और किसी समाचार एजेंसी का भी । यह जो संवाददाता है, यह घटना का विवरण प्रस्तुत करेगा । इसका विवरण इसके द्वारा हासिल किए गए तथ्यों और उन तथ्यों को देखने की उसकी समझ पर निर्भर करेगा । ये दोनों बातें समाचार के स्वरूप को निर्धारित करेंगी। पत्रकार बनते वक्त उसे बताया गया होगा कि तथ्यों को किस तरह हासिल करना और किस तरह प्रस्तुत करना चाहिए लेकिन इसके बावजूद उसके लिए कुछ हद तक आत्मगत होना कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी । तथ्य एकत्र करने में और उसको भेजने में उसकी पत्रकारिता की क्षमता और उसकी जीवन दृष्टि भी अपना प्रभाव डालेगी । जाहिर है कि वह लंबे-लंबे विवरण और प्रत्येक तथ्य नहीं भेज सकता । उसे उन तथ्यों का चयन करना होगा जिसे वह सबसे ज्यादा जरूरी समझेगा । इस प्रकार वह समाचार अपने आरंभिक बिंदु पर ही घटित घटना से भिन्न हो जाएगा ।

जब रिपोर्टर द्वारा भेजा गया समाचार समाचारपत्र के कार्यालय में पहुँचेगा तब उसको समाचारपत्र में देने से पूर्व संपादक मंडल के सहकर्मी पढेंगे और उसमें समाचारपत्र की दृष्टि से और संपादक के सहकर्मियों की समझ के अनुसार संशोधन होगा । यहाँ संशोधन का तात्पर्य उनके तथ्यों की तोड़-मरोड़ या कल्पित तथ्यों की सृष्टि से नहीं है बल्कि उन्हे तथ्यों की ऐसी प्रस्तुति से है जिससे समाचार को पढ़ते हुए बिल्कुल भिन्न तरह का प्रभाव दिखाई दे । यहाँ फिर मूल घटना का स्वरूप बदल दिया गया है और अंत में जब समाचारपत्र के प्रेस में वह समाचारपत्र छपता है वह वहाँ उसमें हेरफेर संभव है । जगह की कमी या और तकनीकी वजहों से । मसलन पहले पृष्ठ का समाचार तीसरे या चौथे पृष्ठ पर छापकर उसके प्रभाव को सीमित किया जा सकता है । साधारण-सी खबर का भड़काऊ शीर्षक देकर उसे महत्त्वपूर्ण बनाने की कोशिश की जा सकती है । साधारण लड़ाई-झगड़े को भीषण सांप्रदायिक दंगा और सांप्रदायिक दंगे को असामाजिक तत्त्वों की आपसी लड़ाई बनाकर पेश किया जा सकता है । यानी संदेश हम तक किस रूप में पहुँचेगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसे भेजने वाले कौन हैं । यहाँ तात्पर्य सिर्फ रिपोर्टर और संपादक से ही नहीं अखबार के मालिक से भी है जो उस अखबार की नीतियों को तय करने में अहम् भूमिका निभाता है। जो बात समाचारपत्रों पर लागू होती है वह अन्य संचार माध्यमों पर भी उसी तरह लागू होती है ।

इस प्रकार कोई भी संदेश अपने आरंभ से ग्रहीता तक पहुँचने तक ही नहीं संदेश के निर्मित होने से ग्रहीता तक पहुँचने तक कई तरह के बाहरी प्रभावों से होकर गुजरता है और इस प्रक्रिया में वह अपने स्वरूप को रूपांतरित करता है । इनमें वे तकनीकी माध्यम तो अपना असर डालते ही हैं, उनसे जुड़े लोग भी अपना असर डालते हैं ।

1.8.2 संचार साधनों पर अधिकार का सवाल

जैसा कि हम शुरू में कह चुके हैं, आधुनिक जनसंचार माध्यमों के विकास का इतिहास पूँजीवादी विकास से अभिन्न रूप से जुड़ा है । पूँजीवादी युग से पहले संचार के जो साधन उपलब्ध थे उनके द्वारा पूँजीवादी विकास से जुड़ी जरूरतों को पूरा नहीं किया जा सकता था । यह जरूरी था कि संचार के नए साधनों का विकास हो जिससे पूँजीपति वर्ग के लिए बाजार पर नियंत्रण बनाए रखना आसान हो सके । 1837 में तार के आविष्कार ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योग दिया । इसके बाद तो जैसे संचार के क्षेत्र में क्रांति ही आ गई थी । हर नया आविष्कार संचार और प्रचार के नए-नए आयामों का प्रवर्तन कर रहा था । इन नए आविष्कारों ने संदेशों की उपलब्धता तो बढ़ा दी लेकिन इनके लिए जो तकनीकी यंत्र और मानव संसाधनों की जरूरत होती है, उस पर नियंत्रण पर्याप्त मात्रा में पूँजी निवेश के बिना संभव नहीं था । इसलिए जनसंचार के ये सभी साधन या तो सीधे-सीधे पूंजीपतियों के हाथों में हैं या सरकारी नियंत्रण में हैं । दोनों ही मामलों में उनसे प्रसारित होने वाले संदेश जनता के लिए होकर भी जनता के हित में हों यह जरूरी नहीं है । जनसंचार की अवधारणा और स्वरूप से इस बात का गहरा नाता है ।

संचार के साधनो का महत्त्व लगातार बढ़ता जा रहा है । एक उद्योग के रूप में भी और जनता की चेतना को नियंत्रित और प्रभावित करने की दृष्टि से भी । सूचना और संचार के इस युग में मनुष्य सिर्फ उपभोक्ता बनकर रह गया है । वे लोग जिन तक इन संचार के नए साधन नहीं पहुँचे हैं वे शक्तिहीन हैं और जिन लोगों के पास ये साधन उपलब्ध हैं, वे अपने को शक्तिमान समझते हैं । लेकिन क्या यह सत्य है? जनसंचार की अवधारणा और स्वरूप के सन्दर्भ में इस प्रश्न का उत्तर आपको आगे की इकाईयों में प्राप्त होगा ।

1.7 सारांश

संचार का तात्पर्य है, संप्रेषित करना । यानी जब कोई संदेश एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक, एक स्थान से दूसरे स्थान तक और एक समय से दूसरे समय में संप्रेषित किया जाता है, तो वह संचार कहा जाएगा । जो संचार बहुत बड़े पैमाने पर बहुत बड़ी संख्या तक पहुँचाने के लिए उत्पादित किया जाता है वह जनसंचार की श्रेणी आएगा । जनसंचार का संबंध पूँजीवादी और लोकतांत्रिक परिवर्तनों से है । पूँजीवाद के विस्तार के साथ जब बाजार का फैलाव हुआ और उसकी जरूरतों को पूरा करने के लिए यातायात और संचार के नए साधन आविष्कृत हुए तो इसी से जनसंचार के नए साधन सामने आए ।

संचार कई रूपों में हमारे सामने आता है । वैयक्तिक संचार, अंतर-वैयक्तिक संचार लघु समूह संचार और जनसंचार । सभी तरह के संचार रूपों की बुनियाद वैयक्तिक संचार है ।

जनसंचार की अवधारणा को समझने के लिए इसकी विशेषताओं को समझना जरूरी है। जनसंचार की पहली विशेषता यह होती है कि वह एक संस्थागत उत्पादन है जो प्रतीकात्मक वस्तु" का उत्पादन करती है और उनका भंडारण कर सकती है । दूसरी विशेषता यह है कि यह उत्पादित वस्तु' का लगातार और बड़ी संख्या में पुनरुत्पादन कर सकती है । तीसरी विशेषता यह है कि बहुत व्यापक क्षेत्र में और लम्बे कालखंड में उपलब्ध हो सकती है । चौथी विशेषता

यह है कि जनता को सामूहिक रूप में उपलब्ध होती है लेकिन प्रत्येक व्यक्ति इसे निजी तौर पर ग्रहण कर सकता है ।

जनसंचार की अवधारणा का संबंध जन उत्पादन और जन उपभोग से है । ये दोनों संकल्पनाएँ पूँजीवाद के युग में सामने आयी हैं । जनसंचार के इस पहलू का संबंध संचार प्रौद्योगिकी से है । जनसंचार के द्वारा उत्पादित संदेश को लोग निष्क्रिय रूप में ग्रहण नहीं करते । जनसंचार का प्रभाव लोगों पर पड़ता है लेकिन यह भी सही है कि लोग भी जनसंचार को प्रभावित करते हैं ।

जनसंचार के स्वरूप का संबंध उसकी प्रक्रिया से है । इस प्रक्रिया में चार घटक अनिवार्य होते हैं। पहला-संदेश, दूसरा-संदेश को प्रेषित करने वाला, तीसरा-संदेश को ग्रहीता तक ले जाने वाला माध्यम और चौथा-संदेश को ग्रहण करने वाला ग्रहीता । संदेश के संप्रेषण से उसके ग्रहण करने तक की प्रक्रिया के लिए कई तरह के तकनीकी साधनों, संस्थानों और लोगों की जरूरत होती है । ये सभी संप्रेषण की पूरी प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं । इनमें सबसे महत्वपूर्ण हैं-इन साधनों और संस्थानों का नियंत्रण । यह नियंत्रण किनके हाथ में है? पूँजीपति वर्ग के हाथ में, सरकार के हाथ में । जनसंचार की सामाजिक भूमिका बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है इनका नियंत्रण किनके हाथ में है । जनसंचार की अवधारणा और स्वरुप का गहरा संबंध इस बात से है ।

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. संचार और जनसंचार में अंतर स्पष्ट करते हुए संचार के विविध रूपों का उल्लेख कीजिए ।
2. जनसंचार की अवधारणा पर प्रकाश डालते हुए उसकी प्रमुख विशेषताएँ बताये
3. जनसंचार के स्वरूप का उल्लेख करते हुए उसके निर्धारक तत्त्वों पर प्रकाश डालिये ।
4. जनसंचार के किन-किन माध्यमों से आप परिचित हैं और इन माध्यमों में किसे आप सबसे महत्त्वपूर्ण और उपयोगी पाते हैं और क्यों?
5. वैयक्तिक और अंतर्वैयक्तिक संचार माध्यमों का अंतर स्पष्ट करते हुए इनके एक-एक उदाहरणों का परिचय भी दीजिए ।

1.9 सन्दर्भ ग्रंथ

1. देवेंद्र इस्सर; जनसंचार माध्यम संप्रेषण और विकास, 1995, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली-1 व 0051
2. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, 2000, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली-110091
3. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार के सामाजिक संदर्भ, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली- 110002.
4. जॉन बी थांपसन आइडियोलॉजी एंड मोडर्न कल्चर, पोलिटी प्रेस, यू के.
5. रेमंड विलियम्स; जनसंचार माध्यमों का वर्ग चरित्र, ग्रंथ शिल्पी, नयी दिल्ली

इकाई 2 जनसंचार : लक्ष्य, कार्य और प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 जनसंचार के लक्षण

- 2.2.1 राजनीतिक लक्ष्य
- 2.2.2 आर्थिक लक्ष्य
- 2.2.3 सामाजिक लक्ष्य
- 2.2.4 सांस्कृतिक लक्ष्य

2.3 जनसंचार के कार्य

- 2.3.1 सूचना
- 2.3.2 शिक्षा
- 2.3.3 मनोरंजन

2.4 जनसंचार की प्रक्रिया

- 2.4.1 प्रसारण करना
- 2.4.2 सीमित करना
- 2.4.3 फैलाना
- 2.4.4 व्याख्या करना

2.5 सारांश

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.7 सन्दर्भ ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' नामक पाठ्यक्रम से संबंधित यह दूसरी इकाई है । इस इकाई में हम जनसंचार के लक्ष्य, कार्य और प्रक्रियाओं का अध्ययन करेंगे । लक्ष्य का मतलब है कि उद्देश्यों को पूरा करने के लिए जनसंचार के साधनों का विकास हुआ है । वे लक्ष्य कौन-कौन से हैं और उनका हमारे सामाजिक विकास से क्या संबंध हैं? जनसंचार के लक्ष्यों के निर्धारण से ही उनके कार्य भी निर्धारित होते हैं । क्या इन कार्यों के कुछ विशेष क्षेत्रों की पहचान की जा सकती है? अपने लक्ष्यों और कार्यो को संभव बनाने के लिए जनसंचार किन क्रियाओं का सहारा लेता है? इस प्रकार ये तीनों बातें एक दूसरे से संबद्ध भी हैं । इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप-

- जनसंचार के लक्ष्यों की पहचान कर सकेंगे ।

- जनसंचार के कार्यों को बता सकेंगे और उन कार्यों के विभिन्न पक्षों की व्याख्या कर सकेंगे; और
- जनसंचार की विभिन्न प्रक्रियाओं का परिचय दे सकेंगे ।

2.1 प्रस्तावना

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' पाठ्यक्रम की यह दूसरी इकाई है । इससे पहले की इकाई में आपने जनसंचार की अवधारणा और स्वरूप का अध्ययन किया था । संचार क्या है, संचार के विभिन्न रूप कौन-कौन से हैं और संचार और जनसंचार में क्या अंतर है, इन पहलुओं को आप समझ चुके हैं । जनसंचार को जनसंचार क्यों कहा जाता है और यहाँ जन से क्या तात्पर्य है इस बात पर भी हमने पहली इकाई में चर्चा की थी । जनसंचार की अवधारणा को समझने के सिलसिले में हमने जनसंचार की कुछ सामान्य विशेषताओं का अध्ययन किया था । जनसंचार के साधनों का हमारे समय से क्या संबंध है और इसकी सामाजिक भूमिका क्या है, इसे भी आप पहली इकाई में जान चुके हैं । अवधारणा के साथ हमने जनसंचार के स्वरूप की व्याख्या की थी । जनसंचार की अवधारणा और स्वरूप को समझने के बाद अब हमारे लिए यह जानना जरूरी है कि जनसंचार के लक्ष्य और कार्य क्या हैं ।

जनसंचार के लक्ष्यों पर बात करने के लिए हमें यह देखना होगा कि जनसंचार के साधनों की जरूरत समाज में क्यों होती हैं? हमारे जीवन में जनसंचार की भूमिका क्या है' क्या इनके बिना हमारा आधुनिक जीवन संभव है? क्या जब मानव सभ्यता का विकास आरंभ हुआ था तब संचार के साधनों की जरूरत नहीं थी? ये और ऐसे कई प्रश्नों पर विचार करते हुए हम जनसंचार के लक्ष्यों की पहचान करेंगे ।

जनसंचार के लक्ष्यों को समझने के बाद हम उसके कार्यों पर विचार करेंगे । इस भाग के अंतर्गत हम यह देखेंगे कि जनसंचार के साधन समाज के किन कार्य क्षेत्रों में प्रयुक्त होते हैं। मसलन, लोगों की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने, उनके जीवन स्तर को ऊपर उठाने, उनको कार्य कुशल बनाने, उनको सुसभ्य और सुसंस्कृत बनाने या उनके जीवन को सुखी और आनंददायक बनाने में जनसंचार की क्या भूमिका है? इन पर विचार करते हुए हम जनसंचार के कार्यों का विश्लेषण कर सकेंगे ।

इस इकाई के अंत में हम जनसंचार की प्रक्रियाओं को समझने का प्रयास करेंगे । जनसंचार के माध्यमों से जो संदेश संप्रेषित किया जाता है उसका वह क्या करता है' क्या वह उनको यथावत भेज देता है या उनको काट-छांटकर, या उनको बढ़ा-चढ़ाकर या उनको पुनर्व्याख्यायित करके वह लोगों तक भेजता है । जनसंचार की प्रक्रिया को समझने से हम उसकी शक्ति और सीमाओं को समझ सकते हैं । आइए, जनसंचार के इन विभिन्न पहलुओं पर विचार करें ।

2.2 जनसंचार के लक्ष्य

जनसंचार की अवधारणा पर विचार करते हुए हमने कहा था कि जनसंचार के नए साधनों के विकास का संबंध पूँजीवाद के विकास के साथ है । इस बात को थोड़ा भिन्न रूप में

हम यही समझने का प्रयास करेंगे । जब पूँजीवाद का उदय हुआ, बड़े उद्योग स्थापित हुए तो यह सवाल पैदा हुआ कि बड़ी मात्रा में निर्मित माल के लिए बाजार कैसे पैदा किया जाएँ दूसरा सवाल यह पैदा हुआ कि इसे ज्यादा लोगों तक पहुँचाया कैसे जाए और तीसरा सवाल यह पैदा हुआ कि इस माल की लोगों को जरूरत है, इसका एहसास कैसे कराया जाएँ अगर हम ध्यान दें तो यातायात और संचार के नए साधनों का आविष्कार इन्हीं जरूरतों के मद्देनजर हुआ । बाजार के विस्तार के साथ-साथ इनकी जरूरतें भी बढ़ती गई और इसी क्रम में इनसे जुड़ी प्रौद्योगिकी में भी परिवर्तन होता गया । लेकिन ये सब काम आसानी से नहीं हो गये थे । पूँजीवाद विकास ने केवल बाजार का विकास नहीं किया उन्होंने राजसत्ता के स्वरूप को भी बदला । दुनिया सामंतवाद से निकलकर पूँजीवादी लोकतंत्र की ओर अग्रसर हुई । बहरहाल हमारी इस इकाई क संबंध इन सामाजिक परिवर्तनों पर विचार करना नहीं है । हम तो यहाँ उन उद्देश्यों पर विचार करेंगे जो जनसंचार के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है । जनसंचार ने हमारे जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित किया है-हमारे राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को । जनसंचार के माध्यमों में प्रभावित करने की क्षमता का इतना विस्तार इसी वजह से हुआ है क्योंकि उसका स्वरुप और गठन इसी प्रक्रिया में हुआ है । आइए, हम इन पर अलग-अलग विचार करें ।

2.2.1 राजनीतिक लक्ष्य

जनसंचार के साधनों के विकास पर विचार करें तो देखते हैं कि वे देश जो राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से शक्तिशाली हैं, उन्हीं का संचार के आधुनिकतम संसाधनों पर अधिकार भी है । यूनेस्को द्वारा प्रसारित मेकब्राइड आयोग की रिपोर्ट को पढ़ने से यह जाहिर हो जाता कि कैसे सारी दुनिया समाचारों के लिए अमरीका और यूरोप के विकसित देशों पर निर्भर है । इसी प्रकार आधुनिक प्रौद्योगिकी पर भी इन्हीं देशों का वर्चस्व है- चाहे वह कंप्यूटर हो, उपग्रह हो या रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन तथा दूसरे साधन । इन सभी मामलों में विकासशील देश पूरी तरह से नहीं, तो काफी हद तक विकसित देशों पर निर्भर हैं । अगर हमें आज दुनिया के किसी कोने में घटी घटना का विवरण चाहिए तो हमें उन संवाद एजेंसियों पर निर्भर रहना पड़ता है जो ये विकसित देश चलाते हैं । मसलन, इराक पर अमरीका और उसके मित्र देशों के हमले के सभी समाचार हमें अमरीका और इंग्लैंड की संवाद एजेंसियों के माध्यम से ही प्राप्त हुए । हमारे पास अपना कोई शक्तिशाली जरिया नहीं था जो सच्चाई को निष्पक्ष रूप में रख सके ।

जो बात विश्व स्तर पर सही है हमारे अपने देश के अंदर भी सही है । हमारे अधिकांश राष्ट्रीय अखबार बड़े औद्योगिक घरानों द्वारा निकाले जाते हैं । इसी तरह रेडियो और दूरदर्शन सीधे सरकारी नियंत्रण में हैं । ऐसा क्यों है कि जनसंचार के साधनों को शासक वर्ग अपने नियंत्रण में रखना चाहता है? जब भारत में पहली बार अखबारों का प्रकाशन आरंभ हुआ उसी समय से अंग्रेजों ने उस पर नियंत्रण रखना शुरू कर दिया था । राजा राममोहन राय को अंग्रेजों की इस नीति के विरुद्ध कड़ा संघर्ष करना पड़ा था । आजादी की लड़ाई के दौरान समाचारपत्रों पर सरकार द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों के विरुद्ध संघर्ष आजादी की लड़ाई का हिस्सा बने रहे । ये सब उदाहरण इस बात को प्रमाणित करने के लिए काफी हैं कि संचार के माध्यमों का राजनीति से गहरा ताल्लुक है । जनसंचार के माध्यम राजनीतिक लक्ष्यों को पूरा करने में बहुत

मददगार साबित हो सकते हैं तो बहुत बड़ी बाधा भी । किसी समय की राजसत्ता का चरित्र किस तरह का है यह पता इस बात से लगाते हैं कि उस समय उत्पादन के साधनों पर किसका अधिकार था । जनसंचार के माध्यमों द्वारा संदेशों का उत्पादन किया जाता है । ये संदेश किसी न किसी विचार को लोगों तक पहुँचाते हैं । इस प्रकार जनसंचार के साधनों द्वारा विचारों का प्रसार किया जाता है । ये विचार मनुष्य जीवन से संबंधित होते हैं और उसको किसी-न-किसी रूप में प्रभावित अवश्य करते हैं । ये सिर्फ भौतिक उत्पादन नहीं हैं । ये एक बार देखने या सुनने के बाद भी लंबे समय तक हमारे मन-मस्तिष्क को झकझोरते रहते हैं । एक शहर में हुआ दंगा समाचारों के जरिए कई दूसरे शहरों में दंगों की वजह बन सकता हैं । टीवी. पर दिखाए जाने वाले खास तरह के धारावाहिक जीवन के प्रति ऐसा नजरिया दे सकते हैं जिसका राजनीतिक प्रतिफलन फासीवादी दर्शन पर आधारित राजनीतिक दल के समर्थन के रूप में दिखाई दे ।

सत्तर के दशक में फिल्मों में राजनीतिक नेता और पुलिस को भ्रष्ट दिखाने से बचा जाता था, ताकि इन संस्थाओं के प्रति लोगों का विश्वास बना रहे । लेकिन सत्तर के बाद के दशक में जब राजनीति और पुलिस मकहमे में भ्रष्टाचार में जबर्दस्त बढ़ोतरी हो गई तब किसी भी नेता और पुलिस अधिकारी को भ्रष्ट दिखाने पर हर तरह की पाबंदी खत्म कर दी गई । यह दावा किया गया कि सेंसर बोर्ड ज्यादा उदार हो गया है । वह अभिव्यक्ति पर कम-से-कम प्रतिबंध लगाकर ज्यादा-से-ज्यादा स्वतंत्रता देना चाहता है । लेकिन राजनीतिक रूप में इसका नतीजा वही निकला । पहले यह विचार फैलाया गया था कि राजनीतिक और पुलिस के लोग देशभक्त और ईमानदार होते हैं, इसलिए इस व्यवस्था का समर्थन जारी रखो । बाद में यह विचार फैलाया गया कि सभी राजनीतिक दल और सभी पुलिस वाले भ्रष्ट होते हैं अर्थात व्यवस्था बदलने से क्या होगा । इस प्रकार जनसंचार शासक वर्ग में राजनीतिक हितों को पूरा करने में मददगार बनकर उपस्थित होता है । अपनी व्यापकता और प्रभावित करने की क्षमता के चलते जनसंचार राजनीतिक उद्देश्यों को कहीं ज्यादा तीव्र गति से और कहीं ज्यादा गहरे रूप में पूरा करने में मददगार हो सकता है । लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं है कि लोग जनसंचार के द्वारा परोसे गए राजनीतिक नजरिए को यथावत स्वीकार कर लेते हैं । लेकिन जनसंचार के राजनीतिक लक्ष्य का यह प्रयत्न भी होता है कि लोगों को सोचने का मौका दिए बिना उन्हें अपने विचारों के जाल में फांस लिया जाएँ ऐसा करने में वे किस हद तक कामयाब या नाकामयाब रहते हैं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि जनसंचार में वैकल्पिक राजनीतिक दृष्टिकोण को पेश करने के कितने अवसर मौजूद हैं ।

उपर्युक्त विश्लेषण से साफ है कि जनसंचार के माध्यमों ने निम्नलिखित राजनीतिक लक्ष्यों को संभव बनाया है -

1. जनसंचार ने सूचना के अधिकार का विस्तार किया है, जिससे लोगों में राजनीतिक जागरूकता की वृद्धि हुई ।
2. जनसंचार ने लोकतांत्रिक मूल्यों के विस्तार में मदद की है ।
3. जनसंचार के साधनों पर अधिकार द्वारा शासक वर्ग अपने राजनीतिक हितों का प्रचार कर सकता है ।

4. जनसंचार लोगों में राजनीतिक विभ्रम बढ़ाने का हथियार बन सकता है ।
5. जनसंचार जनता के राजनीतिक हस्तक्षेप का माध्यम बन सकता है ।

2.2.2 आर्थिक लक्ष्य

जनसंचार माध्यमों के आर्थिक लक्ष्य राजनीतिक लक्ष्यों से कहीं ज्यादा साफ नजर आते हैं । उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में जब पहली बार बेतार के तार का आविष्कार हुआ था तो उसका उपयोग मुख्यत: आर्थिक लक्ष्यों को पूरा करने के लिए किया गया था । इसके बाद के सारे आविष्कार भी आर्थिक लक्ष्यों को पूरा करने के अस्तित्व में आए । अखबारों ने राजनीतिक प्रचार के कार्यो में ही मदद नहीं की है, व्यापारिक गतिविधियों के लिए भी उसने सशक्त मंच प्रदान किया है । इसी प्रकार टेलीफोन ने सारी दुनिया की व्यापारिक गतिविधियों को एक-दूसरे से जोड़ दिया है । संचार के इन नवीनतम साधनों का ही नतीजा है कि दुनिया के सारे शेयर बाजार आपस में इस कदर जुड़ गए हैं कि एक में होने वाली हलचल का असर दूसरों पर पड़े बिना नहीं रहता और वह भी लगभग साथ-साथ ।

जनसंचार के साधनों का विस्तार इस हद तक हुआ है कि स्वयं उसने बहुत बड़े उद्योग का रूप ले लिया है । यह क्षेत्र अब बड़ी पूँजी के नियंत्रण में आ गया है । माइक्रोसोफ्ट नामक कंप्यूटर कम्पनी का अमरीकी मालिक बिल गेट्स जिसका सॉफ्टवेयर के क्षेत्र में एकाधिकार है, उसकी गणना दुनिया के सबसे अमीर लोगों में की जाती है । भारत में भी गुलशन कुमार का उदाहरण दिया जा सकता है जिसने केवल पंद्रह साल की छोटी अवधि में आडियो कैसेट की बिक्री के साधारण व्यवसाय से आरंभ कर उसने लगभग चार सौ करोड़ का पूँजी साम्राज्य खड़ा कर लिया था ।

जनसंचार के साधनों के विस्तार से सेवा के क्षेत्र में काफी बदलाव आया है । जहाँ कई क्षेत्रों में नए सेवा अवसर पैदा हुए हैं, तो कई क्षेत्रों में सेवा के अवसर कम भी हुए हैं । इसने कई परम्परागत क्षेत्रों के लिए संकट भी पैदा किया है । मसलन टेलीफोन, फैक्स, ई-मेल आदि के चलते अब डाक की पुरानी व्यवस्था चौपट होती जा रही है । इसका नतीजा यह हो रहा है कि गरीब और कमजोर वर्गो के संचार के साधन बढ़ने की बजाए कम हुए हैं । इस प्रकार जनसंचार निम्नलिखित आर्थिक लक्ष्यों को पूरा करने में सहायक हुआ है-

1. जनसंचार के नए साधनों ने आर्थिक गतिविधियों का विस्तार किया है ।
2. इसने बाजार की शक्ति को स्थापित करने में मदद की है ।
3. इसने लोगों को उत्पादों के प्रति जागरूक बनाया है ।?
4. इसने उपभोक्तावादी प्रवृत्ति को बढ़ावा भी दिया है ।
5. इसने सेवा के नए अवसर खोले हैं और कई परम्परागत सेवा क्षेत्रों पर भी पहुँचाया है ।
6. इसने पूँजी के केंद्रीयकरण को बढ़ावा दिया है ।

2.2.3 सामाजिक लक्ष्य

जनसंचार के नए माध्यमों ने सामाजिक क्षेत्र पर भी अपना गहरा असर छोड़ा है । आज हमारा सामाजिक जीवन काफी हद तक संचार माध्यमों के प्रभाव से संचालित हो रहा है । जब

डाक व्यवस्था का अभाव था तब किसी प्रियजन के दूर यात्रा पर जाने पर संदेश का माध्यम आने-जाने वाले दूसरे यात्री हुआ करते थे । नतीजतन, महीनों तक किसी तरह की सूचना नहीं मिलती थी । लेकिन जब डाक व्यवस्था की शुरुआत हुई तो चिट्ठी-पत्री के जरिये समाचार मिलने लगे । बाद में तार ने समय का अंतराल और भी कम करा दिया । आज टेलीफोन के माध्यम से व्यक्ति हजारों मील दूर बैठे अपने रिश्तेदार से वैसे ही बात कर सकता है जैसे कि वह सामने बैठा हो । क्या इसने सामाजिक संबंधों को नहीं बदला? एक और उदाहरण देखें । टेलीविजन पर दिखाए जाने वाले अपनी पसंद के कार्यक्रमों के वक्त हम न तो कहीं जाना पसंद करते हैं और न ही किसी का आना । यहाँ तक कि उस समय टेलीफोन पर बातचीत करना भी बुरा लगता है । इसका असर इस हद तक हुआ कि लोग सामाजिक कार्यक्रमों का आयोजन ऐसे समय करने से बचते हैं जब टीवी पर कोई लोकप्रिय कार्यक्रम आ रहा हो ।

जनसंचार ने दुनिया को छोटा बना दिया है । अब हम पत्र-पत्रिकाओं, टीवी, और रेडियो कार्यक्रमों के जरिए दूसरे समाजों के बारे में काफी कुछ जानने लगे हैं । इसका असर हमारे सामाजिक व्यवहार में दिखाई देने लगा है । इन जनसंचार माध्यमों के द्वारा इतनी सूचनाएँ प्राप्त होती है कि जिनको ये माध्यम उपलब्ध नहीं है, वे अपने को पिछड़ा हुआ और हीन समझने लगते हैं । जनसंचार के माध्यम लोगों को शिक्षित करने और उन्हें ज्ञान-विज्ञान के नए-नए क्षेत्रों से परिचित कराने का साधन हैं तो वह सूचना संपन्न लोगों का अभिजात वर्ग भी बना रहा है ।

जनसंचार माध्यमों में दिखाए जाने वाले मनोरंजन के ज्यादातर कार्यक्रम वर्ग को महिमामंडित और औरतों को उपयोग की वस्तु के रूप में पेश करते हैं । मनोरंजन के कार्यक्रमों में ज्यादा हिंसा दिखाई जाती है कि लोगों में, खासकर बच्चों में संवेदनशीलता नष्ट होने लगती है । लोगों में सामाजिक भाईचारा बढ़ाने की बजाए उसको कम करने का माध्यम भी बन जाता है ।

इस प्रकार जनसंचार के माध्यम निम्नलिखित सामाजिक लक्ष्यों को पूरा में सहायक बनते हैं-

1. जनसंचार ने सामाजिक व्यवहार को प्रभावित किया है । ये प्रभाव सकारात्मक नकारात्मक दोनों तरह का होता है ।
2. जनसंचार ने लोगों के सामाजिक दृष्टिकोण को विस्तृत किया है तो असामाजिक प्रवृत्तियों को भी बढ़ावा दिया है ।
3. जनसंचार ने लोगों को शिक्षित और उदार बनने की प्रेरणा दी है तो उन्हें आत्मग्रस्त, संकीर्णतावादी और स्वार्थी भी बनाया है ।

2.2.4 सांस्कृतिक लक्ष्य

जनसंचार उद्योग कुछ खास तरह के उद्योगों का निर्माण करता है । एक स्तर पर वह अन्य उद्योगों की तरह वस्तुओं (सी.डी, पुस्तकें, फिल्म की रीलें) और सेवाओं (कलाकारों, तकनीशियनों) का उत्पादन करती है, तो दूसरे स्तर पर वह इनसे ज्यादा भी कुछ करती है । वह लोगों को सुखद और संपन्न भविष्य का सपना भी बेचती है । जनसंचार ने जन संस्कृति

को पैदा किया है । इसे जनसंचार की तरह नकारात्मक अर्थों में भी समझा जा सकता है । जन संस्कृति को प्राय: ऐसे लोगों की सांस्कृतिक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिनकी अभिरूचियाँ निम्न स्तर की होती हैं । यहाँ प्राय: दो तरह की धारणाएँ देखने को मिलती है । एक तो यह कि साधारण लोगों को जन संस्कृति के ऐसे रूप में ही आनंद प्राप्त होता है । यानी अभिजात संस्कृति और जन संस्कृति का फर्क अपरिहार्य है क्योंकि दोनों वर्गो की अभिरुचियाँ एक-सी नहीं हो सकती । दूसरा दृष्टिकोण यह है कि जन संस्कृति निम्न या विकृत होती है लेकिन इसके लिए वे लोग उत्तरदायी नहीं होते बल्कि वे जिम्मेदार होते हैं जो अपने लाभ और छलपूर्ण उद्देश्यों के लिए साधारण लोगों पर इसे थोपते हैं ।

सांस्कृतिक सन्दर्भ में जनसंचार एक स्तर पर अभिजात संस्कृति और जन संस्कृति के अंतराल को कम करता है, तो दूसरे स्तर पर वह नये तरह के भेदभाव भी पैदा करता है । यह जनसंचार ही है जिसने कला के ऐसे रूपों को भी सब के लिए उपलब्ध करा दिया जो पहले सिर्फ उच्च वर्ग तक ही सीमित थे । वहीं दूसरी ओर इसने विकृत और मानव-विरोधी सांस्कृतिक रूपों को घर-घर तक पहुँचा दिया है । इस प्रकार लोगों की सांस्कृतिक अभिरुचियों को विकृत भी किया है । इसने विभिन्न कलारूपों में जनता की भागीदारी को बढ़ाया है और लोगों को सृजनात्मकता के अवसर उपलब्ध कराए हैं । जनसंचार ने स्वस्थ और जनपक्षीय कलारूपों को पीछे धकेलने का भी काम किया है । जनसंचार की इन अंतर्विरोधी भूमिका को समझना जरूरी है ।

अंत में, जनसंचार निम्नलिखित सांस्कृतिक लक्ष्यों को पूरा करने में सहायक होता है-

1. जनसंचार के माध्यम विभिन्न संस्कृतियों को एक-दूसरे के नजदीक लाने और इस तरह सांस्कृतिक सामंजस्य बढ़ाने में सहायक होते हैं ।
2. जनसंचार अभिजात कलारूपों को आम लोगों तक पहुँचाने का माध्यम बनता है ।
3. जनसंचार लोक और जन कलारूपों की उपलब्धता में भी वृद्धि करता है ।
4. जनसंचार लोगों की सृजनात्मक क्षमता की पूर्ति के कहीं ज्यादा और बेहतर अवसर प्रदान करता है।
5. जनसंचार अपसंस्कृति को लोकप्रिय बनाने का माध्यम भी बनता है ।
6. जनसंचार सांस्कृतिक वर्चस्व कायम करने का जरिया भी बनता है ।

2.3 जनसंचार के कार्य

जनसंचार के माध्यमों द्वारा जिन लक्ष्यों की पूर्ति होती हैं, उन्हें हम तीन भागों में बाँट सकते हैं । यह लक्ष्य या तो लोगों को सूचना प्रदान करते है, या शिक्षित करते हैं या फिर लोगों का मनोरंजन करते हैं । ये ही जनसंचार के कार्य कहे जो सकते हैं । एक उदाहरण से इस बात को समझें । आपके पास रेडियो या ट्रांजिस्टर तो जरूर होगा । आपने या आपके माता-पिता ने उसे क्यों खरीदा? जाहिर है, घर में सजाने के लिए तो नहीं खरीदा होगा । आपके पिताजी उस पर समाचार सुनते होंगे । आपकी माताजी कोई हास्य धारावाहिक सुनती होगी । आपको फिल्मी गाने सुनने का शौक होगा और आपकी बड़ी बहन को विज्ञान संबंधी वार्ताएँ सुनने का । रेडियो परिवार के हर सदस्य के लिए उपयोगी है । किसी के लिए वह सूचना का

माध्यम है तो किसी के लिए मनोरंजन का और किसी के लिए ज्ञान का । ये ही जनसंचार के कार्य हैं । इन्हीं तीन क्षेत्रों में कार्य करते हुए जनसंचार उन लक्ष्यों की पूर्ति करता है, जिनके लिए उसकी खोज की गई है ।

जनसंचार के माध्यमों द्वारा संप्रेषित प्रत्येक कार्यक्रम इनमें से किसी-न-किसी कार्य को अंजाम देता है । इसका अर्थ यह नहीं है कि जो कार्यक्रम शिक्षा देने के लिए है, उनसे मनोरंजन नहीं हो सकता और मनोरंजक कार्यक्रम कोई सूचना नहीं देता । अगर ध्यान दें तो आधुनिक युग में ही नहीं उससे पहले के युगों में भी संचार के साधनों ने यही तीन कार्य पूरे करने में अहम भूमिका निभाई है । उत्सवों पर बजाये जाने वाले बड़े-बड़े नगाड़े लोगों को सावधान करने और संकेत पहुँचाने के भी काम आते थे । इसी प्रकार कविता की रचना आनंद के लिए की जाती थी और लोगों को शिक्षित कराने के लिए भी । यही बात आज के युग के लिए भी सही है । अगर कोई फर्क है तो यही कि जनसंचार के इन कार्यो का आज जो व्यवसायीकरण हुआ है, वैसा इससे पहले के किसी भी युग में नहीं हुआ ।

2.3.1 सूचना प्रदान करना

जनसंचार का पहला कार्य है, सूचना प्रदान करना । आज के समाज में सूचना का महत्त्व किसी और जमाने से कहीं ज्यादा बढ़ गया है । सूचना ज्ञान का आधार है । सूचना सिर्फ तथ्यों या तथ्यों पर आधारित सामग्री का संयोजन नहीं है, वह हमारे जीवन की अनिवार्यता है । हमारे सामाजिक विकास का अनिवार्य घटक है, हमारे सामाजिक हस्तक्षेप के लिए हमारी विवेकशीलता को दिशा देने वाला कारक भी है । सूचना का महत्त्व आज इतना बढ़ गया है कि आज के समाज को सूचना समाज कहा जाने लगा है । सूचना की जरूरत सभी को होती है । किसान को मौसम और बाजार की, व्यापारी को माल के आमद और मोल-भाव की, यात्रा करने वालों को गाड़ियों के आने-जाने के सही समय की जानकारी जरूरी होती है । आज के युग में सूचना प्रदान करने वाले संचार माध्यमों का अभूतपूर्व विकास हुआ है । इससे सूचना को भी खरीदे और बेचे जाने वाली वस्तु में बदल दिया है । सूचना उत्पाद होने के कारण अन्य उत्पादन के साधनों की तरह उन पर भी एक खास वर्ग का अधिकार है । सूचना का महत्त्व इतना बढ़ गया है कि प्रत्येक व्यवसाय में आज काम करने वालों का अच्छा खासा हिस्सा सूचनाओं का उत्पादन करने, उनको पुनरावर्तित करने और उनको बनाए रखने के काम में लगा हुआ है ।

पिछले कुछ सालों में संचार प्रौद्योगिकी में जो परिवर्तन हुआ है उन्होंने दुनिया का नक्शा ही बदल दिया है । सूचना प्रौद्योगिकी का विकास उन निगम क्षेत्र की जरूरतों में संचालित है जो इस प्रौद्योगिकी के फैलाव के जरिए अपने माल के लिए नए बाजारों की तलाश करना चाहता है । यदि हम सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार को इस आर्थिक मकसद के मद्देनजर देखें तो हमें इस प्रौद्योगिकी के विस्तार और दूसरे क्षेत्रों की गतिविधियों के पारस्परिक संबंधों को समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी । यह आकस्मिक नहीं है कि संचार क्षेत्र के तेजी से विस्तार के साथ भारतीय राजनीति में उदारतावाद और मुक्त अर्थव्यवस्था की माँग भी बलवती होती जा रही है ।

सूचना ही शक्ति है, यह इस युग की आम समझ बनती जा रही है । आज हमारे चारों ओर सूचनाओं का अंबार लगा है । कह सकते हैं कि सूचनाओं के पहाड़ के नीचे कहीं मनुष्य ही दब गया है । यह भी कहा -जा रहा है कि सूचनाओं के अंबार के नीचे सूचनाओं का अर्थ ही खो गया है । आज ज्ञानी होने की परिभाषा बदल गई है । आज ज्ञानी वह है जिसके पास सूचनाओं का ढेर है, जो व्हाइट हाउस की लंबाई-चौड़ाई बता सकता है, जो एफिल टावर में लगी कीलों की कुल संख्या बता सकता है, जो माइकल जैक्सन के एक-एक गीत का इतिहास बता सकता है, लेकिन जो यह नहीं जानता कि उसके घर के बर्तन साफ करने वाली स्त्री ने भरपेट खाना खाया या नहीं । सूचनाएँ उन्हीं को उपलब्ध हैं जो शक्तिवान हैं, लेकिन यह एक बहुत बड़ा भ्रम भी है। सच्चाई यह है कि सूचना से न तो आर्थिक सत्ता प्राप्त होती है, न राजनीतिक सत्ता । न ही उससे उन समस्याओं का निदान हो सकता है जो भिन्न रूपों में विकसित और विकासशील देशों में व्याप्त हैं । सांस्कृतिक क्षेत्र में भी सूचना प्रौद्योगिकी ने मानवीय मूल्यों के विकास में मदद नहीं की है ।

2.3.2 शिक्षा देना

जनसंचार का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य शिक्षा प्रदान करना है । यहाँ शिक्षा का तात्पर्य औपचारिक शिक्षा ही नहीं है, वरन् ज्ञान संप्रेषण के सभी रूप शिक्षा के क्षेत्र में ही गिने जाएँगे । शिक्षा के माध्यम की आवश्यकता होती है । भाषा और लिपि शिक्षा के सर्वाधिक सशक्त माध्यम हैं । भाषा और लिपि के आविष्कार ने मनुष्य के विचारों, भावनाओं और गतिविधियों को लिपिबद्ध करने और उन्हें भविष्य के लिए सुरक्षित रखने की परम्परा को जन्म दिया । भाषा का महत्त्व असंदिग्ध है लेकिन शिक्षा के प्रसार के लिए अन्य माध्यमों की जरूरत भी होती है। शिक्षा का परम्परागत तरीका शिक्षक और शिष्यों का एक स्थान पर आमने-सामने बैठ कर संवाद करना था । लेकिन लिपि के आविष्कार ने यह संभव बनाया है कि ज्ञान की बातों को लिखकर सुरक्षित रखा जा सके । मुद्रण की पद्धति की खोज ने इस कार्य को इतना महत्वपूर्ण बना दिया कि ऐसी दुनिया की कल्पना करना भी हमारे लिए नामुमकिन-सा हो गया है जिसमें पुस्तकें न हों । लेकिन आज टंकण से कंप्यूटर तक और साइकलोस्टाइल से लेकर जिरॉक्स मशीन तक ने शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व बदलाव ला दिया है ।

शिक्षा का प्रारंभिक तरीका मौखिक बातचीत पर आधारित था । लेकिन यह तरीका न तो बहुत वैज्ञानिक हो सकता था और न ही बहुत व्यापक । संप्रेषण के नए माध्यमों ने अनुभवों के आदान-प्रदान के इतने स्रोत खोल दिए कि उनके आधार पर बौद्धिक गतिविधियों को ज्यादा प्रभावशाली ढंग से संचालित किया जाना संभव हो सका । सूचना और संप्रेषण में निहित शैक्षिक मूल्यवत्ता को शीघ्र पहचान लिया गया । पुस्तकों के जरिए परम्परागत ज्ञान को लिपिबद्ध किया जाने लगा । वे लोग जो पढ़-लिख नहीं सकते थे, रेडियो ने उनके लिए ज्ञान के नए द्वार खोल दिए । शीघ्र ही महसूस किया जाने लगा कि रेडियो के द्वारा लोगों तक तरह-तरह की सूचनाएँ तत्काल पहुँचाई जा सकती है । इस प्रकार के लोग भी जिन्हें स्कूल जाने या पढ़ने-लिखने का मौका नहीं मिला वे भी रेडियो के द्वारा अपने बौद्धिक संसार का विस्तार करने में सक्षम हुए ।

रेडियो के बाद टेलीविजन ने इसमें एक और आयाम जोड़ा । यद्यपि यह माध्यम रेडियो की तुलना में सस्ता और सुलभ उस हद तक नहीं हो पाया । आज तो इंटरनेट की मदद से घर बैठे कंप्यूटर पर आनलाइन शिक्षा प्रदान की जा सकती है ।

जनसंचार माध्यमों द्वारा संप्रेषित होने वाला प्रत्येक संदेश चाहे वह सूचना के रूप में हो या मनोरंजन के लिए, उसमें शिक्षा का तत्त्व किसी-किसी न रूप में मौजूद अवश्य होता है । जरूरी नहीं कि संदेश से मिलने वाला शिक्षा का सामाजिक मूल्य सकारात्मक ही हो । लेकिन ज्ञान रहित या मूल्य रहित संदेश-जैसा कोई संप्रेषण नहीं होता । जनसंचार माध्यमों की बहुलता और इससे संदेशों की तीव्र और अत्यधिक प्रवाहमानता के कारण लोगों के जीवन को गढ़ने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका हो गई है ।

जनसंचार माध्यम जिस तरह का ज्ञान प्रस्तुत कर रहा हैं उसमें विविधता तो है लेकिन उन्हें परम्परागत बौद्धिक श्रेणियों में रखना कठिन है । इन माध्यमों द्वारा संप्रेषित ज्ञान में वास्तविक ज्ञान की मात्रा बहुत कम है जिसकी वजह से वास्तविक ज्ञान की पहचान करना बहुत मुश्किल होता जा रहा है । जनसंचार ने हमारी एक-सी प्रतीकात्मक पद्धतियों को मजबूत और समृद्ध किया है । उनकी अभिव्यक्ति. और व्याख्या के नए मार्ग तलाश लिए हैं । ऐसा करते हुए ये माध्यम अलग-अलग समूहों की विशिष्ट पहचानो को कम करते हैं और उन्हें एक ही सांचे में ढालने लगते हैं । सांस्कृतिक पहचानो की मिटती हुई दूरी का नकारात्मक पहलू यह है कि इससे विभिन्न संस्कृतियों के बीच स्वाभाविक एकता का मार्ग अवरुद्ध होता है और प्रभुत्वशाली वर्गों का सांस्कृतिक वर्चस्व मजबूत होता है । इस प्रकार प्रत्येक समाज अपनी जरूरतों के मुताबिक स्वतंत्र और स्वाभाविक विकास का मार्ग छोड़ने पर विवश हो जाता है ।

2.3.3 मनोरंजन करना

जनसंचार माध्यमों का एक प्रमुख कार्य मनोरंजन प्रदान करना है । मनोरंजन को प्राय: सतही और नकारात्मक चीज समझ लिया जाता है, लेकिन यह सही नहीं है । कुछ विद्वानों का तो मानना है कि जनसंचार माध्यमों में जो भी अंतर्वस्तु प्रस्तुत की जाती है, उसमें मनोरंजन का तत्त्व अवश्य होता है । लेकिन हम आमतौर पर मनोरंजन कार्यक्रम उन्हें ही समझते हैं जिनसे हमारी भावनाएँ उत्तेजित हों और हमें आनंद की अनुभूति हो । मनोरंजन निष्क्रिय भाव नहीं है, वह सक्रिय भाव भी है । यह रचना में, अभिव्यक्ति में और आस्वादन तीनों में निहित होता है ।

जनसंचार माध्यमों के द्वारा जब कोई प्रतीकात्मक रूप संकेतीकृत किया जाता है तो यह प्रश्न स्वभावतः उठता है कि उसमें मनोरंजन का गुण कैसे सन्निहित होता है? दूसरा सवाल यह भी उठता है कि क्या सभी माध्यमों में मनोरंजन का समावेश एक ढंग से होता है? वस्तुत: प्रत्येक संप्रेषण माध्यम के कुछ अनकहे नियम होते हैं या कहना चाहिए कि माध्यम के अस्तित्व में आने के बाद धीरे-धीरे बनने लगते हैं और जनसंचार माध्यमों में काम करने वाला इन्हीं नियमों का पालन करने लगता है । प्रत्येक संचार माध्यम की अपनी संरचना होती है जिसके द्वारा मनोरंजक कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता है । इस संरचना के दो महत्वपूर्ण अंग

होते हैं-एक तो माध्यम का विशिष्ट व्याकरण और दूसरा, अंतर्वस्तु को परिभाषित करने वाले नियम । ये दोनों बातें संरचना में अंतर्ग्रथित होती है ।

जनसंचार माध्यमों का विशिष्ट व्याकरण सिर्फ उनके हार्डवेयर से तय नहीं होता, इस बात से भी तय होता है कि वह माध्यम किस रूप में प्रयुक्त हो रहा है । प्रत्येक माध्यम से जुड़े लोग अन्र्तवस्तु की आवश्यकता के अनुसार, व्याकरण की अधिकतम संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए उसे संकेतीकृत करते हैं । अंतर्वस्तु की आवश्यकता इस बात से तय होती है कि क्या संप्रेषित किया जाना है और संप्रेष्य संकेतों का विसंकेतीकरण सफलतम रूप में कैसे संभव होगा।

मनोरंजन के सन्दर्भ में माध्यम की विशिष्टता का मतलब है कि उसकी? के अनुसार अंतर्वस्तु को रूप देना । मसलन, रेडियो एक श्रव्य माध्यम है इसलिए इसमें ध्वनि और शब्दों की । संभाव्य क्षमता का प्रयोग किया जाता है । लेकिन दृश्य माध्यमों में शब्दों से ज्यादा बल दृश्यों पर रखा है । इसी प्रकार प्रत्येक माध्यम प्रेषक की जिंदगी में कुछ खास जगह बनाता है। टेलीविजन का आनंद लेने को लिए उसके सम्मुख बैठना आवश्यक है जबकि रेडियो का आनंद काम करते हुए भी उठाया जा सकता है । इसलिए यह जरूरी है इन माध्यमों के लिए कार्यक्रमों का आयोजन करते हुए इन बातों का ध्यान में रखा जाएं

मनोरंजन का सवाल जब उठता है तो लोकप्रियता का सवाल भी सामने आता है । आमतौर पर इस बात को इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि जो लोकप्रिय है वहीं मनोरंजक है या जो मनोरंजक नहीं है वह लोकप्रिय भी नहीं हो सकता । लोकप्रियता का अर्थ है व्यापक रूप में जनता द्वारा स्वीकार जिया जाना । लेकिन मामला इतना सीधा-सरल नहीं है । उपभोक्तावाद के इस दौर में लोकप्रियता को स्थान और की दृष्टि से भी देखा जाना चाहिए । लोकप्रियता का सही पैमाना लोगों के बीच स्वीकार किया जाना ही नहीं वरन् कितने व्यापक स्तर पर और कितने लंबे समय तक स्वीकार्य किया जाना भी है ।

लोकप्रियता से जुड़ा दूसरा सवाल है, वास्तविक लोकप्रियता की पहचान । जनसंचार की ढाँचागत और प्रबंधगत दुर्बलता इस रूप में भी दिखाई देती है कि ये प्रतीकात्मक रूपों की वास्तविक' का सही मूल्यांकन नहीं कर पाते और ऐसे रूपों को भी जरूरत से ज्यादा महत्त्व देते हैं जिनमें कोई तत्त्व बात नहीं होती, लेकिन ऐसी कोशिशें लंबे समय तक टिक नहीं पातीं । यह तो संभव है कि जनसंचार ' की उपेक्षा के कारण वास्तविक प्रतिभाएँ सामने न आने पाएँ लेकिन यह संभव नहीं है कि अंतर्वस्तु और कलात्मकता की दृष्टि से कमजोर अभिव्यक्तियाँ लम्बे समय तक प्रभाव कायम रखने में सफल हो जाएँ ।

लोकप्रियता से जुड़ा तीसरा सवाल यह है कि मानवीय क्षमता की सतही मन बहलाव का प्रयत्न करने वाली अभिव्यक्तियों और मानवीय सरोकार की गंभीर कोशिशों को एक स्तर लोकप्रियता नहीं मिल सकती । दूसरी तरह के प्रयत्न अधिक स्थायी होते हैं । कई मामलों में सदियों तक और राष्ट्रों की सीमाओं से परे, लेकिन विभिन्न समाजों में इन्हें ग्रहण करने की क्षमता रखने वाले लोग उन की तुलना में सीमित संख्या में होते हैं, जो पहली तरह की अभिव्यक्तियों को ग्रहण करने के आदी हैं । प्रथम प्रकार की अभिव्यक्तियों में भी यदि स्वस्थ मानवीय मूल्य हो तो अंततः वे समाज के सांस्कृतिक में मददगार ही होते हैं और उन्हें व्यापक स्तर पर स्वस्थ अभिव्यक्तियों का वाहक भी बनाया जा सकता ।

2.4 जनसंचार की प्रक्रियाएँ

जनसंचार के बारे में अब तक हमने जो भी अध्ययन किया है उससे यह साफ हो गया है कि जनसंचार का संबंध समाज से बहुत गहरा है । जनसंचार संदेशों को लोगों तक संप्रेषित करने का काम करता है । यह काम वह एक तरफा भी कर सकता है जैसे अखबार, रेडियो, सिनेमा और टेलीविजन में और दुतरफा रूप में भी जैसे टेलीफोन, फैक्स, ई-मेल आदि में । उपग्रह प्रणाली और इलेक्ट्रॉनिकी के बाद तो टेलीविजन और रेडियो का भी दुतरफा संप्रेषण के रूप में इस्तेमाल किया जाने लगा है ।

जनसंचार की अब तक की बातचीत से आप यह तो समझ ही गए होंगे कि संदेश पहुँचाने का काम जनसंचार किस रूप में संपन्न करता है । हमने इस पाठ्यक्रम की पहली इकाई में बताया था कि संदेश को एक व्यक्ति से दूसरे तक पहुँचाने के लिए माध्यम की आवश्यकता है । यह माध्यम सभी संदेशों को संप्रेषित करता है जो उसके द्वारा संप्रेषित किया जाना है । लेकिन यह ग्रहीता पर है कि वह उन संदेश को ग्रहण करे या नहीं । हम टेलीविजन और रेडियो में इस प्रक्रिया को देख सकते हैं । जब विविध भारती पर मनपसंद गाना नहीं आ रहा होता है तो हम दूसरे स्टेशनों पर कार्यक्रम सुनने लगते हैं । इसी प्रकार टेलीविजन पर हम कभी कोई चैनल लगाते हैं, कभी कोई । इसका अर्थ यह है कि रेडियो और टेलीविजन हमें एक ही समय में कई तरह के कार्यक्रमों के विकल्प प्रदान करते हैं । यह हमें तय करना होता है कि हम कौन-सा कार्यक्रम चुनें ।

अब हम इस बात पर विचार करें कि जनसंचार की प्रक्रिया घटित कैसे होती है । हमने पहली इकाई में इस पर संक्षेप में विचार किया था । आइए, उसी पर थोड़ा और विचार करें । हमने अखबार के रिपोर्टर द्वारा भेजे जाने वाले संदेश का उल्लेख किया था । अखबार में जो समाचार हमें पढ़ने को मिला वह किसी रिपोर्टर के जरिए ही पहुँचा । लेकिन हम तक समाचार पहुँचाने वाला रिपोर्टर ही अकेला व्यक्ति नहीं था । अगर हम ध्यान दें तो अखबार में आने से पहले हम इसे रेडियो पर प्रसारित समाचारों में सुन चुके थे । लेकिन हमने जितने विस्तार से समाचार को अखबार में पढ़ा था, उतने विस्तार से हमें रेडियो में सुनने को नहीं मिला । यह जरूर है कि समाचार हमें रेडियो पर समाचारपत्र से पहले प्राप्त हुआ था । रेडियो के साथ-साथ ही हमने टेलीविजन पर इन समाचार को देखा । लेकिन यहाँ हमें समाचार से संबंधित दृश्य भी देखने को मिले । ये दृश्य हमें न तो रेडियो और न ही अखबार उपलब्ध करा सकता था । अखबार कुछ स्थिर चित्र अवश्य छाप सकता था । इस प्रकार हम देखते हैं कि अलग-अलग माध्यम अलग-अलग रूपों में संदेश प्रसारित करते हैं । जनसंचार की पूरी प्रक्रिया इसी तरह के अलग-अलग कार्यो को करते हुए संपन्न होती है । ये प्रक्रियाएँ क्या हैं, आइए, इसे समझने का प्रयत्न करें ।

2.4.1 प्रसारण करना

जनसंचार की मुख्य प्रक्रिया प्रसारण है । प्रसारण यानी संदेशों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाना, एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाना । यह काम व्यक्ति भी करता है

और यंत्र भी । जो रिपोर्टर तथ्यों को एकत्र करता है और उसे समाचारपत्र, रेडियो या टेलीविजन चैनल को भेजता है, वह भी प्रसारण का ही काम कर रहा है । और जिस रेडियो स्टेशन या अखबार के दफ्तर द्वारा यह काम किया जाता है, वह भी प्रसारण का ही काम कर रहा है । जनसंचार के क्षेत्र में प्रसारण का काम सरल नहीं है । इसके लिए बहुत से लोगों, यंत्रों और संस्थाओं की जरूरत होती है । 1980 के बाद जब टेलीविजन का प्रसारण बढ़ाने का निर्णय लिया गया तो उसके लिए केवल उपग्रह की जरूरत नहीं पड़ी बल्कि देश के कोने-कोने में रिले केंद्रों की भी जरूरत पड़ी । इसी तरह कोई अखबार केवल छप जाने मात्र से ही अपने प्रसारण का दायित्व पूरा नहीं कर लेता । उसे हॉकरों की बहुत बड़ी संख्या की जरूरत होती है जो अखबार को घर-घर तक पहुँचा सके । अगर हम जनसंचार के प्रसारण की प्रक्रिया पर ध्यान दें तो वह एक विशाल तंत्र द्वारा पूरी होती नजर आती है । यह तंत्र ही जनसंचार को महत्त्वपूर्ण बनाता है और शक्तिशाली भी । लेकिन यदि हम संप्रेषण की प्रक्रिया को ग्रहण करने वाले व्यक्ति के रूप में देखें तो यह विशाल तंत्र इन्हीं एक-एक व्यक्ति की पसंद और नापसंद पर टिका होता है । करोड़ों रुपयों की लागत से बनी फिल्म अपनी लागत को निकाल कर निर्माता को मुनाफा देगी या नहीं यह इस बात पर निर्भर करता है कि लोग उसे देखेंगे या नहीं । यह फिल्म देखने का निर्णय प्रत्येक व्यक्ति का निजी होता है और यह निर्णय सिर्फ फिल्म के मामले में नहीं बल्कि अखबार खरीदने के मामले में, टेलीविजन पर धारावाहिक देखने के मामले में भी लाग होता है ।

इस प्रकार जनसंचार द्वारा संदेशों का प्रसारण संचार प्रौद्योगिकी की मदद से होता है लेकिन इस काम को अंजाम देने वाले लोगों और संस्थाओं का हस्तक्षेप भी इस प्रसारण की प्रक्रिया को प्रभावित करता है । प्रसारण की प्रक्रिया को वे लोग भी प्रभावित करते हैं जिन्हें इसकी जरूरत है ।

2.4.2 सीमित करना

जनसंचार की प्रक्रिया का दूसरा महत्त्वपूर्ण काम है संप्रेषित होने वाले संदेश को सीमित करना । हमने अखबार के मामले में देखा था कि रिपोर्टर जो संदेश भेजता है, वह घटना का पूरा और शब्दशः विवरण नहीं होता । वह उसमें बहुत कुछ छोड़ देता है । उसकी प्रस्तुति भी समाचारपत्र की जरूरत और रिपोर्टर की समझ के अनुसार होती है । हमने यह भी बताया था कि रिपोर्टर द्वारा भेजा गया संदेश यथावत् प्रकाशित नहीं होता बल्कि संपादक मंडल में काम करने वाले उसके सहकर्मी भी उसमें हेरफेर करते हैं । इस प्रकार जनसंचार की प्रक्रिया संदेश को सीमित करने का काम करती है । यह बात अन्य माध्यमों पर भी लागू होती है । यही नहीं, यह प्रक्रिया सूचना के अलावा शिक्षा और मनोरंजन प्रदान करने वाले कार्यक्रमों में भी देख सकते हैं । किसी सिनेमा में नायक को दिल्ली से कानपुर जाना है जाहिर है कि फिल्म में यह यात्रा पूरी दिखाना संभव नहीं है । इसके लिए फिल्म निर्देशक केवल तीन शॉट का इस्तेमाल करके यह संकेत कर देता है कि नायक दिल्ली से कानपुर पहुँच गया है । पहले शॉट में नायक को दिल्ली के स्टेशन पर सामान सहित दिखाकर, दूसरे शॉट में रेलगाड़ी को दौड़ाता हुआ दिखाकर और तीसरे शॉट में नायक को कानपुर स्टेशन पर ट्रेन से उतरता हुआ दिखाकर । वस्तुतः

सीमित करने की यह प्रक्रिया जनसंचार में बहुत महत्त्वपूर्ण होती है । यही प्रतीकात्मकता की प्रक्रिया भी है, लेकिन जनसंचार के लिए इतनी स्वाभाविक है कि इसके बिना संप्रेषण का काम सफलता के साथ नहीं किया जा सकता ।

सीमित करने की प्रक्रिया का संबंध और भी कई चीजों से है । जनसंचार के माध्यमों द्वारा प्रसारित होने वाले संदेश व्यापक जन समुदाय के लिए होते हैं इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि केवल वही संदेश प्रेषित हो जो सभी के लिए स्वीकार्य हो । ऐसा कोई संदेश जो किसी समुदाय की भावनाओं को आहत करने वाला या किसी व्यक्ति को लांछित करने वाला है, तो वह संदेश प्रेषित करने से रोक दिया जाता है या ऐसे अंशों को कार्यक्रम से निकाल दिया जाता है । ऐसे संदेश को भी जिनमें स्त्रियों की अवमानना की गई है या बच्चों के कोमल मन पर बुरा असर डालने वाले हैं, तो उन्हें भी रोक दिया जाता है । यानी जनसंचार माध्यमों पर संदेश के संप्रेषण को नियमित करना जरूरी समझा जाता है । इसके लिए सरकारें कई तरह के कानून बनाती हैं । कई तरह के निकायों का गठन करती है, ताकि अनुचित संदेशों का प्रसारण न हो सके । मसलन, फिल्मों के लिए सेंसर बोर्ड से प्रमाणपत्र हासिल करना जरूरी होता है । लेकिन सरकारों की संदेशों को नियमित करने की सभी कोशिशें नेक इरादों से संचालित नहीं होती । कई बार अपने राजनीतिक लाभ के लिए या जनता को सच्चाई से दूर रखने के लिए भी वह संदेशों के प्रवाह को रोकती है ।

इस प्रकार जनसंचार की यह प्रक्रिया जहाँ एक ओर अपनी विशिष्ट प्रौद्योगिकी की वजह से सीमित की जाती है, तो दूसरी ओर वह उन लोगों और संस्थाओं की वजह से भी सीमित की जाती है जिनके हाथ में संप्रेषण का नियंत्रण होता है ।

2.4.3 फैलाना

जनसंचार की प्रक्रिया का तीसरा महत्वपूर्ण चरण है-संदेश को फैलाना । विस्तार की इस प्रक्रिया का संबंध दो बातों से है । एक, संदेश के मूल रूप' को बढ़ाकर के ऐसा स्वरूप प्रदान करना जिससे की प्रेषिती को संदेश की प्रासंगिकता और महत्त्व का बोध हो सके । मसलन, किसी घटना के घटित होने पर समाचारपत्र सिर्फ घटना का वर्णन ही पेश नही करते बल्कि उससे जुड़े दूसरे तथ्य, आकड़े, प्रसंग आदि का विवरण भी देते हैं ताकि लोगों को यह समझ आ सके कि इस संदेश का क्या महत्त्व है । यही जो बातें बाद में जोड़ी गई हैं, वह संदेश का संप्रेषण करने वालों का अपना योगदान है । इससे वह अखबार अपने ग्राहकों के बीच अपनी विशिष्ट पहचान बनाता है । संदेश को फैलाने का यह काम लगभग सभी माध्यम करते हैं । इसके और भी कई तरीके हैं । मसलन, किसी घटना विशेष के बारे में लोगों की प्रतिक्रिया देना। हम राजनीति से इतर क्षेत्रों में भी इस प्रक्रिया को देख सकते हैं । किसी फिल्म के रिलीज होने के बाद उसके बारे में दर्शकों की प्रतिक्रियाओं को प्रस्तुत करना या उसकी समीक्षा छापना इसी तरह का काम है । इन सब बातों का संप्रेषण से गहरा नाता है। आपने खुद महसूस किया होगा कि अच्छा साक्षात्कार वह होता है जो केवल सवालों और जवाबों को ही नहीं सवालों का जवाब देते वक्त साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति के व्यवहार और प्रतिक्रियाओं का भी साथ-साथ वर्णन करता चलता है ।

संदेश का विस्तार करने की जरूरत एक और कारण से भी पडती है । जब कोई संदेश व्यापक जन समुदाय तक पहुँचाया जाना हो तो यह जरूरी हो जाता है कि उसे इस रूप में पहुँचाया जाए, ताकि वह अधिकतम लोगों के लिए उपयोगी साबित हो ।

2.4.4 व्याख्या करना

संदेश के संप्रेषण की प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, संदेश की व्याख्या करना या पुनर्व्याख्या करना । इसकी जरूरत संचार माध्यमों में बराबर पड़ती रहती है । मसलन, सरकार द्वारा अपनाई गई कोई नीति जनता और देश पर क्या असर डालेगी, इसके लिए अखबार आमतौर पर उस नीति की व्याख्या भी साथ-साथ देते हैं । इस तरह किसी राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रम के साथ उसकी व्याख्या देना जनसंचार की प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है । कई बार मूल समाचार बहुत लंबा-चौड़ा नहीं होता लेकिन उसकी व्याख्या उसे विस्तार देती है । पोकरण में किए गए बम विस्फोट का समाचार तो बहुत संक्षेप में पेश किया जा सकता था । लेकिन इस घटना का सिर्फ हमारे देश के लिए ही नहीं, हमारे पड़ोसी देशों और भारत की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा से भी गहरा संबंध था । जिस प्रकार एक अच्छी आलोचना रचना को समझने की नई दृष्टि प्रदान करती है उसी प्रकार जनसंचार के संदेशों की व्याख्या और पुनर्व्याख्या उन संदेशों को नया अर्थ प्रदान करती है ।

इस प्रकार जनसंचार की प्रक्रिया को इन चार चरणों के द्वारा समझा जा सकता है । जाहिर है कि जनसंचार की संपूर्ण प्रक्रिया यह नहीं है । संपूर्ण प्रक्रिया तो जैसा कि हमने अपनी पहली इकाई में बताया था संदेश के निर्माण से उसके प्रेषिती को प्राप्त होने और उस पर उस संदेश के प्रभाव तक व्याप्त है । अब अगर इस प्रक्रिया को पूरे सन्दर्भ के साथ समझें तो हम इन्हें निम्न ढंग से रख सकते हैं-

1. संदेश जिसे प्रेषित किया जाना है ।
2. संदेश को प्रेषित करने वाला प्रेषक ।
3. संदेश जिस माध्यम से प्रेषित किया जाना है ।
4. संदेश को प्राप्त करने वाला व्यक्ति ।
5. संदेश का प्रेषिती पर पड़ने वाला प्रभाव ।

संदेश के संप्रेषण की इन प्रक्रियाओं से जुड़ा प्रश्न यह भी है कि क्या जनसंचार के व्यापक प्रसार के बावजूद लोगों की विश्व दृष्टि और मानवीय संबंधों में किसी तरह का सकारात्मक अंतर आया है' इसका उत्तर देना सहज नहीं है । जनसंचार के इतने माध्यम हमारे चारों और बिखरे हैं और इनसे इतना अधिक शोर हो रहा है कि कोई सार्थक सूचना, शिक्षा और मनोरंजन की प्राप्ति लोगों को हो रही है, यह कहना बहुत मुश्किल है । जनसंचार के क्षेत्र में सक्रिय संगठन, संस्थान और लोग प्रेषिती को उपभोक्ता से अधिक कुछ नहीं समझते । उनकी कोशिश यही रहती है कि लोगों की संस्कारबद्ध चेतना को बिना झकझोरे, उनके विवेक को बिना जगाए, अपनी सत्ता को बनाए रखने का जरिया बनाए रख सकें । इसलिए जनसंचार की

प्रक्रियाओं को समझना जितना जरूरी है जनसंचार के मौजूदा चरित्र को समझना भी उतना ही जरूरी है ।

2.5 सारांश

जनसंचार की इस इकाई में आपने जनसंचार के लक्ष्यों, कार्यो और प्रक्रियाओं का अध्ययन किया है। जनसंचार आधुनिक समाज महत्वपूर्ण क्षेत्र है । इसके लक्ष्यों को समाज की गतिविधियों के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है । जनसंचार के लक्ष्य पर विचार करते हुए हमने कहा था कि इनके लक्ष्य समाज के प्रभुवर्ग के लक्ष्यों से अलग करके नहीं देखें जा सकते । इसी सन्दर्भ में जनसंचार के राजनीतिक लक्ष्यों पर विचार करते हुए इकाई में बताया गया है कि जनसंचार ने सूचना के अधिकार का विस्तार किया है और इस तरह लोगों में राजनीतिक जागरूकता को बढ़ाया है । जनसंचार ने लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति लोगों को सजग बनाया है और वे अपने लोकतांत्रिक अधिकारों को हासिल करने के प्रति अधिक सावधान बने हैं । जनसंचार ने शासक वर्ग के राजनीतिक हितों का प्रचार करने में भी अहम भूमिका निभाई है और लोगों में राजनीतिक विभ्रम बढ़ाने का भी काम किया है । जनसंचार के माध्यम राजनीतिक हस्तक्षेप का माध्यम भी हो सकते हैं ।

जनसंचार ने आर्थिक गतिविधियों के विस्तार में मदद की है, तो बाजार की ताकतों को बल प्रदान करने का काम भी किया है । जनसंचार ने लोगों को उत्पादों के प्रति जागरूक बनाया है, तो उपभोक्तावादी प्रवृत्ति को भी बढ़ावा दिया है । जनसंचार की वजह से उद्योग और उत्पादन के नए क्षेत्र खुले हैं और सेवा के नए अवसर उपलब्ध हुए हैं । लेकिन जनसंचार के नए माध्यमों के विस्तार की वजह से कई परम्परागत क्षेत्रों का संकुचन भी हुआ है । जनसंचार ने पूँजी के केंद्रीयकरण को बढ़ावा भी दिया है ।

जनसंचार ने सामाजिक व्यवहार को प्रभावित किया है । ये प्रभाव दोनों तरह के हो सकते हैं - सकारात्मक भी और नकारात्मक भी । जनसंचार के माध्यमों की वजह से लोगों के सामाजिक दृष्टिकोण का विस्तार हुआ है, तो दूसरी ओर, असामाजिक प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिला है । जनसंचार ने लोगों को शिक्षित और उदार बनने की प्रेरणा दी है, तो उन्हें आत्मग्रस्त, संकीर्ण और स्वार्थी भी बनाया है ।

जनसंचार के आधुनिक माध्यमों की वजह से विभिन्न संस्कृतियां एक-दूसरे के करीब आई हैं और उनमें सामंजस्य बढ़ा है । जनसंचार ने अभिजात कला रूपों को जन-जन तक पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण काम किया है, तो लोककला और जनकला रूपों को नए क्षेत्र प्रदान किए हैं । लेकिन जनसंचार अपसंस्कृति का भी सबसे बड़ा प्रचारक कहा जा सकता है । जनसंचार ने लोगों की सृजनात्मक क्षमताओं के प्रकाशन के ज्यादा और बेहतर अवसर उपलब्ध कराए हैं, तो सांस्कृतिक वर्चस्व को कायम रखने का जरिया भी जनसंचार ही है ।

जनसंचार के तीन प्रमुख कार्य माने गए हैं । इकाई में इनकी चर्चा की गई है । सूचना जनसंचार का पहला महत्त्वपूर्ण कार्य है । सूचना की जरूरत सभी तरह के समाजों को होती है। सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने सूचना के महत्त्व को बिल्कुल बदल दिया है । सूचना अब अन्य उत्पादों की तरह एक उत्पाद में बदल गई है जिसे खरीदा और बेचा जा सकता है ।

सूचना के इस बढ़ते प्रभाव की वजह से आज के विकसित समाजों को सूचना समाज कहा जाने लगा है । सूचना ने कई तरह के मिथक पैदा किए हैं । लेकिन सिर्फ सूचना के बल पर समाज में व्याप्त गैर बराबरी और बदहाली को समाप्त नहीं किया जा सकता है ।

जनसंचार का दूसरा प्रमुख कार्य शिक्षा के प्रसार में योग देना है । संप्रेषण के सभी माध्यम शिक्षा जरूर देते हैं, चाहे वह शिक्षा लोगों पर सकारात्मक असर डाले या नकारात्मक । संचार के माध्यम औपचारिक और अनौपचारिक दोनों तरह की शिक्षा में मददगार होते हैं । जनसंचार के विस्तार ने वास्तविक ज्ञान को कम किया है । उसने प्रभुत्वशाली वर्गो में सांस्कृतिक वर्चस्व को बढ़ाया है और स्वतंत्र और स्वाभाविक विकास के मार्ग को बाधित किया है ।

जनसंचार का तीसरा महत्वपूर्ण कार्य मनोरंजन प्रदान करना है । मनोरंजन निष्क्रिय भाव नहीं है । वह रचना, अभिव्यक्ति और आस्वादन तीनों क्रियाओं में निहित होता है । मनोरंजन के लिए जनसंचार के विशिष्ट व्याकरण को ध्यान में रखना होता है । यह भी कि संप्रेष्य संकेतों को वह सफलतापूर्वक विसंकेतीकृण कर सके । मनोरंजन के सन्दर्भ में लोकप्रियता का प्रश्न भी उपस्थित होता है । क्या जो लोकप्रिय? वही मनोरंजक होता है ? लोकप्रियता का संबंध लोगों की स्थायी और सार्वकालिक स्वीकृति से भी होता है । मानवीय भावों को प्रश्रय देने वाली कलात्मक दृष्टि से उत्कर्ष अभिव्यक्ति को ही स्वस्थ मनोरंजन का नाम दिया जा सकता है ।

जनसंचार माध्यमों को समझने के लिए उनकी प्रक्रियाओं को समझने की भी जरूरत होती है । जनसंचार की प्रक्रिया को संपन्न करने के लिए लोगों, यंत्रों और संस्थाओं की जरूरत होती है । जनसंचार की प्रक्रिया के चार चरण होते हैं । सबसे पहले संदेशों को प्रसारित करना । प्रसारण का काम जनसंचार का बुनियादी काम है । जनसंचार संदेशों को यथावत् नहीं प्रसारित करता । वह उनमें माध्यम की विशिष्टता, उन पर अधिकार रखने वाले वर्गो की जरूरतों और उनका संचालन करने वाले लोगों की समझ और क्षमता के अनुसार रूपांतरित होकर संप्रेषित होता है । यह रूपांतरण संदेशों के सीमित होने, उसके विस्तृत होने और उसकी व्याख्या या पुनर्व्याख्या के रूप में सामने आता है । जनसंचार की यह प्रक्रिया निर्मित होने से लेकर लोगों तक पहुँचने तक चलती रहती है । यहाँ तक कि जनसंचार द्वारा संदेशों का लोगों पर पड़ने वाला प्रभाव भी एक-सा नहीं होता। जनसंचार की इन प्रक्रियाओं को समझकर ही हम यह भी समझ सकते हैं कि जनसंचार के माध्यम के द्वारा जो लक्ष्य पूरे किए जाने हैं और जो कार्य संपन्न होने हैं, वह किस रूप में पूरे होंगे ।

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जनसंचार माध्यमों द्वारा किन-किन लक्ष्यों की पूर्ति की जा सकती है' सोदाहरण बताइए ।
2. जनसंचार माध्यमों के प्रमुख कार्य कौन-कौन से हैं और इन कार्यो के संदर्भ में जनसंचार माध्यमों की भूमिका का विवेचन कीजिए ।

3. जनसंचार माध्यमों की प्रक्रिया से क्या तात्पर्य है? इसके प्रमुख चरणों को उल्लेख कीजिए।
4. राजनीति में जनसंचार माध्यम किस तरह की भूमिका निभाते हैं? क्या आप इस भूमिका से सहमत है? अपना मत प्रस्तुत कीजिए ।
5. जनसंचार माध्यमों से अभिव्यक्त होने वाले संदेशों का एक सांस्कृतिक पहलू भी होता है । सोदाहरण इस कथन की समीक्षा कीजिए ।

2.7 सन्दर्भ ग्रंथ

1. देवेंद्र इस्सर; जनमाध्यम संप्रेषण और विकास, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, के-71, कृष्णनगर, दिल्ली - 110051, संस्करण, 1995
2. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार के सामाजिक संदर्भ, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 29ए, पाकेट-डी, दीप एन्क्रलेव, अशोक विहार, दिल्ली- 110052
3. बृजमोहन गुप्त; जनसंचार माध्यम विविध आयाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
4. सीन मेकब्राइड मेनी वाइसेज वन वर्ल्ड, संपादक, यूनेस्को का प्रतिवेदन, कोगन पेज लि, लंदन, संस्करण, 1998
5. रेमंड विलियम्स; जनसंचार माध्यमों का वर्ग चरित्र, ग्रंथ शिल्पी, नयी दिल्ली.
6. जान आर. बटिनर मास कम्युनिकेशन, एलिन एंड बेकन, लंदन
7. जान बी थाम्पसन; आइडियोलोजी एंड मोडर्न कल्चर, पोलिटी प्रेस, यूके.
8. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, 2000; ग्रंथशिल्पी, दिल्ली- 110091.

इकाई 3 जनसंचार माध्यमों की परम्परा और इतिहास

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 संचार और जनसंचार परिभाषाएँ

3.3 जनसंचार माध्यमों की परम्परा

3.4 जनसंचार के विविध माध्यमों का इतिहास

3.5 भारत में जनसंचार का इतिहास

3.6 भारत में जनसंचार और उससे संबंधित सरकारी तंत्र

3.7 जनसंचार माध्यमों की भूमिका और उपयोग

3.8 सारांश

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.10. सन्दर्भ ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' पाठ्यक्रम के पहले खंड 'जनसंचार की अवधारणा और स्वरूप' की यह तीसरी इकाई है । इस इकाई में जनसंचार माध्यमों की परम्परा और इतिहास के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया' है । इसके साथ ही जनसंचार के पूरे तंत्र और उसके विभिन्न अंगों का संक्षिप्त परिचय कराया गया है ।

जनसंचार के माध्यमों का सम्यक लाभ उठाने के लिए सरकारी या गैर-सरकारी संस्थाओं में कई विभाग बनाए जाते है । ये जनसम्पर्क सूचना या प्रसार विभाग के रूप में जाने जाते है । देश में केन्द्र व राज्य सरकारों के स्तर परे 'जन-सम्पर्क' संगठन होते है । प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम जनसंचार के इन विविध पक्षों को आकलित करने का प्रयास करेंगे। साथ ही यह भी जानने का प्रयास करेंगे कि जनसंचार की इस परम्परा को किन-किन प्रविधियों से होकर वर्तमान तक पहुँचना पड़ा है । इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- संचार और जनसंचार की परिभाषा से अवगत हो सकेंगे ।
- जनसंचार माध्यमों की परम्परा को समझ सकेंगे ।
- जनसंचार के विविध माध्यमों के इतिहास तथा भारत में जनसंचार के इतिहास के बारे में समझ सकेंगे ।
- भारत में जनसंचार की भूमिका की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

3.1 प्रस्तावना

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' नामक इस पाठ्यक्रम की इस तीसरी इकाई नें जनसंचार माध्यमों की परम्परा और इतिहास पर विचार किया गया है । इससे पहले की दो

इकाईयों में जनसंचार की अवधारणा और स्वरूप तथा जनसंचार माध्यमों के लक्ष्य, कार्य और प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है । जनसंचार माध्यमों का अध्ययन तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक कि उसकी परम्परा और इतिहास को नहीं पहचान लिया जाता ।

संचार मनुष्य की एक जन्मजात और सहज प्रवृत्ति है । सभी प्राणी जनसंचार की लम्बी शृंखला से जुडे हुए हैं । हम जीवन की लगभग समस्त गतिविधियों में संचार की क्रिया से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष जुड़े रहते हैं । मनुष्य संचार के अंतर्गत विचारों का आदान-प्रदान, मतों-अभिमतों की स्थापना और अनुभूतियों का आदान-प्रदान शामिल हैं । संचार प्रणाली के तीन महत्त्वपूर्ण घटक हैं

(1) स्रोत

(2) संदेश

(3) गन्तव्य

इन तीन घटकों के बीच का आपसी सम्बन्ध ही संचार को महत्त्वपूर्ण दिशा देता है । वर्तमान समय में विभिन्न माध्यमों द्वारा संचार को गति व दिशा मिलती है । इसकी प्रक्रिया को हम हर दिन किसी न किसी रूप में घटित होते देख सकते हैं । संचार के विभिन्न माध्यमों के अनुसार इसे विविध प्रकार से जाना जा सकता है । इस इकाई का मुख्य उद्देश्य जनसंचार माध्यमों के इतिहास का परिचय प्राप्त करना है । इकाई में शामिल सभी मुद्दे 'इतिहास' को समझने और जानने के लिए है ।

3.2 संचार और जनसंचार की परिभाषाएँ

संचार और उसके व्यापक पक्ष जनसंचार को देखा जाए तो इनकी विविध परिभाषाएँ नामचीन विद्वानों ने दी हैं जिनके माध्यम से इन दोनों ही पक्षों को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है । प्रख्यात विद्वान लांगमेन के अनुसार, " संचार एक ऐसी किया है जो अपने होने मात्र से ही सामूहिकता को बढ़ाती है"। जबकि डेनिस मेक्वेल के अनुसार, 'केवल व्यक्ति द्वारा दूसरे को सार्थक संदेश प्रेषित करना ही संचार है । "

इन दोनों परिभाषाओं में संचार को परस्पर संवाद के अर्थ में ग्रहण किया गया है । यह परस्पर संवाद दो व्यक्तियों तक सीमित नहीं है । इससे परे संचार विभिन्न जनसमूहों के बीच संवाद के रूप में परिव्याप्त है । इससे सामूहिकता का बोध बढ़ता है । सामूहिकता का बोध बढ़ने का अर्थ है, यह पहचान करना कि व्यक्ति के रूप में हम किन समूहों के अंग हैं । डेनिस मेक्वेल ने संदेश की सार्थकता को भी रेखांकित किया है । यदि सार्थक का तात्पर्य उपयोगिता से है तो यह संचार के अर्थ को सीमित करना है । दरअसल, किसी भी तरह का संदेश जो किसी स्पष्ट अर्थ को व्यक्त करता हो, संचार के अंतर्गत परिगणित होगा । ध्यान दें तो संचार में दो पक्षों का होना, संदेश का होना, संदेश को वहन करने वाली भाषा का होना और इस पूरी प्रक्रिया को अंजाम देने वाली प्रौद्योगिकी का होना आवश्यक है । प्रौद्योगिकी भी माध्यम है और भाषा भी । प्रौद्योगिकी को हार्डवेयर और भाषा को सॉफ्टवेयर कहा जा सकता है ।

जब संचार की बात की जाती है तो इस बात को भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि संदेशों का आदान-प्रदान एक सामाजिक प्रक्रिया है । सामाजिक प्रक्रिया से तात्पर्य यह है कि

संचार की पूरी प्रक्रिया को समाज के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है । संचार में सामाजिक सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए संचार को परिभाषित करने की कोशिश की गई है । मेलिन एल. दे लिदेर के अनुसार, "संचार एक ऐसा साधन है जिसके जरिए किसी समूह विशेष के प्रतिमान व्यक्त होते हैं तथा जिनके जरिए उसमें सामाजिक नियन्त्रण स्थापित किया जाता है, भूमिकाएँ बाँटी जाती हैं, प्रयासों में समन्वय स्थापित किया जाता है, उसकी उम्मीदें जाहिर होती हैं तथा समूची सामाजिक प्रक्रिया चलाई जाती है ।"

हैराल्ड डी लॉसवेल ने इसी बात को कुछ अलग ढंग से कहा है, "संचार का मतलब है यह परखना कि किससे किस रास्ते क्या कहना है तथा उसका क्या प्रभाव होता है ।"

संचार के सामाजिक पक्ष का आधार यह है कि प्रत्येक समाज में लोगों को पारस्परिक संपर्क और संवाद की आवश्यकता होती है । लोकतांत्रिक समाजों में तो जनसंपर्क और जन-संवाद लोकतंत्र का आधार कहा जा सकता है ।

जन-सम्पर्क हेतु निम्नांकित विद्वानों की परिभाषाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं :-

आर्थर रॉलमैन के अनुसार, "वास्तविक रूप में जन-सम्पर्क दो पक्षों का संप्रेशण है, जिसमें सहमति का आधार सम्पूर्ण सत्य का ज्ञान तथा पूर्ण सूचनाएँ होती हैं जिनसे तनाव कम होता है तथा । सौहार्द पैदा होता है । इसका मुख्य कार्य जन-मन को प्रभावित करना है ।

सैमे ब्लैक का मानना है, "जन सम्पर्क विभिन्न सामाजिक विज्ञानों का सम्मिश्रण है, जो हमें व्यक्ति और समूह की प्रतिक्रिया से अवगत कराता है । यह संप्रेषण का वह विज्ञान है जो तनाव, दूर कर बेहतर सम्बन्ध बनाते हुए सहमति का निर्माण करता है । "

जन-सम्पर्क दरअसल सरकार और सरकारी संस्थानों द्वारा जनता को हित में चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं, जनता के हित की सूचनाओं से अवगत कराना है । मसलन बाढ़ या तूफान आने की पूर्व सूचना देना, ऐसी स्थितियाँ सरकार द्वारा चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं से कराना भी जरूरी है । लेकिन इसके लिए जनसंचार के व्यापक साधनों का उपलब्ध होना जरूरी है । साथ ही, कि बेब्रनर का कहना है, "आधुनिक प्रशासन में जन-सम्पर्क तथा प्रसार-प्रचार का सीधा सा अर्थ है : उद्योग में मानवीय दृष्टिकोण का अध्ययन तथा शासन में इसका विस्तार । जन-सम्पर्क के आवश्यक तत्व हैं -

(1) जनता की इच्छाओं व भावनाओं का ज्ञान ।

(2) अधिकारियों व जनता के बीच संतोषजनक सोच-विचार तथा समन्वय । "

कुछ विचारक यह भी मानते हैं कि "जन-सम्पर्क विचारों के संप्रेषण का वह है जिसके द्वारा जनता के साथ सम्पर्क कर इच्छित परिणाम की प्राप्ति की जा सकती है । इसे प्रबन्ध का भी कहा जा सकता है जो जनता की रूचियों और अभिमत का ध्यान रखता है, उसका विश्लेषण करता है उसके अनुरूप अपने संगठन की नीतियों, प्रक्रियाओं और कार्यक्रमों को जन-अभिमुख बनाने व प्रतिष्ठा प्राप्ति करने के उद्देश्य से संचालित करता है । "

3.3 जनसंचार माध्यमों की परम्परा

भारत में जनसंचार के आरम्भ के लिए हम इतिहास के ज्ञात-स्रोतों की तरह किसी निश्चित तारीख को निर्धारित नहीं कर सकते हैं । किन्तु माना जा सकता है कि मानव सभ्यता के उद्भव के साथ ही जनसंचार का उद्भव भी हुआ । मानव सदैव ही समन्वयी प्रवृति का रहा है। उसकी चेष्टा रही है कि परिवेश के अनुरूप उसके कार्य की सराहना की जाए और विरोध को समाप्त किया जाएँ इसमें 'जनमत' अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । प्राचीन सामंती काल में राजा अपना वेश बदल कर जनता के सुख-दुःख की जानकारी रखते थे । बड़े-बड़े सम्राटों के यहाँ गुप्तचर, दूत आदि जनता से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध बनाए रखते थे।

प्राचीन काल में पड़ोसी राज्यों से आक्रमण और तख्ता पलट का डर बना ही रहता था। ऐसे में दूर-दूर फैले साम्राज्य में सूचना देना व जनता को विपत्ति का आभास दिलाना जरूरी था। अत: आवाजाही के प्रमुख मार्गों पर बुर्जियाँ होती थीं और घुड़सवार, पैदल या अन्य सैनिक एक बुर्जी से दूसरी तक समाचार पहुँचाते थे । जन-सम्पर्क को अधिक प्रभावी बनाने के लिए शासक जनता की आशाओं का अनुमान भी लगाते थे । ऐसे राजा जो समाज की कल्याणकारी गतिविधियों के प्रति जागरूक थे वे अपने महत्वपूर्ण निर्णयों! को 'शिला-लेखों' के रूप में राज्य के कई भागों में लगवा देते थे । 'अशोक' का नाम इतिहास में ऐसे जन-सम्पर्क कर्मी के रूप में विख्यात है जिसने जनसंचार को व्यापक आयाम दिया था । इसी प्रकार अन्य शासक भी महत्त्वपूर्ण धर्मादेशों, राजाज्ञाओं व फरमानों को जनता तक पहुँचाते थे । राजाओं ने अपने काल की उपलब्धियों के प्रचार हेतु अपने राज्य में प्रवीण लेखकों व कवियों को श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया हुआ था जिससे उनकी उपलब्धियों दूर-दराज तक पहुँचती थी । मुनादी व फरमान द्वारा राजाज्ञा जन सामान्य तक पहुँचाई जाती थी ।

सामंती दौर समाप्त होने के बाद पूँजीवादी लोकतंत्र का दौर आरंभ हुआ । इस दौर में राज्यों को गणतंत्र का रूप दिया गया । प्रजातंत्र में यह माना गया कि इसमें जनता द्वारा चुनी गई सरकार होने के नाते 'जनसंचार' का महत्त्वपूर्ण स्थान है । आज संसार का कोई भी शासन-तंत्र क्यों न हो वह जनसंचार के बिना भली-भाँति कार्य नहीं कर सकता है । आज के युग में शासन-तंत्र की कठिनाइयों व जटिलता के कारण शासक व शासित के बीच की दूरी को कम करने के लिए 'जनसंचार' पुल का कार्य करता है । लोकतंत्र की प्रणाली तो वैसे भी 'बहुजन-हिताय, बहुजन सुखाय' की अवधारणा पर कार्य करती है । अत: जनसंचार दो बिन्दुओं पर केन्द्रित हो जाता है । प्रथम, तो सरकार अपनी नीतियों और कार्यक्रमों के लिए उत्तरदायी होती है और द्वितीय, बेहतर प्रशासन के लिए लोगों की सहभागिता और मतदाता के समर्थन की आवश्यकता रहती है ।

3.4 जनसंचार के विविध माध्यमों का इतिहास

इस भाग के अंतर्गत हम जनसंचार के विविध माध्यमों के इतिहास की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करेंगे । इस भाग का उद्देश्य जनसंचार माध्यमों का इतिहास बताना नहीं है बल्कि इन माध्यमों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखना और समझना भी है । जनसंचार माध्यमों

में महत्वपूर्ण हैं-प्रेस, रेडियो, टेलीविजन और इंटरनेट । आगे हम इन्हीं पर संक्षिप्त प्रकाश डालेंगे।

प्रेस और मुद्रित सामग्री

जनसंचार माध्यमों के विकास का संबंध समाज के विकास से गहरे रूप में जुड़ा है । सामाजिक विकास के विभिन्न चरण जनसंचार माध्यमों की आवश्यकताओं को अभिव्यक्त करते हैं । आधुनिक पूँजीवादी समाज जिसमें उत्पादन की प्रौद्योगिकी ने जनोत्पादन को संभव बनाया और जिसके लिए व्यापक बाजार की आवश्यकता पैदा हुई, उसने यातायात और संप्रेषण के साधनों के विकास की संभावना को भी पैदा किया । इस क्रम में सबसे पहले लिखने की पद्धति को गुणात्मक रूप में बदल डाला । मुद्रण की प्रणाली के आगमन से पूर्व किसी लिखी हुई पुस्तक की दूसरी प्रति बनाने के लिए उसकी यथावत प्रतिलिपि बनानी पड़ती थी जिसमें काफी समय खर्च होता था । अगर दस प्रति बनानी है तो दस गुणा समय लगता था या एक साथ दस आदमियों को बिठा कर दस प्रतिलिपि बनवानी पड़ती थी । लेकिन मुद्रण की प्रणाली ने एकसाथ बहुत ही कम समय में सैकड़ों और हजारों प्रतियों को तैयार करना संभव बनाया । आधुनिक युग में जनोत्पादन के कारण बाजारों के बढ़ने में इस जरूरत को महसूस कराया कि सूचना का आदान-प्रदान व्यापक स्तर पर हो और तीव्र गति से भी हो । व्यापक स्तर पर होने के लिए यह जरूरी है कि एक जगह से सूचना दूसरी जगह जल्दी से जल्दी पहुँचे । इसी ने समाचारपत्रों को संभव बनाया । समाचारपत्र सूचनाओं को मुद्रित रूप में अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने का माध्यम बना । छापाखाने में अखबार को छाप कर और उन्हें रेलगाड़ी और मोटरगाड़ी के द्वारा दूर-दूर के स्थानों पर भेजना संभव हो सका । लेकिन यहाँ इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि यहाँ समाचारपत्रों ने केवल बाजार से संबंधित सूचनाओं को संप्रेषित करने तक अपने को सीमित नहीं रखा बल्कि उन सभी मसलों को जिनमें लोगों की रुचि हो सकती थी, उनको भी समाचारपत्र में जगह देना शुरू किया । इस तरह समाचारपत्र में आर्थिक सूचनाओं के साथ राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पक्षों को भी अखबारों में जगह मिलने लगी ।

समाचारपत्रों की शुरुआत भारत में अंग्रेजों की सत्ता स्थापित होने के बाद 18वीं शताब्दी में हुई। समाचारपत्रों का विस्तार समय के अनुसार बढ़ता गया । मुद्रण की प्रौद्योगिकी लगातार विकसित होती गई । यातायात के साधन पहले से ज्यादा तेज हुए और सूचनाओं को तार, रेडियो और टेलीफोन के माध्यम से भेजा जाना संभव हो सका । जनसंचार की इस प्रौद्योगिकी का उल्लेख आप इसी खंड की इकाई पाँच में विस्तार से पढ़ेगे । इसी तरह जनसंचार के विविध माध्यमों का परिचय भी आप इकाई चार में प्राप्त करेंगे इसलिए यहाँ इस संबंध में संक्षिप्त जानकारी दी जा रही है ।

सूचनाओं को प्राप्त करने के आज कई सारे साधन हैं । इनमें रेडियो, टेलीविजन, इंटरनेट का उल्लेख किया जा सकता है । लेकिन अखबारों, पत्रिकाओं और पुस्तकों की उपयोगिता समाप्त नहीं हुई है । भारत जैसे बहुभाषी देश में समाचारपत्र अंग्रेजी भाषा सहित लगभग सभी भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होते हैं । ये समाचारपत्र राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय स्तर के हैं । कई समाचारपत्रों के' अलग-अलग शहरों के अनुसार अलग-अलग संस्करण भी प्रकाशित हो रहे हैं ।

इंटरनेट पर लगभग सभी प्रमुख समाचारपत्रों की बेवसाइट उपलब्ध हैं । कुछ समाचारपत्र तो अपने इंटरनेट संस्करण भी निकाल रहे है । इंटरनेट के कारण समाचारपत्रों की उपलब्धता बहुत अधिक बढ़ गई है । अब तक सामान्य पाठक जिन अखबारों का सिर्फ नाम सुनते थे अब वे इंटरनेट पर इन अखबारों को पढ़ भी सकते हैं । इनमें विदेशों से प्रकाशित होने वाले अखबार भी शामिल हैं । इसी तरह विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ भी पाठकों को उपलब्ध हो जाती है । मुद्रण की जिस प्रणाली से पत्र-पत्रिकाओं की शुरूआत हुई थी, इंटरनेट ने आज उसे एक नये आयाम तक पहुँचा दिया । कंप्यूटर और इंटरनेट ने पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों की जरूरत को सीमित नहीं किया है बल्कि उसे और अधिक बढ़ा दिया है ।

रेडियो (Radio)

रेडियो जनसम्पर्क का एक प्रबल माध्यम है । इसकी पहुँच अत्यन्त व्यापक है । इस माध्यम से एक ही समय में शहरों से लेकर गाँवों तक करोडों लोगों से स्पष्ट सम्पर्क साधा जा सकता है । एक श्रव्य माध्यम होने के कारण रेडियो में अंतरसूचनाएँ मौखिक रूप से आती है । यानी की जो कुछ भी कहा जाता है उसे ही सुनकर हमें ग्रहण करना होता है । लिखे हुए को पढ़ने का लाभ यह होता है कि आप उसे एक से अधिक बार पढ़ सकते हैं । लेकिन रेडियो पर जो बात कही जाती है उसे अगर हमने ध्यान से नहीं सुना या किसी वजह से हम उसे नहीं सुन सके तो उस संदेश का संप्रेषण हम तक नहीं हो पाएगा । उस संदेश को हम तभी दोबारा सुन पाएँगे जब उसका दोबारा संप्रेषण हों या वह संदेश किसी अन्य रूप में या अन्य माध्यम से हम तक पहुँचे । रेडियो की विशेषता यह भी है कि हम काम करते हुए भी संदेश को ग्रहण कर सकते हैं । जबकि समाचारपत्र पढ़ने के लिए या टेलीविजन देखने के लिए दूसरे काम छोड़ने पड़ते हैं । जाहिर है कि यदि संदेश की प्रकृति अधिक गंभीर किस्म की है और इसके लिए एकाग्रता की आवश्यकता है तो रेडियो के लिए भी हमें अपने अन्य काम छोड़ने पड़ सकते हैं । रेडियो की प्रौद्योगिकी इस अर्थ में सस्ती है कि रेडियो और ट्रांजिस्टर को सामान्य व्यक्ति भी खरीद सकता है । बैटरी से चलने वाले ट्रांजिस्टर रेडियो को तो एक जगह पर रखकर सुनने की भी आवश्यकता नहीं है । श्रोता उसे अपने साथ इधर-उधर ले जा सकता है और सुन सकता है।

समाचारपत्र की तुलना में रेडियो समाचार जल्दी पहुँचाता है लेकिन समाचारपत्र की तुलना में सूचनाओं का विस्तार उसमें नहीं होता । इसके बावजूद रेडियो का महत्त्व यही है कि श्रोताओं तक कोई भी सूचना तत्काल पहुँचाई जा सके । रेडियो की व्यापकता भी इसलिए धीरे-धीरे बढ़ती गई है। अब वह भी स्थानीय से क्षेत्रीय और राष्ट्रीय से अंतरराष्ट्रीय हो गया है यानी कि हम रेडियो पर दुनिया के किसी भी देश के समाचारों को सुन सकते हैं । समाचारपत्रों की तरह रेडियो भी दुनिया की किसी भी भाषा में प्रसारण कर सकते हैं। इसी तरह रेडियो सूचना, शिक्षा और मनोरंजन देने का माध्यम भी है । रेडियो तकनीक का विकास इतना अधिक हो चुका है कि आज रेडियो को कंप्यूटर और टेलीविजन पर भी सुना जा सकता है । रेडियो पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों को ऑडियो कैसेट या सी.डी पर भंडारित करके और उनकी प्रतिलिपि बना के लोगों के घरों तक पहुँचाया जा सकता है । जिनका उपयोग वे अपने रेडियो, वाइस रिकार्डर और प्लेयर पर आसानी से सुन सकते हैं। साथ ही ध्वनियों को रिकार्ड करने की तकनीक इतनी

विकसित हो चुकी है कि कोई भी व्यक्ति अपने घर में ऑडियो सिस्टम पर आवाजों को रिकार्ड भी कर सकता है उनकी प्रतिलिपि बना सकता है और उनको सुन भी सकता हैं।

फिल्म और टेलीविजन (Films & Television)

जनसंचार माध्यमों के विकास में एक नया मोड़ तब आया जब गतिशील वस्तुओं को पर्दे पर यथावत देखना संभव हो पाया । सिनेमा का आविष्कार फ्रांस के ल्यूमिये बंधुओं ने 1896 में किया था । सिनेमा के आगमन से पहले स्थिर फोटोग्राफी सामने आ चुकी थी । सिनेमा गतिशील दृश्यों को दिखाने का एक सशक्त माध्यम बना । आज हम फिल्मों को मनोरंजन के सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम के रूप में जानते है लेकिन इस माध्यम का उपयोग सूचना और शिक्षा के लिए भी किया जाता रहा है । सिनेमा की प्रौद्योगिकी में भी निरन्तर विकास होता रहा है । आरंभ में सिनेमा आवाजहीन था और चित्र भी रंगीन नहीं आते थे लेकिन बाद में सिनेमा के साथ आवाज भी आने लगी और चित्र भी रंगीन दिखाये जाने लगे । फिल्म को सिनेमाघर के विशाल पर्दे पर देखा जाता है जिसके लिए दर्शक को सिनेमाघर तक जाना होता है। फिल्म देखने के लिए दर्शक एक अंधेरे हॉल में प्रोजेक्टर द्वारा फेंकी गई किरणों के माध्यम से सफेद पर्दे पर दिखाई देने वाले चित्रों के रूप में देखता है । लेकिन टेलीविजन में इस दृश्य माध्यम को बिल्कुल भिन्न रूप में देखना संभव होता है । टेलीविजन रेडियो की तरह एक छोटा सा बाक्स है जिसमें लगे यंत्रों के माध्यम से चित्र और आवाज सुनाई देती है । टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले दृश्य कार्यक्रमों का प्रसारण रेडियो की तरह घर पर ही विद्युतीय किरणों के माध्यम से होता है । टेलीविजन पर किसी अन्य जगह से प्रसारित होने वाले दृश्य कार्यक्रमों को ग्रहण किया जाता है । आरंभ में टेलीविजन भी श्वेत-श्याम था लेकिन अब भारत में भी लगभग तीन दशकों से रंगीन प्रसारण होने लगा है । आरंभ में टेलीविजन का प्रसारण क्षेत्र बहुत सीमित था और दूर-दूर तक प्रसारण के लिए प्रत्येक क्षेत्र में रिले केंद्र स्थापित करने पड़ते थे । लेकिन अब कृत्रिम उपग्रह प्रणाली के आ जाने से बाद इन रिले केंद्रों की जरूरत समाप्त हो गई है । अब एंटिना के माध्यम से कोई भी व्यक्ति अपने घर पर किसी भी चैनल को सीधे अपने टेलीविजन सैट पर ग्रहण कर सकता है । इस नयी प्रणाली को डीटीएच यानी डायरेक्ट टू होम कहा जाता है ।

टेलीविजन पर तरह-तरह के कार्यक्रम देखे जा सकते हैं । समाचारों को, समाचार संबंधी कार्यक्रमों को, मनोरंजन और शिक्षा से संबंधित कार्यक्रमों को टेलीविजन पर देखा जा सकता है। टेलीविजन पर फिल्म भी दिखाई जाती हैं । आज टेलीविजन सूचना, शिक्षा और मनोरंजन का सबसे लोकप्रिय और सर्वसुलभ माध्यम है । इसने ज्ञान का विस्तार करने में भी अहम् भूमिका निभाई है । टेलीविजन रेडियो की तुलना में महँगा है लेकिन निम्न मध्यवर्ग के बड़े हिस्से की पहुँच में आ चुका है ।

कम्प्यूटर और इंटरनेट (Computer & Internet)

जनसंचार माध्यमों के क्षेत्र में जो नवीनतम उपलब्धता सामने आई है वह है कंप्यूटर और इंटरनेट । कम्प्यूटर एक ऐसा यंत्र है जिसपर कई ऐसे कार्य को संपन्न किया जा सकता है जिसके लिए पहले अलग-अलग यंत्रों की जरूरत होती थी । मसलन, टाइप करने के लिए पहले टाइपिंग मशीन की जरूरत होती थी लेकिन टाइपिंग मशीन पर चित्र नहीं बनाए जा सकते थे

लेकिन कंप्यूटर पर बनाए जा सकते हैं । टाइपिंग मशीन केल्कुलेटर का काम नहीं कर सकती लेकिन कंप्यूटर कर सकता है । टाइपिंग करते हुए ही लिखे हुए को मिटाना या उसकी कापी बना कर दूसरे स्थान पर चिपकाना संभव नहीं था, लेकिन कंप्यूटर यह काम भी कर सकता है। कंप्यूटर पर आप चित्र देख सकते हैं, फिल्म देख सकते है, गाने सुन सकते है, गाने रिकार्ड भी कर सकते हैं । यदि कंप्यूटर पर इंटरनेट की सुविधा हो तो आप रेडियो, टेलीफोन, टेलीविजन और दूसरे संचार के सभी यंत्रों का काम इस एक यंत्र से पूरा कर सकते हैं । मसलन, आप ई-मेल के जरिये दुनिया के किसी भी कोने में बैठे हुए व्यक्ति को चिट्ठी लिख सकते हैं । और उस चिट्ठी को पहुँचने में उतना भी समय नहीं लगता जितना की चिट्ठी को लिखने में लगता है । इंटरनेट पर आप फोटो और फिल्म भी देख सकते हैं और प्राप्त भी कर सकते हैं । आज इंटरनेट सूचना और ज्ञान का सबसे बड़ा स्रोत है इसने सब तरह की दूरियाँ भौतिक और मानसिक समाप्त कर दी है । यह संचार की दुनिया की सबसे बड़ी उपलब्ध ही नहीं बल्कि उसका शिखर भी कहा जा सकता है ।

जनसंचार के उपर्युक्त सभी माध्यमों में भाषा का कोई अवरोध नहीं है । आप जिस भाषा में चाहे संचार माध्यमों का उपयोग कर सकते है । अपने को अभिव्यक्ति करने का जितने भी तरीके अब तक मनुष्य ने खोजे हैं उन सभी का उपयोग हम इन आधुनिक माध्यमों द्वारा कर सकते हैं । जनसंचार माध्यमों के इस संक्षिप्त इतिहास को प्रस्तुत करने का उद्देश्य यही है कि हम उसके महत्व और प्राथमिकता को सही परिप्रेक्ष्य में समझ सकें ।

3.5 भारत में जनसंचार का इतिहास

भारत की सभ्यता और संस्कृति बहुत पुरानी है । भारत विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में से एक है । कई दृष्टियों से यह देश अपनी अनोखी पहचान बनाए हुए है । यही की प्रकृति में कुछ ऐसा है कि यहाँ विभिन्न जातियों, सभ्यताओं और संस्कृतियों को विकसित होने का अवसर मिला है । संचार माध्यमों के विकास में सभ्यताओं के विकास का बड़ा योगदान होता है । इसे दूसरे शब्दों में इस तरह भी कह सकते है कि सभ्यताओं के विकास की पहचान संचार के माध्यमों के विकास से की जा सकती है। भारत की प्राचीनतम सभ्यता जिसे सिंधु सभ्यता और हड़प्पा सभ्यता के नाम से जाना जाता है उसने बड़े-बड़े नगर बसाए थे, भाषा का विकास किया था और वे बहुत्सी ऐसी चीजों का उत्पादन कर सकने में सक्षम थे जो उनके विकास को दर्शाते हैं । भाषा संचार का एक बहुत ही सशक्त और आधारभूत माध्यम है । भाषा सबसे पहले बोलचाल के माध्यम के रूप में विकसित होती है । उसके बाद लिखने की जरूरत से प्रेरित होकर लिपि का विकास होता है । भारत की प्राचीन भाषाओं ने आज से कई हजार साल पहले ही लिपियों का विकास कर लिया था । इन्हीं लिपियों के विकास के कारण ही ऋग्वेद जैसा प्राचीन ग्रंथ सुरक्षित रह सका ।

भाषा के अलावा जनसंचार के कई अन्य साधन भी भारत में विकसित हुए । इनमें व्यवसाय से संबंधित लेन-देन की व्यवस्था में बैंकिंग का पूर्व रूप भी देखा जा सकता है जिसे हुण्डी के नाम से जानते है । एक शहर का व्यापारी किसी व्यक्ति को जब हुण्डी लेकर भेजता है तो दूसरा शहर का व्यापारी जिसके नाम से हुण्डी है वह उस हुण्डी में लिखी हुई रकम के अनुसार पैसा दे देता है । इसी तरह शेरशाह सूरी के जमाने में आधुनिक डाक व्यवस्था का पूर्व

रूप भी देखने को मिलता है । दरअसल, संचार की कोई भी व्यवस्था कितनी विकसित होगी यह इस बात पर निर्भर करता है कि समाज ने किस तरह के संचार की व्यवस्था की है । भारत मध्यकालीन सामंती व्यवस्था से आधुनिक और औद्योगिक व्यवस्था में स्वाभाविक प्रक्रिया में नहीं पहुँचा । इसके पूर्व ही अंग्रेजी शासकों ने भारत पर अधिकार कर लिया । जिस समय भारत पर अंग्रेजी शासन कायम हुआ उसी समय यूरोप में औद्योगिकीकरण के कारण विज्ञान के क्षेत्र में कई नये आविष्कार हुए । इन आविष्कारों ने उत्पादन के पुराने तौर-तरीकों को बदल डाला और जनोत्पादन कि यांत्रिकी विकसित की । जनोत्पादन के लिए जैसा कि पहले कहा जा चुका है, एक बड़े बाजार की जरूरत थी । इस जरूरत ने ही यूरोप के देशों को एशिया अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका के देशों में अपने उपनिवेश स्थापित करने के लिए प्रेरित किया । भारत भी इसी प्रक्रिया में गुलाम बनाया गया । हालांकि भारत अफ्रीका और दक्षिण एशिया के देशों की तरह पिछड़ा हुआ नहीं था लेकिन यही की विकसित सामंती शासन व्यवस्था में आगे विकास की संभावना खत्म हो चुकी थी । भारत के सामंती शासक पतन के दौर से गुजर रहे थे और उनके बीच आपसी फूट और लड़ाई-झगड़े ने ऐसे हालात पैदा कर दिये कि उसका लाभ उठाना बाहरी शक्तियों के लिए आसान हो गया । इन्हीं परिस्थितियों में यूरोप के देशों के लिए भारत को अपने अधीन करना संभव हो पाया ।

औपनिवेशिक अधीनता के दौर में ही यूरोप में होने वाला औद्योगिक विकास भारत में पहुँचा । भारत पर शासन करने वाली यूरोपीय शक्तियों के लिए भारत जैसे विशाल देश पर शासन करने के लिए जनसंचार और यातायात के साधनों का इस्तेमाल करना जरूरी हो गया । भारत में रेल, डाक और तार की स्थापना अंग्रेजों ने इसी मकसद से की थी । इसी तरह यूरोप से प्रिंटिंग प्रेस भारत में इसीलिए लाई गई ताकि अपनी सत्ता को मजबूत करने के लिए वे ईसाई धर्म के प्रचार से संबंधित पुस्तकें भारतीय भाषाओं में भी छाप कर वितरित कर सकें । संचार व यातायात के साधन भले ही अंग्रेजों ने अपने लाभ के लिए स्थापित किये हों लेकिन शिक्षित भारतीयों ने इस बात को जल्दी ही पहचान लिया कि उनका इस्तेमाल हम अपने हित में भी कर सकते हैं । इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर भारतीय नवजागरण के प्रवर्तक राजा राममोहन राय ने पुस्तकों और पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ किया । राजा राममोहन राय के अलावा भी भारत की लगभग सभी आधुनिक भाषाओं में ऐसे महापुरुष हुए जिन्होंने 19वीं शताब्दी में प्रिंटिंग प्रेस का इस्तेमाल जनता के बीच जागृति पैदा करने और लोगों में देशभक्ति की भावना फैलाने के लिए किया । 1657 की क्रांति इस बात का उदाहरण है कि किस तरह विद्रोहियों ने अखबारों का इस्तेमाल अपने विचारों को फैलाने के लिए किया । यही नहीं उन्होंने तार और टेलीफोन के केंद्रों पर इसलिए हमले किये ताकि अंग्रेजी सेना आपस में संपर्क न कर सकें । लेकिन यही तार, टेलीफोन और रेलगाड़ी धीरे-धीरे भारतीयों को जोड़ने का माध्यम भी बनी । औपनिवेशिक दासता के दौर में ही रेडियो भारत में पहुँचा और सिनेमा भी । 1947 में देश आजाद होने के पूर्व तक भारत में मुद्रण व्यवस्था और सिनेमा माध्यम का इतना विकास हो चुका था कि पत्र-पत्रिकाओं किताबों और फिल्मों के मामले में भारत दुनिया के किसी भी विकसित देश की बराबरी कर सकता था ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जनसंचार माध्यमों का विकास एक नए चरण में पहुँचा । अब प्रश्न सिर्फ इन नये माध्यमों के व्यापक इस्तेमाल का ही नहीं था बल्कि इन माध्यमों के लिए आवश्यक संसाधन और वैज्ञानिक क्षमता विकसित करने का भी था । आजादी के बाद के 60 साल इन संसाधनों के विकास और वैज्ञानिक क्षमताओं की उन्नति का इतिहास है । यह जरूर है कि भारत अब भी प्रति व्यक्ति टेलीफोन या टेलीविजन की उपलब्धता के मामले में विकसित देशों से पीछे हो और यह भी कि भारत में मोबाइल और इंटरनेट इस्तेमाल करने की संख्या का अनुपात विकसित देशों की तुलना में कम । लेकिन यह भी सच्चाई है कि आज चीन और भारत दो ऐसे देश हैं जो न केवल जनसंचार माध्यमों के इस्तेमाल के माध्यमों में तेजी से आगे बढ़ रहा हैं बल्कि इन माध्यमों की तकनीकी दक्षता का विकास करने के मामले में भी विकसित देशों से पीछे नहीं है । कंप्यूटर के मामले में तो भारत ने विश्व बाजार पर अपना वर्चस्व भी कायम किया है । इसी तरह पिछले तीन-चार दशकों से भारत दुनिया का सबसे अधिक फिल्म बनाने वाला देश है । भारत ने जनसंचार से संबंधित सैटेलाइट तकनीक, डिजिटल और दूसरी नवीनतम तकनीकों में जबरदस्त उपलब्धियाँ हासिल की है । इन क्षेत्रों में शिक्षा, रोजगार और व्यवसाय के नये-नये क्षेत्र खुले है । इससे भारत के शिक्षित युवाओं के लिए एक बेहतर जिन्दगी जीने के अवसर प्राप्त हुए है । अभी विश्वभर में जो मंदी का दौर चल रहा है यदि भारत उससे बहुत अधिक प्रभावित नहीं हुआ तो इसका कारण यही है कि पिछले छह दशकों में भारत ने यथासंभव पश्चिमी देशों पर अपनी निर्भरता को कम करने का प्रयास किया । इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें जनसंचार के क्षेत्र में अब कुछ नहीं करना है । इसके विपरीत अभी भी आबादी का एक-तिहाई हिस्सा आधुनिक जनसंचार माध्यमों से कमोबेश वंचित है । उन तक पहुँच कर ही हम यह कहने की स्थिति में होंगे कि हमने सचमुच जनसंचार के साधनों को जनता के हर हिस्से तक पहुँचा दिया है ।

3.6 भारत में जनसंचार और उससे संबंधित सरकारी तंत्र

भारत में जनसंचार के महत्त्व को देखते हुए सरकार ने दो मंत्रालयों को पूरी तरह से इन्हीं कार्यो के लिए बनाया है । एक, संचार मंत्रालय जिसका काम है संचार के संसाधनों का विकास करना और जनता के बीच उसे पहुँचाना, दूसरा मंत्रालय है, सूचना और प्रसारण मंत्रालय जो जनसंचार के ऐसे साधनों यथा रेडियो, टेलीविजन और सिनेमा के विकास में सहयोग प्रदान करना, उसके लिए आवश्यक नियम कानूनों का निर्माण करना, उनका पालन करवाना और इन क्षेत्रों के लिए आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध कराना उसका मुख्य कार्य क्षेत्र है । इन मंत्रालयों के अधीन कई तरह की संस्थाएँ काम करती हैं । उदाहरण के लिए, सूचना और प्रसारण मंत्रालय के अधीन निम्नलिखित संस्थाएँ हैं- आकाशवाणी, दूरदर्शन, प्रेस सूचना कार्यालय, फिल्मस डिवीजन, विज्ञापन तथा दृश्य प्रचार निदेशालय, प्रकाशन विभाग, संगीत तथा नाटक विभाग, क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय, फोटो डिवीजन, सन्दर्भ एवं अनुसंधान निदेशालय, रजिस्ट्रार न्यूज़ पेपर ऑफ इंडिया, फिल्मों से सम्बन्धित बोर्ड, फिल्म उत्सवों का निदेशालय, भारतीय फिल्मों का राष्ट्रीय संग्रहालय।

आकाशवाणी और दूरदर्शन को प्रसार भारती स्वायत्त संस्था के अधीन कर दिया गया है। इनके अलावा सार्वजनिक क्षेत्र में कई निगमों की स्थापना की गई है जो सिनेमा और टेलीविजन के कार्यक्रमों के लिए प्रोत्साहित करने का काम करते हैं । इनमें पुणे की फिल्म और टेलीविजन की संस्था, चिल्ड्रेन सोसाइटी, राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम, भारतीय चलचित्र निर्यात निगम जैसी कई संस्थाएँ हैं । जनसंचार में शिक्षा प्रदान करने के लिए भारतीय जनसंचार संस्थान भी स्थापित किया गया था । आज जनसंचार शिक्षा के क्षेत्र का एक ऐसा महत्वपूर्ण अंग बन गया है जिनसे संबंधित पाठ्यक्रम लगभग सभी विश्वविद्यालयों में उपलब्ध हैं और जिनमें प्रमाणपत्र. डिप्लोमा, डिग्री और शोध उपाधियाँ भी प्रदान की जाती हैं ।

3.7 जनसंचार माध्यमों की भूमिका और उपयोग

जनसंचार माध्यमों पर विचार करते हुए पहला सवाल यही पैदा होता है कि समाज में इनकी भूमिका क्या है और किस जरूरत ने उनके अस्तित्व को संभव बनाया है । यही तक कहा जा रहा है कि मौजूदा समाजों के बारे में कोई अध्ययन तब तक पूर्ण नहीं माना जा सकता जब तक कि हम इस बात का भी अध्ययन न करें कि उनमें जनसंचार माध्यमों की भूमिका क्या है । जनसंचार माध्यमों की मौजूदगी इतनी साफ है कि उसके बारे में अलग से उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है लेकिन यह भी सही है कि इनकी मौजूदगी इनकी जरूरत को ही नहीं बल्कि इनकी शक्ति को भी जाहिर करती है । जनमाध्यमों की जरूरत के बारे में शायद ही कोई विवाद हो लेकिन उनकी शक्ति आरंभ से ही विवाद का विषय रही है । जिस हद तक इन माध्यमों की भूमिका का विस्तार हुआ है उतना ही उनकी शक्ति का भी विस्तार हुआ है । लेकिन शक्ति को पहचानने के मामले में भी कई तरह के मत प्रचलित हैं । जनसंचार माध्यमों के द्वारा तीन तरह के सामाजिक कार्यो को पूरा किया जाता रहा है । यह सूचनाओं के आदान-प्रदान का एक सशक्त माध्यम है, साथ ही यह मनोरंजन का भी अत्यंत महत्वपूर्ण जरिया है । जनसंचार माध्यमों को जन का माध्यम कहा ही इसलिए जाता है कि वह जनता के व्यापक हिस्सों तक अपनी पहुँच रखता है । समाज के निम्न और निम्न मध्यवर्ग के लिए तो रेडियो और सिनेमा अब भी सूचना और मनोरंजन के सबसे सस्ते और सहज सुलभ माध्यम हैं। लेकिन इसके साथ ही हम यह भी जानते हैं कि जनसंचार के माध्यम औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा में भी भूमिका निभाते हैं । लेकिन इन तीन तरह के कार्य क्षेत्र के बावजूद कहा जा सकता है कि जनसंचार माध्यम उन बुनियादी चीजों में नहीं आता जिन्हें मनुष्य के अस्तित्व के लिए जरूरी कहा जा सकता हो । मनुष्य बिना टेलीविजन के, बिना सिनेमा के और बिना अखबार के जी सकता है लेकिन वह बिना रोटी और कपड़े के नहीं जी सकता । सर्दी-गर्मी से बचने के लिए उसे आवास की भी जरूरत होती है । यह एक तथ्य है कि दुनिया में अब भी करोड़ों लोग ऐसे हैं जिनके पास आवास योग्य घर नहीं हैं और लाखों लाख घर ऐसे हैं जिनमें टेलीविजन और रेडियो नहीं है । आबादी के इस हिस्से में से ज्यादातर निरक्षर हैं और शायद उनमें से बहुतों को जीवन में कभी सिनेमाघर में बैठकर फिल्म देखने का अवसर ही नहीं मिला होगा । यह तथ्य खुद इस बात का प्रमाण है कि जनसंचार के आधुनिक माध्यम की कितनी ही बड़ी भूमिका क्यों न हो लेकिन वे अब भी सभी मनुष्यों तक अपनी पहुँच नहीं बना सके हैं और लाखों लोग उनसे साक्षात्कार किए बगैर ही इस दुनिया से चले जाते हैं । लेकिन दुनिया के एक

हिस्से के लिए जनसंचार माध्यमों की अनुपलब्धता इस बात का भी प्रमाण है कि उन्हें इनसे वंचित रखा गया है । आधुनिक समाज के संसाधनों तक उनकी पहुँच नहीं बन पाई है । यह उनके 'पिछड़ेपन' का प्रतीक है । लेकिन ऐसा पिछड़ापन जिसके लिए वे कतई जिम्मेदार नहीं हैं और जो इस बात का द्योतक है कि दुनिया में अब भी कितनी विषमता व्याप्त है । जनसंचार माध्यमों की जरूरत को स्वीकार करने के बावजूद हमें यह मानना पड़ेगा कि दुनिया दो भागों में बंटी हुई है । एक वह दुनिया जिनमें लोगों के पास ये आधुनिक संसाधन मौजूद हैं । लेकिन जिनके पास ये संसाधन मौजूद नहीं हैं, वे सूचना, शिक्षा और मनोरंजन के आधुनिक रूपों से भी वंचित कर दिए गए हैं । यह एक ठोस सच्चाई है जिसके आधार पर ही जनसंचार माध्यमों के वैचारिक परिप्रेक्ष्य पर विचार किया जा सकता है ।

जनसंचार माध्यमों पर विचार करते हुए हमारा ध्यान उनसे जुड़ी संस्थाओं और उनकी गतिविधियों की तरफ भी जाता है । इन माध्यमों का महत्व यह है कि यह करोड़ों लोगों को सूचना, शिक्षा और मनोरंजन प्रदान करने का माध्यम है । लेकिन अपने इन लक्ष्यों को पूरा करने के लिए यह जरूरी है कि ऐसी संस्थाओं का निर्माण हो जो इनको पूरा करने के माध्यम बने । जनसंचार के माध्यमों के विस्तार के साथ-साथ इनसे जुड़ी संस्थाओं का गठन भी होता रहा है । लेकिन यह विस्तार इनकी जरूरतों को पूरा करने के लिए ही नहीं हुआ बल्कि इस बात से भी हुआ कि इनकी जरूरत ने यह संभावना भी पैदा की कि यह एक व्यवसाय का रूप ले । आरंभ से ही इन माध्यमों का व्यवसाय दो क्षेत्रों से संबंधित रहा है । एक तो वह प्रौद्योगिकी जो संदेश के निर्माण, पुनर्निर्माण, संप्रेषण और ग्रहण से संबंधित है और दूसरा उस संदेश से संबंधित है जिसका संप्रेषण किया जाना है । पहले को टेक्नोलॉजी की भाषा में हार्डवेयर और दूसरे को सॉफ्टवेयर कहते हैं । यदि इन दोनों का व्यवसाय संभव हो सकता है तो यह भी जाहिर है कि इस क्षेत्र में पूँजी के प्रवेश और उसका वर्चस्व भी स्वाभाविक है । आखिर जनसंचार माध्यमों का विकास जिस पूँजीवादी समाज में हो रहा है उसके आर्थिक नियमों से स्वतंत्र होकर इनका विकास कैसे संभव है । इसलिए यह स्वाभाविक था कि जनसंचार माध्यमों का भी एक उद्योग की तरह विकास हो । जनसंचार माध्यमों से संबंधित संस्थानों के गठन को भी इस दृष्टि से देखना जरूरी हो जाता है । इस क्षेत्र में उत्पादित होने वाली वस्तुओं के उत्पादन और वितरण को लेकर प्रतिद्वंद्विता और उन पर एकाधिकार कायम करने की कोशिशें अब इतनी साफ नजर आ रही हैं कि उनको नजरअंदाज करना मुमकिन ही नहीं है । एक सामान्य दर्शक के लिए यह महत्त्वपूर्ण हो सकता है कि टीवी पर अच्छे कार्यक्रम आए लेकिन उस व्यक्ति के लिए जिसका संबंध उससे मुनाफा कमाने के रूप में ही है वह इस बात पर विचार नहीं करेगा कि माध्यम से क्या संप्रेषित हो रहा है बल्कि किससे ज्यादा लाभ कमाया जा सकता है । यह बुनियादी अंतर्विरोध है जिसे जनसंचार माध्यमों पर विचार करते हुए ध्यान में रखना जरूरी है ।इन पक्षों पर विचार आगे की इकाईयों में किया गया है ।

3.8 सारांश

'जनसंचार माध्यमों की परम्परा और इतिहास' नामक इस इकाई में आपने जनसंचार माध्यमों के विकास के इतिहास और परम्परा की जानकारी प्राप्त की है । मनुष्य ने जब दूसरे मनुष्य से संवाद आरंभ किया और इसके लिए शारीरिक मुद्राओं और ध्वनियों का इस्तेमाल

किया तो वह संचार की तरफ ही बढ़ रहा था । शारीरिक मुद्राओं को धीरे-धीरे उसने ऐसे सर्वमान्य संकेतों की तरह इस्तेमाल करना आरंभ किया जो सामूहिक संचार का माध्यम बन सकें । इसी तरह खास तरह की ध्वनियों का खास तरह के विचार और भाव की अभिव्यक्ति के लिए इस्तेमाल ने ही भाषा की उत्पत्ति का रास्ता प्रशस्त किया । भाषा जनसंचार का सबसे पहला सुव्यवस्थित माध्यम है । इसके बाद जनसंचार के नये-नये माध्यम सभ्यता के विकास के साथ विकसित होते गये । आधुनिक पूँजीवादी युग में विकसित प्रौद्योगिकी ने जनसंचार के ऐसे साधन विकसित किये जिनकी कल्पना इससे पहले के किसी भी मनुष्य ने नहीं की होगी ।

आधुनिक जनसंचार माध्यमों में मुद्रण तकनीकी पर आधारित समाचार पत्र, पत्रिकाएँ और मुद्रित पुस्तकें हैं, तो विद्युतीय और इलेक्ट्रॉनिक प्रौद्योगिकी पर आधारित रेडियो, तार, टेलीफोन, सिनेमा, टेलीविजन और अब कंप्यूटर और इंटरनेट हैं । इन माध्यमों ने आज दुनिया को किसी भी तरह का संदेश निर्मित करने, संप्रेषित करने, उनका भंडारण करने और उनकी प्रतिलिपि बनाने का काम न केवल आसान कर दिया है बल्कि उनकी गति, संख्या और प्रभाव को भी कई गुना बढ़ा दिया है । जनसंचार आज एक बहुत बड़ा उद्योग और व्यवसाय बन गया है । वह राजनीति, समाजनीति और संस्कृति को प्रभावित करने में सबसे आगे है । जनसंचार माध्यम द्वारा आप सिर्फ दूसरों से संपर्क और संवाद ही स्थापित नहीं करते वरन् सूचना, शिक्षा, मनोरंजन और जनमत निर्माण में भी इसकी अहम भूमिका है । इस इकाई में इन सभी पहलुओं का अध्ययन आप कर चुके हैं ।

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जनसंचार माध्यमों से आप क्या समझते हैं और मानव सभ्यता के विकास में जनसंचार माध्यमों के योगदान पर प्रकाश डालिए ।
2. भारत में जनसंचार माध्यमों के विकास की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए ।
3. जनसंचार माध्यमों के विकास में भारत के योगदान का उल्लेख कीजिए ।
4. भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जनसंचार माध्यमों से संबंधित स्थापित सरकारी तंत्र का विवरण प्रस्तुत कीजिए ।
5. जनसंचार माध्यमों के आधुनिक विकास का सोदाहरण महत्त्व बताइए ।

3.10 सन्दर्भ ग्रंथ

1. देवेंद्र इस्सर, इंद्रप्रस्थ; जनमाध्यम संप्रेषण और विकास, प्रकाशन, के-7 1, कृष्णनगर, दिल्ली 110051, संस्करण, 1995
2. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार के सामाजिक संदर्भ, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 29ए, पाकेट-डी, दीप एन्कलेव, अशोक विहार, दिल्ली- 110052
3. बृजमोहन गुप्त; जनसंचार माध्यम विविध आयाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
4. संपादक सीन मेकब्राइड मेनी वाइसेज वन वर्ल्ड, यूनेस्को का प्रतिवेदन, कोगन पेज लि, लंदन ,संस्करण, 1998
5. रेमंड विलियम्स; जनसंचार माध्यमों का वर्ग चरित्र, ग्रंथ शिल्पी, नयी दिल्ली.

6. जान आर. बटिनर मास कम्युनिकेशन, एलिन एंड बेकन, लंदन
7. जान दी थाम्पसन; आइडियोलोजी एंड मोडर्न कल्चर : पोलिटी प्रेस, यूके.
8. जवरीमल्ल पारख, जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, 2000, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली-1 10091

इकाई - 4 जनसंचार के विभिन्न माध्यम

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 जनसंचार के विभिन्न माध्यम समाचार पत्र
4.3 रेडियो
4.4 टेलीविजन
4.5 सिनेमा
4.6 इंटरनेट
4.7 सारांश
4.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
4.9 सन्दर्भ ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' नामक पाठ्यक्रम के पहले खंड की यह चौथी इकाई है । इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप

- जनसंचार के विभिन्न माध्यमों- समाचारपत्र, रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा और इंटरनेट- की अद्यतन जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- रेडियो और टेलीविजन लेखन की प्रक्रिया और तत्त्वों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे; और
- जनसंचार माध्यमों की उपयोगिता को समझ सकेंगे ।

4.1 प्रस्तावना

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' नामक इस पाठ्यक्रम के पहले खंड में आप जनसंचार की अवधारणा और स्वरूप, जनसंचार माध्यमों के लक्ष्य, कार्य और प्रक्रिया तथा जनसंचार माध्यमों की परंपरा और इतिहास का अध्ययन कर चुके हैं । इस इकाई में आप जनसंचार के प्रमुख माध्यमों का परिचय प्राप्त करेंगे । इन माध्यमों में प्रमुख हैं. समाचारपत्र, रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा और इंटरनेट । इन माध्यमों के बारे में बताते हुए इनके लेखन की भी जानकारी प्रदान की जाएगी । संचार गतिशील प्रक्रिया है । यह हमारे जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है । किसी भी सामाजिक व्यवस्था में संचार की मुख्य क्रियाओं को सूचना तथा जानकारी, वाद-विवाद, परिचर्चा, शिक्षा, सांस्कृतिक पदोन्नति, मनोरंजन तथा एकीकरण द्वारा पहचाना जा सकता है ।

मुख्य रूप से संचार तीन प्रकार के होते हैं -

1. अन्तर्वैयक्तिक संचार, 2. समूह संचार, तथा 3. जनसंचार ।

अंतर्वैयक्तिक संचार आमने - सामने होता है तथा दुतरफा प्रक्रिया है । समूह संचार में वाद-विवाद, विमर्श, सेमीनार इत्यादि माध्यम आते है तथा जनसंचार एक संगठित संचार है । इसमें किसी यंत्र द्वारा संचार को बढाया जाता है । जनसंचार के संदेश व्यक्तिगत नहीं होते । ये संदेश मिश्रित जन समूह को एक साथ संप्रेषित किये जाते हैं । जन संचार में फिडबैक व शोर जैसे तत्त्वों की अहम भूमिका है । सभी जन-माध्यम विभिन्न रूपों में समाज के लिए कार्य करते हैं । यह देश के संपूर्ण विकास में एक निश्चित भूमिका अदा करते हैं । जनसंचार का उपयोग सामयिक तथा महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को प्रसारित करने के लिए किया जाता है जिसका आरे दैनिक जीवन के लिए महत्त्व हो । यह माध्यम घटना का मूल्यांकन उचित परिप्रेक्ष्य में रखकर ही हमें देता है । मीडिया पैतृक समाज की सांस्कृतिक परंपरा को सुदृढ़, रूपांतरित तथा प्रतिस्थापित करने का काम करता है । इतना ही नहीं मीडिया के द्वारा जन प्रस्थापन व प्रोपेगन्ड़ा, मनोरंजन तथा व्यापार आदि का कार्य भी किया जाता है ।

जनसंचार माध्यम हमारे चारों ओर है । वास्तव में हम जनसंचार के सेटेलाइट युग में जी रहे हैं । आज की बढ़ती जनसंख्या और मानसिक तनाव की संभावनाओं में करोड़ों लोगों के बीच संचार जरूरी हो गया है । स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भारत में मीडिया सुविधाओं का पर्याप्त विस्तार हुआ, जिसमें समाचारपत्र (प्रेस), रेडियो टेलीविजन तथा फिल्में मुख्य है । लेकिन इन सात सालों में जनसंचार की प्रौद्योगिकी व्यवसाय और उपलब्धता में गुणात्मक और मात्रात्मक बदलाव हुआ है । हम आज जनसंचार के ऐसे युग में जी रहे हैं, जिसकी कल्पना आज से पाँच दशक पहले करना भी मुश्किल थी । जनसंचार माध्यमों के विविध रूपों का संक्षिप्त परिचय इस इकाई में देने का प्रयास हम करेंगे ।

4.2 जनसंचार के विभिन्न माध्यम : समाचारपत्र

मानव समाज के सभी मिले-जुले वर्गो तक बडे पैमाने पर, चाहे वे पास हो या दूर; कुछ विचार, भाव सूचनाएँ, या जानकारी संप्रेषित किये जाते है । ये विचार, भाव, सूचनाएँ, जानकारी, अचार' के क्षेत्र में 'सार्थक संदेश' माने जाते हैं । इनके संप्रेषण के लिए, कुछ साधनों या उपकरणों का प्रयोग किया जाता है । ये साधन / उपकरण 'माध्यम' कहलाते हैं । इस प्रकार जहाँ संचार में सार्थक संदेशों' का महत्त्व है, वही संचार-साधनों अथवा माध्यमों का भी विशेष महत्त्व है । उनके अभाव में संचार- प्रक्रिया असंभव है । 'माध्यम' कोई भी हो सकता है । शर्त एक ही है कि वह आपसी समझदारी के उद्देश्य की पूर्ति करता हो । भाषा पहला विकसित माध्यम है, जिसने संचार को व्यवस्थित रूप प्रदान किया । वास्तव में देखा जाए तो संचार की प्रक्रिया उतनी ही प्राचीन है, जितना मानव सभ्यता का इतिहास । जनसंचार के प्राप्त आधुनिक माध्यमों का संक्षिप्त परिचय आप इकाई तीन में प्राप्त कर चुके होंगे ।

जनसंचार के माध्यमों में मुद्रण-माध्यम अन्य आधुनिक जन-माध्यमों की अपेक्षा सबसे अधिक पुराना है । मुद्रण के अन्तर्गत समाचारपत्र, पत्रिकाएँ, जर्नल, पुस्तकें इत्यादि आते हैं । ये लिखित माध्यम आज भी अन्य आधुनिक जनसंचार माध्यमों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीयता रखते है । इनकी प्रमाणिकता में जनता इसलिए भी भरोसा रखती है, क्योंकि रेडियो तथा

टेलीविजन संचार-माध्यमों का व्यवसायीकरण समाचार पत्रों की तुलना में अधिक हुआ है । रेडियो और टेलीविजन का उपयोग भी सूचना और शिक्षा का प्रसारण करने के लिए किया जाता है । लेकिन मुद्रण की तुलना में इन माध्यमों पर मनोरंजन के तत्त्व ज्यादा हावी है । मुद्रण माध्यम सामान्य जन को आसानी से उपलब्ध है और शिक्षा और सूचना के लिए इसका उपयोग ज्यादा बेहतर ढंग से हो रहा है ।

विश्व के प्राय: सभी विकसित तथा विकासशील देशों में लगभग प्रत्येक पढ़ा-लिखा व्यक्ति दैनिक समाचार पत्र पढ़ता ई; यहाँ तक कि ऐसा व्यक्ति भी जिसने कायदे से कभी कोई पूरी किताब भी नहीं पढ़ी हो वह भी । एक समाचार पत्र का पहला और मुख्य कार्य है समाचारपत्रों का मुद्रण । एक समाचारपत्र का कार्य इतना ही नही है कि वह तीव्र गति से समाचार मुद्रित कर लोगों तक पहुँचाए । इससे भी आगे समाचार पत्र का काम है जिस समाज में यह प्रसारित होता है, उस समाज की परिवर्तनशीलता की विश्वसनीय ढंग से पूरी तस्वीर सामने लाना । इसलिए आज बिना समाचारपत्र के हम किसी आधुनिक समाज या शहर की ककना कर ही नहीं सकते ।

समाचारपत्रों की पूर्वपीठिका - जैसे-जैसे शहरों का विकास हुआ और यूरोप में। व्यापार का फैलाव हुआ लोगों को आवश्यकता अनुभव होने लगी कि सुदूर स्थानों पर क्या हो रहा है, इसकी जानकारी उन्हें मिलती रहे । लेकिन जो मुद्रक थे, वे कभी-कभी जाने वाले यात्रियों के माध्यम से समाचार सूचनाएँ भिजवाते थे और अपने ग्राहकों को 'समाचार चौपन्ने'(News Pamphlets) देते थे । ये 'समाचार चौपन्ने' अनियतिकालीन थे और कभी कभी ही पहुँचते थे । सन् 1622 में लंदन में एक दर्जन मुद्रक थे, जिन्होंने नियमित रूप से पत्रों के आदान-प्रदान का सिलसिला शुरू किया और इस प्रकार वे साप्ताहिक समाचारपत्र निकालने में सफल हुए । धीरे-धीरे स्थितियाँ दैनिक समाचारपत्र निकालने के उपयुक्त होने लगी और इस तरह 1702 ई. में लंदन का पहला दैनिक समाचारपत्र अस्तित्व में आया ।

18वी शताब्दी में मुद्रण तथा डाक व्यवस्था की स्थिति में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। ये दोनों ही चीजें समाचारपत्र के निर्माण और वितरण में सहायक बने । समाचारपत्र प्रकाशन धीरे-धीरे आजीविका का साधन भी बनने लगा । इन दिनों तक आते-आते यूरोप व अमेरिका में समाचारपत्र जीवन का एक अभिन्न अंग बन चुका था । राजनीति और अर्थनीति पर उसके प्रभाव दिखायी देने लगे थे । समाचारपत्र में जनता के विभिन्न हिस्सों की माँगों के मंच बनने लगे । इसने शासकों में भय का संचार किया ।

शासकों ने समाचारपत्र पर कड़ी निगरानी शुरू कर दी । शासन जिन तथ्यों को छिपाना चाहता था और चाहता था कि समाचारपत्र पत्रकार न छापें, उसने उन निष्पक्ष और स्वतंत्र समाचारपत्रों को पक्षपातपूर्ण नजरों से देखना शुरू कर दिया । सत्ताधीशों के एजेन्टों ने संपादकों को खुले आम घूस देना या लालच देना शुरू कर दिया । जो संपादक इस लालच में नही फँसे या जिन संपादकों ने जी - हुजूरी नहीं की उनको तंग किया गया । अधिकांश देशों में कोई समाचारपत्र बिना लाईसेंस के नहीं निकाला जा सकता था । यहाँ तक कि जो सरकारें तानाशाह नहीं थी, वह भी इस विचार की थी कि केवल कुछ शिक्षित लोगों को ही सार्वजनिक गतिविधियों

से वास्ता रखना चाहिए । सरकार ने, विशेष रूप से इंग्लैंड में, समाचारपत्र की एक-एक प्रति पर भारी टैक्स लगाकर उसके प्रसार को सीमित किया गया । 1815 ई. में The Time of London जैसे अखबार की मात्र 5000 प्रतियाँ प्रतिदिन निकलनी थी, क्योंकि भारी टैक्स के कारण इसका विक्रय मूल्य 7 डॉलर डीलर था । इसमें से 4 डॉलर टैक्स के थे ।

लगभग 19वीं शताब्दी के मध्य में समाचारपत्रों की स्थिति में सुधार आया । प्रेस के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता ने जोर पकड़ना शुरू किया । परिणामत: उन पर नियंत्रण में ढील दी गयी । प्रेस से टैक्स हटा लिए गए । समाचार पत्र कार्यालयों में समाचार टेलीग्राफ और फिर टेलीफोन के जरिये बड़ी तीव्र गति से पहुँचने लगे । छपाई भी कहीं अधिक तीव्र गति से होने लगी और रेल मार्ग से समाचार पत्र सुदूर कस्बों तथा गाँवों तक पहुँचने लगे । विकसित मशीनों से जंगल काटकर भारी मात्रा में अच्छा और सस्ता कागज तैयार होने लगा । इंग्लैण्ड और अमेरिका में समाचारपत्रों को अच्छे विज्ञापन भी मिलने लगे । इन सब कारणों से इस कालखण्ड में समाचार पत्र पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सस्ते हो गए तथा भारी संख्या में निकलने लगे ।

समाचार कार्यालयों में आने वाले लम्बे-लम्बे समाचारों का पुनर्लेखन कर, उन्हें सरल, आदर्श, सुगठित गद्य में और छोटे रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा । बड़े शीर्षक दिये जाने लगे। समाचारपत्रों ने अब रपटों, तथा व्यक्तिगत साक्षात्कारों को भी जगह देना शुरू कर दिया । उनका मूल्य कम कर दिया गया ताकि -गरीब लोग भी खरीद कर पढ़ सकें । अब समाचारपत्रों को पढ़्ने वालों की संख्या तेजी से बढ़ने लगी ।

समाचारपत्र का उद्देश्य

समाचारपत्रों के उद्देश्यों और कर्तव्यों को अधिक स्पष्ट करने के लिए डॉ. अर्जुन तिवारी ने निम्नलिखित कार्य बताये हे -

1. प्रतिदिन नवीनतम और जन रुचि की घटनाओं को तथ्यात्मक और सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करना।
2. विभिन्न तरह के विचारों को बिना किसी पूर्वाग्रह के जगह देना ।
3. अग्रलेखों, समाचार समीक्षाओं, स्तम्भों और विशेष लेखों द्वारा जनता के अधिकारों और अपेक्षाओं को समुचित महत्त्व के साथ प्रकाशित करना ।
4. समाजोपयोगी और स्वस्थ मनोरंजन उपलब्ध कराना ।
5. राष्ट्र और समाज के समग्र विकास को प्रोत्साहित करना ।
6. सभी नागरिकों के हितों को प्रोत्साहित करना और उनकी सुरक्षा संबंधी उपायों को सुनिश्चित करने के लिए सरकारों और प्रशासन को प्रेरित करना ।
7. उन सभी प्रवृत्तियों की निष्पक्ष ढंग से आलोचना करना जो जनविरोधी हो ।

आजादी से पूर्व समाचारपत्रों का उद्देश्य लोगों में स्वाधीनता की भावना भरना, नारी और पिछड़े वर्गो के आर्थिक और सामाजिक उत्थान के लिए आवाज उठाना । भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देना, स्वदेशी को अपनाना क्षेत्रीयता को कम करना था, लेकिन आजादी के बाद समाचारपत्रों के उद्देश्यों में बदलाव आया । समाचारपत्रों का उद्देश्य अब जन-जागृति में सहायक बनना नहीं रह गया है । समाचारपत्रों पर बड़े व्यापारिक घराने हावी हैं और वे अपने लाभ-लोभ

के लिए समाचारपत्रों का इस्तेमाल करते हैं । यही कारण है कि उन' पर जनहितकारी विचारों का नहीं बल्कि धनहितकारी विचारों का प्रभुत्व दिखायी देता है ।

समाचारपत्रों का स्वामित्व

साधारण शब्दों में स्वामित्व का अर्थ है मालिकाना हक । स्वामित्व के बल पर उद्यमी अपने संस्थान में सफल और लाभकारी संचालन के लिए उसके पास उपलब्ध श्रम और संसाधनों के अनुसार योजनाएँ तैयार करता

समाचारपत्रों के स्वामित्व का स्वरूप लोकहितकारी तथा संपादकीय स्वतंत्रता का निर्धारक होना चाहिए हालांकि अधिकांश मामलों में ऐसा नहीं होता । यहाँ स्वामित्व के विभिन्न रूपों का परिचय दिया गया है ।

(क) **एकल स्वामित्व (Sole Proprietorship) -** एकल स्वामित्व में समाचारपत्र का मालिक, संपादक तथा प्रबंधक एक ही होता है । समाचारपत्र की सभी गतिविधियों का संचालन स्वयं मालिक ही करता है । इस प्रकार का स्वामित्व छोटे और साप्ताहिक समाचारपत्रों में दिखाई देता है जो कस्बों और छोटे शहरों से प्रकाशित होते हैं ।

(ख) **साझेदारी (Partnership) -** अधिक पूँजी की आवश्यकता साझेदारी वाले स्वामित्व की ओर अग्रसर करती है । लेकिन ऐसे समाचारपत्र भी अपना व्यवसाय और प्रसार क्षेत्र बहुत ज्यादा व्यापक नहीं बना सकते । हालांकि इस तरह की साझेदारी के कई लाभ भी हैं । जैसे समाचारपत्र प्रकाशन की जिम्मेदारी बँट जाती है, तथा विभिन्न योग्यताओं और वित्तीय साधनों के लोग अपनी योग्यता और धन को मिलाकर इस व्यापार में सफल हो सकते हैं । लेकिन इस प्रणाली से साझेदारी के बीच समन्वय के अभाव के परिणामों को तथा ऋण सम्बन्धी जिम्मेदारी को हर साझेदार को भुगतना पड़ता है और व्यापार में अस्थिरता बने रहने की सम्भावना होती है ।

(ग) **मिश्रित पूँजी कम्पनी (Joint Stock Companies) :-** भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा के अनुसार इन कम्पनियों का पंजीकरण किया जाता है । जिसके लिए रजिस्ट्रार ऑफ कम्पनी' के पास आवेदन किया जाता है । कम्पनी दो प्रकार की होती है-प्राइवेट लिमिटेड और पब्लिक लिमिटेड । प्राइवेट कम्पनी के सदस्य कम से कम दो और अधिक से अधिक 50 हो सकते है, जबकि पब्लिक लिमिटैड कम्पनी में कम से कम सात सदस्य होना अनिवार्य है । सुदृढ़ वित्तीय स्थिति औ विस्तार की संभावनाएँ अधिक होती है । जिम्मेदारियाँ भी सामूहिक होने का लाभ समाचारपत्र को मिलता है लेकिन ऐसी कंपनियाँ लाभोन्मुखी ज्यादा होती है और समाचारपत्र को जनोन्मुखी बनाने में प्राय: इनकी रुचि नहीं होती ।

(घ) **ट्रस्ट (Trust) :-** कुछ समाचारपत्रों का प्रकाशन लाभ के मूल उद्देश्यों की बजाए किसी विशेष उद्देश्य के प्रसार की दृष्टि से किया जाता है । इसके लिए कुछ लोग ट्रस्ट की स्थापना कर समाचारपत्र निकालते हैं । ये विशेष उद्देश्य जरूरी नहीं कि जनहितकारी भी हो । सामान्यत: राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संगठनों द्वारा प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाएँ ट्रस्टों के द्वारा निकाली जाती हैं ।

4.3 रेडियो

रेडियो आज भी संचार का सबसे तीव्र गति का माध्यम है । रेडियो द्वारा प्रसारित सूचना या समाचार व्यापक जन समुदाय तक पहुँच सकते हैं । सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि रेडियो संचार का आज भी सबसे सस्ता माध्यम है । जहाँ समाचारपत्र की बात दस्तावेज के रूप में सामने आती है वही रेडियो-पत्रकारिता सुने हुए सत्य के रूप में आम जनता की धरोहर होती है ।

रेडियो मीडिया का एक सशक्त माध्यम है । टेलीविजन के आगमन और कृत्रिम उपग्रह के माध्यम से पूरी दुनिया के साथ जुड़ जाने के बाद ऐसा लगने लगा था कि रेडियो का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा । लोग रेडियो सुनना छोड़ देंगे, परन्तु ऐसा नहीं हुआ । अपने समस्त ग्लैमर के बावजूद टेलीविजन, रेडियो के प्रभाव को कम नहीं कर सका । रेडियो की सर्वसुलभता, व्यापकता, लचीलेपन, तत्परता और कम कीमत में उपलब्धता ने इसे आज जन-जन तक का माध्यम बना दिया है । जहाँ बिजली नहीं, सड़क नहीं, संचार के आधुनिक साधन मौजूद नहीं वहाँ भी रेडियो मौजूद है । रेडियो की दुनिया आवाज की दुनिया है । रेडियो एक यंत्र है, एक आवाज है, ज्ञान और मनोरंजन का साधन है, जिसमें विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम हैं। ये सारे कार्यक्रम रेडियो स्टेशन से प्रसारित किए जाते हैं । एक रेडियो लेखक या पत्रकार को इस संगठन के बारे में सम्पूर्ण जानकारी होनी चाहिए ।

रेडियो के लेखकीय उपकरण

शब्द, ध्वनि, संगीत और मौन रेडियो-लेमन के प्रमुख उपकरण हैं । लेखक रेडियो-आलेख तैयार करता है । टेलीविजन में चेहरे के हाव-भाव, अंग-संचालन और संवादों के जरिए दर्शकों तक संदेश पहुँचाया जाता है । समाचारपत्र, पत्रिकाओं और अन्य मुद्रित माध्यमों में छपे हुए शब्द सामने होते हैं; परन्तु रेडियो में बोले हुए शब्द होते हैं, ध्वनियाँ होती हैं और संगीत होता है ।

रेडियो के लिए तैयार आलेख, उद्घोषक, पात्र या कम्पेयर पढ़ता है और उसके बोले हुए शब्द (Word) को श्रोता अपने रेडियो सेट पर सुनते हैं । रेडियो ध्वनि (Sound Effect) का माध्यम है । रेडियो में ध्वनि का उपयोग जिस रूप में होता है उसे ध्वनि-प्रभाव के नाम से जाना जाता है । रेडियो में ध्वनि प्रभावों के जरिए परिवेश-निर्माण का कार्य किया जाता है । तलवार की खनखनाहट से युद्ध का, चिड़ियों की चहचहाहट से सुबह का, मशीन के शोर से कारखाने का, ट्रैफिक के शोरगुल से रास्ते का आभास पैदा किया जाता है । रेडियो नाटक, फीचर, डॉक्यूमेंट्री, डॉक्युड्रामा जैसे कार्यक्रमों के लिए आलेख तैयार करने के लिए ध्वनि-प्रभावों के प्रयोग की जानकारी अवश्य होनी चाहिए ।

रेडियो-कार्यक्रमों में संगीत (Music) की अहम् भूमिका होती है । संगीत के बिना रेडियो फीका, बेजान और स्वादहीन हो जाएगा । संगीत नहीं तो रेडियो नहीं । संगीत ने ही रेडियो सीलोन को कई दशकों तक लोकप्रिय बनाया । फिर भारत में उसकी तर्ज पर 'विविध भारती'

कार्यक्रम आरम्भ किया गया । रेडियो माध्यम आज के एक सर्वाधिक लोकप्रिय एफ.एम. में भी संगीत की ही प्रधानता है ।

संगीत का उपयोग कई तरह से किया जाता है । किसी कार्यक्रम की आरंभिक ट्यून के रूप में नाटकों में वातावरण निर्माण के लिए, पात्रों की मनःस्थिति बताने के लिए भी संगीत का उपयोगी किया जाता है । जैसे हवामहल की शुरुआती ट्यून बजती है, वैसे ही सब लोग हवामहल कार्यक्रम सुनने के लिए रेडियो के पास चले आते हैं । इस प्रकार संगीत कई बार कार्यक्रम की पहचान बन जाता है । रेडियो-नाटकों में संगीत के जरिए खुशी और गम का माहौल प्रसारित किया जाता है । इसके अलावा, संगीत से पर्दा उठाने-गिराने का काम भी लिया जाता है । रेडियो पर प्रसारित होने वाले नाटकों में संगीत के माध्यम से ही दृश्य-परिवर्तन की सूचना दी जाती है ।

ध्वनि का माध्यम होने के बावजूद रेडियो में 'मौन' का भी विशेष महत्त्व है । रेडियो पर 'चुप्पी', 'मौन' या 'पॉज' को भी सुना जा सकता है और महसूस किया जा सकता है । रेडियो-नाटक में, 'मौन' का सार्थक और सर्जनात्मक प्रयोग किया जाता है । 'स्तब्धता', आक्रोश', 'भय' आदि को 'मौन' के जरिए प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त भाषा, रोचकता, संक्षिप्तता, नवीनता और श्रोता समुदाय की जानकारी आदि को रेडियो के लेखकीय उपकरण में सम्मिलित किया जा सकता है ।

रेडियो की प्रस्तुति तकनीक

लेखक को रेडियो की प्रस्तुति तकनीक से परिचित होना जरूरी है । इस तकनीक की संक्षिप्त जानकारी यही दी जा रही है ।

1. **फेड आउट -** जब रेडियो से कोई आवाज धीरे-धीरे कम होती हुई लुप्त हो जाती है तो उसे 'फेड आउट' के नाम से जाना जाता है । यह श्रोता की मानसिकता और मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर किया जाता है ।
2. **फेड इन -** रेडियो पर कार्यक्रम पेश करने वाला प्रस्तुतकर्ता धीरे-धीरे गीत की आवाज तेज करता है जिससे श्रोता के कान पर किसी प्रकार का प्रहार नहीं होता; बल्कि ऐसा लगता है कि पृष्ठभूमिका से गीत उभरता हुआ सामने आया है । फेड इन की इस तकनीक का रेडियो-नाटक में बढ़िया उपयोग किया जा सकता है ।
3. **क्रॉस फेड -** फेड आउट और फेड इन के बीच जब प्रस्तुतकर्ता कुछ बोलता नहीं और एक गीत फेड आउट करते हुए दूसरा गीत फेड इन कर देता है तो इस प्रक्रिया को 'क्रॉस फेड' कहा जाता है ।
4. **सुपर इम्पोजिंग-** शब्द, संगीत, ध्वनि का सार्थक उपयोग ही सुपर इम्पोजिंग है । इसमें शब्द के ऊपर संगीत, या संगीत के ऊपर शब्द या विभिन्न ध्वनियों के बीच उभरता स्वर सुनाया जाता है । संगीत का टोन कम कर प्रस्तुतकर्ता बीच में अपनी बात कहने लगता है। पृष्ठभूमि में संगीत भी चलता है और संवाद भी । रेडियो-नाटक, डॉक्यूमेंट्री, आँखों देखा हाल आदि में इस तकनीक का अक्सर प्रयोग किया जाता है । उदाहरण के

लिए, किसी मेले का दृश्यांकन करना है । आप मेले का दृश्यांकन ध्वनि प्रभावों के माध्यम से करेंगे । यदि कुछ संवाद भी डालना चाहते हैं तो मेले की ध्वनि को पृष्ठभूमि में ले जाना होगा अर्थात् उसकी आवाज कम करनी होगी और संवाद को उभारना होगा। यह सुपर इम्पोजिंग का उदाहरण हुआ ।

रेडियो आलेख-लेखन

रेडियो के लिए लेखन और पत्र-पत्रिकाओं के लिए लेखन में मूलभूत अन्तर यह है कि रेडियो में जो कुछ बोला जाता है उसे लिखा जाता है । वह सुनने के लिए लिखा जाता है । पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों का लेखन पढ़ने के लिए किया जाता है । सुनने और पढ़ने के कारण दोनों माध्यमों की भाषा-शैली बदल जाती है । रेडियो में जो कुछ भी बोला जाता है, उसे लिख लिया जाता है ताकि गलत शब्दों का प्रयोग न हो । रेडियो आलेख लिखते समय निम्नलिखित बिन्दुओं का ध्यान रखना जरूरी है -

1. **विषय का चुनाव-योजनाबद्ध ढंग से :** रेडियो के लिए आलेख-लेखन योजनाबद्ध ढंग से करना चाहिए । यानी की विषय का उद्देश्य, जिन श्रोताओं के लिए लेखन किया जाना है, उसकी जानकारी और कार्यक्रम के प्रभाव की पूर्व-कल्पना स्पष्ट होनी चाहिए ।
2. **विषय का चुनाव तथा विषय-वस्तु :** पर पकड़ जिस विषय पर लिखना चाहते हैं उसकी प्रामाणिक जानकारी होनी चाहिए । तथ्यात्मक जानकारी के लिए पुस्तकें पद सकते हैं, लोगों की राय पूछ सकते हैं, घटना-स्थल पर जाकर घटना की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं । शोध और खोज से विषय को प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करने में मदद मिलती है । विषय और विधा का चुनाव श्रोताओं की रुचि और पसन्द पर आधारित होना चाहिए । श्रोता क्या पसन्द करते हैं, क्या नापसन्द करते हैं, इसकी सूचना वे पत्रों के -माध्यम से रेडियो स्टेशन पर भेजते रहते हैं । कार्यक्रम तो श्रोता से प्रभावित होने ही चाहिए, पर कार्यक्रम ऐसा बनाना चाहिए कि श्रोता कार्यक्रम के अनुरूप अपने को ढालने के लिए प्रेरित हो सके ।
3. **आलेख आकार-** समय की सीमा में : रेडियो पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रम समय की सीमा में बँधे होते हैं । इसलिए आपका आलेख भी 'समयबद्ध' होना चाहिए । रेडियो के कार्यक्रमों की अवधि लंबी नही होनी चाहिए । इससे श्रोता में ऊब पैदा हो जाती है । यानी आपके आलेख का प्रस्तुतीकरण समय पाँच मिनट से लेकर आधे घण्टे तक का हो सकता है ।
4. **आलेख गठन-** संक्षिप्त एवं प्रवाहमय: रेडियो का आलेख जितना संक्षिप्त हो उतना ही अच्छा है । संक्षिप्त आलेख में एक कसावट होती है, जो श्रोता को बाँध कर रखती है । श्रोता एक ही कार्यक्रम देर तक नहीं सुन सकता । वह तरह-तरह के कार्यक्रमों को पसंद करता है । उसे एक ऐसे बाग की सैर करानी होती है जहाँ किस्म-किस्म के फूल अलग-अलग सुगंध बिखेरते हैं । आलेख में प्रवाह लाने के लिए उसमें भाषा की सहजता के साथ-साथ विषय का नयापन और प्रस्तुति का नया अन्दाज भी होना चाहिए । इसके

अलावा, आलेख में मनोरंजन का पुट भी डालने का प्रयत्न करना चाहिए ताकि श्रोता की रुचि बनी रहे ।

रेडियो समाचार लेखन

जहाँ अखबारों में पढ़कर बात जानी जाती है वहाँ रेडियो में शब्दों को सुनकर बात ग्रहण की जाती है। इसलिए यह प्रयास रहता है कि रेडियो समाचार सारगर्भित और चुनिन्दा हों और इन्हें प्रसारित करते समय शब्दों और ध्वनि के समुचित संयोजन से मूल तत्त्व और भाव श्रोताओं तक पहुँचाया जाएँ

- रेडियो के समाचार लेखन में निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है
- समाचार की भाषा सरल और आम बोलचाल की हो ।
- वाक्य संक्षिप्त हों अर्थात् छोटे-छोटे हों ।
- एक वाक्य में एक ही प्रकार की सूचना निहित हो ।
- सूचनाओं को सरल, सबल और स्पष्ट वाक्यों में लिखा जाना चाहिए ।
- समाचार लेखन के समय केवल उन्हीं शब्दों का प्रयोग करना चाहिए, जो उस जगह आवश्यक हों। जितने कम शब्दों का प्रयोग किया जाए, उतना अच्छा है ।
- समाचार में पूरे नाम का ही प्रयोग करना चाहिए । नाम और पदों को बार-बार लिखने से प्रवाह नष्ट हो जाता है ।
- समाचार प्रामाणिक और विश्वसनीय होने चाहिए तथा क्यों, कब, कैसे और कहाँ की भावना से पूर्ण होने चाहिए ।
- रेडियो समाचार में व्यक्ति का नाम उसकी सार्थकता के अनुसार दिया जाएँ अनेक बार जागरूकता की कमी के कारण जब महाकवि सुमित्रानन्दन पंत को एस.एन. पंत और रविन्द्रनाथ टैगोर को आर.एन. टैगोर कहा जाता है तो सुनने वालों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है तथा बहुत हास्यास्पद जान पड़ता है ।
- रेडियो समाचार में दिनांक, माह या वर्ष का नाम देने की अपेक्षा जहाँ तक हो सके, आज, कल, परसों अथवा सोमवार, मंगलवार आदि दिनों के अनुसार शब्दों का प्रयोग करना चाहिए । हाँ, जहाँ बहुत जरूरी हो वहीं उनका उपयोग जरूर करना चाहिए ।
- रेडियो समाचार की भाषा में मोटी-मोटी गिनती की जगह संक्षिप्त अंकों में बात कही जानी चाहिए। जैसे 2 लाख 49 हजार टन को लगभग अढ़ाई लाख । अंकों को शब्दों में ही लिखना चाहिए । मसलन 532555 का अंक बोलना है तो आलेख में 'पाँच लाख बत्तीस हजार पाँच सौ पचपन' लिखा जाना चाहिए ।
- रेडियो समाचार में कई शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता जैसे- निम्नांकित,उपयुक्त, पूर्वोक्त, क्रमशः, यथा आदि । ऐसे तत्सम शब्दों के प्रयोग से बचें जिनका उच्चारण मुश्किल हो । मसलन, अंततोगत्वा, किंकर्त्तव्यविमूढ, आदि ।
- रेडियो समाचारों का सम्पादन करते समय पूरी तरह जागरूक रहना पड़ता है तथा घटनाक्रम के साथ चलना पड़ता है । सुनी-सुनाई बातों पर समाचार नहीं बन सकता तथा उसे स्रोत, और प्रामाणिकता के लिए विशेष रूप से चौकन्ना रहना पड़ता है ।

- रेडियो समाचार का समय सीमित रहता है तथा उसे सभी प्रमुख रुचि और गतिविधियों को अपने में संजोना पड़ता है । प्राय: 10 मिनट के समाचार बुलेटिन में एक हजार शब्द पढ़े जाते हैं । अत: समय की सीमा में रहते हुए भी महत्त्वपूर्ण समाचारों को देना रेडियो पत्रकारिता का मुख्य दायित्व है ।
- तथ्य की गलती नहीं प्रसारित होनी चाहिए । यदि हो भी जाए तो जहाँ तक संभव हो तुरन्त और नहीं तो बाद के बुलेटिन में सही समाचार प्रसारित कर भूल सुधार किया जाना चाहिए।
- समाचारों का गठन उसकी महत्ता का परिचय देता है । समाचार के प्रारम्भ में प्रमुख समाचार सुनाए जाते हैं । इन्हें 'इंट्रो' कहा जाता है ।
- समाचारपत्र में समाचार का मुख्य विवरण, विस्तृत विवरण और अन्य विवरण दिए जाते हैं, जबकि वही समाचार रेडियो संवाददाता सीमित शब्दों में केवल मुख्य विवरण तथा शेष विवरण के रूप में प्रस्तुत करता है ।

समाचार वाचक का कार्य सतत साधना और अभ्यास का कार्य है । देवकीनन्दन पाण्डेय, शिव सागर मिश्र और अशोक वाजपेयी आदि की हिन्दी समाचार वाचन शैली का उल्लेख इस संदर्भ में किया जा सकता है । इन समाचार वाचकों की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि ये शब्दों के लिए स्वाभाविक उतार-चढ़ाव का प्रयोग करते समय समाचार की प्रकृति का भी ध्यान रखते हैं । शुद्ध उच्चारण तो आवश्यक है ही । इस प्रकार हम देखते हैं कि रेडियो पत्रकारिता जीवन से जुड़ी हुई कार्यप्रणाली है तथा इसका संयोजन और सम्पादन आम जनता के हित में विश्वसनीयता के साथ किया जाता है ।

रेडियो फीचर

'रेडियो फीचर' दो शब्दों के योग से बना है । इसमें विशेषण रूप में प्रयुक्त शब्द है- 'रेडियो' और मूल या विशेष्य शब्द है- 'फीचर' । 'रेडियो' शब्द इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के रूप में संचार का एक ऐसा प्राविधिक स्वरूप है, जो शब्द से अधिक उसकी 'ध्वनि' प्रतिष्ठा के कारण श्रोता की ग्राह्यता पाता है; क्योंकि ध्वनि के माध्यम से रेडियो अपेक्षित 'प्रभाव' उत्पन्न करने के साथ वैद्युतिक यंत्र व्यवस्था के परिणामस्वरूप उच्चारित शब्द की ध्वनि की सुस्पष्टता और वर्णनात्मक पद्धति पर श्रोताओं तक कथन का अभिप्राय संप्रेषित करता है ।

'फीचर' एक ऐसा आलेख होता है जिसमें सत्य और तथ्य का उद्घाटन सप्रमाण और रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है । उसमें सत्य और तथ्य के निरूपण में कल्पनाशीलता और प्रत्युत्पन्नमति से पुष्ट सृजनात्मक कौशल निहित रहता है ।

रेडियो फीचर में ध्वनि का सर्वाधिक महत्त्व है । रेडियो फीचर में विद्यमान कथातत्व में तथ्य, सत्य प्रामाणिकता, रोचकता, नाटकीयता और मनोरंजकता-ये छ: तत्व निहित रहते हैं। रेडियो फीचर लेखन के लिए विषयवस्तु चयन, प्रस्तुति, सम्पादन और संयोजन, रेडियोपरक भाषा, रेडियो फीचर का अभिलेखन, स्पष्टता, सरलता, संक्षिप्तता, प्रसांगानुकूलता, तथ्यपरकता, विश्वसनीयता, रोचकता, प्रभावपूर्णता और प्राविधिक कौशल आदि कई बिन्दुओं पर ध्यान रखना चाहिए ।

रेडियो वार्ता: वार्ता शब्द अंग्रेजी के 'टाक' (Talk) का अनुवाद है । लेकिन रेडियो में वार्ता एक-पक्षीय होती है अर्थात् एक ही व्यक्ति अपने विचार रखता है । दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष श्रोता है, जो उसे सुनता है।

डॉ. सिद्धनाथ कुमार के शब्दों में, "रेडियो के आविष्कार ने जिन अनेक नए साहित्य-रूपों को जन्म दिया है, उन्हीं में से एक रेडियो वार्ता है । रेडियो वार्ता के लिए आवश्यक है कि वार्ताकार दो-चार वाक्यों के बाद कोई ऐसा वाक्य बोले, जिससे श्रोताओं से संवाद की स्थिति बन जाएँ" रेडियो वार्ताएँ अलग-अलग वर्ग व परिस्थितियों के अनुसार तैयार की जाती है । रेडियो वार्ता को चार भागों में बाँटा जा सकता है - (1) संस्मरणात्मक वार्ता, (2) व्यंग्य वार्ता, (3) तथ्यपरक वार्ता, और (4) आत्मक्कथात्मक वार्ता ।

रेडियो वार्ता लेखन

डॉ. सिद्धनाथ कुमार ने रेडियो वार्ता लेखन में कुछ तथ्यों पर ध्यान देने की ओर संकेत किया है:

- रेडियो वार्ता को तथ्यों से बोझिल नहीं बनाना चाहिए।
- तथ्यों का समावेश आवश्यकतानुसार हो और तथ्य पूर्णत: सही हो ।
- तर्कों और तथ्यों को थोड़ा अन्तराल देकर बदला जाएँ
- रेडियो वार्ता में अधिक समय तक एक ही वार्ता का बाहुल्य नहीं होना चाहिए, अन्यथा श्रोता तनाव का अनुभव करने लगेगा ।
- दृष्टांतों, व्यवहार की चर्चा, उदाहरण का प्रयोग रेडियो वार्ता को प्रभावशाली बनाता है । अत: वार्ताकार को आलेख में इनका प्रयोग करना चाहिए।
- रेडियो वार्ता को रोचक, सुग्राही और लोकप्रिय बनाने के लिए उसमें अपेक्षित काट-छांट की जानी चाहिए ।
- वार्ता में 'कथा तत्त्व' का समावेश करना चाहिए । विशेष रूप से संस्मरण-प्रधान वार्ता में इसकी विशेष आवश्यकता होती है ।
- वार्ताकार का वाचन शुद्ध होना चाहिए । वार्ता का पूर्वाभ्यास कर लिया जाए तो अच्छा रहता है ।
- विषय और व्याकरण दोनों का ध्यान वार्ताकार को रखना चाहिए ।
- वार्ता में आकड़ों का उपयोग कम से कम होना चाहिए ।
- वार्ता रोचक और बोधगम्य होनी चाहिए । वार्ता का विषय मानवीय दृष्टिकोण से सम्बद्ध हो तो अच्छा रहेगा ।
- रेडियो वार्ता में विचारों को क्रमबद्ध होना चाहिए, बिखराव, टूटन आदि न हो ।

रेडियो परिचर्चा

रेडियो परिचर्चा रेडियो माध्यम की विशेष विधा है । यह कार्यक्रम अधिकारी द्वारा विशेष प्रयोजन के निमित्त किसी विषय पर आयोजित की जाती है । रेडियो वार्ता और परिचर्चा में अन्तर उतना ही है कि रेडियो वार्ता में व्यक्ति या विषय विशेषज्ञ अपनी बात अपने ढंग से प्रस्तुत करता है और उसके कथन-प्रवाह में कोई अन्य व्यक्ति हस्तक्षेप नहीं करता है; परन्तु

परिचर्चा में कम से कम दो या उससे अधिक व्यक्ति होते हैं लेकिन परिचर्चा में इतने लोग शामिल नहीं होने चाहिए कि परिचर्चा सुगठित रूप न ले सके । परिचर्चा का उद्देश्य किसी विषय पर विभिन्न दृष्टिकोणों को सामने लाना होता है । परिचर्चा में भाग लेने वाले विषय के विशेषज्ञ होते हैं ।

इनमें से एक अथवा अन्य विशेषज्ञ परिचर्चा संचालक होता है । इस संचालक का कार्य पूरी परिचर्चा को निश्चित दायरे में रखते हुए सीमित समय की अवधि में परिचर्चा को आगे और अन्तिम चरण तक पहुँचाना होता है।

रेडियो उद्घोषणा

रेडियो उद्घोषणा का अर्थ सार्वजनिक जानकारी देना है । रेडियो उद्घोषणा का मुख्य उद्देश्य लाखों-करोड़ों श्रोताओं तक अपनी बात पहुँचाना है । कुछ उद्घोषणाएँ रेडियो-कार्यक्रमों के बारे में ही की जाती हैं । उद्घोषणा का आलेख अवश्य तैयार किया जाना चाहिए । उद्घोषक को कार्यक्रम प्रसारण से पूर्व क्यूशीट लेनी चाहिए ताकि वह कार्यक्रम के बारे में जान सके ।

4.4 टेलीविजन

टेलीविजन ग्रीक भाषा के शब्द टेली (दूरी) और लेटिन भाषा में विजन (मैं देखता हूँ) को मिलाकर बना है । हजारों मील की दूरी पर क्या घटित हो रहा है उसे हम पर्दे पर देख सकते हैं । घटनाओं और समाचारों के अलावा अनेक प्रकार के कार्यक्रम टेलीविजन पर आते हैं नाटक, धारावाहिक, समाचार, वृत-चित्र, संगीत-कार्यक्रम, फिल्में, भेंट वार्ताएँ, प्रश्नोत्तरी और सूचना शिक्षा और मनोरंजन से जुड़े विविध कार्यक्रम, टेलीविजन कैमरा, ट्रांसमीटर और कमरे में रखे टेलीविजन यंत्र की सहायता से संप्रेषित दृश्य कार्यक्रम स्टुडियो या घटनास्थल से हम तक पहुँचते हैं । जिन यंत्रों, उपकरणों और उपस्करों की सहायता से कार्यक्रम-संप्रेषण सम्भव होता है, उसे हार्डवेयर कहते हैं ।

जो दृश्यात्मक संदेश कार्यक्रम संप्रेषित किए जाते हैं उन्हें सॉफ्टवेयर की संज्ञा दी जाती है। लेखक, निर्देशक, संगीतकार, सम्पादक और विभिन्न तकनीशियनों के सहयोग से कार्यक्रमों की प्रस्तुति होती है । दृश्य माध्यम होने के बावजूद टेलीविजन में शब्दों और ध्वनियों और लेखन का महत्त्व कम नहीं है और कुछ नहीं तो कार्यक्रम की अवधारणा, उद्घोषणा, कैमरामैन और निर्देशक के लिए निर्देश ये सब लिपिबद्ध किये ही जाते हैं । समाचार, वृत्त-चित्र, धारावाहिक, नाटक आदि के लिए आलेख अनिवार्य होते हैं । छायांकन और संपादन के दौरान पटकथा में आवश्यकतानुसार परिवर्तन होते रहते हैं, इसलिए इस माध्यम में लेखन समूह लेखन का रूप ग्रहण कर लेता है ।

टेलीविजन लेखन

टेलीविजन लेखन एक चुनौती-भरा कार्य है । साधारण लेखन से अलग इस लेखन का मुख्य गुण उसकी बिम्बधर्मिता है । लेखक को हर स्थिति में दृश्यों और बिम्बों में सोचना पड़ता है । दूसरे, यह क्योंकि एक टीमवर्क है, इसलिए इस लेखन की सफलता कई प्रतिभाओं और यंत्रों पर निर्भर करती है । इस दृष्टि से पहले हमें निर्माता, निर्देशक, निर्माण-सहायक, तल-प्रबन्धक, प्रतिभा अथवा अभिनेता, कैमरामैन, दृश्यबन्ध अभिकल्पकार, लेखाचित्र, कला पर्यवेक्षक एवं

कलाकार, रूपसज्जाकार तथा अन्य कर्मियों (यथा-वेश पर्यवेक्षक (costume designer), सामग्री पर्यवेक्षक, लाइब्रेरियन, चित्रकार आदि) की सुविधाओं-आवश्यकताओं आदि को ध्यान में रखना पड़ता है । एक टेलीविजन लेखक को इन सब के कर्तव्यों आदि का थोड़ा-बहुत ज्ञान होना चाहिए ।

इसके बाद मूल बात आती है टेलीविजन की भाषा की । हर माध्यम की अपनी भाषा होती है। फिल्म और टेलीविजन की अपनी भाषा है । यहाँ शब्द भी बोलते हैं, रंग भी, चेहरे भी, मौन भी और संगीत भी । टेलीविजन में रेडियो की तात्कालिकता और कैमरे की गत्यात्मकता होती है । यह घटनाओं को ज्यों का त्यों प्रसारित करता है । इसका कैमरा पृथ्वी, समुद्र तथा आकाश के नए-नए पक्षों को उद्घाटित कर सकता है । तात्कालिकता का गुण इसके रिकॉर्ड किए हुए कार्यक्रमों में भी बना रहता है । बेशक उनका सीधे-प्रसारण नहीं होता । जिन कार्यक्रमों का कार्य-स्थन (ऑन द स्पॉट) से ही प्रसारण होता है, वही रिकार्डिग और संपादन का काम साथ-साथ होता है । वह रचनात्मकता पर अधिक ध्यान नहीं दे पाता, उसे कम समय में संप्रेषणीयता और प्रभावोत्मकता दोनों का ध्यान रखना पड़ता है । इसकी पूर्व कल्पना भले ही कर ली जाए, लेकिन ठीक उस परिकल्पना के अनुरूप वह संरचना, वे शॉट्स बने यह जरूरी नहीं है । ऐसी स्थिति में कार्यक्रम की गुणवत्ता बहुत कुछ कैमरामैन और संपादक की क्षमताओं पर निर्भर करती है ।

टीवी. सम्पादन की विधि प्राय: फिल्म-व्याकरण के अनुरूप होती है । उदाहरण के लिए; वह मिश्रण / डिजॉल्व आदि का प्रयोग कर सकता है, जो स्थान और काल के परिवर्तन को दर्शाने के लिए उपयुक्त है । इसी तरह वह फिल्म निर्माताओं की तरह शॉट्स को क्रमबद्ध रूप में लगाने के लिए शॉट्स को मिड शॉट्स में या फिर क्लोज अप में बदल सकता है । जैसी उसकी आवश्यकता हो । कहने का अर्थ यह है कि फिल्म की भाषा का कोई ऐसा लक्षण नहीं, जिसे वह न अपना सकता हो । यही तक कि कुछ निश्चित ट्रिक्स वाले प्रभाव भी अपनाए जा सकते हैं, जैसे-बिम्बों का अध्यारोपण (super imposition of images) पहले से तैयार किया जा सकता है ।

सारांशत: टेलीविजन या फिल्म-लेखन के लिए लेखक और उसके निर्देशक को तीन पक्षों का ध्यान रखना आवश्यक है (1) चलचित्र नाट्य-रचना या दृश्य-रचना (सिनेरिओ); (2) उस चलचित्र नाट्य के अनुसार लोगों से अभिनय कराकर उनकी तस्वीरें लेना (शूटिंग); (3) इन खण्ड-खण्ड रूपों में ली गई तस्वीरों को चलचित्र-नाट्य के अनुसार पंक्तिबद्ध सहेजना या संपादन करना (एडिटिंग) ।

टेलीविजन पर समाचार लेखन से तात्पर्य केवल यह नहीं है कि घटना, बयान, भाषण अथवा विज्ञप्ति को समाचार के रूप में लिख दिया जाएँ वरन् टीवी के लिए लिखे जाने वाले समाचार को एक कला के रूप में रचा जाता है । टेलीविजन के समाचार की रचना करते समय उसकी दृश्यात्मकता पर विशेष ध्यान दिया जाता है, साथ ही समाचार के साथ दर्शाए जाने वाले दृश्यों, आरेखों (ग्रास), रेखाचित्रों और मानचित्रों आदि का संयोजन भी किया जाता है । अत: भाषा-शैली के अधिकार के साथ-साथ टेलीविजन समाचार-लेखन को समाचार के साथ लगने वाली

दृश्य-सामग्री और समय का विशेष ध्यान रखना होता है । तथ्यों की क्रमबद्धता का ध्यान रखना होता है । चित्र और शब्द दोनों का जितना अधिक समन्वय होगा, समाचार उतना ही अधिक प्रभावपूर्ण होगा । कभी-कभी दृश्य अथवा चित्र उपलब्ध नहीं होते, ऐसे में शब्दों से ही वह कार्य करना पड़ता है, जो दृश्यों या चित्रों द्वारा संभव होता । इसलिए टीवी समाचार लेखक को सरल, सुबोध, चित्रात्मक, रोचक और सर्वग्राह्य शब्दावली का प्रयोग करना होता है । इसलिए एक समाचार वाचक को बहुत ही सिद्धहस्त और जागरूक होना चाहिए । उसके अन्दर मुख्य रूप से निम्नांकित गुण आवश्यक हैं -

(1) भाषा का सही और गहन ज्ञान ।

(2) उच्चारण की शुद्धता ।

(3) प्रभावपूर्ण वाणी ।

(4) आत्मविश्वास ।

(5) त्वरित बुद्धि ।

(6) सौम्य-सुदर्शन चेहरा ।

टेलीविजन-आलेख

टेलीविजन-आलेख के लिए पटकथा, संवाद व शूटिंग आलेख -इन तीन बिन्दुओं पर ध्यान देना होता है । पटकथा को अंग्रेजी में स्कीन प्ले कहा जाता है । कहानी पढ़ने या सुनने के लिए होती है, लेकिन जैसे ही इस कहानी को परदे पर लाने की कोशिश की जाती है तब इसमें दृश्यात्मक तत्त्वों को वास्तविक रूप से दिखाने के लिए पटकथा की जरूरत हो जाती है । पटकथा को लिखते समय कैमरे की जरूरत को भी ध्यान में रखना पड़ता है । कैमरे को किन-किन दृश्यों को दिखाना है, प्रथम स्तर पर पटकथा में तय किया जाता है ।

पटकथा के बाद संवाद की स्थिति होती है । निर्माता अच्छे संवादों के लिए पटकथा के अनुसार अनुभवी संवाद लेखक से सम्पर्क करके अनुबन्धित कर सकता है । संवाद लेखन के लिए भी जरूरी नहीं है कि वह एक ही हो । 'मुगले आजम' फिल्म में उर्दू के चार मशहूर लेखकों को संवाद लिखने के लिए अनुबन्धित किया गया था । आलेख का अन्तिम स्वरूप शूटिंग आलेख होता है । जब निर्देशक कैमरे के विभिन्न कोणों के हिसाब से आलेख तैयार करता है और पूरी पटकथा की उसी तरह से शूटिंग करता है । टेलीविजन आलेख के कई प्रकार हैं । उद्घोषणा, कम्पियरिंग, नाटक व वृत्तचित्र आदि इन सभी के लिए अलग-अलग 'प्रकार के आलेख होते हैं ।

टेलीविजन-लेखन एक चुनौतीपूर्ण कार्य है जिसमें निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक होता हैं

1. स्पष्ट परिकल्पना - यहाँ लेखक के लिए, जो टीवी. के लिए लेखन करना चाहते हैं, यह जरूरी है कि विषय की जानकारी के साथ-साथ टी.वी. माध्यम की तकनीक की भी अच्छी तरह से जानकारी हो; क्योंकि मूल रूप से उसी की परिकल्पना (विजन) पर पूरे कार्यक्रम को तैयार किया जाना है ।

2. ध्वनि-प्रभाव - लेखक को दृश्य के साथ-साथ ध्वनि के प्रभावों को भी समझने और उसके उपयोग के संकेत को प्रस्तुत करने की योग्यता होनी चाहिए; क्योंकि टी.वी. के कार्यक्रमों को सिर्फ कैमरे के माध्यम से ही प्रस्तुत नहीं किया जा सकता; बल्कि उसके साथ ध्वनि और संगीत के जरूरी उपयोग की जानकारी भी देनी पड़ती है और यह संकेत पटकथा के समय लेखक को बताना जरूरी होता है ।

3. धारावाहिक का क्लाइमेक्स - क्लाइमेक्स इतना आवश्यक तत्त्व है कि नाटक, उपन्यास, नृत्य किसी भी विधा के लिए आवश्यक होता है । आलेख की सफलता इस बात में है कि दर्शकों की रुचि पूरे कार्यक्रम के दौरान बनी रहे और कार्यक्रम के अंत में उसे यह अनुभव हो कि उसने कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण देखा और पाया है ।

4. सीन सिक्वेंस (दृश्य क्रम) - खासकर टी.वी. नाटक या फिल्म के लिए सीन और सिक्वेंस (scene sequence) अर्थात् दृश्य और अंक का संकेत भी देना होता है । नाटकों के लेखन में इसे अंक एवं दृश्य के रूप में देखा जाता है । शूटिंग के लिहाज से तमाम दृश्यों को सिक्वेंस के अनुसार रिकॉर्ड कर लिया जाता है । टीवी. को क्लोज-अप का माध्यम कहा गया है जिसका तात्पर्य यह है कि कैमरे का मूवमेंट मुख्यतया चेहरे या सब्जेक्ट के क्लोज-अप के इर्द-गिर्द ही संचालित होता है । इसलिए टी.वी. लेखन के लिए इस बात पर भी ध्यान देना जरूरी हो जाता है कि ज्यादा से ज्यादा कलाकार एक साथ मंच पर कैमरे के सामने नजर नहीं आएँ और दूसरा यह कि उनके संवाद क्लोज-अप को ध्यान में रखकर लिखे जाने चाहिए ।

5. शब्द चयन - लेखक को टेलीविजन आलेख-लेखन के समय ध्वनि और संवाद दोनों के प्रभाव का मूल्यांकन आवश्यक है । कभी-कभी तो ध्वनि प्रभाव या संगीत कैमरे के प्रभाव के साथ मिलकर संवादों की जरूरत ही खत्म कर देते हैं ।

6. भाषा और शैली - प्रत्येक माध्यम की अपनी एक भाषा होती है । इसी तरह प्रत्येक विधा की भाषा का रूप भी अलग-अलग होता है । भाषा का निर्धारण दर्शकों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए । टेलीविजन के दर्शकों में विविधता बहुत अधिक है, इसलिए भाषा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि सभी प्रकार के दर्शकों के लिए संप्रेषणीय और सहज हो । इस बात का ध्यान रखते हुए कार्यक्रम की प्रकृति को भी नहीं भूलना चाहिए ।

टेलीविजन समाचार लेखन

टेलीविजन समाचार लेखन का क्षेत्र बहुत व्यापक है । यह टीम वर्क है जिसमें । कैमरामेन संवाददाता, प्रस्तुतकर्ता, तकनीकी कर्मचारी, संपादक आदि शामिल हैं । इन सबके मध्य समन्वय आवश्यक है । वरिष्ठ जनसंचारकर्मी सुभाष सेतिया ने समाचार की संरचना में पाँच तत्त्वों को अनिवार्य माना है । ये हैं - 1. घटनाक्रम, 2. चित्रात्मकता, 3. संक्षिप्तता, 4 संभाषणशीलता 5. रिपोर्ट, और 6. पूरक कॉपी । सम्पादक आवश्यक सभी स्रोतों से प्राप्त सामग्री से ही बुलेटिन विशेष की आवश्यकता, समाचार के महत्त्व तथा टेलीविज़न की नीति व दिशा-निर्देशों को ध्यान में रखते हुए समाचारों का चयन और संपादन करता है ।

टेलीविजन-फीचर लेखन

एक अच्छे टेलीविजन फीचर के लिए यह जरूरी है कि वह रुचिकर हो । रुचिकर तभी हो सकता है जब विषयवस्तु, छायांकन, संगीत, संवाद और सम्पादन में चुस्ती हो और गतिशीलता हो । श्रेष्ठ छायांकन अपने आपमें एक महान कला हो सकती है । यदि इस छायांकन को संवाद और संगीत का सहयोग मिले तो यह सोने में सुगन्ध का काम करता है । टेलीविजन फीचर की मूल्यवत्ता की पहचान न केवल उसकी विषयवस्तु के आधार पर बल्कि फीचर के उद्देश्य और टेलीविजन पर उसकी प्रस्तुति के आधार पर की जाती है । प्रस्तुति के अंतर्गत दृश्यात्मकता, संपादन, प्रस्तोता (एंकर) का स्तर, संवाद और वाइस ओवर में कही गई बातें, पार्श्व संगीत, कैमरे का रचनात्मक उपयोग आदि आते हैं । लेकिन ये अलग-अलग नहीं बल्कि अपनी समग्रता में प्रभावित करना चाहिए ।

टेलीविजन धारावाहिक लेखन

दूरदर्शन के विभिन्न चैनलों रो नियमित रूप से प्रसारित धारावाहिकों ने टीवी. को लोकप्रिय बना दिया है । 7 जुलाई, 1964 को दूरदर्शन पर 'हमलोग' धारावाहिक का प्रसारण आरंभ हुआ था तब से लेकर आज तक विभिन्न चैनलों पर विभिन्न तरह के कथात्मक धारावाहिकों का प्रसारण सफलतापूर्वक हो रहा है । कथात्मक धारावाहिकों के साथ-साथ अब अलग-अलग तरह के 'रियल्टी शो' भी लोकप्रिय हो रहे हैं । इन धारावाहिकों ने आम बच्चों व दर्शकों में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है ।

धारावाहिक लेखन की अपनी अलग प्रक्रिया होती है जिनमें- 1 विचार (आईडिया), 2. विषय-वस्तु, 3. कांसेप्ट नॉट, 4. कथासार, 5. स्थान, 6. पात्र, चरित्र-चित्रण,7. दृश्य संयोजन, 8. दृश्यानुसार कथा, और 9. संवाद आदि मौलिक तत्व सम्मिलित होते हैं । लेकिन धारावाहिकों में भी दृश्य-श्रव्य का सफल और रचनात्मक संयोजन सफलता की कुंजी है ।

टेलीविजन उद्घोषणा लेखन

'उद्घोषणा' का अर्थ किसी संदेश को सीधे बोलकर लोगों तक पहुँचना है । घोषणा का मूल अर्थ जोर से या ऊँचे स्वर में बोलना होता है । ऊँचे स्वर का स्थान अब लाउडस्पीकर, पब्लिक एड्रेस सिस्टम, रेडियो, टी. वी. आदि ने ले लिया है । आज उद्घोषणाओं का उपयोग अनेक स्थानों पर होता है । इनमें कुछ मुख्य हैं-रिक्शे, टैक्सी आदि से ऐलान, मुनादी, रेलवे स्टेशन, हवाई अड्डे, बड़े अस्पताल, बड़े दफ्तर, व्यस्त चौराहे, आकाशवाणी, दूरदर्शन, चुनाव के समय, नाटकों, सभाओं में, पुरस्कार-वितरण समारोहों आदि में ।

रेडियो और टेलीविजन दोनों पर ही उद्घोषणा का मुख्य लक्ष्य लाखों-करोड़ों श्रोताओं-दर्शकों को कार्यक्रम सम्बन्धी या अन्य प्रकार की सूचनाएँ देना है । टेलीविजन पर उद्घोषणाओं के अनेक रूप देखने को मिलते हैं । किसी प्रसारण-सभा के प्रारम्भ में उस सभा में प्रसारित किए जाने वाले सारे कार्यक्रमों की सूचनापरक उद्घोषणाएँ करना, बीच में कहीं-कहीं किसी कार्यक्रम के प्रारम्भ में उसको पेश करने की उद्घोषणा, कहीं समय बच रहा हो तो आगे या अगले दिन प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों के बारे में श्रोताओं, दर्शकों को आकृष्ट करने वाली उद्घोषणाएँ तथा प्रसारण-सभा के अन्त में दर्शकों से विदा लेने वाली उद्घोषणा । समाचार

वाचन में भी उद्घोषणाएँ शामिल होती हैं, भेंटवार्ताओं के पहले या बाद में, विज्ञापनों के रूप में भी उद्घोषणाएँ की जाती हैं ।

4.5 सिनेमा

सिनेमा मीडिया का एक सशक्त माध्यम है । सिनेमा के लिए लेखन करना और सिनेमा पत्रकार बनना दरअसल एक चुकता भरा काम है । फिल्मों के लिए पटकथा लेखन, संवाद और गति लेखन, लेखन के मुख्य क्षेत्र हैं । पटकथा लेखन फीचर फिल्म और वृत्तचित्र दोनों के लिए किया जाता है । फिल्म लेखन की सैद्धांतिक जानकारी से अच्छा लेखक नहीं बना जा सकता । इसके लिए इस माध्यम की विशिष्टताओं की गहरी समझ होना आवश्यक है । उसे दृश्य में सोचना और दृश्यों की कल्पना को शब्दों में उतारना आना चाहिए । पटकथा लेखन पटकथाकार द्वारा किया जाता है लेकिन उसे निर्देशक और निर्माता की शक्ति और सीमा को भी पहचानना चाहिए । यहाँ हम सिनेमा के मूल तत्त्वों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे ।

कथा विचार - सिनेमा के लिए उसका कोई मूल विचार होना जरूरी है, जिससे जब लेखक निर्माता से मिले तो उसे अपनी कथावस्तु का विचार (आइडिया) कम से कम समय में बता सके; क्योंकि निर्माता के पास इतना समय नहीं होता कि वह हर लेखक की पूरी कहानी सुनता रहे । जब लेखक उसे आइडिया बताते हैं और उसे पसंद आता है तो वह कहानी सुनने में दिलचस्पी दिखाएगा अन्यथा वह कह देगा कि यह आइडिया मेरे कोई काम का नहीं है ।

कथासार - कथासार को हालीवुड की भाषा में 'स्टोरी आउट लाइन' कहा जाता है । कथासार में मुख्यत: कहानी की मुख्य-मुख्य बातें लिखी होती हैं । सिनेमा लेखन के तीन चरण होते हैं- 1. कहानी, 2. पटकथा और 3. संवाद । कथासार पहला चरण होता है । इसी को आधार बनाकर पटकथा लिखी जाती है ।

पटकथा- कहानी को अंतिम रूप दिए जाने के बाद पटकथा लिखी जाती है । इसे 'स्कीन-प्ले' या सिनेरियो भी कहते हैं । पटकथा का अर्थ ही है- दृश्य का क्रम निर्धारण । अशोक चक्रधर पटकथा लेखन को थी-टियर सिस्टम मानते हैं - 1. रिश्तों के मध्य होने वाली संवेदनाओं के आदान-प्रदान की प्रक्रिया का ज्ञान, 2. व्यक्ति मन के अंदर होने वाले अदृश्य द्वंद को पकड़ पाने की क्षमता, 3. संवेदना और अन्तर्द्वन्द्व को समाज के विभिन्न उपादानों के साथ बिजुअलाइज कर सकना । पटकथा लेखन की सफलता इसी में है कि वह कहानी को ऐसे खूबसूरत तरीके से दर्शकों के सामने प्रस्तुत करे कि वह ढाई घण्टे तक दर्शकों को बाँध सके और उनमें उत्सुकता जगाए रखे । पटकथा लिखते हुए लेखक को इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि वह घटनाओं का विकास, पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का चित्रण, परिवेश की घटनाओं और स्थितियों के अनुरूप प्रस्तुति का ध्यान रखना चाहिए । पटकथा लेखन में नवीनता जरूर होनी चाहिए लेकिन नवीनता का अर्थ यह नहीं है कि दर्शक उससे जुड़ न पायें ।

संवाद - पटकथा लेखन और संवाद लेखन अलग-अलग चीजें है । सभी पटकथा लेखक जरूरी नहीं कि अच्छे संवाद लेखक भी हों । इसी तरह सभी संवाद लेखक पटकथा लेखक हों, यह आवश्यक नहीं है । राही मासूम रजा, कमलेश्वर जैसे कुछ लेखक ऐसे रहे हैं, जिन्होंने संवाद-

लेखक के रूप में ख्याति प्राप्त की है । सलीम-जावेद के बारे में यह कहा जाता है कि सलीम स्क्रीन प्ले और जावेद संवादों के विषय-विशेषज्ञ रहे हैं ।

सिनेमा के संगीतकार

फिल्मों में गीतों का उपयोग भारतीय सिनेमा की खास पहचान है । 1931 में 'आलमआरा' के साथ ही फिल्मों में गीतों का सफर शुरू हुआ था जो आज भी जारी है । शैलेंद्र, साहिर लुधियानवी, मजरूह सुल्तानपुरी, शकील बदायूनी, गुलजार, जावेद अख्तर, प्रसून जोशी हिन्दी फिल्मों के लोकप्रिय गीतकार रहे हैं । गीतों में दृश्यात्मकता, संप्रेषणीयता, मधुरता, सहजता और संगीतात्मकता का होना आवश्यक है ।

सिनेमा समीक्षक

सिनेमा समीक्षक के लिए आवश्यक है कि वह कलाकारों और निर्देशकों के चमत्कारिक व्यक्तितत्व से प्रभावित हुए बिना बेबाक समीक्षा लिखे । उसे सिनेमा जगत के बाजार-ट्रेंड पर भी नजर रखनी है। उसे बराबर यह देखते रहना चाहिए कि किस किस्म की फिल्में हिट हो रही हैं और क्यों? कौन कलाकार, फिल्म अभिनेता पसन्द किया जा रहा है और कौन असफल हो रहा है? मौजूदा दौर का दर्शक वर्ग क्या देखना पसन्द कर रहा है और क्यों? सिनेमा समीक्षक के लिए सिनेमा निर्माण प्रक्रिया का ज्ञान जरूरी है । इसके साथ ही उसे फिल्मों के बारे में आलोचनात्मक दृष्टि भी अपनानी चाहिए । उसे यह बताना चाहिए कि किस तरह की फिल्में सामाजिक विकास और स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करती है और कौन-सी नहीं । किन फिल्मों में एक कला के रूप में फिल्म माध्यम का विकास हुआ है ।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सिनेमा लेखन भी एक रचनात्मक कार्य लेकिन आज भी सिनेमा लेखन और टेलीविजन लेखन को विश्वविद्यालयों के जनसंचार पाठ्यक्रमों में विशेष महत्व नहीं दिया गया है ।

4.6 इन्टरनेट

इन्टरनेट सूचना प्रौद्योगिकी (Transformational technology) के अब तक के विकास का सर्वाधिक चमत्कारिक लेकिन लोकतांत्रिक आविष्कार है । इंटरनेट एक शक्तिशाली माध्यम है। इसने सीखने, खेलने सृजन करने, सम्प्रेषण करने और कार्य करने के तौर-तरीकों में मौलिक परिवर्तन पैदा कर दिये ।

भारत में इन्टरनेट का विकास

सन् 2000 तक एशिया में इन्टरनेट का उपयोग करने वालों की संख्या 32 .5 करोड़ के आसपास पहुँच गई । भारत में उस समय लगभग तीस लाख इन्टरनेट 'सब्सकाईबर' थे एवं डेढ़ करोड़ लोग इसका उपयोग कर रहे थे । भारत में सन् 1999 में जिन घरों में कम्प्यूटर थे, उनमें 9 प्रतिशत के पास इन्टरनेट सुविधा थी तथा 37 प्रतिशत ने इस सेवा का लाभ उठाने की इच्छा जताई ।

भारत में संचार क्रांति ने एक लाभकारी व्यवसाय को जन्म दिया । 1995 से पूर्व डिपार्टमेन्ट ऑफ इलेक्ट्रोनिक्स एण्ड रिसर्च नेटवर्क (ERNET) योजना के तहत गैर व्यवसायिक

संस्थाओं को ही इन्टरनेट कनेक्शन उपलब्ध कराया जाता था । लेकिन यह सुविधा 1995 में व्यक्तियों और संस्थाओं के व्यावसायिक उद्देश्य के लिए भी दी जाने लगी ।

भारतीय उद्यमी इस व्यावसायिक अवसर का लाभ उठाने के लिए अग्रसर हुए । पहला 'साइबर कैफे' बंगलौर की ब्रिगेड रोड पर 'कॉफी डे साइबर कैफे' के नाम से खुला । इसका लक्ष्य यह था कि लोग वहाँ काँफी पीने का आनन्द भी उठायें और इन्टरनेट के उपयोग का लाभ भी प्राप्त करें । यही कम्प्यूटर से सम्बन्धित सेवाओं के साथ इन्टरनेट-सेवा भी 60 रू. प्रति घण्टे पर उपलब्ध कराई गई थी ।

बंगलोर के बाद मुम्बई, कलकत्ता, चेन्नई, दिल्ली, हैदराबाद आदि स्थानों पर ऐसे साइबर कैफे शुरू हो गये । केवल हैदराबाद में ही सन् 1999 में 6000 ऐसे कैफे थे । केवल संचालकों द्वारा भारत में केबल टेलीविजन की क्रांति पैदा करने में जिस प्रकार 1990 के दशक में योग दिया गया, उसी प्रकार 'साइबर कैफे' दूरसंचार, इन्टरनेट और कम्प्यूटर क्रांति के द्वारा आम आदमी के करीब कम्प्यूटर और इन्टरनेट क्रांति लाने के लिए प्रयासरत है ।

सन् 1998 में इन्टरनेट सर्विस प्रोविजन (ISP) की नीति भारत में लागू की गई । यह एक मुक्त नीति थी । इसके अन्तर्गत इन्टरनेट सेवाएँ उपलब्ध कराने वाले संस्थानों को अपने ग्राहकों को सेवाएँ देने के लिए अपना नेटवर्क स्थापित करने की अनुमति दी गई । उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय इन्टरनेट नेटवर्क से वी.एस.एन.एल. पर बिना निर्भर रहे स्वयं सम्पर्क स्थापित करने की छूट दी गई । इसके अलावा आई.एस.पी. नीति के अनुसार भारतीय रेलवे, पावर ग्रिड कॉपोरेशन राज्य विद्युत मंडलों और इण्डियन ऑयल और गैस संस्थानों को अपना संचार ढाँचा तैयार करने की इजाजत दी गई । इससे व्यवसाय करने में तेजी आई । सत्यम्, इन्फोसिस, डिशनेट आदि निजी इन्टरनेट सेवाओं ने वी.एस.एन.एल. के एकाधिकार को खत्म करके अपनी सेवाएँ देना शुरू किया ।

इस प्रकार आई.एस.पी. नीति-98 के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के संस्थानों के सहयोग से इन्टरनेट के क्षेत्र में निजी क्षेत्र को प्रवेश की ओर विकास करने की अनुमति मिली ।

इंटरनेट के विविध रूप

इंटरनेट को मुख्यत: टेलीफोन लाइन के जरिये ही उपयोग किया जाता है, लेकिन उन्नत होती सूचना प्रौद्योगिकी ने नए-नए अन्य माध्यमों को भी जन्म दिया है, जिससे इंटरनेट चलाना एक सुगम और आर्थिक रूप में वहनीय हो गया है । इसे निम्नलिखित तरीकों से प्रयोग किया जा सकता है :-

1. **डाटा कार्ड :-** आजकल प्रचलित माध्यमों में डाटा कार्ड एक चलता-फिरता उपकरण है । यह किसी भी स्थान पर, किसी भी जगह कम्प्यूटर में फिट किया जा सकता है और तीव्र गति से नेट चलाने में सक्षम है । यह मोबाइल के सिद्धांत पर कार्य करता है, जिसमें आप देश और विदेश में बात कर सकते हैं । व्यापारी और प्रवास पर रहने वाले लोगों के लिए यह एक अच्छा विकल्प है, जो कहीं भी, किसी भी समय उन्हें विश्व के साथ जुड़े रहने में मदद करता है ।

2. **मोबाइल :-** युवाओं में प्रचलित यह एक अच्छा माध्यम है, जिसे बातचीत के अलावा मोबाइल को इंटरनेट गेटवे के साथ जोड़ दिया जाता है और सूचना-प्रवाह निर्बाध रूप से चलता रहता है । यह माध्यम 'कहीं भी, किसी भी और कभी भी सूचना उपलब्धी का कार्य करता है । यह अत्यंत लोकप्रिय है ।

3. **स्थायी टेलीफोन :** टेलीफोन के जरिए इंटरनेट सबसे लोकप्रिय तरीका है । इसके अंतर्गत भी कई प्रविधियों को अपनाया जाता है ।

(ख) **डाल अप :-** इस प्रणाली में पहले से डली टेलीफोन लाइनों का मुख्य प्रयोग होता है । टेलीफोन के साथ ही यह सुविधा होती है और टेलीफोन सेवा देने वाली कम्पनी के द्वारा दिए गए नम्बर पर डाल करने पर सर्वर से सम्बन्ध जुड़ता है और इन्टरनेट पर आप कार्य कर सकते हैं ।

(ग) **ब्रॉड बैण्ड :-** यह भारत और पूरी दुनिया में इंटरनेट को लगवाने का सबसे लोकप्रिय तथा काफी मात्रा में प्रयोग में लाया जाने वाला साधन है क्योंकि किसी और साधन की तुलना में टेलीफोन लाइन अदर पहुँचाने में ज्यादा सही मानी गई है और इस सेवा की बैंड विड्थ भी काफी है । सूचना क्रांति के इस युग में हम हर एक कोने में टेलीफोन देख रहे हैं और हमारे पास केवल टेलीफोन नेटवर्क है ही जो हमें इंटरनेट सेवा प्रदान कर रहा है । इसी तथ्य के साथ टेलीफोन नेटवर्क साधन की क्रियाशीलता का अंदाजा लगाया जा सकता है । इंटरनेट और टेलीफोन पर बातचीत साथ-साथ चल सकती है । यह आकड़े, आवाज, चित्र आदि को काफी मात्रा में उठा सकते हैं । बडे शहरों में उन्नत टेलीफोन लाइनों से घरों में भी ब्रॉड बैंड चलाना आजकल संभव हो गया है, लेकिन ग्रामीण इलाकों में स्थिति अच्छी नहीं हैं ।

4. **केबल -** आजकल केबल द्वारा इंटरनेट लगवाना धीरे-धीरे लोकप्रिय होता जा रहा है । इसके कई लाभ हैं । सबसे पहले टेलीफोन की कीमत अदा करने की जरूरत नहीं है, यह बड़ा ही प्रभावी है । इस कनेक्शन के द्वारा इंटरनेट की स्पीड 2 एम.बी. प्रति सेकेंड तक है । यह इंटरनेट चलाने में सबसे तेज चलने वाला साधन है । इसे एक समर्पित तथा केबल के कुशल नेटवर्क की जरूरत है, जो कि केवल चैनल तथा इंटरनेट दोनों को ही चला सके । यह साधन अब महानगरीय क्षेत्र जैसे दिल्ली और मुंबई में प्रयोग में लाया जा रहा है । अभी तक छोटे शहरों में यह नहीं पहुँचा है । एक ही केबल से इंटरनेट, टेलीफोन केवल टी.वी., फैक्स आदि सभी काम किये जा सकते हैं ।

5. **विद्युत लाइन :-** यह एक अन्य साधन है इंटरनेट लगवाने का । इसे यूरोपीय देशों में लिया जा रहा है । इसका प्रयोग सफल हो चुका है, परंतु व्यावसायिक विकल्प बनने के लिए अभी लंबा वक्त लगेगा ।

6. **वी सैट (V-SAT) :-** इंटरनेट की अति शक्तिशाली सेवा उपग्रह के माध्यम से मिलती है । एक डिश के द्वारा अंतरिक्ष में स्थापित उपग्रह से सम्बन्ध बनता है और फिर डिश से सर्वर के द्वारा कई कम्प्यूटरों में इसे बाँटा जा सकता है । संस्थाओं के लिए

यह व्यवस्था अत्यन्त उपयोगी और विश्वसनीय है परन्तु इसको लगाना और इसका वार्षिक व्यय काफी है ।

7. **वाईमैक्स (WIMAX) -** 'वायरलेस इंटरोपरेबलिटी फॉर माइक्रोवेव एक्सेस' अर्थात् वाईमैक्स इंटरनेट का सबसे नया रूप है । कस्बा, शहर, एयरपोर्ट, रेलवे स्टेशन, प्रदर्शनी हॉल भी इंटरनेट को बिना तार के उपयोग करने के दायरे में लाए जा सकते हैं, जिसमें उपभोक्ता एक विशेष सीमा के अंदर, तार रहित इंटरनेट चला सकता है । इस तरह आप अगर रोमिंग वाले क्षेत्र में हैं तो आप अपने लेपटॉप पर नेट पर काम कर सकते हैं । इसका एक रूप वाई-फाई भी है जो धीरे-धीरे लोकप्रिय हो रहा है ।

इन्टरनेट के लाभ

इन्टरनेट के चलन ने ई-बिजनेस अर्थात् इलेक्ट्रोनिक्स व्यवसाय (Electronic-Business) को प्रोत्साहन दिया है । इससे ई-मार्केटिंग और ई-कॉमर्स के काम में भारी इजाफा हुआ । ई-मार्केटिंग का तात्पर्य है कि लोगों ने अपने उत्पादों और सेवाओं को बेचने के लिए इन्टरनेट अर्थात् इस इलेक्ट्रोनिक्स माध्यम का सहारा लिया । ई-कॉमर्स का अर्थ है - व्यावसायिक लेन-देन का कार्य इन्टरनेट के द्वारा करना । सन् 1998 में काम्पेक, डेल, आई.बी.एम., इन्टेल और गेटवे जैसे कई संस्थानों ने अपनी मार्केटिंग- व्यूह रचना इन्टरनेट पर केन्द्रित की । खुदरा व्यावसायिक कार्यो का संचालन होने लगा जैसे कि पुस्तक प्रकाशन में । जो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं उन्हें प्रकाशन के बाद दुनिया के विभिन्न देशों में प्रकाशक अपने गोदामों में रख देता है । जब कोई ग्राहक प्रकाशक की वेबसाइट द्वारा किसी पुस्तक का आदेश देता है, खरीददार से उसके क्रेडिट कार्ड का नम्बर देने को कहा जाता है । यह नम्बर मिलने के बाद तीव्रगति डाक से खरीददार को पुस्तक भेज दी जाती है। पैसा क्रेडिट कार्ड से वसूल लिया जाता है या इंटरनेट बैंकिंग द्वारा । डाक खर्च सहित किताब की लागत वही होगी, जो स्थानीय बाजार में ऐसी पुस्तक की लागत होती है । इसी प्रकार इन्टरनेट के द्वारा अनेक आवश्यक वस्तुओं की खरीद करने का मार्ग प्रशस्त हो गया है । इन्टरनेट के कारण ही रिमोट प्रोसेसिंग संभव हो सका है ।

'रिमोट प्रोसेसिंग' अर्थात् दूरी से संचालन या दूर रहकर भी काम करते रहना (Teleworking) का युग आ गया है । भौगोलिक बाधाएं कमजोर पड़ गई हैं । इस रिमोट प्रोसेसिंग की प्रोद्योगिकी में सन् 1999 में लगभग 25 हजार भारतीय हैदराबाद, बैंगलोर, दिल्ली, मुम्बई और चेन्नई में कार्यरत थे जो अमेरिका, यूरोपीय और एशियाई देशों के लिए रिमोट प्रोसेसिंग तैयार करने में लगे हुए थे ।

सन् 2008 तक 'रिमोट प्रोसेसिंग (Remote Processing) के कार्य में दस लाख से भी अधिक भारतीय नियोजित हो चुके हैं । भारत की मुक्त अर्थव्यवस्था ने इस व्यवसाय से धन कमाने का उद्यमियों को महत्वपूर्ण अवसर प्रदान किया है । 'रिमोट प्रोसेसिंग' प्रौद्योगिकी का विकास इस क्षेत्र में सॉफ्टवेयर से भी अधिक निर्यात का मार्ग प्रशस्त करने वाला है ।

दुनिया में इन्टरनेट का उपयोग व्यक्तिगत सन्देश या भावनाएं प्रेषित करने का माध्यम बनता जा रहा है । ये व्यक्तिगत सूचना, व्यक्ति के व्यवसाय, रूचि हॉबी, आदतों के सम्बन्ध

में होती है । इस प्रकार आदमी के निजी जीवन से सम्बन्धित अनेक बातें निजी नहीं रह पातीं बल्कि सार्वजनिक हो जाती हैं । यह इसके उपयोग का दूसरा पहलू भी है ।

ई-मेल सुविधा भी इसी इंटरनेट तथा विश्व व्याप्त संजाल (World Wide Web) से संभव हो पाई है । ई-मेल द्वारा जितनी चाहे सामग्री, चित्रों, अक्षरों और संकेताक्षरों के रूप में मिनटों में विश्व के किसी भी कोने में पहुँचाई जा सकती है । देखा जाए तो आम उपभोक्ताओं का इंटरनेट के साथ गंभीर और स्थायी संबंध ई-मेल के साथ ही शुरू हुआ और आज सिर्फ आपस में संचार के लिए ही नहीं, बल्कि खरीद-बिक्री, विपणन व्यवहारों तक में कम्प्यूटर-इंटरनेट का प्रयोग हो रहा है । घर बैठे ही किसी भी जगह के माल की खरीद-फरोख्त संभव है । आज टिकट बुकिंग से लेकर शादी तय करने तक के लिए इंटरनेट खंगाला जा रहा है । चिट्ठी-पत्री (ई-मेल), चैटिंग, शॉपिंग, पढ़ाई-लिखाई, मुकदमे, नीलामी से लेकर शिकायतें करना ऑनलाइन हो गई हैं । ब्लॉग, इंटरनेट आधारित चर्चा के मंच और दोस्त बनाने वाली वेबसाइटें भी इसी इंटरनेट का एक हिस्सा हैं । सुई से लेकर जहाज तक इंटरनेट के संसार में उपलब्ध है।

आज इंटरनेट अपने आप में सारी दुनिया समेटे हुए है । इंटरनेट अब बहुजन हिताए, बहुजन सुखाए का पर्याय बन चुका है । इंटरनेट, जिसे तकनीकी भाषा में वर्ल्ड वाइड वेब कहते हैं, एक क्लिक करते ही अकूत जानकारियाँ स्कीन पर झिलमिलाने लगती हैं । ग्लोबल हो रहे भारत में भी इंटरनेट ने समय के साथ-साथ अपने पाँव जमाए हैं । इंटरनेट की लोकप्रियता की बात करें तो भारत इंटरनेट का इस्तेमाल करने वाले देशों की सूची में चौथे स्थान तक पहुँच गया है । नंबर एक पर अमरीका और दो पर चीन है । बीते पाँच वर्षो में भारत में इंटरनेट उपभोक्ताओं में तो वृद्धि हुई ही है, इसके अलावा उनके सर्फिंग के समय में भी जबरदस्त इजाफा हुआ है । आँकडों कहते हैं कि भारत में 75 लाख लोग अधिकतर ऑनलाइन रहते हैं । ऐसे लोगों की संख्या भी अच्छी-खासी है जो, दिन में चार से पाँच घण्टे नेट का इस्तेमाल करते हैं । 1994 में सर्च इंजन का जमाना आया और लोगों ने याहू अमेजन और गूगल जैसे कई सर्च इंजनों को हाथों हाथ लिया । इंटरनेट के क्षेत्र में इस क्रांति में संचार और सूचना के तमाम पारंपरिक तरीकों को हिला कर रख दिया । आज गूगल सर्च इंजन विद्यार्थियों और शोध समुदाय के लिए किसी अनुभवी प्रोफेसर से कम नहीं है ।

पिछले एक दशक में इंटरनेट हमारे दैनिक जीवन का उतना ही अहम हिस्सा बन गया है, जितना अखबार या टेलीफोन ।

नवीन सदी में 'दूरदर्शन की दशा और दिशा के संदर्भ में सूचना और प्रसारण मंत्रालय के पूर्व सचिव भास्कर घोष का कहना था कि 'हम एक दिलचस्प मोड़ पर खड़े हैं । देर सवेर सीधा घर में अर्थात डायरेक्ट टू होम (डी.टी.एच.) प्रणाली उपलब्ध होने की संभावना है । इस प्रकार की डिजीटल युक्त नई प्रणाली से दर्शक के सामने कार्यक्रमों के चयन का एक नया द्वार खुल जाएगा और विभिन्न प्रकार की सूचना और टेक्नोलॉजी के आपस में एक हो जाने या परिवर्तित हो जाने के परिणामस्वरूप एक नया माध्यम या माध्यमों या टेलीविजन या कंप्यूटर्स या इंटरनेट जैसे किसी नए माध्यम का प्रादुर्भाव होगा । यह सब कुछ आज साकार हो चुका है।

4.7 सारांश

इस इकाई में आपने जनसंचार के विभिन्न माध्यमों का अध्ययन किया है । मीडिया जनसंचार माध्यम का प्रमुख कार्य है- 1 शिक्षा, 2. सूचना, और 3. मनोरंजन । जन-जन को जागरूक बनाना, शिक्षित करना, उसमें ज्ञान का प्रकाश फैलाना विशेष रूप से मीडिया का कार्य है । समाचारपत्र, रेडियो, टीवी, सिनेमा और इंटरनेट इस कार्य के महत्त्वपूर्ण माध्यम है । रेडियो द्वारा स्कूलों, महाविद्यालयों, मुक्त विद्यालयों के लिए दूर-शिक्षा संबंधी कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं । 'ज्ञान-वाणी' (एफ.एम. शैक्षणिक रेडियो) एक ऐसा ही कार्यक्रम है । सूचना-विस्फोट के इस युग में रेडियो की भूमिका विकासशील देशों के लिए अधिक बढ़ गई है । रेडियो सूचना का सुगम और सुलभ साधन है । रेडियो मनोरंजन का सशक्त और प्रभावी माध्यम है । रेडियो के प्रत्येक कार्यक्रम जीवंत होते हैं और तनाव भरे जीवन को सहज और मुक्त करते हैं । श्रोता वर्ग रेडियो के प्राण होते हैं। श्रोता वर्ग के अभाव में रेडियो का कोई अस्तित्व नहीं है ।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास तथा संचार जगत की अभूतपूर्व प्रगति ने इंटरनेट द्वारा सूचना के आदान-प्रदान को और भी ज्यादा सुलभ बना दिया है । रेडियो, टेलीविजन, समाचारपत्र के बाद अब इंटरनेट भी संचार का एक बहुआयामी तंत्र बन गया है । इंटरनेट वास्तव में दुनिया भर के कंप्यूटर का एक ऐसा नेटवर्क है जो एक दूसरे से संवाद कर सकता है । इंटरनेट के माध्यम से वेबसाइटों की सृष्टि की गई है, जिन्हें विश्व के किसी भी कोने में किसी भी समय हर कोई कंप्यूटर-इंटरनेट के माध्यम से देख-पढ़ सकता है ।

एक सुव्यवस्थित समाज की परिकल्पना नई सूचना क्रांति के कारण साकार हो पाई है। समाज के नव-निर्माण में जनसंचार साधनों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है और इंटरनेट के विकास से वैश्विक गाँव की परिकल्पना सर्वमान्य सत्य के रूप में स्वीकार हो रही है ।

इसी तरह टेलीविजन कभी भी शिक्षा एवं सूचना देने के अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता । नई सदी में सूचनाओं और शिक्षा प्रदान करने वाले परंपरागत तरीकों की जगह नए माध्यम लेंगे क्योंकि परंपरागत माध्यमों से नई सदी की जरूरतें पूरी करना पूरी तरह संभव नहीं होगा । ऐसे में इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से सहायक हो सकेंगे । बढ़ती आबादी की शैक्षिक जरूरतों को पूरा करने में ये नये माध्यम उपयोगी साबित होंगे, ऐसी उम्मीद की जा सकती है ।

4.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. संचार के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख करते हुए जनसंचार के विभिन्न माध्यमों का उल्लेख कीजिए ।
2. जनसंचार के क्षेत्र में टेलीविजन के आगमन के महत्त्व पर सोदाहरण प्रकाश डालिए ।
3. इंटरनेट ने जनसंचार के क्षेत्र में क्रांति ला दी है । क्या आप इस कथन से सहमत हैं? अपना मत प्रस्तुत कीजिए ।
4. आपकी दृष्टि में रेडियो अधिक ज्ञानोन्मुखी है या टेलीविजन और क्यों? स्पष्ट कीजिए।
5. एक मनोरंजन माध्यम के रूप में सिनेमा के महत्त्व और उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

4.9 सन्दर्भ ग्रंथ

1. प्रो. रमेश मेहरा; मीडिया व प्रसारण, तक्षशिला प्रकाशन, प्रस. 2007, नई दिल्ली
2. डॉ. हरिमोहन; रेडियो और दूरदर्शन पत्रकारिता, तक्षशिला प्रकाशन, 2006, नई दिल्ली
3. प्रो. हरिमोहन; आधुनिक जनसंचार व हिन्दी, तक्षशिला प्रकाशन, 2006, नई दिल्ली
4. प्रो. रमेश जैन; इलेक्ट्रॉनिक मीडिया लेखन, मंगलदीप पब्लिकेशन, जयपुर, प्रस. 2004
5. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार के सामाजिक संदर्भ, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 29ए, पाकेट-डी, दीप एन्कलेव, अशोक विहार, दिल्ली- 110052
6. बृजमोहन गुप्त; जनसंचार माध्यम विविध आयाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
7. मेनी वाइसेज वन वर्ल्ड, संपादक सीन मेकब्राइड, यूनेस्को का प्रतिवेदन, कोगन पेज लि, लंदन, संस्करण, 1998
8. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, 2000; ग्रंथशिल्पी, दिल्ली- 110091

इकाई 5 जनसंचार की प्रौद्योगिकी

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 जनसंचार के परम्परागत माध्यम

5.2.1 लोक कथाएँ और नाट्यशैलियां

5.2.2 कथावाचन और लोकगीत

5.2.3 लेखनकला

5.3 जनसंचार की आधुनिक प्रौद्योगिकियाँ

5.3.1 मुद्रण

5.3.2 रेडियो

5.3.3 टेलीविजन

5.3.4 कम्प्यूटर

5.4 प्रौद्योगिकी और जनसंचार का बदलता स्वरूप

5.5 सारांश

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 सन्दर्भ ग्रंथ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम जनसंचार की प्रौद्योगिकी का विवेचन करने जा रहे हैं । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- जनसंचार में प्रौद्योगिकी की भूमिका को रेखांकित कर सकेंगे ।
- जनसंचार के लिए प्रयुक्त परम्परागत और लोक माध्यमों के विकास और स्वरूप की चर्चा कर पाएँगे ।
- जनसंचार के लिए प्रयुक्त आधुनिक प्रौद्योगिकियों का सर्वेक्षण कर सकेंगे ।
- जनसंचार पर बदलती प्रौद्योगिकी के प्रभाव और स्वरूप में आनेवाले बदलाव पर टिप्पणी कर सकेंगे ।

5.1 प्रस्तावना

जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता नामक पाठ्यक्रम के पहले खण्ड की यह पाँचवीं इकाई है । अब तक आप जनसंचार की अवधारणा, स्वरूप, लक्ष्य, कार्य, प्रक्रिया और प्रकृति से परिचित हो चुके हैं आप जान चुके हैं कि व्यक्तिगत से सामूहिक होते ही संचार जनसंचार में परिणत हो जाता है । यह सामूहिक और व्यापक सम्प्रेषण का माध्यम है । आप जानते हैं कि संचार के कई प्रकार होते हैं जैसे: आत्म सम्प्रेषण, परस्पर सम्प्रेषण और समूहगत सम्प्रेषण ।

परस्पर सम्प्रेषण में व्यक्ति एक दूसरे के सामने होता है । इसे व्यक्तिगत सम्प्रेषण भी कहते हैं और ये संचार की व्यक्तिगत प्रक्रिया होती है । लेकिन जब यही सम्प्रेषण व्यापक समुदाय से करना होता है तो संचार भी व्यापक होता है और इसके लिए जनसंचार माध्यमों की जरूरत पड़ती है । आपने पढा होगा कि जनसंचार माध्यमों का विकास बड़े समुदाय तक संदेशों को सम्प्रेषित करने की प्रक्रिया में हुआ । पुराने जमाने में संकट की चेतावनी देने के लिए या महत्त्वपूर्ण सूचनाएं जनता तक पहुँचाने के लिए ध्वनि माध्यमों का प्रयोग किया जाता था जैसे जोर-ओर से चिल्लाना, एक विशेष प्रकार की आवाज निकालना, टीन पीटना, ढोल बजाना यानी ऐसे प्रयास करना जिससे ज्यादा से ज्यादा लोगों तक आवाज पहुँच जाए और उनको संदेश प्राप्त हो । धीरे-धीरे चित्र, नाटक, कठपुतली का नृत्य जैसी कलाएँ भी जनसंचार का माध्यम बनने लगीं । प्रौद्योगिकी में जैसे-जैसे विकास होता गया वैसे-वैसे जनसंचार का स्वरूप और उसकी प्रकृति भी बदलती गई । मुद्रण कला, टेलीग्राफी, फोटोग्राफी, फिल्म, रेडियो, टेलीविजन कम्प्यूटर जैसी प्रौद्योगिकियों के विकास ने जनसंचार की गति और पहुँच तेज तो की ही इसका दायरा भी विस्तृत किया । प्रौद्योगिकी के विकसित होने से जनसंचार का पूरा व्यक्तित्त्व बदल गया । इन सारे मुद्दों पर हम इस इकाई में चर्चा करेंगे और प्रयास करेंगे कि जनसंचार में प्रौद्योगिकी की भूमिका और अंतसंबधों को आप समझ सकें ।

5.2 जनसंचार के परम्परागत माध्यम

सम्प्रेषण एक सामाजिक प्रक्रिया है । यह एक पारस्परिक क्रिया भी है । सम्प्रेषण प्रक्रिया में किसी माध्यम का प्रयोग करना होता है जो लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर सके और जन-जन तक सूचना प्रभावी रूप में पहुँच सके । जैसा कि हमने पहले बताया ध्वनियाँ सम्प्रेषण का पहला माध्यम बनीं । पशु-पक्षी भी अलग-अलग जरूरतों के अनुसार अलग-अलग ध्वनियाँ निकालते हैं । उनके खुश होने, दुखी होने, बैचेन होने, क्रोधित होने आदि की ध्वनियाँ बिलकुल अलग से पहचानी जा सकती हैं । मनुष्य में भी प्रकृति के साहचर्य से इस प्रकार की संवेदना और अनुभव विकसित हुए और मौखिक सम्प्रेषण के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी संचार की यह प्रक्रिया जारी रही ।

मनुष्य ने ध्वनियों के इस सम्प्रेषण के माध्यम को विकसित किया । जब व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति या एक समूह से दूसरे समूह तक कोई बात पहुँचानी होती थी तो इसके लिए तरह-तरह की आवाजें निकाली जाती थीं लेकिन आवाज की पहुँच की एक सीमा होती है । अभी भी गांवों में मुंह पर गोल हाथ बनाकर खेत में दूर खड़े व्यक्ति को पुकारते हुए किसानों को देखा जा सकता है । इस ध्वनि माध्यम को और भी विस्तृत बनाने के लिए ढोल जैसे वाद्य यंत्रों का विकास हुआ । ढोल लोक कला का एक माध्यम तो है ही साथ ही साथ जनसंचार का भी एक प्रमुख माध्यम बना । यानी जनसंचार के माध्यम आरंभ से ही सूचना और मनोरंजन दोनों का ही कार्य करने लगे थे । इसका अर्थ हुआ कि सूचना और मनोरंजन जनसंचार के अभिन्न और अविभाज्य अंग हैं । जहाँ लोग सामूहिक रूप से इकट्ठा होकर इस ढोल पर नृत्य करते थे वहीं राजा इस ढोल से मुनादी पिटवाकर प्रजा तक अपना आदेश और संदेश पहुँचाया करते थे ।

5.2.1 लोक कथाएँ और नाट्य शैलियाँ

लोक रंगमंच सदियों से जनता के मनोरंजन का साधन रहा है और आधुनिक जनसंचार के माध्यमों के आने से पहले लोक रंगमंच के अलग-अलग रूप पूरे भारत में विद्यमान थे जैसे- रामलीला, रासलीला, माच खयाल, नौटंकी, स्वांग, भगत, जात्रा, तमाशा, यक्षगान आदि । लोक रंगमंच समाज का दर्पण ही नहीं बल्कि उसका आलोचक और व्याख्याकार भी था । नाटक के सूत्रधार की टिप्पणियाँ और विदुषक की व्यंगोक्तियाँ न केवल जन-जन में संदेश का प्रसार करती थीं बल्कि समसामयिक स्थितियाँ पर टिप्पणी भी की जाती थी । हास्य सम्प्रेषण की एक जाँची परखी हुई प्रणाली है जिसके माध्यम से जनता तक गंभीर से गंभीर बात आसानी से पहुँचाई जा सकती है । लोक रंगमंच इस दृष्टि से बड़े ही सार्थक जनसंचार के माध्यम बने रहे। इसी प्रकार कठपुतली का खेल भी एक प्रमुख जनसंचार माध्यम रहा है और इसकी भी आत्मा व्यंग्य में बसती है । पुतलियाँ जन सम्प्रेषण का एक सार्थक माध्यम रहीं । कठपुतली का खेल, चित्रकला, हस्तशिल्प, नृत्य और नाट्य काव्य की सर्जनात्मक प्रस्तुति है । इसका उपयोग मनोरंजन, उपदेश और सामाजिक आलोचना के लिए होता रहा है ।

5.2.2 कथावाचन और लोकगीत

लेखन कला के विकसित होने से पहले कथावाचन और लोकगीत सम्प्रेषण के प्रमुख माध्यम रहे हैं । जब तक लिपि का विकास नहीं हुआ तब तक शिक्षा का माध्यम भी मौखिक ही था । जिस प्रकार आज का मीडिया दृश्य-श्रव्य माध्यमों के जरिए जनता के मन मस्तिष्क पर अपनी छाप छोड़ रहा है, उसी प्रकार शिक्षा प्रदान करने के लिए कथावाचन का उपयोग किया जाता था । पंचतंत्र और हितोपदेश जैसी पुस्तकें शिक्षा प्रदान करने के लिए ही रची गई थीं । जनता के बीच से लोककथाएँ, वीर गाथाएं और वीर गीतों का उदय हुआ जो अलग-अलग परिस्थितियाँ को अभिव्यक्त करता था । आजादी के आंदोलन में भी इन लोक कथाओं और लोक माध्यमों का इस्तेमाल किया गया । ध्यान देने की बात है कि लोक कलाएँ नाट्य शैलियाँ, चित्रकला जैसे माध्यमों का उपयोग मनुष्य अपनी विभिन्न अभिव्यक्तियों के करता रहा है । जनसंचार के इस भूमंडलीकृत दौर में भी ये कलाएँ यदि जीवित हैं तो इसका कारण यह है कि इनके द्वारा कलाकार को न केवल रचनात्मक संतुष्टि प्राप्त होती है वरन् ग्रहीताओं को आनंद भी प्राप्त होता है । निश्चय ही वर्तमान समय के अनुरूप इनमें कथ्य, शिल्प और परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से कई परिवर्तन भी हुए हैं । ये परिवर्तन ही इन परम्परागत कलाओं को प्रासंगिक बनाए हुए हैं ।

5.2.3 लेखन कला

लेखन कला का आविष्कार किसी भी सभ्यता के विकास में एक महत्त्वपूर्ण पडाव रहा है । भारत में लेखन कला का प्रमाण 3000-4000 ई. पू से मिलने लगता है । लेखन का सबसे पहला प्रमाण सिंधु घाटी सभ्यता में मिलता है । हालांकि इस लेखन कला को अभी तक

पढ़ने में सफलता हासिल नहीं हो सकी है । भारत में ईसा शताब्दी के पूर्व ही लेखन कला के स्पष्ट प्रमाण मिलने लगते हैं जिन्हें पढ़ा भी गया है, समझा भी गया है जैसे अशोक के स्तम्भ अभिलेख (लगभग 300ई पू) । इसी प्रकार इसी समय के आसपास के भोजपत्र पर लिखे दस्तावेज भी प्राप्त हुए हैं । महाभारत की कथा में भी पत्रों द्वारा संदेश भेजने का हवाला मिलता है । इस प्रकार मुद्रण की प्रौद्योगिकी का आविष्कार और आगमन के पूर्व भारत में जनसंचार माध्यम ' के रूप में लेखन का उपयोग होने लगा था और पत्र संचार का एक प्रमुख माध्यम था । इसके सम्प्रेषण में स्थायित्व और विश्वसनीयता आई । पहिए के आविष्कार के बाद जब जानवरों से खींचे जाने वाले तेज वाहनों का आविष्कार हुआ तो लिखित संदेशों को एक स्थान से दूसरे स्थान भेजने में लगने वाले समय में कमी भी आई । हालांकि परम्परागत रूप से संदेशवाहक पैदल भी जाया करते थे और बाद में पशुओं पर सवार होकर भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर संदेश पहुँचाया करते थे । घोड़ा, ऊंट और बैल आदि जैसे पशुओं का उपयोग इसके लिए किया जाता था । रेलवे के आगमन के पूर्व संचार का यही प्रमुख माध्यम बना रहा । भारत में 1857 की जो कहानियाँ सुनने को मिलती हैं उसमें भी इस प्रकार के प्रमाण मिलते हैं कि संदेश प्रचारित और प्रसारित करने के लिए इन्हीं माध्यमों का उपयोग किया गया ।

5.3 जनसंचार की आधुनिक प्रौद्योगिकियाँ

जैसे-जैसे मनुष्य नई-नई प्रौद्योगिकियों का आविष्कार करता गया वैसे-वैसे सभ्यता के चरण आगे बढ़ते गए और सम्प्रेषण और संचार के माध्यमों में भी परिष्कार होता गया और शनै: शनै: यह स्थायी, दूरगामी, तीव्र और सुलभ होता गया । संचार के साधनों में आए बदलाव से सम्प्रेषण का स्वरूप भी बदला और उसकी भूमिका में भी परिवर्तन आया ।

5.3.1 मुद्रण कला का विकास

जैसा कि पहले बताया गया कि ध्वनि सम्प्रेषण का प्रथम माध्यम बना पर इसे अस्थायित्व और क्षणभंगुरता ने मनुष्य को नई दिशाएं तलाश करने की ओर प्रवृत्त किया । इसी क्रम मे लेखन चित्रकला, मूर्तिकला जैसे अभिव्यक्ति के माध्यम विकसित हुए और रेखाएँ, अक्षरों का रूप धरने लगीं और भाषा लिखित रूप लेने लगीं । पत्थरों, भोजपत्रों, मिट्टी की टिकिया, जानवरों की खाल, धातुओं, लकड़ियों पर लेखन की शुरूआत हुई लेकिन जब कागज और बाद में छपाई कला का आविष्कार हुआ तो सम्प्रेषण के इस माध्यम ने नया रूप ग्रहण किया । इसकी शुरुआत चीन में हुई और 14वीं शताब्दी में छपाई की मशीन से एक ग्रंथ प्रकाशित हुआ । चीन से यूरोप में मुद्रण कला कैसे आई इस विवाद में पड़े बिना यह जानना पर्याप्त होगा कि 15वीं सदी में यूरोप में मुद्रण कला का उपयोग होने लगा था । छपाई के आविष्कार के कारण अखबार जैसे जनसंचार के प्रमुख माध्यम का जन्म हुआ । दुनिया का पहला अखबार 1609 में जर्मनी में प्रकाशित हुआ जिसका नाम है 'अ विसा रिलेशन आर्डर जितुंग' । ब्रिटेन में 1621 में समाचार पत्रों की शुरूआत हुई । इसी प्रकार अमेरिका में 1679 में और रूस में 1703 ई. में समाचार प्रकाशित होने शुरू हुए । इस लिहाज से हमारा देश भी

बहुत पीछे नहीं रहा । हालांकि भारत में 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में समाचारपत्रों का प्रकाशन आरंभ हो चुका था लेकिन 19वीं शताब्दी में जाकर इसने स्वरूप ग्रहण करना शुरू किया ।

छापाखाना के विकास और अखबारों और पुस्तकों की बड़ी संख्या में प्रकाशन के साथ ही संचार माध्यम सही अर्थों में जनसंचार माध्यम बन गया । इससे विचारों का लोकतंत्रीकरण हुआ । धर्म के क्षेत्र में भी क्रांति आई और अब धर्म ग्रंथों के बारे में जानने के लिए पढ़े-लिखे व्यक्ति को किसी धर्म प्रचारक, पुरोहित, पंडित, मौलवी या पादरी का मोहताज नहीं रहना पड़ा । यह जनसंचार माध्यम की शक्ति और सामर्थ्य का प्रतीक है । इसीलिए इसे लोकतंत्र का चौथा स्तंभ भी कहा गया है ।

5.3.2 रेडियो

18वीं शताब्दी में टेलीग्राफी के जन्म से संचार के क्षेत्र में एक नई तेजी आई । वायरलेस टेलीग्राफी की खोज ने इसे और विकसित किया और संचार को तीव्रता से पहुँचाने में सफलता मिली । ध्यातव्य हो कि इलेक्ट्रोनिक संचार माध्यमों का विकास सामरिक सुविधाओं के लिए किया गया था । लेकिन धीरे-धीरे जनता अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिए भी इसका इस्तेमाल करने लगी । तार उस जमाने का तीव्रतम संचार माध्यम था । टेलीफोन के आविष्कार ने इसे एक और नया आयाम दिया और दूर बैठे किसी व्यक्ति से घर बैठे ही बात की जा सकती थी । इससे ध्वनि माध्यम को एक नया आयाम और शक्ति मिली ।

20वी शताब्दी के आरंभ में ब्रिटेन में रेडियो प्रसारण आरंभ हुआ । दुनिया की सबसे पुरानी ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कम्पनी की स्थापना 1922 में हुई । भारत में 20वी शताब्दी के दूसरे दशक में रेडियो प्रसारण का आरंभ हुआ और मुम्बई में 23 जुलाई 1927 को इंडियन ब्रॉडकास्टिंग कम्पनी की शुरूआत हुई । आज हमारे देश में 11 करोड़ से ज्यादा लोगों के पास रेडियो सेट हैं । आकाशवाणी के 214 केंद्र 99 प्रतिशत से भी ज्यादा लोगों तक अपना कार्यक्रम पहुँचा रहे हैं । ट्रांजिस्टर के आगमन के बाद रेडियो सामूहिक से व्यक्तिगत हुआ और यह एक ऐसा सहज सुलभ माध्यम बन गया जिसे कहीं भी कभी भी सुना जा सकता था । अब तो मोबाइल फोन में भी रेडियो के कार्यक्रम सुने जा सकते हैं यानी रेडियो टेबुल से हाथ में, हाथ से हथेली में और अब पॉकेट में समा गया है । रेडियो प्रौद्योगिकी के विकास ने इस माध्यम के स्वरूप को काफी प्रभावित किया है । ट्रांजिस्टर के आविष्कार के पूर्व रेडियो सुनना एक विशेषाधिकार था जो सभी लोगों को प्राप्त नहीं था । इसके अलावा रेडियो एक स्थान पर रखे जाने के कारण एक से ज्यादा लोग एक साथ बैठकर सुन करते थे। इसलिए उस समय के रेडियो प्रसारण समूह को संबोधित होते थे व्यक्ति को नहीं । लेकिन जैसे-जैसे रेडियो व्यक्तिगत होने लगा यानी कोई भी रेडियो सेट कहीं भी लेकर जा सकता था और अकेले में भी रेडियो सुन सकता था तो फिर रेडियो के कार्यक्रमों का मिजाज भी बदला ओर रेडियो सामूहिक से निजी हो गया । कार्यक्रमों की भाषा और शैली भी उसी के अनुसार बदली । श्रोता आधारित कार्यक्रम बनाने पर बल दिया जाने लगा । रेडियो घर में मनोरंजन का एक प्रमुख और अकेला माध्यम था जिसे बिना किसी भेदभाव के कोई भी सुन सकता था । अखबार तो कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति ही पढ़ सकता था परंतु रेडियो के आने पर यह बंदिश नहीं रही । अपनी इस क्षमता के कारण

रेडियो एक मजबूत जनसंचार माध्यम के रूप में उभरा । आज जो प्रतिष्ठा और ग्लैमर टेलीविजन को प्राप्त है वही हैसियत 20वी शताब्दी के 7वें 8वें दशक तक रेडियो को प्राप्त था । टेलीविजन के आगमन से थोड़े दिनों के लिए रेडियो के शहरी और युवा श्रोताओं में कमी आई थी । लेकिन एफ.एम. प्रणाली के आने से रेडियो की लोकप्रियता में फिर वृद्धि कर दी है । स्थानीय स्तर पर प्रसारण के क्षेत्र में नये प्रयोगों के लिए अवसर प्रदान किए । मनोरंजन के साथ-साथ एफ.एम. ने शिक्षा के क्षेत्र में अपनी उपयोगिता साबित की है ।

5.3.4 टेलीविजन

चित्रकला और मूर्तिकला के विकास में मानव की दृश्यों के माध्यम से अपने को अभिव्यक्त करने की आकांक्षा छिपी हुई थी । इसी आकांक्षा की पूर्ति के लिए फोटोग्राफी, सिनेमा और टेलीविजन जैसी तकनीकों का विकास हुआ । 19वीं शताब्दी में फोटोग्राफी का आविष्कार हो चुका था और 19वीं शताब्दी के अंत होते-होते फिल्म तकनीक भी विकसित हो चुकी थी । सिनेमा ने मनोरंजन के लिए लोगों को एक साथ घरों से निकालकर थियेटर में बैठने को मजबूर किया । अभिजात्य संस्कार और भेदभाव की दीवार को इसने काफी हद तक नेस्तनाबूत किया । हालांकि थियेटरों में भी कई क्लास हुआ करते थे और लोग अपनी हैसियत से टिकट खरीदकर फिल्म देखा करते थे । इसके बावजूद यह आम जनता के लिए एक सुलभ और सस्ता माध्यम बना । इसने लोक रंगमंच और खेल तमाशों का स्थान ग्रहण किया । फणीश्वरनाथ रेणु की 'तीसरी कसम' पर जो फिल्म बनी है उसमें नौटंकी और सिनेमा के प्रति बढ़ती ललक को प्रदर्शित किया गया है । फिल्मों के विकास ने निश्चित रूप से समाज का लोकतंत्रीकरण किया । टेलीविजन ने एक बार फिर मनोरंजन को घरों के अंदर समेटने का प्रयास किया । ऐसा लगा कि लोग सिनेमा घरों में जाना बंद कर देंगे । वीडियो कैसेट, वीडियो प्लेयर, सी.डी प्लेयर, डी वी डी आदि के आविष्कार ने मनोरंजन को निजी मामला बना दिया । सिनेमा में तो एक नियत समय पर कई लोग एक साथ बैठकर फिल्म देखते थे लेकिन सी.डी के जरिए यही फिल्म हम घर पर अपनी मर्जी से कभी भी देख सकते हैं । अब तो घर-घर सिनेमा घर बन गया है । इस टेलीविजन ने हमारी पूरी दिनचर्या बदल डाली है । टेलीविजन पर प्रसारित होनेवाले कार्यक्रमों से लोगों के कार्यक्रम निर्धारित होने लगे हैं । जब भारत में रंगीन टेलीविजन का आगमन हुआ और 1982 में रंगीन टेलीविजन के साथ दूरदर्शन ने इसके नेटवर्क का विस्तार किया तो भारत जनसंचार के एक नए दौर में प्रविष्ट हुआ । 'हमलोग' और 'बुनियाद' जैसे कार्यक्रम लोगों को नियत समय पर घर आने का निमंत्रण देने लगे तो 'महाभारत' और 'रामायण' जैसे धारावाहिकों के प्रसारण के समय सड़कें सूनी नजर आने लगीं । यह है टेलीविजन के प्रभाव और शक्ति का प्रमाण ।

5.3.5 कम्प्यूटर

कम्प्यूटर के आगमन ने दुनिया ही बदल डाली । मुद्रण, व्यापार, निजी जिंदगी सबका स्वरूप बदल गया । मुद्रण के क्षेत्र में तो कम्प्यूटर के आगमन ने क्रांति ही कर डाली । अब समाचारपत्रों का प्रकाशन, समाचारों का सम्प्रेषण, समाचारों की प्राप्ति क्षण भर के मामले रह

गए । रिपोर्टिंग और संपादन और अखबार के संस्करण अलग-अलग केंद्रों पर एक साथ छपने लगे । पुस्तक प्रकाशन भी बहुत आसान हो गया । अब पुस्तक को एक फ्लॉपी, सीडी या पेनड्राइव में कैदकर कहीं भी ले जाया जा सकता है और बार-बार उसका मुद्रण किया जा सकता है । 1990 के दशक में हुई इस कम्प्यूटर क्रांति ने भारत के समाचार उद्योग को पूरी तरह बदल दिया । रॉबिन जेफ्री इसे ही भारत की समाचार पत्र क्रांति कहते हैं । अखबारों में ही नहीं रेडियो में भी एनालॉग की जगह डिजिटल तकनीक का इस्तेमाल होने लगा है । अब आप रेडियो स्टेशन पर जाएँ और यदि इसके स्टूडियो में जाने का मौका मिले तो अब आपको बड़े-बड़े टेप नहीं मिलेंगे बल्कि एक कम्प्यूटर और सी.डी से ही सारा काम सम्पन्न होते हुए देखा जा सकता है । इसी तरह टेलीविजन के प्रसारण में भी कम्प्यूटर के उपयोग ने काफी प्रगति की है । खासतौर पर डिजिटल क्रांति ने टेलीविजन को एक नया रूप दे दिया है । अब चित्र ज्यादा स्पष्ट, साफ और आकर्षक नजर आते हैं ।

इंटरनेट एक ऐसी सुविधा है जिसके माध्यम से हम किसी भी कम्प्यूटर से जुड़ सकते हैं, समाचार भेज सकते हैं और प्राप्त कर सकते हैं । इंटरनेट पर तमाम प्रकार की सूचनाएँ हम प्राप्त कर सकते हैं । ब्लॉग बनाकर हम अपनी बात इंटरनेट द्वारा असंख्य लोगों तक पहुँचा सकते हैं । इंटरनेट ने परस्पर सम्प्रेषण को बहुत ही व्यापक और तीव्र बना दिया है । अपने मैसेज टाइप कर एन्टर या क्लिक दबाया नहीं कि आपका संदेश अपने मनोवांछित पते पर पहुँच जाता है । इंटरनेट एक ऐसा माध्यम है जो अखबार, रेडियो, टेलीविजन सबका काम करता है । आप इंटरनेट पर अखबार, पत्र पत्रिकाएँ पढ़ सकते हैं, रेडियो सुन सकते हैं, टेलीविजन देख सकते हैं । इंटरनेट सूचनाओं और ज्ञान का भंडार होने के साथ-साथ जनसंचार का एक सर्वाधिक, सुलभ, त्वरित और शक्तिशाली माध्यम है।

5.4 प्रौद्योगिकी और जनसंचार का बदलता स्वरूप

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है मनुष्य आरंभ से ही सम्प्रेषण के लिए नई-नई प्रौद्योगिकियो की खोज करता रहा है और इसका प्रभाव समाज की संरचना और व्यक्ति के स्वभाव पर भी पड़ा है । ध्वनि, चित्रकला, लेखन कला सम्प्रेषणात्मक प्रौद्योगिकियाँ ही हैं जिनका मनुष्य ने अपनी जरूरत के लिए विकास किया । लिखित भाषा का विकास और कागज, कलम और स्याही के संगम ने संचार को जनसंचार में तबदील किया । अब मनुष्य अपने विचार को ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचा सकता था और ये विचार टिकाऊ भी हुए। सम्प्रेषण की क्षणभंगुरता समाप्त हुई । इससे सम्प्रेषण की प्रामाणिकता बढी और संचार का लोकतंत्रीकरण हुआ । अब ज्ञान किसी एक व्यक्ति की थाती नहीं रह गई बल्कि अनेक व्यक्तियों का साझा हो गया ।

छापाखाने की खोज एक ऐसी प्रौद्योगिकी की खोज थी जिसने ज्ञान, सूचना और सम्प्रेषण का विस्तार किया और यही आज के एक महत्त्वपूर्ण जनसंचार समाचारपत्र के जन्म का माध्यम बना । इसी प्रकार भाप इंजन के आविष्कार और रेलगाड़ी के चलन ने भी संचार और सम्प्रेषण को तीव्र किया और दुनिया सिमटने लगी ।

औद्योगिक क्रांति ने संचार प्रौद्योगिकी को काफी प्रभावित किया । हालांकि संचार प्रौद्योगिकी का आविष्कार पृथक रूप से नहीं हुआ लेकिन ऊर्जा के रूप में भाप का उपयोग होने से कई क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति आई और प्रिंटिंग प्रेस को इससे खासा फायदा हुआ । इसी प्रकार टेलीग्राफ के आविष्कार ने सम्प्रेषण और संचार की गति को तीव्र किया । टेलीफोन का आविष्कार औद्योगिक क्रांति की ऐसी देन है जिसने संदेश प्रसारण को एक नया स्वरूप प्रदान किया । समाचारपत्रों के प्रकाशन में भी इन माध्यमों की भूमिका रही । टेलीप्रिण्टर के आविष्कार से दुनिया भर के समाचार तेजी से अखबार के दफ्तरों में पहुँचने लगे । इसने समाचारपत्र को जनसंचार का एक त्वरित माध्यम बना दिया ।

इसी प्रकार रेडियो प्रसारण ने सार्वजनिक प्रसारण का एक नया रूप प्रस्तुत किया । यह समाचारपत्र की अपेक्षा अधिक त्वरित माध्यम साबित हुआ । इसके अलावा इसने जनसंचार में मनोरंजन का एक और नया आयाम जोड़ा । रेडियो पर गीत, संगीत और नाटक जैसे कार्यक्रम जनता तक पहुँचाए जाने लगे । भारत जैसे विकासशील देश के लिए रेडियो लोकतंत्रीकरण का एक सशक्त माध्यम साबित हुआ जहाँ अभी भी लगभग आधी आबादी निरक्षर है । हम पहले बता चुके हैं कि किस प्रकार रेडियो ने मनोरंजन को बिल्कुल व्यक्तिगत भी बनाया और श्रोता को दुनिया से जोड़कर भी रखा । रेडियो मनुष्य को कभी अकेलेपन का एहसास नहीं होने देता । इसीलिए कई बार लोग अकेलेपन को दूर करने के लिए रेडियो खुला छोड़ देते हैं । इसके अलावा रेडियो की विकासात्मक भूमिका उल्लेखनीय है । सामुदायिक रेडियो की संकल्पना रेडियो को विभिन्न समुदायों से जोड़ती है और समुदाय विशेष की जरूरतों के मुताबिक इसमें कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं । एफ एम चैनल शहर केंद्रित रेडियो चैनल हैं जिसने युवाओं को लक्ष्य बनाया और उनको आकर्षित करने के लिए रेडियो पर गीत संगीत के कार्यक्रम प्रस्तुत किए, इससे एक बार फिर रेडियो जी उठा । आकाशवाणी को छोड दें तो ये प्राइवेट रेडियो चैनल केवल मनोरंजन और खेल तमाशा करने वाले चैनल रह गए हैं। इसमें किसानों, मजदूरों, बुजुर्गों, स्त्रियों की बात पृष्ठभूमि में चली गई है । उदारवाद और भूमंडलीकरण के इस दौर में रेडियो का स्वरूप तेजी से बढा है और यह भी मुनाफा कमाने के दौड़ में शामिल हो गया । रेडियो के बाद टेलीविजन एक ऐसा माध्यम बनकर उभरा जिसमें घर बैठे सिनेमा का आनन्द मिल सकता था लेकिन जहाँ सिनेमा ने मनोरंजन को सार्वजनीकरण, समाजीकरण और लोकतंत्रीकरण किया था वहीं टेलीविजन ने मनोरंजन का वैयक्तिकरण किया और मनुष्य अपने आप में कटकर और सिमटकर रह गया । टेलीविजन के आने से मनुष्य का व्यवहार और आचार बदला । लोगों की बैठक खत्म हुई, आपस में मिलना-जुलना काम हुआ और टेलीविजन पर प्रसारित होनेवाले कार्यक्रम लोगों के मन में घर करने लगे । शहरी व्यक्ति तो वैसे भी अपने आप में सिमटा होता है । इस टेलीविजन ने उसे और भी स्वार्थी और अकेला बना दिया क्योंकि बाजारीकरण के दौर में टेलीविजन सूचना, शिक्षा और मनोरंजन की बजाए समान बेचने का एक सशक्त माध्यम बन गया । किसी ने ठीक ही कहा है टेलीविजन पर मुख्य कार्यक्रम विज्ञापन होता है और बाकी जो कार्यक्रम दिखाया जाता है असल में वे ही 'ब्रेक' होते हैं ।

टेलीविजन के अलावा कम्प्यूटर और उपग्रह प्रणाली के अस्तित्व में आने से जनसंचार की प्रक्रिया में एक क्रांति आ जाती है । जनसंचार माध्यमों में डिजिटल और सैटेलाइट

प्रौद्योगिकी के आगमन से अभूतपूर्व बदलाव और तेजी आई । अब सूचनाओं और आकड़ों को सुरक्षित और सम्प्रेषित करना सुलभ, सस्ता और सहज हो गया । डिजिटल प्रौद्योगिकी ने मुद्रण, रेडियो, टेलीविजन, फिल्म सभी माध्यमों को बदल दिया । ई मेल ने पत्र लेखन को नया स्वरूप प्रदान किया । इंटरनेट ने हर कम्प्यूटर को दुनिया से जोड़ दिया । 'चैट' और 'मैसेज' का रिवाज बढा । सम्प्रेषण की भाषा बदली । हालांकि आज कम्प्यूटर कई भाषाओं में काम करते हैं पर इंटरनेट पर अभी भी अंग्रेजी का बोलबाला है । सूचना कम्प्यूटर और खासकर इंटरनेट के चलन का अंग्रेजी भाषा के प्रचार-प्रसार में अभूतपूर्व योगदान रहा और उन देशों में भी इसका प्रवेश हुआ जहाँ इनका प्रयोग वर्जित जैसा ही था, यूरोप के देशों और जापान-चीन जैसे देशों में युवा पीढ़ी में अंग्रेजी सीखने की ललक इसका प्रमाण है । भारत जैसे देश में इंटरनेट अभी भी काफी सीमित है । इस देश की पढ़ी लिखी युवा पीढी इसका उपयोग कर रही है और शहरी स्कूलों में आरंभ से ही बच्चों को कम्प्यूटर और इंटरनेट से जोड़ा जा रहा है । इससे नई पीढ़ी पूरी तरह अंग्रेजी साम्राज्यवाद के शिकंजे में है और अमेरिका उनका स्वर्ग और सपना बनता जा रहा है । इसने युवा पीढ़ी की मानसिकता, भाषा, सोच और संस्कार को भी प्रभावित किया है । युवा पीढ़ी 'ग्लोबल' तो हो ही रही है पर जो ज्ञान उन्हें प्राप्त हो रहा है उसकी विश्वसनीयता संदिग्ध है । इससे सूचना तो आसानी से मिल जाती है पर इसने पढ़ने, शोध करने और सोचने की प्रवृत्ति को नुकसान पहुँचाया है । इससे युवा पीढ़ी का व्यक्तित्व कमजोर हुआ है ।

जनसंचार माध्यमों ने व्यक्ति में एक अलगाव बोध पैदा किया है । मनोरंजन करने और रोजमर्रा की परेशानियों से मुक्ति का दावा करने वाले ये माध्यम लोगों को समाज से अलग-अलग भी करते हैं । ये जो सूचना उपलब्ध कराते हैं उससे एक साझा सोच तैयार होती है । आतंकवाद इसका एक ज्वलंत उदाहरण है जिसे एक खास समुदाय के साथ जोड़कर देखने की मानसिकता 'ग्लोबल' हो गई है । ये दुनिया को एक खास चश्मे से देखने को विवश करते हैं । ये लोकतंत्र में हस्तक्षेप करते हैं और सामाजिक जीवन में व्यक्ति की भागीदारी तय करते हैं । ये सामाजिक और पारिवारिक रिश्तों में भी हस्तक्षेप करने लगे हैं । अंधविश्वास और लोक मान्यताओं को भी ये उत्पाद बनाकर पेश करते हैं । अपराध भी मुनाफा कमाने का साधन बन गया हैं । भारतीय टेलीविजन इसका ज्वलंत उदाहरण है । पूरा समाज इससे प्रभावित है । लोगों में परस्पर बढ़ती असहिष्णुता, नफरत, क्रोध और विदेश में जनसंचार माध्यमों की बड़ी भूमिका है ।

5.5 सारांश

प्रौद्योगिकी मनुष्य की जरूरतों को पूरा करती रही है और मनुष्य अपनी जरूरतों के अनुसार लगातार इनका विकास करता रहा है । सम्प्रेषण मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता रही है । मनुष्य क्या पशु-पक्षी या सभी जीवित प्राणी किसी न किसी तरह अपने को सम्प्रेषित करने का प्रयास करता रहा है । ध्वनि, अंग संचालन, भाव मुद्रा वैयक्तिक सम्प्रेषण का प्रमुख माध्यम रहा है । इसके बाद चित्रकला, लेखन, भाषा जैसी प्रौद्योगिकियो का विकास हुआ जो मुद्रण, कागज और स्याही जैसी प्रौद्योगिकियों के विकास से स्थाई रूप ग्रहण करने लगी ।

औद्योगिक क्रांति के पहले श्रम आधारित प्रौद्योगिकियों का चलन था । इसमें श्रम केंद्र में था । औद्योगिक क्रांति ने श्रम के स्थान पर मशीन को केंद्र में ला दिया और पूँजी भी अहम भूमिका निभाने लगी । जनसंचार के काम में लाई जाने वाली कई प्रौद्योगिकियों का आविष्कार इसी दौरान हुआ मसलन टेलीफोन, टेलीग्राफ, रेल आदि । इससे संचार में तेजी आई । रेडियो के आविष्कार ने संचार को सही अर्थों में जनसंचार में तब्दील किया । अब ध्वनि दो व्यक्तियों या अधिक से अधिक एक जगह बैठे कई व्यक्तियों तक या चिल्लाकर बोलने पर कुछ दूर बैठे लोगों के लिए भी सुलभ हो गई । संदेश सम्प्रेषण की जरूरत से इस माध्यम की शुरूआत हुई और आज सूचना, शिक्षा और मनोरंजन का सर्वसुलभ, सस्ता और दूर तक पहुँचने वाला माध्यम बन गया है । टेलीविजन, उपग्रह, कम्प्यूटर और डिजिटल तकनीक से चलने वाली अन्य प्रौद्योगिकियों ने जनसंचार के क्षेत्र में क्रांति पैदा कर दी । सम्प्रेषण अब क्षण भर की बात रह गई । सूचना, शिक्षा, मनोरंजन के क्षेत्र में अभूतपूर्व बदलाव आया । लेकिन ये माध्यम बाजार के हथियार बन गए और मुनाफा कमाने वाले साधन बनते चले गए । सूचना, शिक्षा और मनोरंजन साधन मात्र रह गए साध्य हो गया बाजार का पोषण और मुनाफा कमाना । इसे जनता में अलगाव बोध और आत्म केंद्रियता बढ़ी; परोपकार का स्थान स्वार्थ ने लिया; क्रोध हिंसा और विद्वेश को बढावा मिला । समाज की सोच को ये माध्यम निर्धारित करने लगे जिसका संचालन और सूत्र बड़े कॉरपोरेट जगत के पास है । जनसंचार माध्यम निगम पूँजीवाद के नए प्रचारक बन गए और जन माध्यमों की ताकत का कुछ हाथों में केंद्रीकरण हो गया जिससे सार्वजनिक मामलों में जनता की हिस्सेदारी, सार्वजनिक मुद्दों में हस्तक्षेप और समझदारी तथा सम्पूर्ण लोकतंत्र और समाज का कामकाज प्रभावित हुआ ।

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जनसंचार के परंपरागत माध्यमों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कीजिए ।
2. प्राक् आधुनिक समाजों में जनसंचार के माध्यमों की आवश्यकता के कारण बताते हुए ऐसे कुछ माध्यमों का उल्लेख कीजिए जिनकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है ।
3. आधुनिक प्रौद्योगिकी ने जनसंचार माध्यमों को किस तरह प्रभावित किया है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए ।
4. मुद्रण ने लेखनकला को किस रूप में प्रभावित किया है? बताइए ।
5. दृश्य-श्रव्य माध्यमों में प्रयुक्त होने वाली प्रौद्योगिकी का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कीजिए।

5.7 सन्दर्भ ग्रंथ

1. देवेंद्र इस्सर; जनमाध्यम, संप्रेषण और विकास, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, के-71, कृष्णनगर, दिल्ली - 110051, संस्करण : 1995
2. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार के सामाजिक संदर्भ, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 29ए, पाकेट-डी, दीप एन्कलेव, अशोक विहार, दिल्ली- 110052
3. बृजमोहन गुप्त; जनसंचार माध्यम विविध आयाम; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

4. संपादक सीन मेकब्राइड; मेनी वाइसेज वन वर्ल्ड, यूनेस्को का प्रतिवेदन, कोगन पेज लि, लंदन, संस्करण, 1998
5. रेमंड विलियम्स; जनसंचार माध्यमों का वर्ग चरित्र, ग्रंथ शिल्पी, नयी दिल्ली.
6. जान आर. पटिनर; मास कम्युनिकेशन, एलिन एंड बेकन, लंदन
7. जान बी थाम्पसन; आइडियोलोजी एंड मोडर्न कल्चर, पोलिटी प्रेस, यू.के.
8. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, 2000; ग्रंथशिल्पी, दिल्ली- 110091

इकाई 6 जनसंचार के सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

60 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 जनसंचार के सिद्धांत आधार और विकास

6.3 जनसंचार की विद्युतीय प्रक्रिया

6.4 जनसंचार और माध्यम

6.5 जनसंचार की प्रक्रिया

6.6 जनसंचार के स्रोत

6.7 जनसंचार और संदेश

6.8 जनसंचार के श्रोता, पाठक और दर्शक

6.9 सारांश

6.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.11 सन्दर्भ ग्रंथ

6.0 उद्देश्य

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता नामक पाठ्यक्रम के खंड 2 की यह पहली और पाठ्यक्रम की छठी इकाई है । इस इकाई में आप जनसंचार के सिद्धांतों का अध्ययन करेंगे । इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- जनसंचार के सिद्धांतों के आधार और उनके विकास का परिचय प्राप्त करेंगे ।
- जनसंचार की विद्युतीय प्रक्रिया को समझ सकेंगे ।
- जनसंचार और उसके लिए आवश्यक माध्यमों का उल्लेख कर सकेंगे ।
- जनसंचार के विभिन्न स्रोतों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- जनसंचार और उससे संप्रेषित होने वाले संदेशों का अंत:संबंध समझ सकेंगे; और
- जनसंचार के साथ श्रोता, पाठक और दर्शक के संबंधों को समझ सकेंगे ।

6.1 प्रस्तावना

जनसंचार के सिद्धांतों के अध्ययन से संबंधित इस इकाई में आप जनसंचार के सिद्धांतों के आधार और विकास का परिचय प्राप्त करेंगे । जनसंचार के सिद्धांत कैसे अस्तित्व में आते हैं। क्या उनमें परिवर्तन होता रहता है और अगर परिवर्तन होता है तो उसका आधार क्या होता है, ऐसे कई सवाल हैं जो जनसंचार के सिद्धांतों से संबंधित हैं और जिनके बारे में आप इस इकाई में अध्ययन करेंगे । जनसंचार के सामाजिक सिद्धांत कौन-कौन से हैं । इसके बारे में आप इकाई-7 में अध्ययन करेंगे ।

जनसंचार के सिद्धांतों के अध्ययन को जनसंचार के विभिन्न तत्त्वों और पक्षों के सन्दर्भ में ही समझना होता है । जनसंचार के विकास का संबंध उस तकनीकी विकास से है जिसका संबंध विद्युत ऊर्जा से । इसलिए जनसंचार के सिद्धांत के अध्ययन के लिए जरूरी है कि हम उस विद्युतीय प्रक्रिया को समझें जिसके बिना जनसंचार के आधुनिक माध्यमों का अस्तित्व संभव नहीं था ।

जनसंचार के लिए किसी न किसी माध्यम की आवश्यकता होती है । जनसंचार के सन्दर्भ में माध्यम का क्या तात्पर्य है? क्या सभी जनसंचार में एक ही तरह के माध्यम की आवश्यकता होती है या माध्यमों की भिन्नता से जनसंचार में भिन्नता आती है? माध्यम का निर्धारण कैसे होता है और उससे जनसंचार की अंतर्वस्तु पर क्या प्रभाव पड़ता है? ये और इसी तरह के कुछ सवालों का अध्ययन हम इस इकाई में करेंगे ।

जनसंचार के माध्यमों के फर्क के अनुसार उसकी प्रक्रिया में भी अंतर आता है । समाचारपत्र, रेडियो और सिनेमा में एक सी प्रक्रिया नहीं होती । हाँ, उनमें कुछ बुनियादी एकता जरूर होती है लेकिन उनमें प्रक्रियागत भिन्नता भी होती है । ये भिन्नता किस तरह निर्धारित होती है और उससे जनसंचार माध्यमों पर क्या प्रभाव पड़ता है इस पर भी हम इस इकाई में विचार करेंगे ।

जनसंचार के सिद्धांतों के निर्धारण में उन स्रोतों की भी भूमिका होती है जो जनसंचार के स्वरूप को प्रभावित करते हैं । जनसंचार के ये स्रोत कौन-कौन से हैं और क्या अलग-अलग माध्यमों में ये स्रोत भी अलग-अलग होते हैं, इस पहलू पर भी विचार करने की जरूरत है । जनसंचार के विभिन्न स्रोतों की पड़ताल करते हुए जनसंचार के सामाजिक संदर्भो पर भी विचार करना होगा ।

जनसंचार के सभी माध्यम तभी तक अर्थवान है जब तक कि वे अपने ग्रहीताओं तक पहुँचते हैं । समाचारपत्र के पाठक, सिनेमा के दर्शक और रेडियो के श्रोता जनसंचार के सिद्धांतों के निर्माण में किस तरह भूमिका अदा करते हैं? क्या सभी तरह के माध्यमों के ग्रहीता एक से होते हैं । क्या ग्रहीता प्रत्येक माध्यमों के पास एक ही तरह की जरूरत से प्रेरित होकर जाता है ? इन सवालों के सन्दर्भ में ही हम जनसंचार माध्यमों के सिद्धांतों के अध्ययन का आधार प्राप्त कर सकेंगे ।

इस इकाई में जनसंचार के सिद्धांत के विभिन्न पहलुओं का हम परिचय प्राप्त करेंगे ताकि अगली इकाई में हम जिन सिद्धांतों की चर्चा करने जा रहे हैं उनको सही परिप्रेक्ष्य में समझ सकें ।

6.2 जनसंचार के सिद्धांत: आधार और विकास

जनसंचार के सिद्धांत पर विचार करने से पहले हमें यह समझना होगा कि जनसंचार के सिद्धांत का आधार क्या है? जनसंचार के माध्यम में तीन शब्द महत्वपूर्ण हैं - जन, संचार और माध्यम । संचार का वह माध्यम जो व्यापक जनसमूह के लिए हो उन्हें हम, जनसंचार माध्यम कह सकते हैं । यही यह प्रश्न उठ सकता है कि व्यापक जनसमूह से क्या तात्पर्य है? यहाँ एक उदाहरण से इस बात को समझ सकते हैं । जब रहमान रेडियो पर समाचार सुनता है, तो वह

समाचार बुलेटिन सिर्फ रहमान के लिए प्रसारित नहीं हो रहा है, वह उन लाखों लाख लोगों के लिए भी प्रसारित हो रहा है जो अपने-अपने रेडियो सेटों पर उस समाचार को सुन रहे हैं या नहीं सुन रहे हैं । लेकिन वही रहमान जब टेलीफोन पर अपने पिता से बात करता है तो वह बात सिर्फ उसके और उसके पिता के लिए है, उन लाखों लाख लोगों के लिए नहीं है जिनके घर पर भी टेलीफोन है । संचार के ये दोनों माध्यम व्यापक जनसमूह के लिए उपलब्ध होते हुए भी क्या दोनों को जनसंचार कह सकते हैं? नहीं । रेडियो जनसंचार का माध्यम है क्योंकि वहाँ से जो संदेश प्रसारित हो रहा है वह किसी एक व्यक्ति के लिए नहीं है वह उन सभी के लिए है जिनके पास उस संदेश को ग्रहण करने के लिए जरूरी साधन उपलब्ध हैं । यही बात टेलीविजन के कार्यक्रमों पर लागू होती है । इसका तात्पर्य यही है कि जनसंचार माध्यम उसी को कहेंगे जो एक साथ व्यापक जनसमूह के लिए संदेशों का संप्रेषण करता हो । इस दृष्टि से विचार करने पर हमारे सामने कई तरह के जनसंचार माध्यम उपस्थित हो जाते हैं । मुद्रित माध्यम जिनमें समाचारपत्र, पत्रिकाएँ और पुस्तकें आ जाती हैं । इनसे संप्रेषित संदेश को व्यक्ति पढ़कर ग्रहण करता है । दूसरा श्रव्य माध्यम रेडियो है जिसे व्यक्ति सुनकर ग्रहण करता है । तीसरा दृश्य माध्यम है, जिसके अंतर्गत सिनेमा और टेलीविजन आते हैं और जिनको, व्यक्ति देखकर और सुनकर ग्रहण करता है । जनसंचार का आधुनिकतम माध्यम इंटरनेट है जिसमें उपर्युक्त तीनों तरह के माध्यमों को एक साथ ग्रहण किया जा सकता है । यही नहीं इंटरनेट पर संचार के वैयक्तिक माध्यम भी उपलब्ध हो जाते हैं ।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जनसंचार माध्यम के लिए अनिवार्य शर्त उसका व्यापक जनसमूह के लिए उपलब्ध होना है । लेकिन उपर्युक्त बातचीत से ही हमारे सामने कुछ और बातें भी उभर कर आई है । हम देखते हैं कि सभी माध्यम संदेशों का प्रसारण करते हैं । दूसरे शब्दों में, संदेशों का प्रसारण करने के कारण ही वे संचार के माध्यम हैं । मुद्रित माध्यम में यह लिखित शब्दों द्वारा, श्रव्य माध्यम में यह आवाज और ध्वनियों द्वारा और दृश्य माध्यम में दृश्य और आवाज दोनों माध्यमों से । क्या इससे संदेश की प्रकृति पर असर पडता है? क्या एक ही संदेश को इन तीनों तरह के माध्यमों में एक ही तरह से भेजा जा सकता है? यदि नहीं, तो माध्यम के अनुसार संदेश में परिवर्तन करने से संदेश के मूल मंतव्य पर भी असर पडेगा?

जनसंचार माध्यमों के सन्दर्भ में तीसरा अहम सवाल यह पैदा होता है कि क्या इन माध्यमों द्वारा कोई भी संदेश भेजा जा सकता है । समाचारपत्र हो या रेडियो या टेलीविजन हम जानते हैं कि इन माध्यमों के लिए कई तरह के यंत्रों की आवश्यकता होती है जिनके उपयोग के लिए कुशल तकनीशियनों की जरूरत होती है । यही नहीं संदेशों के उपयुका प्रसारण के लिए भी कुशल व्यावसायिकों की आवश्यकता होती है । क्या इनके बिना संदेश प्रसारित किया जा सकता है? फिर सवाल यह भी पैदा होता है कि इन यंत्रों को कौन उपलब्ध कराएगा? सरकार, उद्योगपति या कोई भी सामान्य नागरिक? इसके लिए आवश्यक धन जुटाना, कुशल तकनीशियनों और निष्पादनों (परफोर्मर) की सेवाएँ प्राप्त करना और व्यापक प्रसारण क्षेत्र बनाने के लिए संजाल स्थापित करना जनसंचार के लिए जरूरी काम है । क्या इन सब बातों का जनसंचार की प्रकृति पर असर पड़ता है ।

जनसंचार से संप्रेषित होने वाले संदेश का तब तक कोई मतलब नहीं है जब तक कि वह ज्यादा से ज्यादा लोगों तक न पहुँचे और वे उस संदेश को प्राप्त करने के इच्छुक न हो । क्या संदेश की प्रकृति इस बात से निर्धारित होती है कि उसे किन लोगों तक पहुँचना है? या संदेश अपने में पूरी तरह स्वतंत्र होते हैं? क्या संदेश के संप्रेषण में लगे निष्पादक उसके मूल मंतव्य को प्रभावित करते हैं? क्या जिस माध्यम से संदेश भेजे जा रहे हैं वे प्रोद्योगिकी भी संदेश को प्रभावित करती है? ये और ऐसे से कई सवाल हैं जो संदेश के ग्रहीता चाहे वह पाठक हों या श्रोता या दर्शक, उनके श्रोता पर निर्भर करती है ।

जनसंचार माध्यमों से प्रसारित होने वाले संदेश लोगों को किस हद तक प्रभावित करते हैं' क्या जनसंचार माध्यम इतने अपरिहार्य हो गये हैं कि लोगों का इसके बिना काम नहीं चल सकता? वे जनसंचार का उपयोग क्यों करते हैं? सूचना के लिए, शिक्षा के लिए या सिर्फ मनोरंजन के लिए? जो सूचना इन माध्यमों द्वारा भेजी जाती हैं क्या वे पूरी तरह वस्तुपरक और निष्पक्ष होती है? क्या मनोरंजन स्वस्थ और समाज के लिए हितकारी होता है? क्या सभी नागरिकों को जनसंचार माध्यम समान रूप से उपलब्ध हैं ताकि वे उससे मिलने वाली सूचनाओं, शिक्षाओं ओर मनोरंजन में भागीदार बन सके' भारत जैसे देश में जनसंचार माध्यमों की उपलब्धता की सीमाएँ हमारे सामने उजागर है । समाचार सिर्फ शिक्षित समाज को उपलब्ध है । टेलीविजन महँगा माध्यम है । टेलीविजन सेट खरीदना अभी भी अधिकांश आबादी के लिए आसान नहीं है । ये साधन सिर्फ मध्यमवर्ग तक सीमित है । ऐसे में जनसंचार माध्यमों से प्रसारित संदेश सभी तक कैसे पहुँच सकते हैं?

उपर्युक्त विवेचन से साफ है कि जनसंचार माध्यम के बारे में कोई भी सिद्धांत तब तक महत्वपूर्ण नहीं हो सकता जब तक कि वे इन सवालों से दो-चार नहीं होते । ये सवाल निम्नलिखित क्षेत्रों से संबंधित हैं -

1. जनसंचार किस तरह की प्रौद्योगिकी पर आधारित है?
2. जनसंचार से संबंधित यंत्रों, संस्थानों और सेवाओं पर किसका अधिकार है और उस अधिकार की प्रकृति क्या है?
3. जनसंचार से किस तरह के संदेश भेजे जाते हैं और किनके लिए?
4. जनसंचार लोगों पर किस तरह का प्रभाव डालते हैं? वह उनके आर्थिक, राजनीतिक, माजिक और सांस्कृतिक जीवन को कैसे प्रभावित करता है? क्या आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियाँ जनसंचार माध्यमों को प्रभावित करती है'
5. क्या जनसंचार भी अपने ग्रहीताओं से प्रभावित होता है'
6. जनसंचार माध्यमों से जो संदेश भेजा जाता है, उसे कौन नियंत्रित और निर्धारित करता है? प्रौद्योगिकी, निष्पादक, ग्रहीता और तत्कालीन राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था?

जनसंचार के सिद्धांतों पर विचार करते हुए ये सभी सवाल सहज ही उपस्थित हो जाते हैं । क्या सिद्धांत निर्माण की प्रक्रिया इन सवालों से टकराए बिना पूरी हो सकती है? प्रश्न सिर्फ

यह है कि आप उपर्युक्त सवालों में से किन्हें ज्यादा जरूरी समझते हैं? अगर आपकी नजर में जनसंचार माध्यम संदेशों को भेजने के विभिन्न साधनों का समुच्चय है और उसी नजर से इसे देखा जाना चाहिए तो आपके लिए इस बात का ज्यादा महत्व नहीं होगा कि संदेश किस तरह का है, उससे समाज और संस्कृति पर क्या असर पड़ेगा? अगर आपकी नजर में जनसंचार एक विकासमान उद्योग है तो आप सिर्फ इस पक्ष पर विचार करेंगे कि इन माध्यमों को एक व्यवसाय के रूप में कैसे सफल बनाया जा सकता है? तब भी आप सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक सवाल नहीं उठाएंगे । लेकिन आपके विचार में जनसंचार माध्यम एक सामाजिक माध्यम है तो आप इसके समाज पर पड़ने वाले प्रभावों पर अवश्य विचार करेंगे । इसी तरह अगर आपके विचार में जनसंचार माध्यमों से जो संदेश उत्पादित होते हैं वे सांस्कृतिक उत्पाद हैं तो आप उस पर सांस्कृतिक दृष्टि से विचार करेंगे । जनसंचार माध्यमों के अध्ययन के इन चारों पहलुओं का महत्त्व है और सिद्धांतों के अध्ययन को भी हम इन चार भागों में बांट सकते हैं ।

उपर्युक्त चार पहलुओं में से प्रत्येक पहलू अपने में कई प्रश्नों और पक्षों को अपने में समेटे होता है । उदाहरण के लिए यदि हम सिर्फ जनसंचार माध्यम को संदेश भेजने के साधन के रूप में देखते हैं, तो भी उससे जुड़ी प्रौद्योगिकी, संदेश भेजने की पद्धति, तकनीशियनों और निष्पादकों की भूमिका संकेत प्रणाली, माध्यम की विशिष्टता आदि कई सवाल हमारे सामने आ खड़े होते हैं । मसलन, सिनेमा और टेलीविजन दोनों दृश्य माध्यम हैं । लेकिन दोनों की प्रकृति एक सी नहीं है । फिल्म को हम सिनेमाघर में जाकर देखते है और टेलीविजन को हम घर पर देखते हैं । सिनेमाघर में फिल्म अंधेरे में एक बड़े से सफेद पर्दे पर देखते हैं जहाँ दृश्यों का आकार अपने वास्तविक आकार से बड़ा होता है जबकि टेलीविजन को हम घर के किसी भी कमरे में बिना अंधेरा किए टेलीविजन सेट पर देखते हैं और उसमें दृश्य अपने वास्तविक आकार से हमेशा छोटे होते हैं । क्या तकनीकी का यह फर्क दोनों के संदेश की प्रकृति और ग्रहीता पर पड़ने वाले प्रभाव को प्रभावित नहीं करेगा?

जनसंचार के सिद्धांतों का निर्माण और विकास इन माध्यमों के विकास से जुड़ा है । जनसंचार माध्यमों के विकास का संबंध आधुनिक वैज्ञानिक और तकनीकी विकास से है । प्रेस की स्थापना हो या ब्रॉडकास्टिंग । विद्युत ऊर्जा की खोज ने ही जनसंचार माध्यमों के विकास को संभव बनाया है । इनके विकास का संबंध तकनीकी विकास से काफी गहरा है । इस क्षेत्र में जो परिवर्तन हुए उसने नए माध्यम भी विकसित किए और पुराने माध्यमों के स्वरूप को भी बदला । एक ओर जनसंचार माध्यमों में मुद्रित श्रव्य और दृश्य माध्यमों का विकास हुआ, तो दूसरी ओर स्वयं प्रेस की तकनीक आज पूरी तरह बदल चुकी है । इसी प्रकार सिनेमा वह नहीं रह।- है जिसे ल्यूमिए बंधुओं ने आरंभ किया था । कहने का तात्पर्य यह है कि जनसंचार माध्यमों के विकास ने उसके सिद्धांतों पर भी असर डाला । जनसंचार माध्यमों के फैलते प्रभाव और व्यापक होती भूमिका ने भी जनसंचार माध्यमों के सिद्धांतों को प्रभावित किया है । आज सूचना प्रौद्योगिकी, मनोरंजन और कंप्यूटर अपने स्वतंत्र उद्योग बन गए हैं । इसने कई सिद्धांतकारों को यह सोचने के लिए मजबूर किया है कि क्या इसका असर विश्व की आर्थिक-सामाजिक स्थिति पर भी पड़ेगा । भूमंडलीकरण की जिस धारणा की आज चारों ओर चर्चा है

उसका गहरा संबंध इस सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार से है । सूचना प्रौद्योगिकी की नवीनतम उपलब्धियों ने दुनिया को गाँव में बदल दिया है और अब विश्व ग्राम की बात की जाने लगी है।

लेकिन इसके साथ ही यह भी एक सच्चाई है कि इस नयी प्रौद्योगिकी की पहुँच सभी देशों और सभी समाजों के सभी लोगों तक समान रूप से नहीं है । दुनिया की अधिकांश आबादी इस विश्व ग्राम से बाहर है । ऐसी स्थिति में क्या जनसंचार माध्यमों पर कोई भी विमर्श इस अंतर्विरोधी स्थितियों की उपेक्षा करके संभव है? इस प्रकार जनसंचार माध्यम से प्रसारित होने वाले संदेश की अभिव्यक्ति से जुड़ा प्रश्न भी है । क्या इन माध्यमों के जरिए किसी भी व्यक्ति को कुछ भी संप्रेषित करने का अधिकार है? हम आमतौर पाते हैं कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रश्न इतना सरल नहीं होता । लोकतांत्रिक समाजों में भी किसी न किसी बहाने सरकारें लोगों की अभिव्यक्ति के अधिकारों को दबाती रहती हैं । ऐसे में जनसंचार माध्यमों को बाहरी दबावों से मुक्त रखकर लोगों की बौद्धिक और आत्मिक जरूरतों में वे किस हद तक सहायक हो सकते हैं इस बात को भी दृष्टि में रखना जरूरी हो जाता है । इन बातों को मद्देनजर रखते हुए ही हम जनसंचार क सिद्धांतों को निर्माण और विकास पर बातचीत कर सकते हैं । लेकिन इससे पहले उस तकनीकी विकास को समझना जरूरी है जिसने आधुनिक जनसंचार माध्यमों का अस्तित्व संभव बनाया ।

6.3 जनसंचार की विद्युतीय प्रक्रिया

संचार प्रौद्योगिकी वह प्रौद्योगिकी है जिसका संबंध संचार की प्रक्रियाओं से है । संचार की प्रक्रियाओं में संचार उत्पादों का निर्माण, प्रसंस्करण, पुनरुत्पादन और परावर्तन शामिल है । प्रौद्योगिकी का तात्पर्य यंत्रों से ही नहीं है । हालांकि आमतौर पर प्रौद्योगिकी का प्रयोग इसी अर्थ में किया जाता है । किसी काम को संपन्न करने के लिए प्रयुक्त विशेष प्रविधि जिससे कि उक्त काम को निश्चित तौर पर संपन्न किया जा सकता है, प्रौद्योगिकी कहलाता है (एवरेट्ट एम. रोजर्स, कम्युनिकेशन टेक्नोलोजी, दि फ्री प्रेस, न्यूयार्क, 1986 पृ. 1) । उदाहरण के लिए, लिखने के लिए कागज, कलम और स्याही का प्रयोग करना एक विशेष प्रौद्योगिकी है, तो बिना भाषा की जानकारी के भी नहीं लिखा जा सकता । इसलिए भाषा भी एक तरह की प्रौद्योगिकी ही है । भाषा में अक्षरों की विशेष ध्वनि, शब्दों का विशेष अर्थ और वाक्यों से निकलने वाले अर्थ के कारण ही हम संदेश का संप्रेषण करने के लिए भाषा का प्रयोग करते हैं । इस प्रयोग के अपने नियम और अपनी पद्धतियाँ हैं और इनका निरंतर विकास भी होता रहता है । प्रौद्योगिकी के ये दोनों रूप सूचना प्रौद्योगिकी के सन्दर्भ में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । टेक्नोलॉजी की भाषा में कागज, कलम और स्याही को हार्डवेयर और भाषा को सॉफ्टवेयर कह सकते हैं । आमतौर पर कम्प्यूटर के सन्दर्भ में इस शब्दावली का ज्यादा प्रयोग किया जाता है । कंप्यूटर प्रौद्योगिकी में प्रयुक्त होने वाले उपकरण जैसे, हार्ड डिस्क, मॉनीटर, मोडेम, की बोर्ड और अन्य विद्युत और इलेक्ट्रॉनिक उपकरण, हार्डवेयर के अंतर्गत आएँगे जबकि कंप्यूटर में प्रयुक्त सांकेतिक निर्देश जिनके आधार पर हम इन उपकरणों को प्रयोग करते हैं, सॉफ्टवेयर कहलाता है। एक मायने में टेक्नोलोजी के ये दोनों रूप एक दूसरे से जुड़े होते हैं और इनमें पारस्परिक निर्भरता होती है । टेक्नोलॉजी कोई ऐसी स्वायत्त वस्तु भी नहीं है जिसे हम शेष समाज से

अलग कर सकें (एवरेट्ट एम. रोजर्स, पृ.1) । समाज की संरचना के आरंभ से ही प्रौद्योगिकी का विकास होता रहा है । अगर हम यह कहें कि मानव सभ्यता के विकास का अर्थ है टेक्नोलोजी का विकास तो यह बहुत गलत न होगा । हालांकि मानव सभ्यता के विकास को टेक्नोलॉजी के विकास में घटाकर देखना उचित नहीं है । यह मानव श्रम है जिसने मनुष्य को वानर से मनुष्य और आदिम मनुष्य से आधुनिक मनुष्य बनाया है ।

प्राक् औद्योगिक समाजों में संचार प्रौद्योगिकी के विकास की शक्ति यह थी कि उसने संदेशों को दूसरों तक संप्रेषित करने के लिए माध्यमों की तलाश की । ऐसे माध्यम जिससे संदेश को सही और पूरे रूप में तथा जल्दी से जल्दी भेजे जा सकें । दूसरा, उन्होंने संदेश को भंडारित करने और उसकी प्रतियाँ बनाने की कोशिश की ताकि संदेश को ज्यादा लोगों तक पहुँचाया जा सके । तीसरा प्रयास था समय की बचत करते हुए जल्दी से जल्दी संदेश को संप्रेषित करना । लेकिन औद्योगिक समाज में यही सारे काम और ज्यादा बड़े पैमाने पर और व्यापक जन समुदाय के लिए करने की आवश्यकता महसूस की गई । लेकिन जा सबसे महत्त्वपूर्ण काम इस दौर में किया गया था संदेश को एक स्थान से दूसरे स्थान भेजने के लिए ऐसे माध्यमों का प्रयोग करना जहाँ उनको सफर करने के लिए मानवीय माध्यम की जरूरत न पड़े और दूरी भी इतनी तीव्र गति से तय की जा सके कि समय के गुजरने का अनुभव ही समाप्त हो जाएँ इसके साथ ही इन माध्यमों का सार्वजनिक इस्तेमाल व्यापक पैमाने पर हो सके और इसको व्यवसाय का रूप भी दिया जा सके । औद्योगिक युग में संचार प्रौद्योगिकी का विकास स्वतंत्र रूप से नहीं हुआ । इनका संबंध दूसरे आविष्कारों से है, जिसने उत्पादन के साधनों में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया । इन साधनों में ऊर्जा और यांत्रिक बल की उत्पत्ति की नयी प्रौद्योगिकी शामिल हैं । विद्युत और भाप से उत्पन्न ऊर्जा का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है ।

विद्युत ऊर्जा ने संचार प्रौद्योगिकी के विकास में सबसे अहम भूमिका निभाई । यह ऊर्जा का ऐसा रूप था जिसमें ऊर्जा को तारों के माध्यम से एक स्थान से दूसरा स्थान पहुँचाया जा सकता था । विद्युत जिस धातु के तार से प्रवाहित होता है वह उसे आवेशित कर देता है, उससे करंट प्रवाहित होने लगता है। इससे कई तरह के काम लिए जा सकते हैं । संचार के क्षेत्र में विद्युत ऊर्जा के कारण जो सबसे बड़ा परिवर्तन हुआ वह यह था कि पहली बार संदेश और संदेश के माध्यम में अलगाव पैदा हुआ । अभी तक आमतौर पर जो संदेश होता था, उसे उसी रूप में भेजा जाता था । लिखकर, चित्र बनाकर या मौखिक रूप में । लेकिन अब विद्युत ऊर्जा के कारण ऐसी प्रौद्योगिकी खोजी जा सकी जिसमें भेजा गया संदेश उसी रूप में प्रेषित नहीं होता था, वह संकेतों की भाषा में प्रेषित किया जाने लगा । वैसे तो भाषा भी एक तरह का संकेत माध्यम भी है, लेकिन अब जो तकनीक अपनाई गई उसमें संकेतों की यह भाषा भी सांकेतिक रूपों में भेजे जानी लगी ।

स्टीफन सेक्सबी ने अपनी पुस्तक 'दि इन्फ़ोर्मेशन एज' में टेलीग्राफ के आविष्कार का विवरण प्रस्तुत किया है । 1753 में, स्कॉट मैगजीन में चार्ल्स मॉरिसन ने विद्युत टेलीग्राफ की भविष्यवाणी की थी उसके अनुसार अंग्रेजी के छब्बीस अक्षरों के लिए छब्बीस तार होंगे जो संदेश भेजने और प्राप्त करने वाले स्थलों को आपस में जोड़ेंगे । संदेश को एक-एक अक्षर के रूप में

भेजा जाएगा । प्रत्येक तार एक मशीन से जुड़ा होगा जो विद्युत करंट पैदा करेगा और जिसके द्वारा संदेश प्राप्त करने वाले स्थान पर विद्युत करंट के रूप में संदेश को प्राप्त किया जा सकेगा । इस भविष्यवाणी के बीस साल बाद यह महसूस किया गया कि 26 अक्षरों का काम एक तार द्वारा किया जा सकता है, यदि प्रत्येक अक्षर के लिए संकेत कार्य प्रयोग किया जाएँ ये सभी विचार जिस एक चीज से जुड़े थे, वह थी विद्युत की खोज और उससे संबद्ध चुम्बकीय शक्ति । विद्युत की खोज ने कई नई चीजों के आविष्कार का मार्ग प्रशस्त किया । विद्युत ऊर्जा के द्वारा पैदा की गई चुम्बकीय शक्ति के जरिए संदेश भेजने का काम उन्नीसवीं सदी के चौथे दशक में आरंभ हो गया । धीरे-धीरे इसका विस्तार यूरोप, अमरीका और एशिया में भी हो गया । भारत में इसको तार के नाम से पुकारा गया क्योंकि यह संदेश तारों के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान तक यात्रा करते थे । तार द्वारा संदेश भेजने की तकनीक का असर व्यापारिक और राजनीतिक दोनों क्षेत्रों पर दिखाई दिया । अब समाचारों को भी तार के जरिए एक जगह से दूसरी जगह विद्युत गति से भेजा सकता था । शुरू में विद्युत तार द्वारा प्राप्त संदेशों को हाथ से लिखना पड़ता था । लेकिन 1845 में संदेश को छापने की पद्धति का प्रयोग तेजी से होने लगा था । सिर्फ एक मिनट में 180- 190 शब्दों को यह यंत्र संप्रेषित कर देता था । इसने तारों की उपयोगिता इतनी बढ़ा दी कि उन्नीसवीं सदी के अंत तक लगभग नौ करोड़ टेलीग्राम भेजे गये थे । 1889 में तारों का प्रयोग मनीऑर्डर के लिए भी किया जाने लगा । टेलीग्राम के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन तब आया जब बिना तारों की मदद के टेलीग्राम भेजना संभव हुआ ।

विद्युत की चुम्बकीय शक्ति का प्रयोग करके संदेश भेजने की पद्धति का प्रयोग सफलतापूर्वक करने के बाद सूचना प्रौद्योगिकी की एक और उपलव्यि थी - टेलीफोन का आविष्कार । तार के द्वारा संदेश को भेजने में संदेश भेजने वाला और संदेश प्राप्त करने वाला सीधे बात नहीं करते थे बल्कि संदेश लिखित रूप में भेजा जाता था । यह लिखित भाषा संकेतों की भाषा होती थी । लेकिन एलेक्जेंडर ग्राहम बेल ने 1876 में टेलीफोन का आविष्कार किया जिसके माध्यम से आवाज को एक स्थान से दूसरे स्थान तक तारों के माध्यम से भेजा जाना संभव हो सका । बेल को टेलीफोन की प्रेरणा तार से ही मिली । बेल ने विचार किया कि यदि इलेक्ट्रॉमेग्नेटिक माइक्रोफोन के साथ तार को जोड़ दिया जाए और उसमें विद्युत प्रवाहित की जाए तो आवाज को भेजा जा सकता है । उसने पाया कि आवाज हवा के दबाव में मामूली परिवर्तन करती है । उसने यह जानना चाहा कि यदि वह उन परिवर्तनों को विद्युत संकेतों के अंतर्गत दोहराए तो क्या उन्हें टेलीग्राम के साथ ट्रांसमिट किया जा सकता है । इस प्रक्रिया में लोहे की वृत्ताकार शीट का एक पतला डाइफ्रेम शामिल था जिस पर ध्वनि तरंगों को उछाला जाता था और तब वे ध्वनि तरंगें स्वर के रूप में कंपित होती थी । तब प्राप्त करने वाले उपकरण के जरिए उसे आवाज के रूप में सुना जा सकता था । बेल ने विद्युत तारों के जरिए यह प्रयोग आठ मील दूर बैठे अपने पिता की आवाज सुनकर सफलतापूर्वक संपन्न किया। आरंभ में इस प्रयोग में कई कठिनाइयाँ भी आई । लेकिन शीघ्र ही यह यत्र दो व्यक्तियों के बीच बातचीत का ऐसा जरिया बन गया जो एक दूसरे से सैंकडो मील दूर क्यों न बैठे हों । सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में यह आविष्कार एक और मील का पत्थर साबित हुआ । कुछ ही सालों में

टेलीफोन के तार एक शहर से दूसरे शहर तक फैलते चले गए । टेलीफोन अब ग्राहम बेल के समय से काफी बदल चुका है । अब दुनिया के किसी कोने में बैठा हुआ व्यक्ति बिना तारों की मदद के टेलीफोन द्वारा बात कर सकता है ।

तारों के द्वारा संदेश भेजने में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ थीं । सबसे भारी कठिनाई यह भी थी कि तारों को समुद्रों के बीच बिछाना आसान काम नहीं था । दूसरे, तारों का रख-रखाव भी अपने में बड़ी समस्या थी । इसलिए यह जरूरी था कि कोई ऐसा तरीका खोजा जाता जिसमें तारों के बिना ही संदेशों को दूर तक भेजना संभव हो सके । जर्मन वैज्ञानिक हेनरिक हेज ने अपनी प्रयोगशाला में विद्युत चुम्बकीय तरंगों के साथ कुछ प्रयोग किए और 1888 में उन्होंने जिसे हम आज रेडियो तरंगें कहते हैं, उसका प्रदर्शन किया । इटली के मार्कोनी ने 1895 में पर्याप्त दूरी तक संदेश भेजने में सफलता प्राप्त की । रेडियो तरंगों ने संदेश भेजने के लिए प्रेषक और प्रेषिति स्थल के बीच तारों की जरूरत को समाप्त कर दिया । इन्हीं रेडियो तरंगों की खोज ने पहले बिना तार के टेलीग्राम, बादल में टेलीफोन और फिर रेडियो की शुरुआत की । जहाँ टेलीफोन ने यह संभव बनाया कि बिना तारों के भी दुनिया के एक हिस्से से दूसरे हिस्से के बीच सीधे बातचीत करना मुमकिन हो सकता है । वहीं रेडियो स्टेशन ने सार्वजनिक प्रसारण के एक नए युग की शुरुआत की । अभी तक सिर्फ समाचारपत्र, या किताब में प्रकाशित बात उन सभी के लिए होती है जो उन्हें पढ़ना चाहते हैं । शिक्षा का प्रसार बढ़ने के बावजूद अभी विकसित देशों की आबादी भी पूरी तरह साक्षर नहीं हो पाई थी । ऐसे में रेडियो प्रसारण की शुरुआत ने सार्वजनिक प्रसार का बिल्कुल नया रूप ही प्रस्तुत कर दिया । अब रेडियो के द्वारा लोग सुनकर तरह-तरह की जानकारी हासिल कर सकते थे उदाहरण के लिए किसी घटना के घटने के लगभग बारह से बीस घण्टे बाद समाचार के रूप में लोग अखबार में उसे पढ़ते थे । लेकिन अब उसे रेडियो के जरिए तत्काल सुन सकते थे । रेडियो ने गीत, संगीत और नाटक को जनसाधारण के लिए भी उपलब्ध करा दिया । यह सब इसलिए संभव हो सका क्योंकि सैकड़ों-हजारों मील दूर से प्रसारित होने वाली आवाजों को घर में रखा छोटा सा रेडियो पकड़ने की क्षमता रखता है । आरम्भ में यह समस्या जरूर सामने आई थी कि भिन्न-भिन्न आवाजों को कैसे पकड़ा जाए लेकिन इस समस्या का समाधान भी कर लिया गया । विभिन्न वेब और अलग-अलग फ्रिक्वेंसी पर अलग-अलग जगह से प्रसारित होने वाली आवाजों को सुना जा सकता था । आज हम रेडियो को जितने साफ ढंग से सुन सकते हैं वैसा आरंभ में -नहीं था । पहले रेडियो को हेडफोन लगाकर सुनना पड़ता था । बाद में बड़े आकार के रेडियो आए लेकिन ट्रांजिस्टर ने रेडियो के क्षेत्र में गुणात्मक परिवर्तन ला दिया । ट्रांजिस्टर ने रेडियो का आकार छोटा कर दिया । अब उसे उठाकर ले जाया जा सकता था और बिना बिजली की मदद के भी चलाया जा सकता था । इसने इस यंत्र की कीमत को भी काफी कम कर दिया ।

जनसंचार की सबसे बड़ी उपलब्धि दृश्य माध्यम के क्षेत्र में हुई । गतिशील चित्रों के आविष्कार का श्रेय थामस एडिसन को जाता है । लेकिन शुरुआत में दूसरे कई लोगों ने इसमें सहयोग दिया था । इस तरह का पहला प्रयास एडवर्ड मुइब्रिज ने किया था । उन्होंने 1872-77 के मध्य ऐसे चित्रों का निर्माण किया था । मुइब्रिज ने घुड़दौड़ के मैदान में कई तार बांध दिए और प्रत्येक तार को एक स्थिर कैमरे के शटर से जोड़ दिया । दौड़ता हुआ घोड़ा तारों को गिरा

देता था जिससे कई सारे चित्र लगातार कैमरे द्वारा लिए गए । इन स्थिर चित्रों को एक डिस्क पर लगाकर उन पर लालटेन की रोशनी डालकर दौड़ते लिए गए । इन स्थिर चित्रों को एक डिस्क ' पर लगाकर उन पर लालटेन की रोशनी डालकर दौड़ते हुए घोड़े का बिंब प्रदर्शित किया गया । मुइब्रिज ने ऐसे कई प्रयोग किए थे जिससे प्रेरित होकर फ्रांस के वैज्ञानिक मारे ने 1882 में एक कैमरे से बहुत से चित्रों की शूटिंग करने वाले उपकरणों की खोज की ।

मुइब्रिज का व्याख्यान सुनकर एडिसन की भी इसमें दिलचस्पी बढ़ी । एडिसन ने गतिशील तस्वीरों के प्रयोग 1888 में डज्यू के.एल. डिक्सन के निर्देशन में शुरू किए जब उसने वेक्स सिलेंडर पर फोटोग्राफी को रिकार्ड करने का प्रयास किया । 1889 में डिक्सन ने इस क्षेत्र में जबर्दस्त पहल की जब उसने डॉर्ड ईस्टमेन की सेल्युलाइड फिल्म का इस्तेमाल किया । सेल्युलाइड फिल्म बाद में गतिशील छायांकन का श्रेष्ठ माध्यम बन गई । क्योंकि इसे गोल-गोल लपेटा जा सकता था और मनचाही लंबाई दी जा सकती थी । डिक्सन ने एडिसन के कैमरे का इस्तेमाल करते हुए 15 सैकैंड की कई फिल्मों का अंकन किया लेकिन एडिसन इन चित्रों के सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए इनके प्रक्षेपण की समस्या नहीं सुलझा सका ।

इस समस्या को सुलझाया फ्रांस के लुई म्युमिए और आगस्त ल्युमिए ने । उन्होंने आधुनिक पोर्टेबिल कैमरे का निर्माण किया जो प्रिण्टर और प्रोजेक्टर के रूप में भी काम कर सकता था । ल्युमिए की सेनिमाटोग्राफी एडिसन के यंत्र पर ही आधारित थी । कह सकते हैं कि 28 दिसंबर, 1895 को फिल्मों के इतिहास की वास्तविक शुरुआत हुई जब ल्युमिए बंधुओं ने पेरिस के कैफे के बेसमेंट में दर्शकों से पैसे लेकर गतिशील तस्वीरों का संक्षिप्त-सा प्रदर्शन किया। उन्नीसवीं सदी के अंत तक आते-आते दुनिया के कई हिस्सों में मुवी कैमरे का प्रयोग होने लगा था । इनके द्वारा दिखाई जाने वाली तस्वीर प्राय: 35 मिमि की होती थी और प्रत्येक एक सैकैंड में सोलह स्थिर चित्र होते थे जिन्हें फिल्मों की भाषा में फ्रेम कहा जाता है । शुरू में सिनेमा बिना आवाज का था । लेकिन लगभग तीन दशकों के बाद फिल्मों में आवाज का भी समावेश हो गया । इसके लिए वीटाफोन प्रणाली का प्रयोग शुरू किया गया जिसने अलग फोनोग्राफिक डिस्क के साथ चित्र का संयोजन किया । इस चित्रों के साथ संवादों और संगीत का सम्मिश्रण आरंभ हुआ । आरंभ में सिनेमा श्वेत-श्याम होता था लेकिन बाद में वह रंगीन हुआ । आज सिनेमा का तकनीकी विकास बहुत आगे बढ़ चुका है और यह अब भी सर्वाधिक लोकप्रिय जनमाध्यम है जो जीवन को लगभग उसी रूप में प्रस्तुत कर देता है, जिस रूप में उसे जीते हैं। वास्तविक के नजदीक काल्पनिक सृष्टि को संभव सिनेमा ने ही बनाया ।

लेकिन सिनेमा के साथ कुछ समस्या भी थी । इसके निर्माण और प्रदर्शन दोनों में काफी धन खर्च करना पड़ता है । निर्माण के साथ-साथ प्रदर्शन के लिए सिनेमाघरों की जरूरत होती है जहाँ जाकर लोगों को फिल्में देखनी होती है । इसमें समय और धन दोनों खर्च करने होते हैं । प्रभावशाली माध्यम होते हुए भी यह रेडियो की तरह सर्वसुलभ नहीं था । इस कमी को पूरा किया टेलीविजन ने । यानी रेडियो की तरह अब टेलीविजन के माध्यम से लोगों को घर में ही टेलीविजन पर सिनेमा का आनन्द मिल सकता है । टेलीविजन एक दृश्य-श्रव्य माध्यम है, जिसकी शुरुआत बहुत पुरानी नहीं है । ब्रिटेन के वैज्ञानिक जॉन लॉगी बेयर्ड ने 1926 में

टेलीविजन का पहली बार प्रदर्शन किया । 1927 में फिलो फॉन्सवर्थ ने इलेक्ट्रॉनिक टेलीविजन संकेत प्रवाहित कर टेलीविजन की स्कीन पर छवि को साकार किया । इस काम में सफलता वैज्ञानिक ब्लादीमीर ज्वोरकिन द्वारा पिक्चर ट्यूब बनाने में कामयाबी से हासिल हुई । यह पहली तकनीक थी जिससे बिजली की धारा को छवि के रूप में परिवर्तित किया जा सकता था। इसके बाद इस दिशा में लगातार प्रयोग होते रहे । टेलीविजन प्रसारण के लिए ध्वनि और चित्र (दृश्य) पहले विद्युत चुम्बकीय तरंगों में परिवर्तित की जाती है और बाद में टेलीविजन सेट इन तरंगों को वापस ध्वनि और दृश्य में बदल देता है । टेलीविजन कैमरे में एक आर्थिकॉन ट्यूब होती है जो लैस से बनी छवि इस ट्यूब की चित्रसंवेदन प्लेट पर पड़ते ही प्लेट इलेक्ट्रान निकलते हैं जो स्केनिंग के बाद विद्युत तरंगों में बदल जाते हैं । इस प्रकार के विद्युत तरंगों को ही वीडियो संकेत कहते हैं । इन संकेतों को एंप्लीटयूड मॉडिफिकेशन के बाद प्रसारित किया जाता है । इसी प्रकार ध्वनि को भी माइक्रोफोन विद्युत तरंग में परिवर्तित करता है जिनकी फ्रिक्वेंसी को बढ़ाकर बाद में प्रसारित किया जाता है । इन्हें ऑडियो संकेत कहा जाता है । दृश्यों और ध्वनियों की यह विद्युत चुंबकीय तरंगें ही टीवी एंटिना से टकराती है जिन्हें टेलीविजन सेट वापस दृश्य और श्रव्य में बदल देती है ।

तकनीकी रूप में टेलीविजन की खोज तीसरे-चौथे दशक से शुरू होने के बावजूद जनमाध्यम के रूप में लोकप्रिय होने में टीवी को लगभग दो दशक और लगा । वो सिनेमा की तरह टेलीविजन का भी तकनीकी स्वरूप बदलता गया । आरंभ में इसका प्रसारण क्षेत्र बहुत सीमित था, लेकिन कृत्रिम उपग्रह प्रणाली ने संचार की सभी प्रौद्योगिकी के प्रसारण का नया क्षेत्र खोल दिया । आज रेडियो और टेलीविजन सभी का प्रसारण । उपग्रह के जरिए दुनिया के किसी भी हिस्से में किया जा सकता है । इसी प्रकार पहले टेलीविजन का प्रसारण सिर्फ श्वेत-श्याम में ही उपलब्ध था लेकिन अब टेलीविजन कार्यक्रमों को भी रंगीन देखा जा सकता था' । इसी तरह पहले एक या दो चैनल ही उपलब्ध होते थे, लकिन अब एक टीवी सेट पर सौ से ज्यादा चैनल उपलब्ध हो सकते हैं । 1876 में ग्राहम बेल ने जिस टेलीफोन यत्र का आविष्कार किया था, आज उसके जरिये कंप्यूटर के माध्यम से उपर्युक्त सभी संचार माध्यमों को प्राप्त किया जा सकता है । इस नयी प्रौद्योगिकी को इंटरनेट के नाम से जाना जाता है । इसने संचार के क्षेत्र में क्रांति ला दी है । लेकिन यह क्रांति संभव नहीं होती यदि विद्युत ऊर्जा की खोज नहीं हुई होती ।

6.4 जनसंचार और माध्यम

जनसंचार के द्वारा जब कोई देश प्रसारित किया जाता है, तो यह दो रूपों में प्रसारित होता है, या तो भाषा के द्वारा या दृश्य के द्वारा, या दोनों द्वारा । भाषा का माध्यम लिखे हुए या बोले हुए या दोनों रूपों में हो सकता है । इन माध्यमों का प्रयोग करते हुए जनसंचार माध्यम के रूप में काम करता है। यानी जनसंचार स्वयं माध्यम भी है और माध्यम को प्रसारित करने का माध्यम भी । रेडियो श्रव्य संदेश को संप्रेषित करने का माध्यम है, लेकिन यह श्रव्य संदेश स्वयं भाषा पर निर्भर है । इस प्रकार रेडियो के लिए भाषा संदेश ही है । रेडियो यह निर्धारित नहीं करता कि भाषा के माध्यम से क्या कहा जा रहा है । वह तो जो भी

ध्वनियाँ। उसके द्वारा अंकित की जा रही हैं, उन्हें आगे संप्रेषित कर देता है । वह अर्थवान है या नहीं यह उसके द्वारा निर्धारित नहीं होता । इसी प्रकार सिनेमा या टेलीविजन द्वारा जो दृश्य प्रसारित हो रहा है, वह क्या अर्थ दे रहा है, या उसको देखने वाले पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, यह टेलीविजन तय नहीं कर रहा है । यह तो उस दृश्य द्वारा हो रहा है, जिसकी रचना की गई है । रेडियो में और टेलीविजन में जो कुछ हम सुनते हैं और देखते हैं, वह वह नहीं होता जो हमारे सामने सहज रूप से घटित होता रहता है और जिसके हम भी हिस्से होते हैं । रेडियो और टेलीविजन में सुना और देखा गया संदेश निर्मित (मेनुफेक्चर्ड) संदेश है । वह सुनाने और दिखाने के लिए गढा गया है । वह उसी तरह का निर्माण है जैसे एक चित्रकार अपने चित्र में चिड़िया का निर्माण करता है। वह सचमुच की चिड़िया को देखकर बनाया गया हो, लेकिन चित्र की चिड़िया सचमुच की चिड़िया नहीं होती । इसी तरह फिल्म और टेलीविजन पर देखे गए दृश्य वास्तविक लोगों के होते हुए भी उस अर्थ में वास्तविक नहीं होते जिस अर्थ में हम उन्हे बिना किसी माध्यम के देखते हैं । मसलन, टेलीविजन पर प्रधानमंत्री का भाषण इस अर्थ में एक निर्मित भाषण है कि हम उसे उस कोण से उस पिच पर और उतना ही सुनते हैं जितना कि टेलीविजन हमें सुनाता और दिखाता है । इस तरह के भाषण यथार्थ की यथावत प्रतिलिपि माने जाते हैं । लेकिन उन्हें हम एक निश्चित फ्रेम में ही देखते हैं । यह फ्रेम हमें इस बात का आभास कराता है कि हमारे सामने कोई ऐसी चीज पेश की जा रही है जो निर्मित है और जिसका निर्माण इसी उद्देश्य के लिए किया गया है । कहने का अर्थ यह है कि जिस प्रकार भाषा हमारे भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने का माध्यम होते हुए भी वह कभी भी भाव और विचार का स्थान नहीं ले पाती, सिर्फ उसका संकेत और प्रतिनिधित्व ही करती है । उसी प्रकार सिनेमा और टेलीविजन में देखा गया दृश्य वास्तविक दृश्य का संकेत और प्रतिनिधित्व करता है, जिसे कि हम वास्तविक जीवन में देखते और जीते हैं । इस प्रकार शब्द और दृश्य इसी अर्थ में माध्यम हैं कि वे उस वास्तविकता के संकेत और प्रतिनिधि होते हैं, जिसका वास्ता हमारा यथार्थ जीवन में पड़ता है ।

क्या सिनेमा और टेलीविजन में देखा गया दृश्य यथार्थ का पूरा प्रतिनिधित्व करता है, या उसको पूरा संकेतित करता है या कर सकता है? इस सवाल पर विचार करने से पहले माध्यम की क्षमता पर विचार करें । जब हम भाषा में फूल शब्द का प्रयोग करते हैं तब हमारे सामने कोई विशिष्ट प्रकार का फूल नहीं आता । किसी के मानस में गुलाब का फूल आ सकता है, तो किसी के कमल और किसी के चपा या चमेली । लेकिन जब हम गुलाब कहेंगे तो हमारे सामने कलम या चंपा का फूल नहीं आएगा। ही, यह संभव है कि सन्दर्भ स्पष्ट न हो तो गुलाब को फूल की बजाय किसी का नाम भी समझा जा सकता है, या कुछ और । यानी कोई शब्द किस वस्तु, विचार या भाव का संकेत करेगा, यह दूसरी कई बातों पर निर्भर करता है । कई बार यह भी संभव है कि यह संकेत और प्रतिनिधित्व की अनिश्चितता विभिन्न श्रोता और पाठक को भिन्न-भिन्न अर्थों तक ले जा सकती है । वस्तुत: ये शब्द और दृश्य प्रतीक के रूप में काम करते हैं । प्रत्येक शब्द एक प्रतीक है, जो एक निश्चित अर्थ ध्वनित करता है । लेकिन इसी निश्चित अर्थ में ही वे दूसरे अर्थ भी छिपे होते हैं, जिन्हें उस रचना विशेष से प्रयुक्त शब्द

व्यक्त करेगा । शब्दों में अर्थों की विभिन्न छवियाँ व्यक्त करने की क्षमता मौजूद होती है । इस क्षमता को इस्तेमाल करने की संभावना दो और बातों पर भी निर्भर होती है । एक, किस अंतर्वस्तु का हिस्सा बनकर वह शब्द प्रयुक्त हुआ है, दो जनसंचार के किस माध्यम द्वारा इसे संप्रेषित होना है ।

कहने का मतलब यह है कि जनसंचार माध्यमों के द्वारा जब कोई प्रतीकात्मक रूप संकेतीकृत किया जाता है, तो यह सवाल भी उठता है कि क्या सभी माध्यमों से एक ही तरह का अर्थ और प्रतिक्रिया पैदा होती है? यदि नहीं तो, अलग-अलग माध्यमों की विशिष्ट संप्रेषण पद्धति को विसंकेतीकृत करने की क्षमता ग्रहीता में कैसे उत्पन्न होती है? यानी कि जब किसी माध्यम द्वारा शब्दों और प्रतीकों को दूसरों तक संप्रेषित किया जाता है । तो विसंकेतीकरण की प्रक्रिया कैसे संभव होती है? क्योंकि इसी प्रक्रिया से ग्रहीता प्रतीकात्मक रूप में निहित अर्थ तक पहुँचता है । इन प्रश्नों का आसान उत्तर यह है कि जब दर्शक या श्रोता किसी फिल्म या रेडियो कार्यक्रम को देखने या सुनने के लिए प्रस्तुत होता है तो वह जानता है कि कुछ ऐसा प्रस्तुत किया जाने वाला है जिसकी वह अपेक्षा करता है । दर्शक और श्रोता की इस पूर्व निश्चित धारणा को ध्यान में रखते हुए कलाकार अपनी रचना को खास ढंग से निर्मित करता है कि वह दर्शक और श्रोता को मनोरंजक लगे । लेकिन बात इतनी आसान नहीं है । वस्तुत: प्रत्येक संप्रेषण माध्यम के कुछ अनकहे नियम होते हैं या कहना चाहिए कि माध्यम के अस्तित्व में आने के बाद धीरे-धीरे बनने लगते हैं और जनसंचार माध्यमों में काम करने वाले इन्हीं नियमों का पालन करने लगता है । प्रत्येक संचार माध्यम की अपनी संरचना होती है जिसके द्वारा विशिष्ट कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता है । इस संरचना के दो महत्त्वपूर्ण अंग होते हैं -एक तो, माध्यम का विशिष्ट व्याकरण और दूसरा, अन्तर्वस्तु को परिभाषित करने वाले नियम । ये दोनों बातें संरचना में अंतर्ग्रथित होती हैं ।

माध्यम के व्याकरण का अर्थ है, नियमों की ऐसी व्यवस्था, जिसके कारण भाषा अर्थवान बनती है और जिस प्रकार प्रत्येक भाषा का अपना व्याकरण होता है, उसी तरह प्रत्येक माध्यम का अपना व्याकरण होता है । हां, यह संभव है कि कुछ माध्यमों में वैसी ही निकटता हो जैसी निकटता कुछ भाषाओं में होती है । यह निकटता उनके व्याकरण में भी प्रतिबिंबित होती है । यह भी ध्यान रखने की जरूरत है कि जनसंचार माध्यमों का विशिष्ट व्याकरण सिर्फ उनके हार्डवेयर से ही तय नहीं होता है जैसा कि कई बार समझ लिया जाता है बल्कि इस बात से भी तय होता है कि वह माध्यम किस रूप में प्रयुक्त हो रहा है । उदाहरण के लिए किसी नेता के अबाधित भाषण को प्रसारित करने के लिए उनके सम्मुख स्थिर रखा कैमरा उनके भाषण को प्रसारित कर देगा । लेकिन यहाँ माध्यम में निहित अधिकतम संभावनाओं का पूरा इस्तेमाल नहीं किया गया है । इसके विपरीत अलग-अलग कोणों से, अलग-अलग शॉटों द्वारा भाषण को संपादित करते हुए, पार्श्व ध्वनियों को जोड़ते हुए तथा लोगों की प्रतिक्रियाओं को शामिल करते हुए यही भाषण प्रस्तुत किया जाता है तो उसका प्रभाव वही नहीं होगा, यद्यपि मूल रूप में भाषण की अंतर्वस्तु वही होगी । इस भाषण को पहले प्रकार से संप्रेषित करने से दर्शकों पर एक तरह का असर होगा और दूसरे प्रकार से संप्रेषित करने से दूसरी तरह का असर

होगा । लेकिन निर्माण में यह भिन्नता एक खास माध्यम में उसके व्याकरण में निहित अधिकतम संभावनाओं तक ही सीमित होगी, उसे दूसरे माध्यमों पर आरोपित नहीं किया जा सकता । यानी उसी भाषण को रेडियो या फिल्म के माध्यम से भी पेश किया जा सकता है, लेकिन अपने-अपने व्याकरण की सीमाओं और संभावनाओं के साथ ही । प्रत्येक माध्यम से जुड़े लोगों अंतर्वस्तु की जरूरत के अनुसार, व्याकरण की अधिकतम संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए उसे संकेतीकृत करते हैं । यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि अंतर्वस्तु की आवश्यकता को दो चीजें तय करेगी । एक, क्या संप्रेषित किया जाना है, और दो, उस विशिष्ट माध्यम में संप्रेष्य संकेतों का विसंकेतीकरण सफलतम रूप में कैसे संभव होगा?

जनसंचार माध्यमों की कुछ ऐसी विशेषताओं का उल्लेख आवश्यक है जो उनके विशिष्ट स्वरूप को निर्धारित करते हैं । इन विशेषताओं को दो दृष्टियों से देखना होगा । एक कौन सा माध्यम अपने में क्या विशिष्टताऐं रखता है । जैसे रेडियो एक श्रव्य माध्यम है इसलिए इसमें ध्वनि और शब्दों की अधिकतम संभाव्य क्षमता का प्रयोग किया जा सकता है, लेकिन दृश्य माध्यमों में शब्दों से ज्यादा बल दृश्यों पर रहता है । यद्यपि टेलीविजन और सिनेमा के दृश्यांकन में अंतर को समझना भी जरूरी है । इसी प्रकार प्रत्येक माध्यम प्रेक्षक के रोजमर्रा की जिंदगी में कुछ खास तरह की जगह बनाता है । टेलीविजन का आस्वादन लेने के लिए उसके सामने बैठना, बैठकर देखना जरूरी नहीं है, उसे आप काम करते हुए सुन सकते हैं, यद्यपि किसी गंभीर वार्ता को सुनने के लिए अधिक सजगता की आवश्यकता होती है । इन बातों को ध्यान में रखते हुए कार्यक्रमों को प्रेक्षकों की जरूरत के मुताबिक प्रसारण करना जरूरी हो जाता है । कहने का तात्पर्य यही है कि जनसंचार माध्यम अपनी प्रकृति और स्वरूप के अनुसार संचार के अन्य माध्यमों के बीच अपनी जगह बनाता है और इसी प्रक्रिया में जनसंचार के सिद्धांतों के विकास को प्रभावित करता है ।

6.5 जनसंचार की प्रक्रिया

जनसंचार की प्रक्रिया पर विचार करने पर हमारे सामने कुछ बातें साफ तौर पर उभर आती हैं । संचार की प्रक्रिया तब तक संभव नहीं है जब तक संचार करने के लिए कोई संदेश न हो । यह संदेश प्रेषक को ग्रहीता तक भेजना होगा और संदेश भेजने के लिए किसी माध्यम की जरूरत होगी । अगर प्रश्नों के रूप में कहें तो इस तरह कह सकते हैं-

- क्या संप्रेषित किया जाना है?
- संप्रेषित करने वाला कौन है?
- किसे संप्रेषित करना है?
- किस माध्यम से संप्रेषित किया जाना है?
- संदेश को किस रूप में कहा गया है?

संचार की संपूर्ण प्रक्रिया इन पाँच सवालों के उत्तर में निहित होती है । वैसे तो यह सभी माध्यमों में घटित होती है । न सिर्फ जनसंचार माध्यमों में बल्कि संचार के उन माध्यमों में भी जिन्हें अंतर्वैयक्तिक माध्यम कहा जाता है । इस पूरी प्रक्रिया में केंद्रीय महत्त्व संदेश का है । संदेश की मौजूदगी ही संप्रेषण की प्रक्रिया के लिए अवसर प्रदान करती है । लेकिन किसी

संदेश को किस माध्यम से भेजा जाना है उसी के अनुसार उस संदेश का स्वरूप तय होगा । जैसे रेडियो से दृश्य का संप्रेषण संभव नहीं है और समाचारपत्र आवाज को संप्रेषित नहीं कर सकता । किस संदेश के लिए कौन-सा माध्यम उपयुक्त रहेगा और कौन से माध्यम किन संदेशों के लिए उपयुका रहेंगे यह संप्रेषण की प्रक्रिया संगठित करने के लिए तय करना जरूरी है ।

जनसंचार की प्रक्रिया के सन्दर्भ में इस पर भी विचार करने जरूरी है कि संदेशों का संप्रेषण कौन कर रहा है और किसके लिए कर रहा है । सूचना, शिक्षा और मनोरंजन सभी क्षेत्रों में इस बात को जानने की जरूरत है । एक फिल्मकार फिल्म का निर्माण किसलिए करता है? लोगों के मनोरंजन के लिए, उनमें सामाजिक जागरूकता लाने के लिए या उनको फिल्म कला की उत्कर्षता का दिग्दर्शन कराने के लिए । वह फिल्म का निर्माण लाभ कमाने के लिए कर रहा है, या सामाजिक दायित्व बोध के लिए या फिल्म कला के प्रति अपनी गंभीर अभिरुचि के लिए । इनमें से प्रत्येक बात से यह तय होगा कि वह किस तरह की फिल्म बनाएगा । इसी प्रकार कोई व्यक्ति फिल्म देखने क्यों जा रहा है । मनोरंजन के लिए, अपने कलाबोध को परिष्कृत और संपन्न करने के लिए या अपने को सामाजिक रूप से अधिक जागरूक बनाने के लिए । इस प्रकार जनसंचार की प्रक्रिया अपने लक्ष्य और अपनी प्रविधि दोनों से निर्धारित होती है ।

जब हम जनसंचार को सिर्फ एक संचार प्रविधि समझते हैं, तो हम उसका अध्ययन भी प्रविधि तक सीमित रखते हैं । तब हम इस बात पर ध्यान नहीं देते कि उसके माध्यम से क्या संप्रेषित किया जा रहा है और उसका क्या प्रभाव होगा । हम संचार की प्रक्रिया को एक तकनीकी कौशल मानकर उसी के अनुसार उसका विश्लेषण करेंगे । यह विश्लेषण संरचनात्मक विश्लेषण कहलाएगा क्योंकि उसमें बल संचार माध्यम की संरचना पर होगा । लेकिन जैसे ही हम उसे मानव संचार की प्रक्रिया के रूप में देखेंगे तो हमारा बल उससे जुड़े लोगों के व्यवहार के विश्लेषण पर होगा । जनसंचार माध्यम से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार उसके साथ संबंधों से तय होगा । एक निष्पादक माध्यम से वही अपेक्षा नहीं रखेगा जो ग्रहीता रखता है । इसी प्रकार माध्यम को उद्योग समझने वाले व्यापारी के लिए वह एक व्यवसाय है जिसके साथ उनका संबंध लाभ और हानि का है । लेकिन जनसंचार को सांस्कृतिक प्रक्रिया समझने वाले के लिए महत्त्वपूर्ण होता है उस माध्यम से व्यक्त होने वाले संदेश की अंतर्वस्तु । वह अंतर्वस्तु के प्रभाव की समीक्षा करेगा । वह जानना चाहेगा कि उक्त संदेश का लोगों पर क्या असर होगा और वे वैयक्तिक और सामूहिक रूप से तत्काल और दूरगामी रूप में क्या प्रतिक्रिया करेंगे ।

जनसंचार की प्रक्रिया एक गतिशील प्रक्रिया है । वह सदैव एक सी नहीं रहती । ग्रहीता सदैव एक से संदेशों को बारंबार दोहराए जाने को स्वीकार नहीं कर सकते । वे नए संदेश की अपेक्षा करते हैं । लेकिन यह नया संदेश ऐसा न हो जिसे ग्रहण करने में उसे बौद्धिक और मानसिक स्तर पर कठिनाइयों का सामना करना पड़े और अंततः संदेश के प्रति अरुचि जागृत हो जाएँ यहीं संदेश की प्रभावशाली अभिव्यक्ति का प्रश्न उपस्थित होता है । यह अवश्य है कि प्रत्येक संदेश सभी माध्यमों पर संप्रेषण के अनुकूल नहीं होता लेकिन यह भी सही है कि प्रत्येक संदेश कई रूपों में संप्रेषित किया जा सकता है और ये सभी रूप एक से प्रभावी और संप्रेष्य नहीं होते । इसलिए संचार प्रक्रिया की सफलता इस बात में भी होती है कि निष्पादक संदेश को

अपने सर्वाधिक प्रभावी रूप से संप्रेषित करे । प्रभावी संप्रेषण निष्पादकों की कुशलता के अलावा अन्य कई बातों पर निर्भर करता है । इनमें प्रौद्योगिकी, माध्यम, भाषा, परिवेश, ग्रहीता, जनसंचार से जुड़े संस्थान और व्यवसाय आदि शामिल हैं ।

6.6 जनसंचार के स्रोत

जनसंचार के सिद्धांत पक्ष के अध्ययन के दौरान उसके विभिन्न स्रोतों की चर्चा भी आवश्यक हो जाती है । जनसंचार के वैसे तो कई स्रोत हो सकते हैं लेकिन जनसंचार का मुख्य स्रोत स्वयं जन है । जनसंचार के माध्यमों की जरूरत ही इसलिए होती है क्योंकि लोगों को इसकी आवश्यकता है । संचार माध्यमों की आवश्यकता समाज में लोगों की गतिविधियों की प्रकृति पर निर्भर करती है । प्राक् आधुनिक समाजों में लोगों की गतिविधियां काफी सीमित होती थी । लेकिन आधुनिक समाजों में या कहना चाहिए कि लोकतांत्रिक समाजों में लोगों की गतिविधियों में पहले से दोगुना विस्तार हुआ है । ये विस्तार जीवन के हर क्षेत्र में हुआ है । राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में । लोकतांत्रिक समाजों में राजनीति व्यवस्था के निर्माण में प्रत्येक नागरिक की भूमिका होती है ।

इसी तरह अब आर्थिक जीवन से संबंधित औद्योगिक और व्यावसायिक गतिविधियाँ भी छोटे समुदायों या राष्ट्रों तक सीमित नहीं रही है बल्कि उसने वैश्विक स्वरूप ग्रहण कर लिया है। इसी प्रकार लोगों का एक जगह से दूसरी जगह आना-जाना पहले की तुलना में कहीं ज्यादा विस्तारित हुआ है । इससे उनके समाज की संरचना और सांस्कृतिक परिदृश्य पर भी असर पड़ा है । वे दूसरे समाजों और संस्कृतियों के संपर्क में ज्यादा आ रहे हैं । उनकी अपनी शैक्षिक, आत्मिक और रचनात्मक जरूरतों का विस्तार हुआ है । इन सब गतिविधियों के बढ़ने के साथ जनसंचार के माध्यमों का जरूरत भी बढ़ी है और नए माध्यमों की आवश्यकता भी महसूस की गई है । वस्तुत: मनुष्य की सामाजिक और वैयक्तिक जरूरतों से जनसंचार माध्यमों की इतना गहरा रिश्ता है कि उसके बिना उनका विकास संभव ही नहीं था । आज हम इस बात की कल्पना नहीं कर सकते कि हम वापस ऐसे युग में जा सकते हैं जहाँ न रेडियो हो, न अखबार हो, न सिनेमा हो और न टेलीविजन हो ।

6.7 जनसंचार और संदेश

जनसंचार मं केन्द्रीय भूमिका संदेश की होती है । यह संदेश ही है जिसे संचारित या संप्रेषित करना होता है । संदेश का तात्पर्य सूचना मात्र से नहीं है । अगर हम रेडियो पर पंडित रविशंकर का सितार वादन सुन रहे हैं तो यह भी तकनीकी भाषा में एक संदेश ही है । इसी प्रकार अखबार के समाचार और थियेटर में नाटक और सिनेमाघर में फिल्म भी संदेश है । संदेश का तात्पर्य वह अंतर्वस्तु है जिसे ग्रहीता तक भेजा जाना है । वह संदेश लिखित शब्दों के रूप में हो सकता है, आवाज और ध्वनि के रूप में हो सकता है और वह दृश्यों के रूप में हो सकता है । लेकिन प्रत्येक संदेश जनसंचार माध्यम के लिए उपयुक्त हो, यह आवश्यक नहीं है। संदेश को अगर जनसंचार माध्यमों के द्वारा व्यापक जनसमूह तक पहुँचना है, तो यह जरूरी है कि उसे ऐसा होना चाहिए जिसमें ज्यादा से ज्यादा लोगों की रुचि हो । उदाहरण के लिए

अखबार या टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले समाचारों का चयन इस बात से तय होता है कि क्या लोग उनको जानना चाहेंगे ।

इसका यह मतलब भी नहीं है कि संचार माध्यमों से सिर्फ वही संदेश प्रसारित होते हैं जिसे जनता जानना चाहती है । वे संदेश भी जगह बनाते हैं जिसे वे लोग और वर्ग संप्रेषित करना चाहते है जिनके हाथ में जनसंचार माध्यम हैं यानी जो जनसंचार माध्यम पर अधिकार रखते है । संदेश का प्रसारण लोगों की जरूरतों से नहीं बल्कि इस बात से भी होता है कि वे उन संदेशों से लोगों को प्रभावित करना चाहते हैं । लेकिन अपने महत्त्व के अनुसार माध्यम में अपनी जगह बनाता है ।

जनसंचार माध्यमों में संदेश सांकेतिक रूप में अभिव्यक्त होते हैं । संदेश को संप्रेषित करने वाला अपनी बात संकेतीकृत करता है और उसे माध्यम के द्वारा संप्रेषित करता है जिसे संदेश को ग्रहण करने वाला विसंकेतीकृत करके उसका अर्थ ग्रहण करता है । लेकिन इस प्रक्रिया में संदेश से वहीं अर्थ संप्रेषित होता है जो प्रेषक करना चाहता है, यह जरूरी नहीं है । वस्तुत: संदेश और अर्थ के बीच का संबंध कई बाहरी कारकों से प्रभावित होता है । वह माध्यम और ग्रहीता की ग्रहण क्षमता पर भी निर्भर करता है । माध्यम से तात्पर्य दोनों तरह के माध्यम से है । प्रौद्योगिकी जो उस संदेश को एक स्थान से दूसरे स्थान पर संप्रेषित करने की वाहक है ओर वह भाषा जो संदेश को संकेतीकृत करती है और जिसे दुबारा ग्रहीता विसंकेतीकृत करता है। यह हम आमतौर पर पढ़ते सुनते हैं कि लेखक, कलाकार इस बात की शिकायत करते हैं कि उनकी रचना को सही नहीं समझा गया । संचार माध्यमों में प्रयुक्त होने वाली भाषा का विशेष सांस्कृतिक सन्दर्भ होता है । उस सांस्कृतिक सन्दर्भ को जिस रूप में कलाकार ने आत्मसात किया है क्या उस रूप में पाठक या दर्शक ने भी किया है, कहना मुश्किल होता है । कई बार संदेश को ग्रहण करने में उसके अपने संस्कार और अपनी अभिरूचियाँ बाधक बन जाती हैं या उस माध्यम की विशिष्ट भाषा के समझने की उसकी क्षमता सीमित हो सकती है । दूसरी ओर यह भी मुमकिन है कि कलाकार जिस माध्यम और जिस भाषा के जरिए अपना संदेश प्रसारित कर रहा है उसका अपने संदेश के अनुरूप इस्तेमाल करने में वह सफल नहीं रहा है । तात्पर्य यही है कि संदेश का संप्रेषण सिर्फ एक तकनीकी मसला नहीं है, एक सांस्कृतिक और सौंदर्यबोधीय मसला भी है । अगर आधुनिक शब्दावली का उपयोग करें तो संदेश एक पाठ की तरह है जिसे प्रत्येक ग्रहीता अपने-अपने ढंग से पढ़ता है ।

स्टुआर्ट हाल का यह कथन इस दृष्टि से उल्लेखनीय है - 'हमें यह स्वीकार करना होगा कि संदेश का सांकेतिक रूप संचार विनिमय में एक विशेषाधिकृत स्थिति है और संपूर्ण संचार प्रक्रिया के संबंध में संकेतीकरण और विसंकेतीकरण के क्षण यद्यपि सापेक्ष रूप में ही स्वायत्त होते हैं, लेकिन ये निर्धारक क्षण भी हैं । ' कहने का तात्पर्य यह है कि संदेश में निहित अर्थ संदेश पर न तो पूरी तरह निर्भर करता है और न ही पूरी तरह स्वतंत्र । अगर ऐसा हो तो संदेश की जरूरत ही समाप्त हो जाएगी और अगर संदेश सिर्फ एक ही निश्चित अर्थ तक सीमित रहेगा तो ग्रहीता के लिए उस संदेश के साथ रचनात्मक संबंध नहीं बन पाएगा ।

संदेश में अर्थ की व्यंजनाएँ कितनी है यह संदेश की प्रकृति पर ही निर्भर करेगा । मसलन, सूचना आधारित संदेशों में अर्थ की व्यंजनाएँ न्यूनतम होगी और सौंदर्यबोधीय संदेशों में

अधिकतम । लेकिन सूचना आधारित संदेशों के बारे में यह कहना सही नहीं होगा और न ही सौंदर्यबोधीय संदेशों के बारे में । कई बौद्धिक संदेश दिक्-काल की सीमाओं को लांघते हुए नई अर्थ व्यंजनाएँ करते हैं । मसलन, मार्क्स से लेकर महात्मा गाँधी तक ऐसे कई विचारक हैं जिनके बौद्धिक कार्यो के नए अर्थ नयी चुनौतियों के सन्दर्भ मे सामने आए । साहित्य और कला के अन्य रूपों के बारे में यह एक जाना-पहचाना सत्य है ।

6.8 जनसंचार के पाठक, श्रोता और दर्शक

जनसंचार माध्यमों में जन से तात्पर्य उन माध्यमों के ग्रहीता से होता है । मुद्रित माध्यमों के सन्दर्भ में वह पाठक है, श्रव्य माध्यमों के सन्दर्भ में वह श्रोता है और दृश्य माध्यमों के सन्दर्भ में वह दर्शक है । आमतौर पर जनसंचार माध्यमों की पूरी संकल्पना एकतरफा संचार पर कायम है और मान लिया गया है कि यह उसकी प्रकृति में ही है कि वे एकतरफा हो जबकि जरूरत उनको दोतरफा बनाने की है । प्रसिद्ध जर्मन लेखक और चिंतक ब्रतोल्त ब्रेख्त ने इस बात की जरूरत को रेडियो के सन्दर्भ में रेखांकित करते हुए लिखा है' 'रेडियो के काम करने का तरीका एकतरफा है जबकि इसे दोतरफा होना चाहिए । यह विशुद्ध रूप से ऐसी चीज है जिससे किसी के विचारों का सिर्फ वितरण किया जाना हैं यह अच्छा सुझाव है कि इसे वितरण की बजाए संवाद का माध्यम बनाया जाएँ रेडियो लोगों के जीवन की सबसे उपयोगी चीज हो सकती है बशर्ते इसके जरिए सिर्फ विचारों का प्रेषण न किया जाएँ इसे दूसरे के विचारों को सुनने का माध्यम भी बनाया जाना चाहिए । इसका इस्तेमाल ऐसे किया जाना चाहिए जिससे श्रोता सिर्फ सुनना नहीं बोलना भी सीखे । इसका इस्तेमाल ऐसे ही हो कि जनता अलग-अलग न पड़े । (ब्रतोल्त ब्रेख्त का कथन, पी.सी. जोशी की पुस्तक 'कल्चर, कम्युनिकेशन एंड सोशल चेंज' से उद्धृत, पृ. 46) । ब्रेख्त की यह संकल्पना रेडियो की नयी प्रौद्योगिकी ने संभव कर दी है । फिर भी, यह सही है कि जनसंचार माध्यमों ने समाज को दो भागों में बांट रखा है । एक वे हैं जिनका जनसंचार के माध्यमों पर अधिकार है और दूसरे वे जो इसका उपयोग करते हैं । जनसंचार माध्यमों के लिए संदेश का उत्पादन करने वाले और उनका उपभोग करने वाले भी आमतौर पर अलग-अलग होते है । नतीजतन, आम आदमी इनका उपभोक्ता बनकर रह गया है । उसकी संदेश के निर्माण और उसके प्रसार में कोई भूमिका नहीं है । यही कारण है कि ये माध्यम ग्रहीता की रचनात्मक के विकास में कोई मदद नहीं कर पाते । जनसंचार माध्यमों के साथ लोगों का रिश्ता समानता के लोकतांत्रिक सिद्धांत पर आधारित नहीं है । आज किसी व्यक्ति के लिए यह महत्त्वपूर्ण नहीं है कि उसका इन माध्यमों के साथ किस तरह का रिश्ता है बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि उसके पास ये सब माध्यम उपलब्ध है या नहीं । जाहिर है इस दृष्टि से भारत में स्थिति अत्यंत चिंताजनक है । साक्षरता और आर्थिक क्षमता के अत्यंत निम्नस्तर के कारण अब भी एक तिहाई से ज्यादा आबादी मुद्रित माध्यमों के साथ नहीं जुड़ पाई है । कहने का तात्पर्य यह है कि जनसंचार माध्यमों में ग्रहीता का रिश्ता किस तरह का बनेगा यह इस पर निर्भर करता है कि सामाजिक व्यवस्था उसे किस तरह के संबंध बनाने का अवसर प्रदान करती है ।

जनसंचार माध्यमों के साथ ग्रहीता का रिश्ता उपभोक्ता के रूप में है तो जाहिर है कि इन माध्यमों पर अधिकार रखने वाले उसके द्वारा ऐसे माल की ही आपूर्ति करने का प्रयत्न करेंगे जिसे आसानी से और बड़ी मात्रा में बेचा जा सके । ऐसी स्थिति में जनसंचार माध्यम ऐसे सांस्कृतिक उत्पादों को फैलाने में ज्यादा दिलचस्पी लेते हैं जिसके साथ ग्रहीता का रिश्ता सतही हो और जो उनके बौद्धिक और आत्मिक विकास में नहीं बल्कि भावनात्मक उत्तेजना बढ़ाने में सहायक हो । यही कारण है कि जनसंचार माध्यमों पर मनोरंजन कार्यक्रमों के उद्योग बन जाने के कारण उसका मकसद ही ऐसे मनबहलाव कार्यक्रमों को पैदा करना हो गया है जो तत्काल और तेजी के साथ असर पैदा करे चाहे वह असर न तो स्वस्थ हो और न ही स्थायी । यही नहीं सूचना और शिक्षा के क्षेत्र में भी मनोरंजन उत्पादों वाली दृष्टि हावी होती जा रही है । लोगों की ऐसी सूचनाओं में दिलचस्पी बढ़ती जा रही है जो उनमें सनसनी पैदा करे और लोग उसमें वैसी ही दिलचस्पी ले जैसे कोई जासूसी उपन्यास या फिल्म के आस्वादन से उनमें पैदा होती है । क्रिकेट का विश्व कप हो या करगिल युद्ध या आम चुनाव या मैच फिक्सिंग का मामला, इन सब मामलों में माध्यमों और ग्रहीता की प्रतिक्रिया इसी तरह रही है । ग्रहीता को भारतीय परम्परा में सहृदय माना जाता है । लेकिन आज जनसंचार माध्यम उसे सहृदय की बजाय रसिक ही बनाए रखना चाहता है ।

पाठक, श्रोता और दर्शक की अभिरुचियों के निर्माण में बहुत सी बातों की भूमिका होती है-आर्थिक-सामाजिक स्थिति, राजनीतिक-सांस्कृतिक संस्कार, माध्यम विशेष में उसकी दिलचस्पी और जनसंचार की विशिष्टताओं को समझने की उसकी बौद्धिक क्षमता आदि । इन सभी के मिलेजुले असर से ही ग्रहीता की अभिरुचियों का निर्माण होता है । ये सभी बातें स्थिर नहीं रहती और व्यक्तितत्व के विकास के साथ-साथ परिवर्तित होती रहती है । इस परिवर्तन में इन माध्यमों की अपनी भूमिका भी होती हैं । अगर किसी माध्यम द्वारा कुछ खास तरह के उत्पादों के प्रसारण को ही प्रमुखता दी जाती रहेगी तो उसका ग्रहीता के मानस पर अनुकूल असर नहीं होगा । उदाहरण के लिए, भारत में लगभग सभी प्रमुख राष्ट्रीय और क्षेत्रीय समाचारपत्र राजनीति और राजनीतिज्ञों की जो तस्वीर पेश करते हैं उससे आम आदमी के मन में उनके प्रति नकारात्मक रवैया विकसित होता है । नतीजा यह होता है कि वे राजनीति के प्रति बहुत ही अलोकतांत्रिक और दायित्वहीन रवैया विकसित कर लेते हैं । खासतौर पर यह रवैया उन शिक्षित लोगों में ज्यादा दिखाई देता है जो जनसंचार माध्यमों के ज्यादा संपर्क में आते हैं और उन लोगों में कम जो इन सबसे वंचित है । चूँकि जनसंचार माध्यमों का सारा ढाँचा शहर केंद्रित और मध्यवर्ग केंद्रित है इसलिए जनसंचार माध्यम आमतौर पर उनकी अभिरुचियों का ही ध्यान में रखते हैं और उनसे भी संवाद न करते हुए सिर्फ उनके सम्मुख लगातार और तीव्र गति से नए-नए उत्पाद परोसते रहते हैं कि वे उनके साथ सहज संबंध नहीं बना पाते । वे महज उससे मिलने वाले आस्वाद के एडिक्ट होकर रह जाते हैं ।

जनसंचार माध्यमों और ग्रहीता के बीच संबंधों का एक पहलू यह भी है कि प्रत्येक माध्यम एक खास तरह का ऐंद्रिक आस्वाद प्रदान करता है । मसलन, मुद्रित माध्यम में हम लिखी हुई बातों के जरिए संदेश प्राप्त करते हैं । लिखी हुई बातों को समझने की प्रक्रिया में हम शब्द और उसमें निहित अर्थ वैशिष्ट्य को समझने की क्षमता को विकसित करते हैं । इसी

प्रकार रेडियो के जरिए हम आवाज और ध्वनि को सुनकर उसमें निहित अर्थ को ग्रहण करते हैं। अर्थ ग्रहण की हमारी क्षमता का विस्तार और विकास इस बात पर निर्भर करता है कि उस आवाज और ध्वनि में अर्थ व्यंजना की कितनी सभावना निहित होती है । आमतौर पर जो सांस्कृतिक उत्पाद ग्रहीताओं की बौद्धिकता और कल्पनाशीलता को प्रेरित नहीं करते वे उनमें कुछ भी नया जोड़ने में नाकामयाब रहते हैं । इसका अर्थ यह भी नहीं है कि जो सांस्कृतिक उत्पाद ग्रहीता की भावनाओं को स्पर्श करते हैं, वे सदैव कल्पनाविहीन और अरचनात्मक होते हैं । भावना शून्य उत्पादन किसी भी ग्रहीता को आकृष्ट नहीं करते लेकिन बुद्धि और कल्पना शून्य संदेश भी ग्रहीता के लिए उपयुका नहीं माने जा सकते ।

6.9 सारांश

जनसंचार माध्यमों से संबंधित इस इकाई में आपने कई महत्त्वपूर्ण पहलुओं का अध्ययन किया है । सबसे पहले आपने इस बात को समझा कि जनसंचार के सिद्धांतों के निर्माण का आधार क्या है और उनका विकास कैसे होता है । जनसंचार माध्यमों के कई घटक हैं जो अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । इनमें जनसंचार की प्रौद्योगिकी, माध्यम, संदेश, संदेश को भेजने वाला और संदेश को प्राप्त करने वाला ये महत्त्वपूर्ण घटक हैं । इनमें से प्रत्येक घटक के भी कई पथ हो सकते हैं । मसलन,प्रौद्योगिकी में निरंतर होने वाले परिवर्तन, प्रौद्योगिको को नियंत्रित करने वाली शक्तियाँ, उससे जुड़े व्यावसायिक और संस्थागत ढाँचे और उनकी प्रकृति और कार्यविधि । इसी प्रकार माध्यम, संदेश, प्रेषक और प्रेषिति के भी कई पक्ष होते हैं । इन सभी घटकों और पहलुओं से जनसंचार माध्यमों के सिद्धांत पक्ष का निर्धारण होता है ।

जनसंचार माध्यम की पूरी संकल्पना संभव नहीं हुई होती यदि प्रौद्योगिकी में विद्युतीय प्रक्रिया का समावेश नहीं हुआ होता । विद्युत ऊर्जा ने आधुनिक संचार माध्यमों के विकास के मार्ग को प्रशस्त किया है । मुद्रण, तार, टेलीफोन, रेडियो, सिनेमा, टेलीविजन और अब कम्प्यूटर और उपग्रह संचार प्रणाली का विकास भी इसलिए हो सका । जनसंचार माध्यम का एक महत्त्वपूर्ण घटक माध्यम हैं । जनसंचार के मुख्य रूप से तीन माध्यम हैं - मुद्रित, श्रव्य और दृश्य । इन तीनों माध्यमों की विशिष्टता और संचार में इनकी भूमिका पर इकाई में प्रकाश डाला गया है ।

जनसंचार माध्यमों में जनसंचार की प्रक्रिया को समझना भी जरूरी है । जनसंचार की प्रक्रिया को पाँच सवालों के जरिए समझा जा सकता हैं क्या संप्रेषित होना है, कैसे संप्रेषित होना है, किसे संप्रेषित होना है, कौन संप्रेषित करने वाला है और किस रूप में संप्रेषित होना है । संचार की प्रक्रिया में ये सभी पक्ष जरूरती होते हैं । अगर हमें यह नहीं मालूम कि क्या संप्रेषित किया जाना है तो हम संप्रेषण की प्रक्रिया की शुरुआत ही नहीं कर सकते । इसी प्रकार यदि हमें यह नहीं मालूम कि किसे संप्रेषण करना है, तो भी हमारी संचार प्रक्रिया पूरी नहीं हो सकती। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी माध्यम से संचार प्रक्रिया क्यों न घटित हो रही हो, इन सभी पक्षों को हल किए बिना वह संभव नहीं है ।

जनसंचार माध्यम के स्रोतों का भी उसके अध्ययन में महत्त्वपूर्ण स्थान हैं । इन माध्यमों में सबसे बड़ा स्रोत तो स्वयं जनता ही हैं जिनके लिए संचार माध्यमों का विकास होता

है । लेकिन इसके अलावा जिस मकसद से जनसंचार किया जाता है कि वे भी इसके स्रोत हैं । जनसंचार माध्यम में उसके संदेशों की प्रकृति और स्वरूप को समझना भी जरूरी है । संदेश को प्रभावित करने वाले कई तत्त्व होते हैं । उदाहरण के लिए, किनको संदेश संप्रेषित किया जाना है, किस माध्यम से संप्रेषित किया जाना है, संदेश के निर्माण में किसकी क्या-क्या भूमिका हैं, आदि । जनसंचार माध्यम का सबसे बुनियादी आधार वह ग्रहीता है जिस तक संचार किया जाता है । जनसंचार माध्यम का ढांचा विकसित हुआ है वह एकतरफा जनसंचार का है जिसमें पाठक, दर्शक और श्रोता की भूमिका एकतरफा होती है यानी वह सिर्फ उपभोक्ता होता है । अगर ग्रहीता को उपभोक्ता ही माना जा रहा है और उसके मानसिक और बौद्धिक जुड़ाव को जनसंचार का उद्देश्य नहीं माना जाता है, तो वह कभी प्रभावी नहीं हो सकता ।

जनसंचार माध्यम के इन विभिन्न पहलुओं की चर्चा से आपको जनसंचार के सिद्धांतों को समझने में मदद मिलेगी जिसका अध्ययन आप आगे की इकाई में करेंगे ।

6.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जनसंचार माध्यमों के सिद्धांतों का निर्माण किन-किन बातों से निर्धारित होता है? इनका उल्लेख करते हुए जनसंचार की प्रक्रिया में इनकी भूमिका पर प्रकाश डालिए ।
2. जनसंचार माध्यम की विद्युतीय प्रक्रिया से क्या तात्पर्य है? जनसंचार के आधुनिक माध्यमों के विकास में इसके योगदान का उल्लेख कीजिए ।
3. जनसंचार माध्यमों में संदेश और ग्रहीता के अंतसंबंधों की सोदाहरण विवेचना कीजिए ।
4. टेलीविजन के एक स्थायी दर्शक के रूप में आप किस तरह के कार्यक्रम देखते हैं और क्यों?
5. जनसंचार माध्यमों से प्रसारित होने वाले संदेशों को कौन निर्धारित करता है? इसमें ग्रहीता की भूमिका पर प्रकाश डालिए ।

6.11 सन्दर्भ ग्रंथ

1. रॉवर्ट डब्ल्यू मैकचेस्नी; भूमंडलीय जनमाध्यम, निगम पूँजीवाद के नए प्रचारक, एडवर्ड एस हरमन, अनुवादक चंद्रभूषण, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
2. रॉबिन जेफ्री अनुवादक प्रो. सत्यकाम,; भारत की समाचारपत्र क्रांति, लेखक, भारतीय जन संचार संस्थान नई दिल्ली
3. डॉ. कृष्ण कुमार रत्तू विश्व मीडिया बाजार, लेखक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
4. सुभाष धूलिया; संचार क्रांति की राजनीति और विचारधारा, लेखक, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
5. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, अनुवादक, ओमप्रकाश मालवीय; संचार माध्यम और पूँजीवादी समाज, संपादक, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
6. देवेंद्र इस्सर; जनमाध्यम: संप्रेषण और विकास: इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली- 110051.

7. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली-110092.

इकाई 7 जनसंचार के सामाजिक सिद्धांत इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 संप्रेषणीय सिद्धांत
7.3 अर्थगत सिद्धांत
7.4 सामाजिक सिद्धांत
7.5 सांस्कृतिक सिद्धांत
7.6 सारांश
7.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
7.8 सन्दर्भ ग्रंथ

7.0 उद्देश्य

'जनसंचार के सिद्धांत' से संबंधित यह दूसरी इकाई है 'जनसंचार माध्यम पत्रकारिता' पाठ्यक्रम के दूसरे खंड और पाठ्यक्रम की सातवीं इकाई है । इस इकाई में आपको ' के विभिन्न सामाजिक सिद्धांतों से परिचय कराया जाएगा । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप - ।

- जनसंचार के संप्रेषणीय सिद्धांत का विवेचन कर सकेंगे ।
- जनसंचार के अर्थगत सिद्धांत को समझा सकेंगे ।
- जनसंचार के सामाजिक सिद्धांत का परिचय प्राप्त करेंगे और उनको स्पष्ट सकेंगे ।
- जनसंचार के सांस्कृतिक सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे ।

7.1 प्रस्तावना

जनसंचार के सिद्धांत से संबंधित यह दूसरी इकाई है । इससे पूर्व की इकाई में हमने जनसंचार के सिद्धांतों से जुड़े विभिन्न घटकों और पहलुओं पर सोदाहरण विचार किया था । अब हम उन कुछ सिद्धांतों की चर्चा करेंगे जिन्हें हम जनसंचार के सिद्धांत के नाम से जानते हैं । जनसंचार का अध्ययन लगभग उतना ही पुराना है जितने पुराने ये जनसंचार माध्यम । लेकिन स्वतंत्र अनुशासन और अध्ययन क्षेत्र के ' रूप में जनसंचार माध्यम बहुत पुराने नहीं है । आज दुनिया भर में यह एक स्वतंत्र अनुशासन बन चुका है और जिससे संबंधित विभाग, संस्थान यहाँ तक कि विश्वविद्यालयों की भी स्थापना हो चुकी है । जनसंचार माध्यम के अध्ययन का जैसे-जैसे विस्तार हुआ है वैसे-वैसे इसको सैद्धांतिक स्वरूप प्रदान करने का काम भी होता गया है । सैद्धांतिकीकरण की यह कोशिशें यूरोप और अमरीका में ही ज्यादा हुई है जहाँ इन माध्यमों का विस्तार दुनिया के देशों से कहीं ज्यादा है । वहाँ जनसंचार माध्यमों ने उद्योग का रूप ले लिया है । आज इसमें और संचार प्रौद्योगिकी, कंप्यूटर और इंटरनेट तथा मनोरंजन उद्योग शामिल है। इस प्रकार जनसंचार के सिद्धांतों के निर्माण की प्रक्रिया में उसकी प्रौद्योगिकी, संस्थानीकरण ,व्यवसायीकरण, उत्पादकीय और पुनरुत्पादकीय प्रक्रियाएँ, संप्रेषण की प्रक्रिया, संदेश और ग्रहीता के अंतसंबंध के विभिन्न स्तर और रूप शामिल हैं । जाहिर है इस छोटी सी इकाई में इन सभी

पक्षों से संबंधित सिद्धांत पक्षों का उल्लेख संभव नहीं है । लेकिन यहाँ ऐसे कुछ सिद्धांतों की चर्चा करेंगे जिससे संचार की प्रक्रिया और प्रविधि को समझने में मदद मिलेगी ।

इस इकाई में हम जिन सिद्धांतों का उल्लेख करने जा रहे हैं वे सभी सिद्धांत जनसंचार के द्वारा संदेशों के प्रसारण और ग्रहण की प्रक्रिया से संबंधित हैं । जनमाध्यम कैसे संदेश का प्रसारण करते हैं और ग्रहीता उसे किस रूप में ग्रहण करते हैं । इसके तकनीकी पहलू के अलावा भी कई बातें हैं जिन पर विचार करने की जरूरत है । जनसंचार माध्यम के द्वारा जो संदेश प्रसारित होते हैं वे ठीक उसी रूप में नहीं होते जिस रूप में संदेश की अंतर्वस्तु का निर्माण करने वाला तय करता है ।

प्रत्येक संदेश पहले सांकेतिक रूप में परिवर्तित होता है और बाद में वह संप्रेषित होता है । यही सांकेतिक रूप दुबारा संदेश में परिवर्तित होकर ग्रहीता तक पहुँचता है । लेकिन क्या यह वही संदेश होता है जिसे प्रेषित किया गया था? संदेश के संकेतित होने और उसके पुन: संदेश में परिवर्तित होने की प्रक्रिया जिसे कोडिंग और डिकोडिंग कहा जाता है, की सिद्धांतकारों ने भिन्न-भिन्न ढंग से व्याख्या की है । इसके साथ ही संप्रेषण के लिए जो संदेश है उसका निर्धारण कैसे होता है और उनको निर्धारित करने में कौन से कारक अपनी भूमिका निभाते हैं यह पक्ष भी महत्त्वपूर्ण है । साथ ही, उनके ग्रहण करने की प्रक्रिया से कौन सी बाहरी और आंतरिक बातें प्रभावित करती हैं, इस इकाई में हम इन्हीं से संबंधित पहलुओं पर विचार करेंगे ।

जनसंचार का क्षेत्र हमारे समाज से निरपेक्ष नहीं होता । संचार की जरूरत मनुष्यों को दूसरे मनुष्यों से संवाद करने के लिए होती है, यह संवाद कई कारणों और कई रूपों में होता है । मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है लेकिन वह एक सांस्कृतिक इकाई भी है । वह जिन समाजों में रहता है उनकी अपनी विशिष्टता होती है । उनकी भाषा, उनका खानपान, उनकी वेशभूषा, उनका रहन-सहन और उनके रीति-रिवाज एक-दूसरे से अलग भी होते हैं और एक-दूसरे से प्रभावित भी होते हैं । मनुष्य जीवन के ये पक्ष मिलकर ही उसका सांस्कृतिक जीवन निर्मित होता है जिसका संचार माध्यमों की अंतर्वस्तु को निर्धारित करने में अहम भूमिका होती है । जनसंचार की प्रक्रिया खास राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्थाओं के अंतर्गत आकार लेती है । इस प्रकार ये सभी पक्ष जनसंचार के सिद्धांतों के निर्माण को प्रभावित करते हैं । हम इन सभी पहलुओं के परिप्रेक्ष्य में जनसंचार सिद्धांतों पर विचार करेंगे । -

7.2 संप्रेषणीय सिद्धांत

सबसे पहले हम संप्रेषण सिद्धांतों की चर्चा करेंगे । इनमें मुख्य बल प्रक्षेपण या प्रेषण पर होता है । प्रक्षेपण और प्रेषण दो भिन्न तरह की प्रक्रियाएँ हैं । जब किसी जनसंचार माध्यम से कोई संदेश प्रसारित किया जाता है तो उसे प्रक्षेपित करना कहते हैं । जब हम सिनेमाघर में कोई फिल्म देखने जाते हैं तो हमारे सामने एक सफेद पर्दा होता है जिस पर प्रोजेक्टर द्वारा किरणें फैंकी जाती हैं । ये किरणें ही गतिशील चित्रों के रूप में पर्दे पर परावर्तित होती हैं । प्रोजेक्टर पर फिल्म की रील चल रही होती है जिसका एक-एक फ्रेम निरंतर और एक निश्चित गति के साथ पर्दे पर प्रक्षेपित होता रहता है। हम फिल्म को इस फ्रेम के अंदर ही देखते हैं । यानी फिल्म हमें जो दिखाना चाहती है वह इस फ्रेम की सीमा में ही पेश करेगी । हम फिल्म

की भाषा में इसे पैंतीस मिमि या सत्तर मिमि या सिनेमास्कोप आदि कई नामों से जानते हैं । एक फिल्म में फ्रेम की लम्बाई और चौड़ाई स्थिर रहने के बावजूद भी हमारे सामने आने वाले दृश्य गतिशील होते हैं । वे दाएँ से बाएँ, बाएँ से दाएँ, ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर, आगे से पीछे, पीछे से आगे फ्रेम के अंदर गतिशील रहते हैं । फिल्मकार के सामने यह विकल्प रहता है कि वह दृश्य जिस रूप में दिखाना चाहे दिखा सकता है । लेकिन उसका यह चयन इस बात पर निर्भर करता है कि वह किस तरह का प्रभाव पैदा करना चाहता है? प्रभाव से यहाँ तात्पर्य संदेश की अर्थ व्यंजना से है । यह प्रक्षेपण अच्छा या बुरा हो सकता है, रुचिकर और अरुचिकर हो सकता है और सुंदर और असुंदर हो सकता है तथा उसी के अनुसार अर्थ व्यंजना भी प्रभावित होती है । अगर हम एच. लासवेल के शब्दों में इस बात को रखें तो इस तरह कह सकते हैं- 'कौन किसे क्या कह रहा है और किस तरह और कितने प्रभावशाली ढंग से कह रहा है ।

दूसरे माध्यमों में भी हम इसे घटित होता हुआ देख सकते हैं । रेडियो में जो आवाजें और ध्वनियाँ प्रक्षेपित होती हैं वे ठीक उसी रूप में नहीं होती जिस रूप में सिनेमा में होती है । इसी तरह' के दूसरे माध्यम या एक ही माध्यम की अलग-अलग विधाएँ हैं । मसलन, टेलीविजन में क्रिकेट का सीधा प्रसारण और टेलीफिल्म का प्रसारण एक माध्यम से होते हुए भी एक-सा नहीं होता । टेलीफिल्म या धारावाहिक: में रिकार्डिंग की प्रक्रिया प्रसारण के साथ-साथ नहीं बल्कि पहले होती है । यह रिकार्डिंग अलग-अलग दृश्यों में होती है जिसे बाद में संपादन के द्वारा पटकथा के अनुरूप संयोजित किया जाता है । आवश्यकता के अनुसार उनमें काट-छाँट की जाती है । दृश्यों की मिक्सिंग की जाती है और उनमें विशेष प्रभाव के लिए संगीत और ध्वनियों को जोड़ा जाता है । लेकिन इन दोनों तरह के संप्रेषण में संदेश का निर्धारण कौन करता है? क्या जो प्रक्षेपित होता है उसको लोग सिर्फ ग्रहण करते हैं या वे उसे निर्धारित भी करते हैं? क्या जनसंचार माध्यमों से वह भी संप्रेषित होता है जिसे ग्रहण करने की इच्छा लोगों में नहीं है? अब तक यह माना जाता रहा है कि भेजने वाले के पास एक संदेश होता है जो किसी माध्यम के जरिए ग्रहीताओं तक भेजता है । लेकिन अब यह माना जाने लगा है कि समाज में घटनाओं, गतिविधियों और विचारों के रूप में भिन्न-भिन्न तरह के संदेश पहले से मौजूद होते हैं । जिसे प्रेषक संदेश का रूप प्रदान करते हैं और उन्हें किसी माध्यम द्वारा ग्रहीताओं तक संप्रेषित करते हैं । इसका अर्थ यह है कि प्रेषक जिन संदेशों को संप्रेषित करता है वह उसकी मौलिक रचना नहीं होती बल्कि वह सिर्फ संदेश का रूप प्रदान कर संप्रेषित करता है। संप्रेषित करने की प्रक्रिया में बी वेस्ले और एम. मेक्लियन के अनुसार इन बातों को निर्धारित करने में कई बातों का महत्त्व होता है । मसलन, जन प्रेषक की चयन भूमिका । वह चयन करता है इसलिए उसकी भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है कि वह क्या चुनता है और क्या छोड़ता है । चयन की यह प्रक्रिया इस बात से तय होती है कि लोग किस संदेश को पसंद करेंगे । यहीं संप्रेषण से संबंधित विभिन्न सिद्धांतों का उल्लेख किया जा. सकता है ।

इसमें सबसे प्रमुख है, शेनन और विवर द्वारा प्रस्तुत गणितीय मॉडल (जॉन फिस्क : " दू कम्युनिकेशन स्टडीज) । आमतौर पर संप्रेषण को रेखिक रूप में समझाया जाता है जिसे नीचे दिए चित्र में समझाया गया है ।

संप्रेषण की इस रैखिक प्रक्रिया में शेनन और विवर को तीन स्तरों पर कठिनाइयाँ नजर आती हैं । ये हैं-

स्तर का -	तकनीकी समस्याएँ	संप्रेषण के संकेतों को किस हद तक सही-सही प्रेषित किया जा सकता है ।
स्तर ख -	अर्थगत समस्याएँ	संप्रेषित संकेत वांछित अर्थ को किस हद इक ठीक-ठीक संप्रेषित करता है ।
स्तर ग -	प्रभाव संबंधी समस्याएँ	प्राप्त अर्थ जिस हद तक आचरण को वांछित रूप में प्रभावित करता है ।

जॉन फिस्क के अनुसार तकनीकी समस्याओं को समझने में ज्यादा दिक्कत नहीं होती। तकनीक के क्षेत्र में होने वाले नए-नए प्रयोगों का मकसद यही होता है कि संप्रेषण को ज्यादा से ज्यादा सही रूप में प्रक्षेपित किया जा सके । लेकिन अर्थगत समस्याओं को हल करना अपेक्षाकृत मुश्किल होता है । इसमें कई बाहरी घटक भी अपनी भूमिका अदा करते हैं । मसलन, संकेतों से जुड़े सन्दर्भ । यदि लोग उन संदर्भों से परिचित नहीं है तो उनके लिए अर्थ ग्रहण करने में कठिनाइयाँ आ सकती है । शेनन और विवर का मानना है कि अर्थ संदेश में निहित होता है । इस प्रकार विसंकेतीकरण को सुधारकर अर्थ को काफी हद तक ठीक-ठीक संप्रेषित किया जा सकता है । अर्थ-व्यंजना में सांस्कृतिक घटकों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है और संदेश का विसंकेतीकरण उस सांस्कृतिक परिधि के अंतर्गत होता है जिससे वह संबंधित होता है । लेकिन जहाँ तक प्रभाव संबंधी समस्याओं का प्रश्न है यह इस बात पर निर्भर करता है कि पहले दो स्तरों पर संप्रेषण किस हद तक सफल रहा है । लेकिन इस सफलता का यह अर्थ नहीं है कि संदेश वांछित प्रभाव डालेगा । ग्रहीता पर संदेश की भावनात्मक और सौंदर्यबोधीय प्रक्रिया किस तरह की होगी उससे संप्रेषण के प्रभाव को जांचा जा सकता है, इस बारे में कुछ भी निश्चित रूप में कहना कठिन है ।

अब हम ऊपर दिए गए रेखाचित्र पर विचार करें । आमतौर पर दृश्य माध्यमों में इस प्रक्रिया को समझना आसान होता है जबकि यह प्रक्रिया सभी प्रकार के संप्रेषण में विद्यमान होती है । हमने जिस सूचना स्रोत की बात कही है यह उस प्रक्रिया का वह बिंदु है जो यह तय करता है कि कौन-सा संदेश भेजा जाना है या जो विभिन्न संभावित संदेशों में से भेजे जाने योग्य संदेशों का चुनाव करता है । इस चयनित संदेश को ट्रांसमीटर द्वारा सिग्नल में बदला जाता है और जिसे चैनल के जरिए रिसीवर तक भेजा जाता है (जॉन फिस्क पृ. 8) । उदाहरण के लिए समाचारपत्र के माध्यम से जो संदेश भेजा जाता है उसमें भी यही प्रक्रिया घटित होती है। सूचनाओं का जो भंडारण होता है उसमें से संपादक मंडल के लोग भेजे जाने योग्य संदेशों

का चयन करते हैं । मुद्रण की पूरी तकनीकी प्रक्रिया वह ट्रांसमीटर है जो संदेशों को संकेतों में तब्दील करता है और उसे अखबार के माध्यम से ' ग्रहीताओं तक भेजता है । जॉन फिस्क ने बातचीत को भी इसी प्रक्रिया के रूप में समझाया है । बातचीत में मेरा मुँह ट्रांसमीटर है ध्वनि तरंगें संकेत हैं जो वायु के जरिए ग्रहीता तक पहुँचता है जिसके कान रिसीवर का काम करते हैं। हम निर्वात में बातचीत नहीं कर सकते । यहाँ यह बात जरूर ध्यान रखने की है कि अलग-अलग संचार माध्यमों में यह प्रक्रिया और इसके विभिन्न चरण कम या ज्यादा काम कर सकते हैं ।

इस मॉडल में शोर की महत्त्वपूर्ण भूमिका है । शोर से तात्पर्य यह है कि जो भी संदेश हम संप्रेषित करते हैं उसके अलावा जो संप्रेषित होता है और ग्रहण किया जाता है और जिसे संप्रेषित करना प्रेषक का लक्ष्य नहीं होता वह शोर है । यह कई कारणों से और कई रूपों में हो सकता है । मसलन, यह तकनीकी खराबी के कारण हो सकता है । यह आसपास के माहौल के कारण हो सकता है । लेकिन जिस किसी कारण से भी हो यह संदेश के ग्रहण को प्रभावित करता है और प्रेषक के वांछित लक्ष्य को विकृत करता है ।

इस सिद्धांत में सूचना की अवधारणा का भी महत्वपूर्ण स्थान है । जब संकेत द्वारा किसी सूचना को संप्रेषित किया जाता है तो उसमें दोहरी अर्थ संभावना निहित होती है । ग्रहीता उसमें से अधिकतम संभाव्यता वाला अर्थ ग्रहण करता है । जो संदेश भेजा जाता है हम उसकी उपयुक्तता को सदैव अपने अनुभव के आधार पर तय करते है यानी संकेतों को जब हम विसंकेतित करते हैं तो उसका आधार वह अनुभव और सन्दर्भ होते हैं जिसकी मदद से विसंकेतीकरण की प्रक्रिया घटित होती है । अनुभव से तात्पर्य उस परम्परा से है जो संकेतों के विसंकेतीकरण में मदद करती है । उदाहरण के लिए जीवन कल आएगा और जीवन मुश्किल होता जा रहा है । इन दो वाक्यों में जीवन का अर्थ एक ही नहीं है । पहले वाक्य में यह एक व्यक्ति के नाम का संकेत है और दूसरे में जीवन लाइफ के अर्थ में है । इन दोनों अर्थो को समझने में ग्रहीताओं को इसलिए मुश्किल नहीं होगी क्योंकि वाक्य की रचना ही उसके सामने यह जाहिर कर देगी कि किस वाक्य में जीवन क्या क्या अर्थ है । लेकिन कई बार वाक्य रचना ऐसी होती है जिससे यह तय करना मुश्किल होता है कि इसे किस अर्थ में प्रयुक्त किया गया है । मसलन, यह जीवन है क्या? अब यहाँ जीवन पहले और दूसरे दोनों अर्थों में प्रयुक्त हो सकता है । ऐसी स्थिति में सन्दर्भ से तय होगा कि जीवन को किस अर्थ में प्रयुक्त किया गया है और तब विसंकेतीकरण की प्रक्रिया घटित होगी ।

इस सन्दर्भ में माध्यम की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । माध्यम यानी भाषा या वह तकनीकी जरिया जिसके द्वारा संदेश को भेजा जाता है । मसलन, मुद्रित संप्रेषण या रेडियो या टेलीविजन में संप्रेषण की प्रक्रिया अलग-अलग ढंग से प्रभावित होती है । एक जगह लिखित शब्द दूसरी जगह आवाज और ध्वनियाँ और तीसरी जगह दृश्य संप्रेषण के माध्यम बनते हैं । माध्यम में और भी कई चीजें शामिल हो सकती है । मसलन, आवाज का उतार-चढ़ाव और अभिनय । फिल्म देखते हुए अभिनेता या अभिनेत्री की भाव प्रदर्शन क्षमता संप्रेषण को प्रभावित करती है । यह ऐसा सत्य है जिससे हम सभी वाकिफ हैं । इसी प्रकार छात्र के रूप में हम जानते है कि कई अध्यापक काफी रोचक ढ़ंग से पढ़ाते हैं और उनकी कही हुई बात आसानी से

समझ में आ जाती है जबकि कई लोग इतने बोरियत भरे ढंग से पढ़ाते हैं कि उनकी कही बात समझना आसान नहीं होता । उपर्युक्त आधार पर माध्यम को तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं (जॉन फिस्क पृ. 18)

1. प्रदर्शक माध्यम (प्रेजेंटेशनल मीडियम) - आवाज, चेहरा, देह आदि प्रदर्शक माध्यम हैं । इनका बोले जाने वाले शब्दों; अभिव्यक्तियों, मुद्राओं आदि में 'स्वाभाविक' भाषाओं के रूप में इस्तेमाल होता है। इसके लिए प्रस्तोता की जरूरत होती है ।
2. प्रातिनिधिक माध्यम (रिप्रेजेंटेशनल मीडियम) - इसके अंतर्गत पुस्तकें, चित्र, छायाचित्र, लेखन वास्तुकला, आंतरिक साज-सज्जा, बागवानी आदि आते हैं । इस तरह के कई माध्यम हो सकते हैं जिनका उपयोग सांस्कृतिक और सौंदर्यबोधीय परम्पराओं को 'पाठ' के रूह में सृजित करने के लिए किया जाता है ।
3. यांत्रिक माध्यम - इसके अंतर्गत टेलीफोन, टेलीविजन, रेडियो आदि आते है । ये पहले दो माध्यमों को संप्रेषित करने के लिए प्रयोग किए जाते हैं । लेकिन अपनी तकनीकी सीमाओं में रहते हुए ।

प्रत्येक माध्यम की अपनी विशेषताएँ होती हैं । मसलन, किसी किताब में शब्दों के ऐसे संसार की सृष्टि की जा सकती है जिसे हम टेलीविजन और सिनेमा में भी देख सकते हैं । लेकिन किताब में जो संसार शब्दों के रूप में आता है उसे हम अपनी कल्पना के द्वारा अपने मानस में दृश्य और ध्वनि के रूप में पुन सृजित करते हैं । इसके विपरीत रेडियो में ध्वनि की विशेषताएँ तो समाहित हो जाती है लेकिन ग्रहीता को वहाँ भी दृश्य बिंबों को कल्पना से ही रूपांतरित करना होता है ।

संकेत: संकेत अर्थ की ऐसी व्यवस्था है जो किसी खास संस्कृति से जुड़े लोगों के लिए एक-सी होती हैं । इसमें भौतिक संकेत और उसके नियम और परम्पराएँ दोनों अंतर्निहित होते हैं जो इन संकेतों के संदर्भों को निर्धारित करते हैं । लिखित भाषा या वाचिक भाषा के संकेत मूल रूप में एक से होते हुए भी अपने माध्यम के कारण भिन्न हो जाते हैं । मसलन, जाओ शब्द लिखे जाकर एक ही तरह के अर्थ को ध्वनित करेगा । लेकिन बोले जाने पर वह भिन्न-भिन्न अर्थ व्यक्त कर सकता है । यह बोले जाने के ढंग पर निर्भर करेगा । अगर उसे लिखित भाषा के माध्यम से प्रकट किया जाना है तो उसके साथ अन्य शब्दों और ध्वनि संकेतों को जोड़ना होगा ।

प्रक्षेपीय या प्रेषणीय सिद्धांत की सीमा यह है कि यह एक तरफा रेखिक संप्रेषण को ही सामने लाता है । यहाँ यह मान लिया गया है कि जो संप्रेषित किया जाना है उसे सफलतापूर्वक संप्रेषित करना ही प्रेषक का मकसद है और वहीं ग्रहीता का भी । यह एक भौतिक समस्या है जिसे भौतिक स्तर पर ही हल किया जा सकता है । यहाँ इस बात को भी ध्यान में नहीं रखा गया है कि ग्रहीता का मानस सन्दर्भ विहीन नहीं होता और वह संप्रेष्य संदेश को ग्रहण करने में अपने संस्कार, अनुभव और विवेक का प्रयोग करता है । संप्रेषण की पूरी प्रक्रिया एक सामाजिक प्रक्रिया भी है और सांस्कृतिक प्रक्रिया भी ।

संप्रेषण की प्रक्रिया से संबंधित एक अन्य सिद्धांत की चर्चा जॉन फिस्क ने कीं है । इसे जॉर्ज गेर्बनेर के सिद्धांत के रूप में जाना जाता है । इस सिद्धांत में संचार की प्रक्रिया की

जटिलता को समझने का प्रयास किया गया है । इस सिद्धांत में संदेश को यथार्थ के साथ जोड़कर देखा गया है जिससे कि हम उस यथार्थ की अभिव्यक्ति के द्वारा जो अनुबोधन होता है उसके अर्थ को समझ सकें । इस सिद्धांत में माना गया है कि जो बाहरी यथार्थ है उसके ही एक हिस्से के तौर पर उस वस्तु की अभिव्यक्ति होती है जिसे मीडिया संप्रेषित कर रहा है । लेकिन संप्रेषण से पूर्व ग्रहण किए जाने पर यह वस्तु एक सी नहीं रहती । यानी जो संप्रेषित किया जाता है और जो ग्रहण किया जाता है वह अलग-अलग होता है । प्रश्न यह भी उपस्थित होता है कि ग्रहण करने वाला कौन है? यदि वह कोई यंत्र है जैसे कैमरा या माइक्रोफोन तो अनुबोधन (पर्सेपाशन) को वह यंत्र निर्धारित करेगा और यदि ग्रहण करने वाला मनुष्य होगा तो यह अनुबोधन और भी जटिल होगा । यंत्र के द्वारा संदेश का ग्रहण उसकी तकनीकी विशिष्टता से निर्धारित और नियंत्रित होगा लेकिन मनुष्य में यह प्रक्रिया संदेश और मनुष्य के बीच . अंतक्रिया और संवाद द्वारा तय होगी । यह अपेक्षाकृत जटिल प्रक्रिया है क्योंकि इसमें मनुष्य के विचार और अवधारणाओं की भूमिका होती है जो यंत्र की तरह नियत नहीं होती । इस प्रक्रिया में मनुष्य जो कुछ ग्रहण करेगा उसी से वह उस संदेश को अर्थ देगा । (जॉन फिस्क, पृ. 26) । इस प्रक्रिया से यह साफ हो जाता है कि संदेश के अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया एक ओर बाहरी यथार्थ और दूसरी और आंतरिक अवधारणाओं के बीच सादृश्य बैठाने की कोशिश का परिणाम होती है । यह सादृश्य बैठाने का काम उस सांस्कृतिक ढाँचे के अंतर्गत होता है जिसमें हमारे विचार और धारणाएँ निर्मित होती है । इसका अर्थ यह भी है कि विभिन्न संस्कृतियों के लोग एक ही संदेश को भिन्न-भिन्न ढंग से ग्रहण करेंगे । (जॉन फिस्क पृ. 27) । गेर्बनेर के सिद्धांत का यह पहला चरण है जिसे क्षैतिज आयाम (हारिजेंटल डाइमेंशन) कहा जा सकता है ।

गेर्बनेर के सिद्धांत का दूसरा चरण उर्ध्वगामी आयाम (वर्टिकल डाइमेंशन) कहा जा सकता है । पहले चरण में जिस वस्तु को ग्रहण करने की बात हमने कही थी उसे अभिव्यक्त करने के लिए संकेतित किया जाता है । गेर्बनेर के अनुसार जिसे हम आमतौर पर संदेश कहते हैं वह वस्तु के बारे में संकेत या वक्तव्य होता है । यह संदेश दो भागों में विभाजित होता है । एक संकेत और दूसरा वस्तु । वस्तु तो वही रहती है लेकिन संकेत को कई रूपों में और कई तरीके से संप्रेषित किया जा सकता है । संप्रेषक के लिए सबसे बड़ी समस्या यही होती है कि वह वस्तु के लिए किस संकेत का इस्तेमाल करे जो सबसे उपयुक्त हो । इससे यह भी स्पष्ट है कि वस्तु के लिए जो भी संकेत चुनेंगे उसका प्रभाव वस्तु की प्रस्तुति पर भी पड़ेगा । संकेत और वस्तु के बीच इस सिद्धांत में जो भी कहा जा रहा है वह साहित्य के अंतर्गत वस्तु और रूप के सवाल की तरह ही है ।

शेनन और विवर के सिद्धांत से इसका अंतर यह है कि जहाँ उनके यहाँ संदेश स्वतंत्र रूप से मौजूद रहता है । संकेत सिर्फ उस सिद्धांत पर आवरण की तरह लिपटा होता है और गृहीता उस संकेत के आवरण हो हटाकर संदेश को ग्रहण कर लेता है जबकि गेर्बनेर के यहाँ संदेश और संकेत दोनों अंतर्ग्रथित होते हैं । वस्तु बिना रूप के विद्यमान नहीं रह सकती और संकेत का चयन बहुत महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि उसका प्रभाव वस्तु के अर्थ के निर्धारण पर पड़ता है । यही यह महत्त्वपूर्ण सवाल उठता है कि चयन कि प्रक्रिया को कौन निर्धारित करता है । मसलन, समाचारपत्रों या टेलीविजन के समाचारों को निर्धारित कौन करता है । यहाँ

मीडिया के स्वामित्व और वर्चस्व तथा उसमें काम करने वाले निष्पादकों की भूमिका का प्रश्न उपस्थित हो जाता है । हम इस बात को अपने रोजमर्रा के अनुभव से जानते हैं कि एक ही घटना को अलग-अलग ढंग से पेश किया जाता है और उसे ग्रहीता अलग-अलग अर्थ में ग्रहण करता है । संदेश की प्रस्तुति को निर्धारित करने वाले घटकों में सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना का भी महत्त्वपूर्ण हाथ होता है । यही इन पहलुओं पर विस्तार से जाने की आवश्यकता नहीं है ।

इस सिद्धांत के उर्ध्वगामी आयाम का एक घटक उपलब्द्ता का भी है । यानी कि संदेश को किन लोगों तक पहुँचाया जाना है । क्या संदेश सबके लिए समान रूप से उपयोगी है? क्या किसी फिल्म को बच्चों और बड़ों दोनों को दिखाया जाना है या उसे बच्चों से बचाया जाना है' संदेश के लिए उपयुक्त संकेत की तलाश करते हुए ही नहीं बल्कि यथार्थ में से वस्तु का निर्धारण करते हुए इस बात को ध्यान रखना होता है । यहाँ निष्पादक और वे सभी लोग और संस्थाएँ जो इस प्रक्रिया पर नियंत्रण रखती हैं इसमें हस्तक्षेप करती हैं ।

गेर्बनेर के इस सिद्धांत का अपना महत्त्व है । वे शेनन और विवर के सिद्धांत का विकास करते हैं । लेकिन वे संप्रेषण तक ही अपने को सीमित रखते हैं । वे इस सवाल का जवाब देने में कामयाब नहीं होते कि अर्थ कहाँ से पैदा होता है ।

न्यूकॉब का सिद्धांत

शेनन और विवर के सिद्धांत और गेर्बनेर के सिद्धांत दोनों रेखिक हैं और मूलरूप से प्रेषण के प्रश्न को ही संबोधित करते हैं लेकिन न्यूकॉब के सिद्धांत में संचार की प्रक्रिया रेखिक रूप में नहीं घटित होती है । अगर आकार में ही इसे समझना चाहें तो इसे त्रिकोणीय सिद्धांत कह सकते हैं । जॉन फिस्क के अनुसार इस सिद्धांत का महत्त्व यह है कि यह संप्रेषण की भूमिका को समाज और सामाजिक संबंधों के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखता है । न्यूकॉब का मानना है कि संप्रेषण सामाजिक व्यवस्था में एक तरह का संतुलन कायम करता है । इस सिद्धांत के अनुसार इस त्रिकोण के तीन बिंदु प्रेषक, प्रेषिति और सामाजिक परिवेश से मिलकर बनता है । प्रेषक और प्रेषिति कोई व्यक्ति भी हो सकता है, कोई समुदाय, संगठन या प्रबंधन हो सकता है। न्यूकॉब का मानना है कि यदि प्रेषक का प्रेषिति के साथ संबंधों में परिवर्तन होता है तो प्रेषक से प्रेषिति का संबंध भी बदलेगा और जब दोनों के संबंधों में बदलाव आएगा तो सामाजिक परिवेश जिससे इन दोनों का संबंध है उसमे भी बदलाव आएगा । इसी प्रकार सामाजिक परिवेश में कोई बदलाव आता है तो प्रेषक और प्रेषिति में उनके पारस्परिक संबंधों में बदलाव आना भी लाजमी है । यदि प्रेषक और प्रेषिति में संबंध मित्रतापूर्ण है तो उनका सामाजिक परिवेश एक साथ और मित्रतापूर्ण होगा । लेकिन यदि उनके संबंध मित्रतापूर्ण नहीं है तो सामाजिक परिवेश से संबंध भी भिन्न-भिन्न होगा और इसका असर उस संदेश के प्रति रवैये में नजर आएगा जो दोनों का भिन्न होगा और उनमें तनाव की सृष्टि करेगा ।

इस सिद्धांत में यह माना गया है कि लोगों को सूचना की जरूरत होती है । जॉन फिस्क के अनुसार लोकतंत्र में सूचना को आमतौर पर एक अधिकार के रूप में देखा जाता है लेकिन यह नहीं समझ पाते कि सूचना हमेशा अधिकार ही नहीं है बल्कि जरूरत भी है । इसके बिना हम अपने को समाज का अंग नहीं समझ सकते ।

वेस्ले और मेक्लीयन सिद्धांत

इस सिद्धांत में सामाजिक जरूरत के प्रश्न को और आगे बढ़ाया गया है । न्यूकॉब के सिद्धांत में जो बातें कही गई है उसमें दो परिवर्तन किए गए हैं । उन्होंने संप्रेषण क्या और कैसे घटित होता है, इसका निर्णय करने वाली प्रक्रिया को भी इसमें शामिल किया है । इसके साथ ही उन्होंने प्रेषक को सामाजिक परिवेश के साथ जोड़ा है । उनका दावा है कि जन माध्यम सामाजिक परिवेश का विस्तार करते हैं जिसके साथ जुड़ने की जरूरत प्रेषिती को होती है । जनमाध्यम उन साधनों को भी मुहैया कराता है जिससे प्रेषिति और सामाजिक परिवेश के बीच संबंध निष्पादित होते हैं । लेकिन इस सिद्धांत की सीमा यह है कि सामाजिक परिवेश औS संप्रेषक महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं और प्रेषिति बहुत कुछ उन पर निर्भर हो जाता है । संप्रेषण के सिद्धांत के कई और पहलू हो सकते हैं । लेकिन महत्वपूर्ण यह है कि संचार माध्यमों के सिद्धांत को संप्रेषण की प्रक्रिया के रूप में समझे बिना नहीं समझा जा सकता । लेकिन यह प्रक्रिया अंततः एक अर्थ ग्रहीता तक संप्रेषित करती है जिसे जानना और समझना भी जरूरी है

7.3 अर्थगत सिद्धांत

जनसंचार का कोई भी माध्यम हो वह प्रेषक द्वारा प्रेषिति तक संदेश भेजने का काम जरूर करता है। संदेशों को भेजने के क्रम में माध्यम, चैनल, ट्रांसमीटर, रिसीवर, नाइज और फीडबैक पदों को समझने की जरूरत होती है । अब तक हमने संचार की प्रक्रिया पर ही विचार किया है लेकिन यहाँ अब हम संचार को अर्थ उत्पन्न करने वाले माध्यम के रूप में विचार करेंगे । जब हम किसी दूसरे को कोई बात कहते हैं तो हमें उम्मीद होती है कि वह हमारी बात को कमोबेश उसी अर्थ में ग्रहण करेगा जिस अर्थ में हम दूसरे तक पहुँचाना चाहते हैं । लेकिन संप्रेषण के लिए मैं अपने संदेश को कुछ चिन्हों (Signs) के जरिए उत्पन्न करता हूँ । ये चिन्ह शब्द हो सकते हैं, ध्वनि हो सकती है, दृश्य हो सकते हैं । लेकिन हम जो भी चिन्ह इस्तेमाल करें वे दूसरे तक जिस तक हम संदेश को संप्रेषित करना चाहते हैं उसको समझ में आना चाहिए । यानी कि चिन्हों की व्यवस्था ऐसी होगी जहाँ प्रेषक और प्रेषिति दोनों के लिए उनका अर्थ एक ही होगा ।

चिन्ह किस रूप में काम करते है यह जनसंचार के संबंध में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । हालांकि इसका संबंध भाषा विज्ञान से है लेकिन यह सिर्फ भाषा तक सीमित नहीं है । जॉन फिस्क ने इसके तीन महत्त्वपूर्ण क्षेत्र माने है।

1. पहला क्षेत्र संकेतों का है- चिन्ह कई तरह के हो सकते हैं जो कई तरह से अर्थों को अभिव्यक्त करते हैं और लोग जो इन चिन्हों का इस्तेमाल करते हैं उनसे ये कई रूपों में जुड़े हो सकते हैं । चिन्ह मनुष्य की रचना है उनको उसी अर्थ में समझा जा सकता है जिस अर्थ में मनुष्य उन्हें समझना चाहता है ।
2. दूसरा क्षेत्र संकेतों (कोड्स) या चिन्हों की प्रणाली से संबंधित हैं जिनमें ये चिन्ह संगठित होते हैं । इसके अंतर्गत समाज या संस्कृति की जरूरत को पूरा करने के लिए या उनके संप्रेषण के लिए उपलब्ध संप्रेषण चैनलों का दोहन करने के लिए विभिन्न संकेतों के विकास का अध्ययन किया जाता है ।

3. तीसरा क्षेत्र वह संस्कृति है जिसके अंतर्गत चिन्ह (साइन) और संकेत (कोड) कार्य करते हैं । अपने अस्तित्व और रूप के लिए संस्कृति इन संकेतों और चिन्हों के उपयोग पर निर्भर करती है ।

जाहिर है कि चिन्हों और संकेतों के अध्ययन के लिए इस विधि में पाठ (टेक्स्ट) पर ध्यान दिया जाता है । पाठ का अर्थ ग्रहीता अपने ढंग से पढ़ता है । वह पाठ का अर्थ प्राप्त करने के लिए उसे अपने अनुभव, प्रवृत्तियों और संवेदनाओं के नजदीक लाता है ।

चिन्ह (साइन) कुछ-कुछ भौतिक वस्तु है जिसे हमारी इंद्रियाँ महसूस कर सकती हैं । यह अपने अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु के बारे में बताती है और अपने प्रयोक्ताओं की पहचान पर निर्भर करती है कि यह एक चिन्ह है । मसलन, रोटी शब्द जिस वस्तु का चिन्ह है उसका अर्थ सिर्फ वे ही समझ सकते हैं जिनकी भाषा में यह चिन्ह शामिल है । इस संबंध में जॉन फिस्क ने दो सिद्धांतों का उल्लेख किया है । पहला सिद्धांत दार्शनिक सी. एस. पियर्स का है और दूसरा सिद्धांत भाषा वैज्ञानिक फार्डिनांड डी. सस्यूर का है ।

पियर्स के अनुसार चिन्ह जिस वस्तु के बारे में बताता है और प्रयोक्ता जिस अर्थ में समझता है उनसे एक त्रिकोण का निर्माण होता है । इनमें से प्रत्येक शेष दो से गहरे रूप में जुड़ा होता है और इसे दूसरों के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है । जबकि सस्यूर इससे थोड़ा अलग विचार रखते हैं । चिन्ह का एक भौतिक रूप होता है, साथ ही उसके बारे में एक मानसिक अवधारणा होती है और यह अवधारणा बाहरी यथार्थ की एक समझ पर निर्भर करती है । चिन्ह यथार्थ से अपना संबंध उन लोगों की अवधारणाओं के जरिए ही निर्मित करता है जो उसका प्रयोग करते हैं । उदाहरण के लिए रोटी शब्द जिसके साथ एक मानसिक अवधारणा जुड़ी है वह 'आमतौर पर उन सभी को समान अर्थ ध्वनित करेगा जो उसका उपयोग करते हैं । लेकिन इसके साथ कुछ समस्याऐ भी जुड़ी होती है । कई बार इस बारे में विवाद भी उठ खड़ा होता है । जैसा कि जॉन फिस्क ने उदाहरण दिया है कि एक ही व्यक्ति एक वस्तु को हरा और दूसरा नीला बता सकता है । इसका अर्थ यह नहीं है कि दोनों के लिए वे अलग-अलग हैं या उन्हें अलग-अलग ढंग से देख रहे हैं । वस्तुत: उनकी हरेपन और नीलेपन की अवधारणा में फर्क हैं । यानी चिन्ह के साथ जुड़ी मानसिक अवधारणा उसके अर्थ को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण निभाती है।

पियर्स के सिद्धांत को हम जॉन फिस्क के शब्दों में इस तरह प्रस्तुत कर सकते हैं-चिन्ह किसी व्यक्ति के लिए किसी सन्दर्भ और क्षमता के अनुसार किसी वस्तु को बताता है । यह व्यक्ति को कुछ संकेतित करता है जिसके आधार पर वह व्यक्ति अपने मस्तिष्क में उसका समकक्ष चिन्ह उत्पन्न करता है जो शायद विकसित चिन्ह होता है । यह दूसरा चिन्ह पहले चिन्ह की व्याख्या होता है और चिन्ह जिसके बारे में बताता है वह वस्तु होती है । इस प्रकार वस्तु भौतिक और मानसिक चिन्ह तीनों अर्थ के लिए एक दूसरे पर निर्भर होते हैं । पियर्स की अवधारणा को बाद में आग्डेन और रिचडर्स ने विकसित किया । पियर्स की अवधारणा से इनकी अवधारणा इस रूप में भिन्न है कि उनके अनुसार वस्तु (जिसे वे संदर्भित-रेफरेंट कहते हैं) और मानसिक अवधारणा (जिसे वे सन्दर्भ कहते हैं) के बीच सीधा संबंध होता है । लेकिन प्रतीक

और संदर्भित के बीच सीधा संबंध नहीं होता । प्रतीक (इनके यहाँ चिन्ह प्रतीक के रूप में है) मानसिक अवधारणा पर निर्भर होता है और संदर्भित से वह अप्रत्यक्ष रूप में ही संबद्ध होता है । इस प्रकार आग्डेन और रिचडर्स के विचार सस्यूर के विचार नजदीक पहुँच जाते हैं ।

पियर्स की रुचि मुख्य रूप से अर्थ में थी लेकिन सस्यूर की दिलचस्पी भाषा में थी क्योंकि वह भाषाविज्ञानी था । वह एक तरह के चिन्हों (उसके सन्दर्भ में शब्दों) से दूसरी तरह के चिन्हों (जो पियर्स के यहाँ वस्तु हैं) के पारस्परिक संबंधों पर विचार करना चाहता था । सस्यूर के यहाँ चिन्ह एक भौतिक वस्तु है जिसका अर्थ होता है या उसकी शब्दावली में चिन्ह अभिव्यक्त (सिग्निफायर) और कथ्य (सिग्निफाइड) से मिलकर बना होता है । अभिव्यक्त (सिग्निफायर) चिन्ह का वह बिंब है जिसे हम ग्रहण करते हैं । उदाहरण के लिए कागज पर लिखा गया निशान या बोली गई ध्वनि । जबकि कथ्य (सिग्निफाइड) वह मानसिक अवधारणा! है जिसके बारे में यह बताता है । यह मानसिक अवधारणा एक ही संस्कृति के सभी लोगों के लिए व्यापकत: समान होती है जो एक ही भाषा का इस्तेमाल करते हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि सस्यूर के यहाँ बाहरी यथार्थ का उतना महत्व नहीं है । वह बाहरी यथार्थ या अर्थ के चिन्ह के साथ संबंध को चिन्हीकरण की प्रक्रिया द्वारा स्पष्ट करता है । उदाहरण के लिए जब मैं कागज पर रोटी शब्द लिखता हूँ तो यह एक चिन्ह होता है जो जिस रूम में उसकी अभिव्यक्त (सिग्निफायर) के रूप में प्रतीत होती है उसी के अनुसार हमारे मस्तिष्क में उसकी निर्मित अवधारणा (सिग्निफायर) होती है यानी कि हमारे मानस में जो रोटीपन है उससे उसका संबंध जुड़ जाता है । मेरे मानस में जो रोटीपन की अवधारणा है और जो वास्तविक रोटी है उनका पारस्परिक संबंध चिन्हिकरण (सिग्निफिकेशन) है जिसके आधार पर ही मैं उस रोटी शब्द के अर्थ तक पहुँचता हूँ ।

सस्यूर यहाँ एक और प्रश्न उठाते हैं । रोटी क्या है या हम रोटी से क्या समझते हैं' सस्यूर का कहना है कि इसका अर्थ हम इस रूप में ग्रहण करते हैं कि रोटी क्या नहीं है । यानी कि हम एक चिन्ह को एक निश्चित मानसिक अवधारणा से इसलिए जोड़ते हैं क्योंकि दूसरे चिन्ह दूसरी मानसिक अवधारणाओं से जुड़े होते हैं । इस प्रकार हम रोटी के वास्तविक अर्थ को पहचान जाते हैं । यानी के चिन्ह की मानसिक अवधारणाओं (सिग्निफाइड) की ऐसी व्यवस्था होती है जिनका उपयोग चिन्हों को विभाजित कर विभिन्न श्रेणियों में रखकर उनको. समझने के लिए किया जाता है । यह सिग्निफाइड मनुष्य निर्मित व्यवस्था है जो मानव विकास और सांस्कृतिक विकास से जुड़ी होती है और जिसके द्वारा हम अपने लोगों के साथ संवाद स्थापित करते हैं ।

अर्थगत सिद्धांत के और भी कई पहलू हैं लेकिन यही मूल अवधारणाओं को प्रस्तुत । किया गया है ताकि संप्रेषण की अर्थगत अवधारणा को समझा जा सके । यहाँ यह जरूर ध्यान रखें कि इसका संबंध सिर्फ भाषा तक ही सीमित नहीं है बल्कि दृश्य और अन्य माध्यमों पर भी इन्हें लागू किया जा सकता है ।

7.4 सामाजिक सिद्धांत

जनसंचार के सिद्धांतों का एक। बड़ा हिस्सा उसको एक सामाजिक परिघटना मानकर विचार करता है । जनसंचार की जरूरत लोगों को होती है । वे ही संदेश का निर्माण करते हैं, उसका प्रेषण करते हैं और उसको ग्रहण करते हैं । इसमें विभिन्न तरह के यंत्रों की आवश्यकता होती है । लेकिन उन यंत्रों का उपयोग भी लोग ही करते हैं । सच तो यह है कि इन यंत्रों का कोई उपयोग और महत्त्व नहीं है जब तक कि लोग संदेश के संप्रेषण और ग्रहण करने के लिए उसका इस्तेमाल न करें । इससे यह तो नतीजा निकलता ही है कि संदेश मनुष्यों द्वारा निर्मित होते हैं, मनुष्यों द्वारा संप्रेषित होते हैं और मनुष्यों द्वारा ग्रहण किए जाते हैं । अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि संदेश और मनुष्य के बीच यह अंतक्रिया किस तरह की होती है? क्या उसमें किसी तरह का उलझाव किसी तरह की जटिलता नहीं होती । संदेश के निर्माण और ग्रहण तक की प्रक्रिया को निर्धारित', करने वाला मनुष्य को किसी सरल परिभाषा में बांधा जा सकता है? वर्ग, जाति, नस्ल, धर्म, लिंग, भाषा, क्षेत्र आदि विभिन्न तरह के विभागों में बांट कर देखा जाने वाला मनुष्य और उसके द्वारा उत्पन्न और उसके लिए उत्पन्न संदेश पर इन विभाजनों का कोई प्रभाव नहीं होता? संप्रेषण के सिद्धांत संबंधी अध्ययन का यह एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है जिसे जानना जरूरी है ।

जब हम जनसंचार और समाज के बीच संबंधों की बात करते हैं तो यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि जनसंचार माध्यम संदेशों का प्रसारण किस रूप में करता है? क्या वह एक माध्यम भर है जो संदेश को प्रेषक से प्रेषिती तक पहुँचा देता है या उससे कुछ भिन्न । डेनिस मेक्वेल के अनुसार इस संबंध में कई तरह की अवधारणाएँ काम करती हैं । जो जनसंचार को एक माध्यम के रूप में देखते हैं, वे उसे प्राय: निम्नलिखित रूपों में देखते हैं-

- जनसंचार एक खिड़की की तरह है जो घटनाओं और अनुभवों को समझने की दृष्टि देता है और बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के वह हमें इस बात में समर्थ बनाता है कि समाज में क्या चल रहा है ।
- जनसंचार समाज और विश्व में चलने वाली घटनाओं का दर्पण है जो पूरी ईमानदारी से हमें यथार्थ से परिचित करा देता है । हालांकि दर्पण की दिशा और कोण दूसरे लोग तय करते हैं और यथार्थ को हम पूरी तरह अपनी इच्छानुसार नहीं जान सकते ।
- जनसंचार एक छलनी या द्वारपालक का काम भी करता है जो घटनाओं और अनुभवों में से कुछ को चुनकर हम तक भेजता है और शेष को रोक लेता है । ऐसा जान-बूझकर भी किया जा सकता है और अनजाने में भी ।
- जनसंचार एक मार्गदर्शक या पथ चिन्ह या दुभाषिए का काम करता है जो हमें बताता है कि यथार्थ में क्या ग्रहण करने योग्य है और क्या नहीं और किस बात का क्या अर्थ है ।
- जनसंचार एक मंच की तरह है जहाँ सूचना और विचार को लोगों के सामने पेश किया जाता है, प्राय: इस संभावनाओं के साथ कि उनका प्रत्युत्तर भी प्राप्त होगा ।

- जनसंचार एक अवरोधक या पर्दे की तरह है जिसमें यह संभावना निहित है कि वह हमें यथार्थ से विलग कर दे और ' या तो पलायनवादी फैंटेसी द्वारा या प्रचार द्वारा विश्व की एक झूठी तस्वीर पेश करे ।

यहाँ यह कहना तो मुश्किल है कि कौन-सा दृष्टिकोण सही है । लेकिन इतना सच है कि जनसंचार और समाज के बीच संबंधों को आमतौर पर इनमें से ही किसी एक या अधिक रूप में पेश किया जा सकता है । ये न तो अपने में पूर्ण हैं और न ही पूरी तरह सकारात्मक और नकारात्मक हैं । उपर्युक्त सभी रूपों में एक बात सामान्य है कि जनसंचार समाज और संदेश के बीच एक ऐसे घटक के रूप में उपस्थित होता है जिसके जरिए यथार्थ का ज्ञान हासिल करते हैं ।

जनसंचार और समाज के बीच संबंधों के सैद्धांतीकरण को समझने के लिए यह जरूरी है कि हम उसके विभिन्न घटकों और उसके पारस्परिक संबंधों को भी समझें । डेनिस मेक्वेल ने इसका एक ढाँचा प्रस्तुत किया है । इसमें तीन घटक सबसे अहम् होते हैं : मीडिया संस्थान, सामाजिक संस्थान और दर्शक ।

जनसंचार माध्यम के सामाजिक सिद्धांतों से संबंधित जितनी भी अवधारणाएँ सामने आई हैं ये उपर्युका ढाँचे में ही अपने मत को पेश करती हैं और ग्रहीता भी इसी ढाँचे में संप्रेष्य संदेश का अर्थ ग्रहण करता है । समाज में जो भी घटनाएँ घटित होती हैं वे राजनीतिक, आर्थिक, कानूनी, शैक्षिक, पारिवारिक और सांस्कृतिक संस्थाओं से संबंधित होती हैं । मीडिया से संबंधित संस्थाएँ संचार के विभिन्न चैनलों के द्वारा ग्रहीता तक संप्रेषित करती हैं । यहाँ इस प्रक्रिया में दो महत्वपूर्ण बातें हैं जिसे समझना जरूरी है । सामाजिक संस्थानों और मीडिया संस्थानों पर औपचारिक और अनौपचारिक नियंत्रण होता है । ये नियंत्रण किनका है और उसकी प्रकृति क्या है इसे समझना जरूरी है । इसी प्रकार सामाजिक संस्थानों और मीडिया में अंतर्क्रिया का स्वरूप क्या है इसे जानना भी जरूरी है । जब मीडिया संस्थान संदेश को संप्रेषित करते हैं तो वहाँ भी दो बातों को, समझना जरूरी होता है । पहला तो यह है कि इसके लिए किस माध्यम का उपयोग किया जा रहा है। दूसरा, स्वयं दर्शक किस तरह के संदेश की मांग कर रहा है । उसकी संदेश के बारे में समझ किस तरह की है और संदेश प्रेषित होने के बाद वह किस तरह का प्रत्युत्तर देगा । संदेश को ग्रहण करते हुए स्वयं ग्रहीता का वास्तविक दुनिया के बारे में जो निजी अनुभव है वे किस तरह ग्रहण करने की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं, यह भी एक महत्वपूर्ण पहलू है ।

जनसंचार माध्यमों के सिद्धांत पक्ष पर विचार करते हुए समाज और जनसंचार दोनों पर वर्चस्व का प्रश्न अवश्य उपस्थित होता है । मीडिया पर किसका नियंत्रण है और किनके हितों के समर्थन में यह नियंत्रण काम करता है । समाज और विश्व की कौन-सी तस्वीर को मीडिया प्रस्तुत करता है । अपने निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में मीडिया कितना प्रभावी होता है और मीडिया क्या समाज में बराबरी को प्रोत्साहित करने में कम या ज्यादा समर्थ होता है । इन सवालों का कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता । मीडिया विशेषज्ञ इनके बारे में अपनी राजनीतिक-सामाजिक दृष्टि के अनुसार उत्तर देते हैं ।

जनसंचार के सामाजिक प्रभावों का उत्तर इस बात से तय होगा कि स्वयं समाज के बारे में किस संकल्पना को विशेषज्ञ स्वीकार करता है । जनसंचार का गहरा संबंध जन समाज की अवधारणा से भी है । जनसंचार के साथ जन समाज की अवधारणा का भी विकास हुआ । जन संबंधी अवधारणा पर हम अन्य इकाई में विचार कर चुके हैं । जन समाज की अवधारणा का संबंध जनता के प्रति रवैये से है । जन समाज में समाज की वह अवधारणा निहित है जहाँ समाज पर नियंत्रण रखने वाला वर्ग लोगों को ऐसे समूह के रूप में संगठित करता है जो उनके हितों को पूरा करने में मददगार हो । उपभोक्ताओं के रूप में, दर्शकों के रूप में, पाठकों के रूप में, मतदाताओं के रूप में, बाजारों के रूप में आदि । जन समाज एक व्यापक समाज होता है जहाँ मीडिया केंद्रीकृत होता है और आमतौर पर वह एकतरफा भी होता है । लोग सूचना और अन्य संदेशों के " उन पर निर्भर होते हैं और मीडिया का उपयोग उस पर नियंत्रण रखने वाले जनता पर नियंत्रण बनाए रखने के लिए करते हैं ।

जनसंचार और समाज के पारस्परिक संबंधों को समझने के लिए मार्क्सवादी विचारधारा काफी मददगार साबित होती है । हालांकि स्वयं मार्क्स और एंगेल्स के समय तक जनसंचार माध्यमों का ऐसा विस्तार नहीं हुआ था लेकिन उन्होंने जो विचार पेश किए हैं उसका प्रयोग करते हुए कई विचारकों ने जनसंचार संबंधी सिद्धांतों को प्रस्तुत किया है । इन सिद्धांतों का आधार यह है कि बुर्जुआ समाज में मीडिया पर अधिकार भी बुर्जुआ वर्ग का ही होता है, वही

उसका स्वामी होता है । मीडिया उनके हितों के लिए उपयोग में लाया जाता है । मीडिया मजदूर वर्ग में मिथ्या चेतना निर्मित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और अपने राजनीतिक विरोधियों को अपनी बात लोगों तक पहुँचाने से रोकता है । लेकिन इन बातों का यह अर्थ नहीं है कि जनसंचार माध्यम और समाज का संबंध सरल और उलझाव रहित होता है । वस्तुत: वह काफी जटिल होता है । यही कारण है कि स्वयं मार्क्सवादियों ने जनसंचार की तरह-तरह से व्याख्या की है ।

मार्क्सवाद से प्रभावित विचारकों ने जनसंचार और समाज के पारस्परिक संबंधों को राजनीतिक-आर्थिक सिद्धांतों की रोशनी से समझने का प्रयास किया है । मीडिया का जिस तरह से विस्तार हो रहा है और आज वह एक बड़े भूमंडलीय उद्योग और व्यापार का रूप ले चुका है, ऐसे में मीडिया को इस दृष्टि से देखना जरूरी हो जाता है । आज मीडिया राष्ट्रीय और स्थानीय सीमाओं से बाहर जाकर भूमंडलीय रूप ले चुका है ।

मीडिया को वर्गीय और व्यापक सामाजिक हितों की रोशनी में जो नहीं देखते उनके लिए मीडिया का विकास अपने आप में महत्त्वपूर्ण है । वे मीडिया प्रौद्यौगिकी के विकास को ही सामाजिक विकास के रूप में देखते हैं और मान लेते हैं कि समाज के प्रभुत्वशाली हिस्सों के हितों को पूरा करने में कामयाब होना ही उसकी कामयाबी है । इस प्रकार मीडिया के क्षेत्र में होने वाला कोई भी नया विकास वस्तुत: आम जनता और मीडिया दोनों को एक-दूसरे से दूर ले जाता है । समाज और जनसंचार के सिद्धांतों को प्राय: इसी परिप्रेक्ष्य में देखने की जरूरत होती है ।

7.5 सांस्कृतिक सिद्धांत

जनसंचार और संस्कृति का बहुत गहरा संबंध है । जनसंचार माध्यमों के द्वारा जो संदेश संप्रेषित होते हैं उनका संबंध संस्कृति के क्षेत्र से होता है । संस्कृति को ऐसी प्रक्रिया के रूप में भी परिभाषित: किया जाता है जो हमारे सामाजिक अनुभवों को अर्थ देती है और जिससे अर्थ निःसृत होता है । संस्कृति मानव गतिविधियों के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त होती है । संस्कृति कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे जीवन और जीवन से जुड़ी गतिविधियों से काटकर देखा जा सकता है । जेम्स केरी ने ठीक ही कहा है कि सामाजिक जीवन सत्ता और व्यापार से ज्यादा बड़ी चीज है । इसमें हमारे सौंदर्यबोधीय अनुभव, धार्मिक विचार, निजी मूल्य और संवेदनाएँ और बौद्धिक विमर्श शामिल होते हैं । संस्कृति वस्तुत: एक प्रक्रिया है, लेकिन ऐसी प्रक्रिया जिसे मनुष्य दूसरे मनुष्यों के साथ भागीदार बनकर अर्जित करता है । संस्कृति अपने को कई रूपों में व्यक्त करती है और इनमें से जनसंचार माध्यम एक महत्वपूर्ण रूप है । संक्षेप में, कह सकते हैं कि संस्कृति का निर्माण सामूहिक रूप में होता है और वह सामूहिक रूप में ही जीवित रहती है । वह अपने को सांकेतिक रूपों में अभिव्यक्त करती है । वह गतिशील और परिवर्तनशील होती है और दिक् और काल में संप्रेष्य होती है । वह विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के साथ अंतर्क्रिया करती हुई अपने को व्यवस्थित रूप प्रदान करती है । यही यह भी ध्यान रखने की जरूरत है कि विभिन्न जातीय समुदायों की अपनी सांस्कृतिक परम्परा होती है और इन जातीय समुदायों से राष्ट्रीय संस्कृति का और इनके समुच्चय से मानव संस्कृति का विकास होता है ।

जनसंचार के सन्दर्भ में सांस्कृतिक प्रश्नों पर विचार करते हैं तो कई मुद्दे उभर कर सामने आते हैं । जनसंचार का जन समाज से संबंधों पर विचार कर चुके हैं, उसी तरह जन संस्कृति से संबंधों पर विचार करने की जरूरत है । जन संस्कृति और लोकप्रिय संस्कृति क्या एक ही है या वे भिन्न-भिन्न हैं । जनसंचार के माध्यम से व्यक्त होने वाले सांस्कृतिक रूपों पर संचार प्रौद्योगिकी का प्रभाव किस रूप में पड़ता है? क्या जनसंचार संस्कृति को उपभोक्ता वस्तु में बदल देता है? भूमंडलीकरण के चलते क्या संस्कृति के स्थानीय रूपों की पहचान के खत्म होने का खतरा पैदा हो गया है? जब हम जनसंचार के सन्दर्भ में संस्कृति की बात करते हैं तो अपसंस्कृति का सवाल भी सामने आता है । साथ ही लिंग, नस्ल, जाति, अल्पसंख्यक आदि समूहों में संबंधित सवाल भी महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं ।

जनसंचार के सन्दर्भ में सांस्कृतिक सिद्धांत में फ्रेंकफर्ट स्कूल की विचारधारा का उल्लेख आमतौर पर किया जाता है । फ्रेंकफर्ट स्कूल से संबंधित विचारकों ने ही सबसे पहले जनसंचार के सन्दर्भ में सांस्कृतिक प्रश्नों पर गहनता से विचार किया था । इन विचारकों में सबसे महत्त्वपूर्ण हैं - मैक्स होखिमीर और थ्योडोर एडोर्नो । इसके साथ ही वाल्टर बेंजामिन और हर्बट मार्क्यूज की भी गणना की जाती है । इसके अनुसार, इजारेदार पूँजी अपनी कामयाबी के लिए जिन प्रमुख साधनों का इस्तेमाल करती है उनमें जन संस्कृति का स्थान सबसे ऊपर है । वस्तुओं, सेवाओं और विचारों के जनोत्पादन की संपूर्ण प्रणाली पूँजीवादी व्यवस्था में बेचे और खरीदे जाने के लिए होती है । यह व्यवस्था प्रत्येक वस्तु और विचार को जिस में बदल देती है और जो यह मानती है कि ललित कलाओं की सर्वोत्तम अभिव्यक्तियाँ हो या विरोधी या आलोचनात्मक संस्कृति सभी को बेचा और खरीदा जा सकता है । पूँजीवादी समाज में संस्कृति को जिस में बदल दिए जाने की धारणा में चाहे कितनी ही सच्चाई क्यों न हो यह मत इस अर्थ में पूरी तरह सच नहीं है कि समाज में सभी ने इस अवधारणा को स्वीकार कर लिया है । वस्तुत: यहाँ यह मान लिया गया है कि इजारेदार पूँजी इतनी बलवती है कि इसे संस्कृति के क्षेत्र में चुनौती दी ही नहीं जा सकती ।

जनसंचार के सन्दर्भ में सांस्कृतिक सिद्धांत का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष वर्चस्व का है । मीडिया पर शासक वर्ग की विचारधारा का वर्चस्व होता है । यह वर्चस्व आरोपित नहीं होता बल्कि वह इस रूप में मौजूद होता है कि जैसे वह अत्यंत स्वाभाविक, सर्वस्वीकृत और आम अनुभव का हिस्सा है । उसके प्रति आम सहमति कायम हुई प्रतीत होती है । यह विचारधारात्मक वर्चस्व का सिद्धांत मूल रूप में मार्क्सवादी विचारक ग्राम्सी ने प्रस्तुत किया है । वर्चस्व में यह निहित होता है कि जो भी यथास्थिति का विरोध करता है वह एक तरह का विरोध और विचलन है । जनसंचार यथार्थ को अपने ढंग से परिभाषित नहीं करता बल्कि वह सत्ता द्वारा दी गई परिभाषाओं को ही प्राथमिकता देता है । वर्चस्व के विचार को आगे विकसित करते हुए मीडिया विशेषज्ञ स्टुअर्ट हाल इसको तीन रूपों में प्रस्तुत करते हैं- पहला, सत्ता के साथ जुड़ा वर्चस्व वादी संकेत; दूसरा, समझौतापरस्त संकेत जो अनिवार्यत: मीडिया का अपना संकेत है और जो उसकी भूमिका को सूचना के निष्पक्ष और व्यावसायिक वाहक के रूप में प्रस्तुत करता है । तीसरा विपक्षी संकेत है जो उनको प्राप्त होता है जो इरा बात का चुनाव करते हैं या परिस्थितियाँ उन्हें इस दिशा में ले जाती है कि वे यथार्थ के बारे में संदेश को

भिन्न दृष्टि से देखते हैं और घटनाओं के सरकारी अर्थों में निहित वास्तविक अर्थ को पढ़ने का प्रयास करते हैं । यह मॉडल विचारधारा को जिस रूप में भेजा जाता है उसी रूप में उसे ग्रहण नहीं करता ।

संस्कृति के सन्दर्भ में हमने पहले जन संस्कृति और पापुलर संस्कृति का प्रश्न उठाया था । जन के लिए अंग्रेजी में मास शब्द का प्रयोग किया जाता है । मास शब्द जनता और लोक से भिन्न अर्थ देता है । आमतौर पर मास शब्द लोगों के ऐसे समूह के लिए प्रयुक्त होता है जो किसी विवेकपूर्ण ढंग से और बहुत परिभाषित रूप में व्याख्यायित न की जा सकती हो । मसलन, किसी मेले को देखने के लिए उमड़ी भीड़ या किसी फिल्म के लिए उमड़ी भीड़ वस्तुत: मास के रूप में व्याख्यायित की जाती है । जाहिर है मास शब्द में जनता के प्रति एक तरह का हिकारत का भाव मौजूद रहता है । जन संस्कृति का अर्थ ही यह है कि ऐसी संस्कृति जो ऐसे जनसमूह के लिए हो जिनकी रुचियाँ निम्नस्तर की हो और जो संस्कारित न हो । जन संस्कृति के विपरीत अभिजात संस्कृति को रखा जाता है जिनकी रुचियाँ अधस्तरीय होती है और जिनके संस्कार शिष्ट होते हैं । जन संस्कृति और अभिजात संस्कृति के बीच यह भेद स्वयं अभिजात वर्ग द्वारा किया जाता है जो इस तरह अपनी सांस्कृतिक श्रेष्ठता को स्थापित करता है । यहाँ प्राय: दो तरह की धारणाएँ देखने को मिलती है । एक तो यह कि साधारण लोगों को जन संस्कृति के ऐसे रूपों में ही आनंद आता है जो निम्नस्तर की होती हैं । यानी अभिजात संस्कृति और जन संस्कृति का फर्क अपरिहार्य है क्योंकि दोनों वर्गो की अभिरूचियाँ एक-सी नहीं हो सकतीं । दूसरा दृष्टिकोण यह है कि जन संस्कृति निम्न या विकृत होती हैं लेकिन इसके लिए लोग उत्तरदायी नहीं होते बल्कि वे जिम्मेदार होते हैं जो अपने लाभ और छलपूर्ण उद्देश्यों के लिए साधारण लोगों पर इसे थोपते हैं ।

जनसंस्कृति के साथ-साथ लोकप्रिय संस्कृति का प्रश्न उपस्थित हो जाता है । आमतौर पर लोकप्रिय संस्कृति को इस रूप में परिभाषित किया जाता है कि जो संस्कृति लोकप्रिय हो वह लोकप्रिय संस्कृति है । लोकप्रियता से यहाँ तात्पर्य यह है कि जिससे ज्यादा से ज्यादा लोग जुड़े होते हैं जिससे ज्यादा से ज्यादा लोग आनंद प्राप्त करते हैं और जो ज्यादा से ज्यादा लोगों के अनुभवों और अभिरुचियों के अनुरूप होती है लेकिन लोकप्रियता को परिभाषित करना इतना सरल नहीं है । यह मान लिया जाता है कि आज जिसे लोग सबसे ज्यादा पसंद करते हैं और जिसकी सबसे ज्यादा मांग करते हैं वही लोकप्रिय हैं । लेकिन यह हमारा सामान्य अनुभव है कि जो आज अत्यंत लोकप्रिय है उसकी मांग कल बिल्कुल खत्म हो सकती है । क्या तब भी उसे लोकप्रिय कहा जा सकता है? आमतौर पर लतीफे सुनना सबको पसंद होता है लेकिन क्या वे रचनात्मक कहानी का स्थान ले सकते हैं? लोकप्रियता में आनंद पर बल रहता है और नये से बचने का प्रयत्न किया जाता है । यह माना जाता है कि जो नया होगा वह लोकप्रिय नहीं होगा लेकिन जो पुराना होगा वह भी लोकप्रिय हो यह आवश्यक नहीं है । इसलिए जनसंचार में लोकप्रियता के लिए लोगों की सोच को बिना किसी तरह से आघात पहुँचाए और भावनाओं को उद्वेलित किए ऐसे सांकेतिक रूपों का इस्तेमाल किया जाता है जो ग्रहीताओं को सहज ही संप्रेष्य हो । यहाँ तक कि वे उन रचनात्मक सांकेतिक रूपों को भी लोकप्रियता के ऐसे ढाँचे में

पेश करने की कोशिश करते हैं जिनसे वे ज्यादा से ज्यादा लोगों को आनंद पहुँचाए, भले ही इस क्रम में वे सांकेतिक रूप विकृत हो जाऐ ।

जन संस्कृति और लोकप्रिय संस्कृति की यह सारी संभावनाएँ जनसंचार की वजह से उत्पन्न हुई हैं । जनसंचार ने ऐसी प्रौद्योगिकी को विकसित किया है जिसके कारण सांकेतिक रूपों का जनोत्पादन संभव हुआ है । जॉन बी थाम्पसन ने इस संबंध में उचित ही कहा है कि आधुनिक समाजों में सांकेतिक रूपों का उत्पादन और प्रसार जनमाध्यम उद्योगों की गतिविधियों से अलग नहीं किया जा सकता । मीडिया संस्थानों की भूमिका इतनी बुनियादी है कि यह कल्पना करना भी मुश्किल है कि हम अपने रोजमर्रा के जीवन से उन्हें अलग कर सकें । जन संस्कृति के विभिन्न रूपों का प्रसार इसीलिए संभव हुआ है कि वह उनका बार बार पुनरुत्पादन कर सकती है । सांकेतिक रूपों की पुनरुत्पादिकता ने ही जनसंचार के व्यावसायिक दोहन की व्यापक संभावना पैदा की है और इसी वजह से सांकेतिक रूपों का उपभोगीकरण हुआ है । जनसंचार के संस्थान इस संभावना को बढ़ावा भी देते हैं । जनसंचार के ज्यादातर रूप ऐसे है जिनमें लोगों की भागीदारी सामूहिक रूप से होती है । इनमें निष्पादक, तकनीशियन और दूसरे गतिविधियों से जुड़े लोग होते हैं जो किसी न किसी रूप में संदेशों के संकेतीकरण और विसंकेतीकरण में भूमिका निभाते हैं । इसी प्रकार संदेशों का ग्रहण आमतौर पर सामाजिक सन्दर्भ में होता है । लोग उन्हें समूह में या परिवार वालों के साथ देखते हैं । इस प्रकार सामूहिकता जनसंचार के सांस्कृतिक पहलू को प्रभावित करती हैं माध्यमों की कोशिश यह भी होती है कि वह जितने बड़े पैमाने पर संप्रेषित होनी है उतना ही वह लोगों की भावनाओं को बिना आहत किए स्वीकार्य बन सके । इस प्रक्रिया में जनसंचार संस्कृति का एक ऐसा रूप विकसित करता है जो अपनी निजी विशिष्टता नहीं खोता बल्कि वह विरोध और असहमति के स्वरों को भी या तो हटने के लिए मजबूर कर देता है या उसे कमजोर बना देता है ।

जनसंचार के सिद्धांतों के नये क्षेत्र उन प्रश्नों से जुड़े हैं जिनकी अब तक उपेक्षा होती रही है । इनमें लिंग (जेंडर), जाति, अल्पसंख्यक आदि सवालों को लिया जा सकता है । पिछले कुछ सालों में नारीवादी अध्ययनों ने इस बात को रेखांकित किया है कि जनसंचार के क्षेत्र में भी नारीवादी विमर्श के अनुसार जनसंचार के उत्पादों को विश्लेषित और मूल्यांकित करने पर जोर दिया जाने लगा है । भारत में यद्यपि इसकी अभी ठोस परम्परा नहीं बन पाई है लेकिन इस तरह के प्रयास यदा-कदा देखने को मिल जाते हैं ।

इस प्रकार जनसंचार के बारे में अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र सांस्कृतिक सिद्धांतों पर आधारित है और उनकी उपेक्षा करके हम जनसंचार के सिद्धांतों को नहीं समझ सकते ।

7.6 सारांश

जनसंचार के सिद्धांतों से संबंधित इस दूसरी इकाई में आपने जनसंचार से संबंधित विभिन्न सिद्धांतों का अध्ययन किया है । ये सिद्धांत चार क्षेत्रों से संबंधित हैं - संप्रेषण संबंधी, अर्थ संबंधी, सामाजिक और सांस्कृतिक ।

संप्रेषण संबंधी सिद्धांतों के अंतर्गत आपने शेनन और विवर, गेर्बनर और न्यूकॉब के मॉडलों का अध्ययन किया है । ये सभी अध्ययन मुख्य रूप से इस बात पर बल देते हैं कि संप्रेषण की प्रक्रिया किस रूप में घटित होती हैं और उन्हें प्रभावित करने वाले तत्त्व कौन-कौन

से हैं । जनसंचार से संबंधित दूसरा महत्त्वपूर्ण क्षेत्र अर्थगत सिद्धांतों का है । इस अध्ययन में माध्यम के बारे में अध्ययन किया जाता है । आमतौर पर जनसंचार के माध्यमों के शब्द, ध्वनि और दृश्यों का प्रयोग किया जाता है । इन्हें हम जनसंचार की भाषा कहते हैं । जनसंचार अपने संदेश को संप्रेषित करने के लिए जिन चिन्हों का प्रयोग करता है, उसके माध्यम से अर्थ कैसे संप्रेषित होते हैं यह एक महत्त्वपूर्ण सवाल है । इस पर दो विचारकों ने विचार किया है - पियर्स और सस्यूर । इस सिद्धांत में चिन्ह और उसकी मानसिक अवधारणा, बाहरी यथार्थ और किसी भाषाई समाज की सांस्कृतिक परम्परा - आदि का विश्लेषण किया गया है । चिन्ह के अर्थ को निर्धारित करने में इन सबकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है ।

तीसरे क्षेत्र में सामाजिक जनसंचार और समाज के पारस्परिक संबंधों को व्याख्यायित करने की कोशिश की गई है । जनसंचार की सारी प्रक्रियाएँ समाज में ही घटित होती हैं और वे मनुष्य द्वारा मनुष्यों के लिए होती हैं । इसलिए समाज में उसकी भूमिका और उसके विकास को ही नहीं उसके प्रभाव को भी समझने की जरूरत होती है । प्रत्येक समाज की संरचना बड़ी जटिल होती है और उसके आर्थिक, राजनीतिक पक्ष उसके स्वरूप को निर्धारित करते हैं । मीडिया से संबंधित संस्थानों का निर्माण भी इसी सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत होता है । इसलिए यह जरूरी है कि उसका अध्ययन सावधानीपूर्वक किया जाएँ इसी प्रकार निष्पादक, स्वामी, ग्रहीता के रूप में लोगों की जनसंचार में भूमिका को भी कई बातें प्रभावित करती है । यह जनसंचार का अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिसका अध्ययन बहुत विस्तृत रूप में किया जा सकता है ।

चौथा क्षेत्र संस्कृति का है । जनसंचार के उत्पादों को सांस्कृतिक उत्पादों की श्रेणी में परिगणित किया जाता है । संस्कृति में मनुष्य के जीवन की प्रत्येक गतिविधि को शामिल किया जा सकता है । जनसंचार के विकास ने क्या विभिन्न संस्कृतियों के स्वाभाविक विकास को प्रभावित किया है? क्या सांकेतिक रूपों के जनोत्पाद ने संस्कृति को जन संस्कृति में बदल कर उसे विकृत किया है? जन संस्कृति और लोकप्रिय संस्कृति में क्या अंतर है? लोकप्रियता क्या एक नकारात्मक मूल्य है? जनसंचार ने मनुष्य को किस तरह के सांस्कृतिक जीवन के लिए प्रेरित किया है? क्या इसके द्वारा अपसंस्कृति का विकास हो रहा है? क्या इसका समाज के सामंजस्यपूर्ण जीवन पर बुरा असर पड़ रहा है? संस्कृति के उद्योग में बदलने में लोगों की रचनात्मकता को कुंठित किया है । जनसंचार के उत्पादों का समाज के उत्पीड़ित वर्गो और समुदायों पर किस तरह का असर पड़ा है? ये और ऐसे कई सवाल जनसंचार के सांस्कृतिक सिद्धांत पक्ष को उजाकर करते हैं ।

7.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जनसंचार के संप्रेषण सिद्धांतों का महत्त्व बताते हुए उनकी व्याख्या कीजिए ।
2. जनसंचार के अर्थगत सिद्धांतों के सस्यूर और पियर्स के विचारों का तुलनात्मक ' अध्ययन कीजिए ।
3. जनसंचार को सामाजिक परिघटना के रूप में अध्ययन करना क्यों आवश्यक है? भारतीय संदर्भ में इस पर विचार कीजिए ।

4. जनसंचार के - सांस्कृतिक सिद्धांत के आधारभूत सवालों को प्रस्तुत कीजिए और उनके बारे में अपना मत भी बताइए ।
5. किसी फिल्म या टेलीविजन के कार्यक्रम की सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में व्याख्या कीजिए ।

7.8 सन्दर्भ ग्रंथ

1. जॉन फिस्क इंटरोडकशन टु कम्युनिकेशन स्टडीज, मेथ्यून, लंदन, 1992
2. डेनिस मेक्वेल; मास कम्युनिकेशन थ्योरी,' एन इंटरोडक्शन सेज 'पब्लिकेशन्स , ' लंदन, 1998
3. जॉन बी. थाम्पसन; आइडियोलोजी एंड मोर्डन कल्चर, पोलिटी प्रेस, 1990
4. देवेंद्र इस्सर; जनमाध्यम सम्प्रेषण और विकास, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995
5. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली, 2000

इकाई 8 जनसंचार के संस्थान और व्यवसाय

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 जनसंचार माध्यम और संस्थान
8.3 जनसंचार माध्यमों का संस्थानीकरण
8.4 व्यवसाय के रूप में जनसंचार
8.5 जनसंचार माध्यमों का स्वामित्व
8.6 संस्थानीकरण और व्यावसायिकता सरकार की भूमिका
8.7 सारांश
8.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
8.9 सन्दर्भ ग्रंथ

8.0 उद्देश्य

जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' के इस पाठ्यक्रम के खंड 2 'जनसंचार के सिद्धांत, की यह आठवीं इकाई हैं । इस इकाई में जनसंचार माध्यमों से संबंधित संस्थानों और जनसंचार माध्यमों के व्यवसाय के सैद्धांतिक पक्षों पर प्रकाश डाला गया है । इस इकाई को पढ़ने के बाद.

- जनसंचार माध्यमों और उनसे संबद्ध संस्थानों के बीच संबंधों को जान सकेंगे ।
- जनसंचार माध्यमों के संस्थानीकरण की प्रक्रिया को समझ सकेंगे ।
- जनसंचार माध्यमों के व्यवसाय की आधारभूत बातों को जान सकेंगे ।
- जनसंचार माध्यमों के स्वामित्व की प्रकृति का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
- जनसंचार माध्यमों के संस्थानीकरण की प्रक्रिया का व्यावसायिकता से क्या संबंध है इसे समझ सकेंगे ।
- संस्थानीकरण और व्यवसायीकरण में सरकार की भूमिका को भी समझ सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

जनसंचार के विभिन्न माध्यमों का अध्ययन करते हुए हमने अब तक जनसंचार की अवधारणा, उसके स्वरूप, जनसंचार माध्यमों की परम्परा और इतिहास, जनसंचार के विभिन्न माध्यम और उनके संबंधित टेक्नोलाजी तथा जनसंचार के विभिन्न सिद्धांतों का परिचय प्राप्त किया है । जनसंचार माध्यम जैसा की आप समझ चुके हैं जनता के बीच संप्रेषण, संपर्क और संवाद के माध्यम हैं । संप्रेषण के माध्यम की जरूरत मनुष्य को आरंभ से रही है इसके बिना दूसरे मनुष्यों से संवाद संभव ही नहीं है । भाषा इसका एक जरूरी और आधारभूत रूप है । लेकिन भाषा के अस्तित्व से ही संप्रेषण संभव नहीं हो जाता । इसके लिए भाषा को सीखना पड़ता है । लिखना, बोलना, पढ़ना और सुनकर समझना ये सभी भाषा के प्रमुख प्रकार्य हैं । लेकिन हम जानते हैं कि भाषा का यह उपयोग सभी लोग अपनी मनमर्जी से नहीं करते । यदि

बोलने वाला और सुननेवाला दोनों एक -दूसरे की भाषा को नहीं समझ सकते तो संवाद संभव ही नहीं है । इसी तरह ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्ध जानकारियों को समझने के लिए उनसे संबंधित पारिभाषिक शब्दों को समझना भी आवश्यक होता है । यह अवश्य है कि मनुष्य अपने माता-पिता, परिवार और दूसरे लोगों के संपर्क में आकर बोलना और सुनकर समझना सीख लेता है लेकिन भाषा का सिर्फ इतना ही उपयोग पर्याप्त नहीं होता । उसे लिखना और लिखे हुए को पढ़ना और समझना भी जरूरी है । विभिन्न क्षेत्रों के ज्ञान-विज्ञान की समझ के लिए भी भाषा के उच्चतर ज्ञान को जानना जरूरी है । भाषा के उच्चतर ज्ञान के लिए माता-पिता अपने बच्चों को स्कूलों में भेजते हैं जहाँ वे भाषा का ज्ञान प्राप्त करते हैं और इस भाषा-ज्ञान के जरिये अन्य विषयों का ज्ञान प्राप्त करते हैं । इस उदाहरण से स्पष्ट है कि भाषा के संप्रेषण और संवाद के लिए भी विद्यालय जैसे संस्थानों की जरूरत पड़ती है ।

संस्थान और संप्रेषण के इस संबंध के बारे में, हम इस इकाई में अध्ययन करेंगे । जनसंचार माध्यम में संस्थानों की भूमिका क्या है, संस्थानीकरण की प्रक्रिया कैसे घटित होती है, इस प्रक्रिया का व्यावसायिकता से क्या संबंध है या जनसंचार माध्यमों के संस्थानीकरण और व्यवसायीकरण से हमेशा संप्रेषण और संवाद आसान बनता है या इसमें अवरोध भी उत्पन्न होता है । इकाई में इन सभी पक्षों पर विस्तार से विचार किया गया ।

8.2 जनसंचार माध्यम और संस्थान

इस प्रस्तावना के अंतर्गत हमने भाषा सीखने के लिए विद्यालयों की जरूरत को बताया। विद्यालय एक सामाजिक संस्थान है जहाँ विद्यार्थी कई तरह के ज्ञान और कौशल सीखने के लिए आते हैं । अगर आप अपने चारों ओर ध्यान दें तो आपको कई तरह के सामाजिक संस्थान दिखाई देंगे । इन सामाजिक संस्थानों की उत्पत्ति और इनका विस्तार इनके सामाजिक जरूरतों के कारण ही हुआ । उदाहरण के लिए, रोग होने पर लोग अस्पताल जाकर इलाज कराते है । अस्पताल भी एक तरह का संस्थान है । इसी तरह स्त्री-पुरूष का आपस में विवाह कर परिवार कायम करना भी संस्थान निर्माण का परिमाण है । विवाह भी एक संस्था है और परिवार भी । इस तरह समाज में कई तरह के संस्थान हमें चारों ओर दिखाई देंगे । जनसंचार माध्यमों के सन्दर्भ में भी संस्थानों की मौजूदगी को हम देख सकते हैं । उदाहरण के लिए, जब सिनेमा नामक माध्यम की शुरुआत हुई थी तब उसकी शुरुआत करने वाले ल्युमिये बंधुओं ने किसी तरह की संस्था का निर्माण नहीं किया था। उन्होंने तो सिर्फ कुछ तकनीकी यंत्र बनाये जिनके द्वारा चलते-फिरते दृश्यों को फिल्माया (मूवी कैमरा) जा सकता था और प्रोजेक्टर द्वारा दिखाया जा सकता था । लेकिन जैसे ही उन्होंने अपनी फिल्मों का प्रदर्शन करना शुरू किया और उस प्रदर्शन के लिए उन्होंने दर्शकों से पैसे लेने शुरू किये तो वे सिनेमा के व्यवसाय की ओर कदम बढ़ा चुके थे । आप जानते हैं कि फिल्म निर्माण से संबंधित पूरी प्रक्रिया सिनेमा को एक संस्थान का रूप दे चुकी है । इसी तरह मुद्रण को आधुनिक प्रणाली ने समाचारपत्र प्रकाशन को संस्थान और व्यवसाय का रूप दे दिया है । समाचारपत्र से संबंधित विभिन्न पक्षों पर विचार करने पर इसे आसानी से समझा जा सकता है । समाचारपत्र के लिए समाचारों, लेखों और अन्य सामग्री की जरूरत होती है । यह कार्य पत्रकार, संवाददाता और लेखक करते हैं । इस लेखन

सामग्री को संयोजित और संपादित करने का काम संपादक मंडल करता है । इनको छापने के लिए प्रिंटिंग प्रेस की जरूरत होती है । प्रिंटिंग प्रेस में यह काम मशीनों द्वारा पूरा किया जाता है । जिसे उन तकनीशियनों द्वारा पूरा किया जाता है जो इन यंत्रों का उपयोग करने का प्रशिक्षण प्राप्त किए होते हैं । समाचारपत्र प्रकाशित होने के बाद उन्हें पाठकों तक पहुँचाना होता है । यहाँ फिर वितरण की एक पूरी शृंखला सामने आती है, जिसके अंतिम छोर पर वह हॉकर होता है जो साइकिल पर अखबारों को लाद कर, हर रोज घर-घर अखबार पहुँचाता है । इस तरह समाचारपत्र के प्रकाशन और वितरण की पूरी प्रक्रिया से जुड़े संस्थान सामने आते हैं । यंत्रों, कच्चे माल और विभिन्न स्तर पर कार्य करने वाले लोगों को दिया जाने वाला वेतन और पारिश्रमिक आदि के लिए धन की आवश्यकता होती है । समाचारपत्र के प्रकाशन में जो पैसा लगाता है, वही उसका स्वामी होता है । इस तरह समाचारपत्र प्रकाशन और वितरण से जुड़े व्यवसाय भी हमारे सामने आते हैं । इसे ही जनसंचार माध्यमों का संस्थानीकरण कहते है । इसे हम दूसरे माध्यमों के सन्दर्भ में भी देख सकते है चाहे रेडियो हों, सिनेमा हों या और कोई जनसंचार माध्यम । उनसे प्रसारित होने वाले संदेशों का निर्माण, उनका वितरण और उनका प्रदर्शन ये तीन प्रमुख अंग है जो विभिन्न तरह के संस्थानों के द्वारा निष्पादित किये जाते है ।

8.3 जनसंचार माध्यमों का संस्थानीकरण

जनसंचार माध्यमों पर संस्थानीकरण की प्रक्रिया का मतलब है सांस्कृतिक उत्पाद का संगठन और इससे जुड़ी लोगों की भूमिका का स्पष्ट निर्धारण । इस बात को गंभीरता से समझने की जरूरत है । उदाहरण के लिए यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति फिल्म बनाने के लिए स्वतंत्र हैं, रेडियो नाटक लिख सकता है, पत्रिका में कहानी छपा सकता है लेकिन हम सभी जानते हैं कि इस तरह की स्वतंत्रता कुछ शर्तो के साथ होती है । मसलन, फिल्म बनाने के लिए फिल्म बनाने की इच्छा भर होना पर्याप्त नहीं है । फिल्मकार को उन सब लोगों की मदद लेनी होती है जिनके बिना फिल्म का निर्माण संभव नहीं । उनमें पटकथा लेखक, कैमरामैन, साउंड रिकार्डिस्ट अभिनेता, फिल्म संपादक आदि कई क्षेत्रों के लोग शामिल होते हैं । इसी तरह फिल्म बनाने के लिए मशीनों और कच्चे माल की भी जरूरत होती हैं । इनको प्राप्त करने के लिए भी धन की आवश्यकता होती है । कहने का तात्पर्य यह है कि फिल्म बनाने के लिए फिल्मकार को धन जुटाना पड़ता है । फिल्म बनाने में मदद करने वाले लोगों की सहायता लेनी पड़ती है । आवश्यक यंत्रों और कच्चे माल का प्रबंध करना होता है । फिल्म बन जाने के बाद भी फिल्म का प्रदर्शन करना आसान नहीं होता । भारत जैसे देशों में फिल्म को प्रदर्शित करने से पहले सेंसर बोर्ड से अनुमति प्रमाण-पत्र लेना पड़ता है । और इसके प्राप्त हो जाने के बाद भी उन वितरकों से संपर्क साधना पड़ता है जो उस फिल्म को सिनेमाघरों में प्रदर्शित करेंगे । अगर आप इस पूरी प्रक्रिया को ध्यान से देखें तो आप पायेंगे कि फिल्म बनाने की यह प्रक्रिया एक तरह से संस्थानीकरण की भी प्रक्रिया है । जिनमें कई तरह के संस्थान अपनी भूमिका निभाते हैं । यह बात केवल फिल्मों पर ही लागू नहीं होती अन्य माध्यमों पर भी लाग होती है ।

लेकिन फिल्मों का निर्माण भौतिक उत्पादन ही नहीं है, यह सांस्कृतिक उत्पादन भी है। इसके द्वारा लोगों तक आनंद ही संप्रेषित नहीं होता, विचार भी संप्रेषित होते हैं । इसलिए फिल्मों का निर्माण आरंभ से ही विवादों और प्रतिबंधों के घेरे में आता रहा है । 1915 में बनी डॉ.डब्ल्यू ग्रिफीथ की प्रख्यात अमरीकी फिल्म दि बर्थ ऑफ ए नेशन अपने नस्लवादी नजरिए की वजह से विवाद और प्रतिबंध का शिकार बनी तो 1928 में बनी फ्रांसीसी फिल्म दि पेशन आफ जॉन ऑफ आर्क ईसाई धर्म के प्रति अपने भिन्न तरह के रुख की वजह से सिनेमाघरों तक नहीं पहुँच सकी । अगर हम फिल्मों के सौ साल का जायजा लें तो हमें ऐसी कई फिल्मों के बारे में जानकारी मिलेगी जिनको प्रदर्शन से रोक दिया गया या जिनके कारण विभिन्न समुदायों में दंगे-फसाद हो गए या जिनके प्रदर्शित होने पर सिनेमाघरों पर हमले किए गए । अभी हाल ही में हिंदुस्तान में दीपा मेहता की फिल्म फायर इसी तरह के हमलों का निशाना बनाई गई । इस तरह की घटनाओं के ही मद्देनजर फिल्मों को लेकर कानून बनाए गए । फिल्मों के लिए आचार संहिता का निर्माण किया जाने लगा । सेंसर बोर्ड स्थापित हुए । उन्हें दिखाने के लिए प्रमाणपत्र दिए जाने लगे । कौन सी फिल्म किन के लिए है । किस फिल्म को बच्चे भी देख सकते हैं और किसको सिर्फ वयस्क ही देख सकते हैं, यह तय किया जाने लगा । फिल्म निर्माण और प्रदर्शन को प्रोत्साहित करने की जरूरत महसूस की गई । इसके लिए फिल्म उत्सव आयोजित होने लगे । फिल्म निर्माण के लिए आर्थिक अनुदान और ऋण दिया जाने लगा। इनामों का चलन आरंभ हुआ । इस प्रकार ल्युमिए बंधुओं। ने जिस नयी तकनीक की शुरुआत की थी, उसने आज एक स्वतंत्र कला, उद्योग और व्यवस्था का रूप ले लिया है । इसने कई संस्थानों को जन्म दिया है । इन संस्थानों के बिना फिल्म का निर्माण, प्रचार, वितरण और सार्वजनिक प्रदर्शन ही मुमकिन नहीं है । जनमाध्यमों के इस संस्थानीकरण की प्रक्रिया को समझने की जरूरत है ।

सिनेमा के क्षेत्र में सृजन की प्रक्रिया ही इतनी तकनीकी है कि केवल कागज और कलम के सहारे से फिल्म का निर्माण नहीं हो सकता । अच्छी से अच्छी पटकथा का भी तब तक कोई रचनात्मक मूल्य नहीं है, जब तक कि वह फिल्म में रूपांतरित न हो । फिल्म में रूपांतरण का अर्थ है पटकथा के प्रत्येक दृश्य का फिल्मांकन । यह फिल्मांकन कुछ यंत्रों के द्वारा, इन यंत्रों का उपयोग कर सकने का ज्ञान रखने वाले तकनीशियनों के सहयोग से संभव होता है । इस पूरी प्रक्रिया के कई जटिल चरण हैं, जिनमें तकनीकी कौशल हासिल किए बिना उन्हें सफलतापूर्वक संपन्न नहीं किया जा सकता । फिल्म निर्माण के इन तकनीकी पहलुओं ने अपना स्वतंत्र महत्व स्थापित कर रखा है । किसी फिल्म निर्देशक के लिए इन तकनीकी पहलुओं की सामान्य जानकारी जरूरी है, लेकिन उनके उपयोग के लिए उसे उन तकनीशियनों पर पूरी तरह से निर्भर रहना पड़ता है, जो इनका कुशलतापूर्वक उपयोग कर सकते हैं ।

निर्देशक इन तकनीशियनों को सिर्फ यह बता सकता है कि वह क्या चाहता है, लेकिन उसके लिए इन सब पर महारत हासिल कर सकना मुमकिन नहीं है जब तक कि वह स्वयं उनका प्रशिक्षण न ले । जब एक फिल्मकार फिल्म बनाने का निर्णय करता है तो उसे इन सबकी सेवाओं की जरूरत होती है । दृश्यांकन, ध्वनि अंकन, संगीत, मेकअप, वेशभूषा, संपादन

आदि इन सबके अपने क्षेत्र हैं और इन सबका संगठन करना होता है । इस क्षेत्र में काम करने वाले लोग अपने क्षेत्र से संबंधित ज्ञान और कौशल को अर्जित करने के लिए किसी ऐसे संस्थान में अध्ययन कर चुके होते हैं, जहाँ उन्हें उस विशिष्ट कौशल का प्रशिक्षण दिया जाता है और सीखने पर प्रमाणपत्र या उपाधि प्रदान की जाती है । फिल्म निर्माण के आरंभिक वर्षा में क्या ऐसे अध्ययन संस्थान थे? स्पष्ट ही नहीं । लेकिन जैसे-जैसे फिल्म निर्माण के क्षेत्र का विस्तार हुआ, इसके ज्ञान का भी विस्तार होता गया । ल्युमिए बंधुओं ने एक-एक, दो-दो मिनट की जिन फिल्मों का निर्माण किया था, उनमें कैमरा स्थिर रहता था, और उसी अवस्था में जो कुछ भी फिल्मा लिया जाता था, उसी को फिल्म कहा जाता था । लेकिन आज कैमरे का प्रयोग इतना विविधतापूर्ण हो गया है कि वह स्वयं में एक अलग विधा है । इसी तरह आरंभ में फिल्म संपादन जैसा कोई पक्ष नहीं होता था । लेकिन आज संपादन के बिना कोई फिल्म बन नहीं सकती । कहने का तात्पर्य यह है कि फिल्म का प्रत्येक पहलू एक अलग अध्ययन क्षेत्र का निर्माण कर चुका है । उसकी स्वतंत्र पहचान है और इस पहचान ने उसे स्वतंत्र सत्ता प्रदान की है । यह सत्ता ही संस्थानीकरण को मुमकिन बनाती है ।

संस्थानीकरण की इस प्रक्रिया का संबंध जनमाध्यम के हर पहलू से है । फिल्म निर्माण जिन यंत्रों के द्वारा संभव होता है, वे यंत्र बेहतर परिणाम दे सकें, यह उनसे संबंधित इंजीनियरी का मकसद होता है । इंजीनियरी के ये क्षेत्र बेहतर परिमाण के लिए नए-नए प्रयोग करते रहते हैं । ऊपर हमने कैमरे के संचालन पर बात की थी । हमने बताया था कि आरंभ में कैमरा स्थिर रहता था । जाहिर है, कैमरे की इस सीमा ने फिल्म निर्माण की संभावना को सीमित कर रखा था । इस सीमा को तब तक नहीं तोड़ा जा सकता था जब तक कि कैमरा आगे-पीछे, ऊपर-नीचे दाएँ-बाएँ गति कर सकने में स्वतंत्र न हो । कैमरे को यह स्वतंत्रता उसके यंत्र में किए गए बदलाव से प्राप्त हुई । कैमरे में परिवर्तनों की प्रक्रिया अब भी अबाध गति से चल रही है । इसी का नतीजा है कि आज अंधेरे में, पानी में, मीलों दूर रो ऐसे चित्र लिए जा सकते हैं जैसे सामने खड़े होकर लिए गए हों । यही संपादन की प्रक्रिया के बारे में कहा जा सकता है । नए-नए यंत्रों के प्रयोग से ही यह मुमकिन हुआ है कि जुरासिक पार्क और टरमिनेटर-2 जैसी फिल्में बन सकी हैं ।

संस्थानीकरण की प्रक्रिया जनमाध्यम के विकास से गहरे रूप से जुड़ी है । तकनीकी के विकास ने उसके अध्ययन और प्रशिक्षण का रास्ता खोला । इसने अध्ययन और प्रशिक्षण प्राप्त करने वालों में प्रतियोगिता को जन्म दिया । एक ही क्षेत्र के प्रशिक्षण से जुड़े सभी संस्थान एक सा महत्त्व नहीं रखते । कैमरा संचालन का प्रशिक्षण देने वाला एक संस्थान दूसरे संस्थान से ज्यादा बेहतर माना जाता है । अपने तकनीकी कौशल का बेहतर प्रयोग करने वाले लोगों का फर्क उन लोगों से किया जाने लगा जो इस कौशल का प्रयोग उतने बेहतर ढंग से नहीं कर सकते हैं । इसके अलावा एक तरह के काम और दूसरी तरह के काम में ही कैरियर के लिहाज से फर्क किया जाने लगा । अगर हम जनसंचार माध्यमों के क्षेत्र में सक्रिय लोगों को विभाजित करें तो उन्हें हम चार भागों में बांट सकते हैं । एक जो इन माध्यमों के स्वामी हैं तो पूरे माध्यम के या उनके किसी चरण विशेष के । दूसरे, वे जो इसके तकनीकी पहलुओं से जुड़े होते हैं । तीसरे, वे जो इसमें निष्पादक (परफोर्मर), के रूप में शामिल होते हैं और चौथे वे जो इसके

प्रशासनिक और व्यावसायिक पहलुओं को अंजाम देते हैं । इनके अलावा और भी कई तरह की एजेंसियाँ होती हैं जो जनमाध्यमों के कार्यों से किसी-न-किसी रूप में जुड़ी होती हैं ।

संस्थानीकरण की प्रक्रिया का संबंध व्यवसाय से भी है । आधुनिक तौर में जनसंचार के सभी माध्यमों से प्रसारित और प्रदर्शित होने वाले संदेश ठीक उसी तरह बेचे और खरीदे जाते हैं जैसे भौतिक वस्तुएँ बेची और खरीदी जाती है । फिल्म के सन्दर्भ में इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि ।दर्शक को फिल्म देखने के लिए टिकट लेनी पड़ती है । इसी तरह घर पर बैठे हुए टेलीविजन पर जो कार्यक्रम दिखाए जाते हैं उसके लिए भी भुगतान करना पड़ता है । कई बार भुगतान प्रत्यक्ष तौर पर करना पड़ता है कई बार अप्रत्यक्ष तौर पर । जनसंचार के व्यवसाय बनने के इस पक्ष पर अगले भाग में पर विचार किया गया है ।

8.4 व्यवसाय के रूप में जनसंचार

जनसंचार माध्यम एक व्यवसाय भी है । पाठक, श्रोता और दर्शक इन माध्यमों के ग्रहीता हैं । व्यवसाय की भाषा में कहें तो इसके ग्राहक या उपभोक्ता हैं । जनसंचार माध्यमों पर जो संदेश प्रसारित होते हैं उन संदेशों का उत्पादन करने या कराने वाले उसके उत्पादक हैं । व्यवसाय के अन्य क्षेत्रों की तरह जनसंचार माध्यम के उत्पादन में लगे लोग या तो उससे पारिश्रमिक प्राप्त करते हैं, या वेतन या लाभ । संदेशों को हासिल करने वाले ग्रहीता को संदेश प्राप्त करने के लिए भुगतान करना होता है । फिल्म देखने के लिए टिकट खरीदना पड़ता है । समाचारपत्र खरीदना पड़ता है । टेलीविजन का शुल्क भी देना होता है । कुछ मामलों में संभवतः प्रत्यक्ष भुगतान न करना पड़े, लेकिन, वहाँ भी अप्रत्यक्ष भुगतान करना पड़ता है । मसलन, रेडियो पर गीत-संगीत, समाचार आदि सुनने के लिए प्रत्यक्षतः: कोई भुगतान नहीं करना पड़ता। लेकिन रेडियो पर सुनाए जाने वाले विज्ञापन से होने वाली आमदनी रेडियो की आय का स्रोत होता है । विज्ञापन पर उत्पादक कंपनियाँ जो पैसा खर्च करती हैं वह उत्पादन पर होने वाले कुछ निवेश का हिस्सा होता है । इस निवेश को ध्यान में रखकर ही उत्पाद की कीमत तय की जाती है । इस तरह उत्पाद को खरीदने वाले उपभोक्ता दरअसल विज्ञापन की कीमत भी अदा कर रहे होते हैं । ये उपभोक्ता ही रेडियो के श्रोता भी होते हैं ।

जनसंचार माध्यमों का विश्वव्यापी बाजार है । इसमें जनसंचार से संबंधित यंत्रों, उपकरणों, कच्चे माल के साथ-साथ संदेशों को रिकार्ड करने, प्रसारित करने, भंडारित करने, रख-रखाव करने, प्रतिलिपियाँ बनाने आदि से जुड़े क्षेत्र भी हैं । इन क्षेत्रों का प्रबंधन, प्रशिक्षण, विज्ञापन आदि भी जनसंचार के व्यवसाय से जुड़े क्षेत्र हैं । इन सभी क्षेत्रों में अन्य व्यवसायों की तरह प्रतिद्वंद्विता होती है । अन्य व्यवसायों की तरह इनमें भी उतार-चढ़ाव के दौर आते हैं। इन क्षेत्रों से जुड़े व्यवसायों को नियंत्रित और नियमित करने के लिए सरकारें तरह-तरह के कानून बनाती हैं और कर वसूल करती हैं । इन सब का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव संदेशों के उत्पादन वितरण आदि पर भी पड़ता है ।

उदाहरण के लिए सिनेमा बनाने के लिए जिस तरह के आधुनिकतम कैमरों, लैंसों की जरूरत पड़ती हैं, उनको खरीदने के लिए आवश्यक धन का प्रबंध करने वाला फिल्मकार ही उनका इस्तेमाल करने में सक्षम होता है । यदि फिल्मकार आधुनिकतम यंत्रों का उपयोग करने

की स्थिति में नहीं है, तो उसे पुराने यंत्रों से ही काम चलाना पड़ता है । जिसका सीधा-सा अर्थ यह है कि फिल्मकार आपकी फिल्म में ऐसे प्रयोग नहीं कर सकता, जो नये यंत्रों द्वारा संभव हो सकते थे । दरअसल, जनसंचार के प्रत्येक क्षेत्र में इस बात का बड़ा महत्त्व होता है कि कितनी पूँजी लगाई गई है । अन्य व्यवसायों की तरह जनसंचार के व्यवसाय में भी बड़ी पूँजी, छोटी पूँजी पर हावी होने लगती है । बड़े निवेश द्वारा उत्पादन के क्षेत्र का विस्तार करना सरल हो जाता है । बड़ी कंपनियाँ बाजार के बड़े हिस्से पर वर्चस्व कायम करने में सक्षम हो जाती हैं । वे अधिक कुशल निष्पादकों, तकनीशियनों, प्रबंधकों को अपने व्यवसाय से जोड़ लेते हैं । यह महज संयोग नहीं है कि जनसंचार के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कुछ ही बड़ी कंपनियाँ अपना वर्चस्व कायम किए हुए हैं । यही कारण है कि जनसंचार के क्षेत्र में स्वामित्व का प्रश्न अत्यंत महत्त्व रखता है । अगले भाग में हम इस पर चर्चा करेंगे ।

8.5 जनसंचार माध्यमों का स्वामित्व

आमतौर पर जनमाध्यमों पर स्वामित्व दो तरह के हैं । एक, निजी स्वामित्व और दूसरा, सार्वजनिक स्वामित्व । कई बार एक ही माध्यम दोनों तरह के स्वामित्व का विकास होता है । मसलन, हिंदुस्तान में समाचारपत्र आमतौर पर निजी स्वामित्व के अंतर्गत हैं जबकि रेडियो और दूरदर्शन का प्रसारण सार्वजनिक स्वामित्व में रहा है । फिल्मों का निर्माण भी निजी स्वामित्व में है। लेकिन सभी देशों में एक सी स्थिति नहीं होती । समाजवादी देशों में जहाँ निजी स्वामित्व नहीं होता, वहाँ सभी तरह के माध्यम सार्वजनिक स्वामित्व के अंतर्गत ही आते हैं । स्वामित्व का अर्थ यह नहीं है कि जनसंचार माध्यम अपने कार्य में स्वामित्व की प्रकृति के अनुसार स्वतंत्र या परतंत्र होते हैं । यह मान लिया जाता है कि अगर माध्यम निजी स्वामित्व में है तो वह उन माध्यमों की तुलना में ज्यादा स्वतंत्र होते हैं, जो सीधे सरकार के नियंत्रण में होते हैं । लेकिन यह एक भ्रामक धारणा है । जनसंचार माध्यमों की स्वतंत्रता का संबंध उसके स्वामित्व से इस रूप में नहीं जुडा होता । प्रश्न यह है कि निजी और सार्वजनिक स्वामित्व का स्वरूप क्या है? ये स्वामित्व समाज के किन वर्गो के हित में है । निजी स्वामित्व वाले माध्यम आमतौर पर पूँजीवादी देशों में होते हैं । वही स्वामित्व वस्तुत: प्रभुत्वशाली वर्ग के हाथ में होता है । पूँजीवादी देशों में पूंजी के स्वामित्व से जनसंचार के स्वामित्व का भी निर्धारण होता है ।

इसलिए आमतौर पर पूँजीवादी देशों में जनमाध्यम निजी स्वामित्व में हों या सार्वजनिक स्वामित्व में. दोनों के द्वारा एक ही तरह के वर्गीय उद्देश्यों को पूरा किया जाता है । लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि उनमें किसी तरह का विरोध नहीं होता । देखा गया है कि पूँजी जनमाध्यमों के उन क्षेत्रों में ही प्रवेश करती हैं जिसमें उसको मुनाफे की संभावना होती है । रेडियो और टेलीविजन के क्षेत्र में निजी पूँजी का प्रवेश भारत जैसे देशों में लंबे समय तक इसलिए भी नहीं हो सका, क्योंकि उसमें पूँजी लगाना लाभ का सौदा नहीं था । लेकिन आज स्थिति यह नहीं है । आज रेडियो और दूरदर्शन का व्यापक विस्तार हो चुका है और उपग्रह प्रणाली के आगमन की वजह से एक साथ बड़ी संख्या में चैनलों की उपलब्धि ने इन क्षेत्रों में देशी और विदेशी पूँजी के प्रवेश के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा कर दी हैं । भारत में छठे दशक में जब पहली बार दूरदर्शन के प्रसारण की शुरुआत हुई थी तब इस क्षेत्र में काम करने

वाले तकनीशियनों, निष्पादकों आदि की भारी कमी थी । बहुत कम लोग इस क्षेत्र को अपने कैरियर के रूप में चुन रहे थे, लेकिन अस्सी के दशक में जब इसका विस्तार होने लगा तो इस क्षेत्र में कैरियर का आकर्षण भी बढ़ गया । अब जब कई निजी चैनल भी शुरू हो गए हैं, तो तकनीशियनों, निष्पादकों, प्रशासकों आदि क्षेत्रों में कैरियर अपनाने वालों की मांग बढ़ गई है । इसी का नतीजा है कि इन क्षेत्रों के अध्ययन और प्रशिक्षण के भी कई संस्थान अस्तित्व में आ गए हैं ।

जनमाध्यमों का स्वामित्व किस तरह का है, इससे शेष चीजें भी एक हद तक तय होती है । आमतौर पर सरकारी, निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों में काम करने वाले लोग स्थायी और अस्थायी तौर पर काम करते हैं । सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्रों में स्थायी कर्मियों की संख्या अपेक्षाकृत ज्यादा होती है जबकि निजी क्षेत्र में कम । इनके भी कई रूप हैं । स्थायी कर्मचारी आमतौर पर ऐसी प्रक्रियाओं के लिए रखे जाते हैं, जिनकी जरूरत हर रोज होती है । मसलन मशीनों की स्थायी देखभाल हिसाब-किताब का लेखा जोखा रखने वाले या इसी तरह के अन्य कर्मचारी । सरकारी संस्थानों में तकनीशियन और कार्यक्रम निष्पादकों को भी स्थायी तौर पर रखा जाता है । लेकिन निष्पादकों की कई श्रेणियां ऐसी भी होती हैं जिन्हें स्थायी नहीं रखा जाता । मसलन अभिनेता, लेखक, संगीतकार, गायक आदि । शुरू में, इस तरह की व्यवस्था नहीं रही है । फिल्मों में तीस-चालीस के दशक में अभिनेताओं को मासिक वेतन पर रखा जाता था । बाद में वे कांट्रेक्ट के आधार पर रखे जाने लगे । पाँच साल या दो साल की सीमित अवधि के लिए । ये दोनों तरीके इसलिए प्रचलन में थे क्योंकि उस समय फिल्म निर्माण में संलग्न कंपनियाँ फिल्म के निर्माण को कम्पनी व्यवसाय के रूप में देखती थीं । लेकिन पिछले कई दशकों से अभिनेताओं को फिल्म के आधार पर रखा जाता है । यानी की पूरी फिल्म में काम करने के लिए कितना पैसा दिया जाएगा यह तय होता है । लेकिन सभी अभिनेताओं के लिए यही व्यवस्था लागू नहीं होती । छोटी भूमिका करने वाले कनिष्ठ कलाकारों को दैनिक आधार पर रखा जाता है । यानी प्रति दिन के काम के आधार पर उन्हें उनके काम का पैसा दिया जाता है । फिल्मों में जो व्यवस्था है, वही व्यवस्था टेलीविजन के लिए नहीं है । वहाँ धारावाहिकों में काम करने वाले प्राय: सभी अभिनेताओं को प्रतिदिन के आधार पर पैसा दिया जाता हैं यही व्यवस्था प्राइवेट चैनलों में भी है । यानी कि जनमाध्यमों में काम करने के नियम-कायदे वहाँ के काम की प्रकृति के अनुसार तय हो रहे हैं । ऐसा क्यों है कि फिल्मों और टेलीविजन में काम करने वाले कलाकार आमतौर पर स्थायी आधार पर काम करना स्वीकार नहीं करते? क्या यह काम लेने वाले और काम करने वाले दोनों के हित में है?

आमतौर पर जनसंचार माध्यमों में काम करने वाले निष्पादकों के कार्य का स्तर एक सा नहीं होता । अगर एक नया अभिनेता है, जिसको अभी बड़ा एक्सपोजर नहीं मिला है तो वह कम मेहनताने पर भी काम करने के लिए तैयार हो जाएगा । अगर वह अपने कार्य को कुशलतापूर्वक निष्पादित करता है, उसके कार्य से फिल्म को सफलता मिलती है, दर्शकों का ध्यान उसके काम की तरफ जाता है और ऐसा माहौल बनने लगता है कि अगर इसी अभिनेता की कोई और फिल्म आती है तो दर्शक उसे देखना पसंद करेंगे तो वह अभिनेता अपनी बढ़ती

मांग के आधार पर ज्यादा मेहनताने की मांग कर सकता है । इस प्रकार अभिनेता के कार्य संपादन की सफलता उसके मेहनताने को तय करती है । अगर वह लगातार नाकामयाब रहता है तो उसे अपनी मेहनताने की दर घटानी पड़ती है । यह बात सिर्फ अभिनेताओं पर ही नहीं लागू होती, संगीतकार, कैमरामैन, लेखक, गायक आदि अन्य निष्पादकों पर भी लागू होती है । यही नहीं कला के अन्य रूपों से जुड़े निष्पादकों पर भी यही बात लागू होती है । एक चित्रकार और दूसरे चित्रकार के काम की कीमत बाजार में उसकी मांग से तय होती है । इस तरह दो लेखकों के लेखन की कीमत भी ।

जनसंचार ऐसा माध्यम है जहाँ निष्पादकों के काम के पारिश्रमिक में किसी अन्य व्यवसाय की तुलना में बहुत ज्यादा फर्क होता है । व्यावसायिक फिल्मों में काम करने वाले अभिनेताओं की आय में और छोटे शहरों और कस्बों में नाटकों में काम करने वाले अभिनेताओं की आय में जमीन-आसमान का अंतर होता है । लेकिन दोनों में कुछ बातें समान होती हैं । दोनों ही जगह अभिनेता को उसकी कार्य कुशलता के आधार पर पैसा मिलता है और दोनों ही जगह इस बात की गारंटी नहीं होती कि जो आज कामयाब है, वह कल भी कामयाब होगा । यह भी संभव है कि एक ही स्तर पर काम करते हुए भी कस्बों के नाटक में काम करने वाले और लोकप्रिय फिल्म में काम करने वाले अभिनेता के बीच आय का फर्क कई सौ गुना हो । इसका कारण उनके काम में निहित नहीं है । वस्तुत: दोनों अभिनेता अपने कौशल को समान रूप से बेच रहे हैं, लेकिन उनके खरीददार जिन माध्यमों के जरिए उसका इस्तेमाल कर रहे हैं उनमें बुनियादी फर्क है । कस्बे के नाटक को देखने वाले संख्या कस्बे तक ही सीमित होगी । उस नाटक की प्रस्तुति से नाटक के निर्माता की आय भी ज्यादा नहीं होगी । लेकिन यह बात फिल्मों के बारे में नहीं कही जा सकती । फिल्मों के दर्शक लाखों में नहीं करोड़ों में हो सकते हैं। एक फिल्म को बनाने में भी करोड़ों रुपए खर्च हो जाते हैं । निर्माता को फिल्म से होने वाले आय भी उतनी ही ज्यादा होती है । ही, उससे जुड़ा रिस्क भी उतना ही बड़ा होता है । इसलिए यह बहुत तार्किक लगता है कि फिल्म में काम करने वाले अभिनेता को नाटक में काम करने वाले अभिनेता से ज्यादा पैसा मिले । साहित्य में भी यह फर्क कुछ हद तक बना रहता है । अंग्रेजी में लिखने वाले विक्रम सेठ और अरुधंती राय और भारतीय भाषाओं में लिखने वाले लेखक की रीयल्टी के भारी अंतर का कारण दोनों भाषाओं के बाजार के फर्क में भी निहित है । जनसंचार के क्षेत्र में मिलने वाला पैसा हजारों लोगों को उसकी एक तरफ आकृष्ट करता है ।

अगर कोई इस क्षेत्र में स्वामित्व कायम करने की स्थिति में नहीं है (यानी उसके पास इतनी पूँजी नहीं है या इतनी पूँजी का प्रबंध करने की हैसियत नहीं है कि वह माध्यम के क्षेत्र में मालिक की हैसियत से प्रवेश कर सके) तो उसके लिए शेष तीन रास्ते ही बचते हैं, निष्पादक, तकनीशियन और प्रबंधक के रूप में जुड़ना । इन तीनों क्षेत्र में मध्यवर्ग से ही लोग आते हैं । जैसे-जैसे जनमाध्यम का विकास और विस्तार होता जाता है, वैसे-वैसे इस क्षेत्र में प्रतियोगिता भी बढ़ती है । इस प्रतियोगिता में सफल होने के लिए अपने कार्य में उच्च स्तरीयकुशलता अर्जित करनी होती है । यह उच्च स्तरीय कुशलता हासिल करने के लिए गहन प्रशिक्षण की जरूरत होती है । प्रशिक्षण देने के काम में भी इसी वजह से स्तर बनने लगते हैं । मसलन प्रिण्ट मीडिया में एक पत्रकार बनने के लिए और फिल्मों में अभिनेता बनने के लिए

केवल अपने क्षेत्र में कुशलता अर्जित करना काफी नहीं है । एक निम्नवर्गीय साधारण कसबाई युवक और युवती के लिए फिल्मों में अभिनेता बनने या संगीतकार या गायक बनने के लिए जिस तरह के प्रशिक्षण की जरूरत होती है उसे अर्जित करना उसके लिए पूरी तरह मुमकिन न हो तो भी मुश्किल अवश्य होता है । यही बात कैमरामैन, फिल्म संपादक, संगीतकार आदि पर भी कमोबेश लागू होती है । निष्पादकों के सन्दर्भ में यह बात भी ध्यान रखने की है कि किसी भी कलाकार द्वारा ली गई उच्च स्तरीय ट्रेनिंग इस बात की गारंटी नहीं है कि वह इसके द्वारा सफलता हासिल कर ही लेगा । यह संभव है कि बेहतर प्रशिक्षण प्राप्त निष्पादक की तुलना में औपचारिक रूप से जिसने कोई प्रशिक्षण अर्जित नहीं किया है वह ज्यादा सफल साबित हो । अंतः उसका काम ही उसकी सफलता का मानदंड बनता है । लेकिन यह काम उस क्षेत्र में उसकी प्रवीणता और रचनात्मक कुशलता का परिचायक हो यह जरूरी नहीं है । यह सिर्फ उसकी व्यावसायिक सफलता को ही व्यक्त करता है । कहने का तात्पर्य यह है कि जनमाध्यमों के विस्तार के साथ उनकी संस्थानीकरण ही नहीं होता, उनका व्यवसायीकरण भी होता है । उनका संस्थानीकरण और व्यवसायीकरण उसी रूप में होता है जैसा कि उस समाज की आर्थिक और राजनीति व्यवस्था होती है ।

8.6 संस्थानीकरण और व्यावसायिकता में सरकार की भूमिका

संस्थानीकरण की इस प्रक्रिया के साथ व्यवसाय का गहरा संबंध है । निष्पादकों को अपनी मांग बनाने और अपने काम के स्तर पर विश्वास दिलाने के लिए उन तरीकों का भी उपयोग करना पड़ता है जो बाजार में दूसरे उत्पादों के बेचने के लिए किए जाते हैं । यानी प्रचार का सहारा लेना । इसका अर्थ यह नहीं है कि दोनों में प्रचार की प्रकृति एकसी होती है । चित्रकार के पक्ष में किया गया कोई भी प्रचार अन्तः: उसके बनाए चित्रों की गुणवत्ता पर निर्भर करता है, इसी तरह अभिनेता द्वारा निष्पादित भूमिका ही इस बात का निर्णय करती है कि उसकी कीमत क्या होगी । यानी चित्रकार, लेखक और अभिनेता के पास अपने कर्म के अलावा अपना मूल्य निर्धारित करवाने का कोई तरीका नहीं है । व्यवसाय के एक अंग के रूप में भी और निष्पादक के रूप में उसकी कलात्मक उत्कर्षता के रूप में भी । इसी तरह कलाकार जब तक अपने कलाकर्म को अंजाम नहीं देता तब तक उसको उसके काम की कीमत नहीं मिल सकती । उसका काम ही उसकी कीमत है और उसका काम ही उसकी कलाकार के रूप में हैसियत का आधार है । कलाकार अपने कलाकर्म को या तो स्वयं सीधे आस्वादकों को बेच सकता है, या किसी दूसरे के लिए अपने कलाकर्म को बेच सकता है, जो इससे लाभ कमाता है । इस अर्थ में कलाकार और श्रमिक में कोई बुनियादी अंतर नहीं होता । श्रमिक जब तक अपना श्रम नहीं बेचता तब तक उसकी कीमत नहीं मिलती, उसी तरह कलाकार भी जब तक वह श्रम जो कला की रचना में व्यय करता है, उसको नहीं बेचता तब तक उसको अपने कलाकर्म की कीमत नहीं मिलती । एक अच्छे अभिनेता को फिल्म या नाटकों में काम करना होगा । इसी तरह एक चित्रकार को चित्र बनाना होगा ।

कार्ल मार्क्स ने इस पहलू पर विचार करते हुए लिखा था कि समान अंतर्वस्तु वाला श्रम उत्पादकीय भी हो सकता है और अनुत्पादकीय भी । मसलन, मिल्टन जिसने पेरेडाइज लॉस्ट की

रचना की थी, वह एक अनुत्पादकीय श्रमिक था । जबकि दूसरी ओर, वह लेखक जो अपने प्रकाशक के लिए लिखता है, एक उत्पादकीय श्रमिक है । मिल्टन पेराडाइज लॉस्ट का निर्माण रेशम की तरह करता है और उसे पाँच पौंड में बेचता है तो वह एक व्यापारी हो जाता है । एक गीतकार जो चिड़िया की तरह गाता है तो वह अनुत्पादकीय श्रमिक है । लेकिन वह अपने गीत को पैसे के लिए बेचता है, उस हद तक वह या तो वेतनभोगी श्रमिक या व्यापारी हो जाता है । लेकिन वही गायक जब किसी व्यवसायी द्वारा काम कर रख लिया जाता है और जो उससे इसलिए गवाता है कि उससे वह पैसा बना सके तो वह गायक उत्पादकीय श्रमिक हो जाता है, इसलिए कि वह प्रत्यक्ष रूप में पूँजी का निर्माण कर रहा है । एक अध्यापक जब तक दूसरों को पढ़ता है, तब तक वह उत्पादकीय श्रमिक नहीं होता, लेकिन जैसे ही वह किसी संस्थान में अपनी तरह के दूसरे अध्यापकों के साथ वेतन के लिए पढ़ाता है, तो उसका श्रम किसी व्यवसायी के लिए पैसा बनाने का जरिया बन जाता है जिसने कि शिक्षण संस्थान की स्थापना की है, और वह स्वयं उत्पादकीय श्रमिक बन जाता है ।

कलाकर्म के व्यवसाय का एक पहलू यह भी है कि निष्पादकों के कार्य पर जनसंचार के बढ़ते दबाव का असर कई रूपों में दिखाई देता है । मसलन, जब तक सिनेमा और टेलीविजन का आविर्भाव नहीं हुआ था तब तक लेखकों के लेखन का मकसद पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के द्वारा अपनी रचनाओं को लोगों तक पहुँचाना होता था । इन पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों से लेखकों को अपनी रचनाओं पर बहुत कम पारिश्रमिक मिलता था । लेकिन इनकी तुलना में रेडियो पर ज्यादा और सिनेमा और टेलीविजन के लिए लिखी गई पटकथा पर और ज्यादा पारिश्रमिक मिलता है । इसलिए बहुत से लेखक सिनेमा और टेलीविजन के लिए लेखन को वरीयता देने लगते हैं । लेकिन सिनेमा और टेलीविजन में पटकथा लेखन में लेखक के पास वैसी स्वतंत्रता नहीं होती जैसी उसे पत्र-पत्रिकाओं में मिलती है । सिनेमा और टेलीविजन के लिए लेखन में व्यावसायिकता का पहलू हावी रहता है । यही कारण है कि प्रतिभावान लेखक भी इन माध्यमों के लिए लिखना स्वीकार करते हुए भी उसे रचनात्मक लेखन की श्रेणी में नहीं गिनते । इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में निष्पादकों को अन्य माध्यमों की तुलना में ज्यादा पारिश्रमिक मिलने की वजह यह है कि इसमें लगाई गई पूँजी और उस पर कमाया गया लाभ अपेक्षाकृत ज्यादा होता है । इसके बावजूद आमतौर पर अन्य माध्यमों की तरह लेखकों को यहाँ भी अन्य निष्पादकों की तुलना में कम पारिश्रमिक मिलता है ।

हर तरह के श्रम में खास तरह के कौशल की जरूरत होती है । कारखाने में काम करने वाले मजदूर, ब्रश और रंगों से कागज और कपड़े पर चित्र बनाने वाले चित्रकार और कलम से कविता लिखने वाले कवि में कोई बुनियादी फर्क नहीं है । श्रम के लिए जिन बुनियादी बातों की जरूरत होती है, वही कमोबेश कला की रचना पर भी लागू होती है । उन्हें भी शारीरिक और मानसिक शक्ति का उपयोग करना होता है और समय लगाना पड़ता है । उसके इसी श्रम से उत्पन्न उत्पाद जो चित्र के रूप में, उपन्यास के रूप में या फिल्म के रूप में सामने आता है, वे लोग जिनका इन उत्पादों को बेचने के लिए आवश्यक साधनों पर अधिकार है, उनका उन्हें सहारा लेना पड़ता है । यहाँ बेचने का अर्थ सिर्फ बाजार से ही नहीं है । कुछ मामलों में सिर्फ

बाजार हो सकता है जैसे चित्रकला, संगीत, नृत्य या गायन के आयोजन । लेकिन कुछ मामलों में रचना उत्पाद के रूप में निर्मित ही ऐसे साधनों की मदद से होती है जिन पर निष्पादकों का कोई अधिकार नहीं होता । जैसे फिल्म और टेलीविजन के कार्यक्रम या पुस्तकों और पत्रिकाओं का प्रकाशन । इस प्रकार जनसंचार माध्यमों के लिए सांस्कृतिक उत्पाद करने वालों को अपने उत्पाद को उसी प्रक्रिया के द्वारा लोगों तक पहुँचाना पड़ता है, जिस प्रक्रिया से भौतिक उत्पाद लोगों तक पहुँचते हैं । ध्यान देने की बात यह है कि कोई भी कलाकार जिसको अपने कलाकर्म की चाहे जितनी कीमत मिल रही हो, अंतः उसे अपनी कला को लोगों तक पहुँचाने के लिए जनमाध्यमों पर स्वामित्व रखने वालों पर निर्भर रहना पड़ता है । इस प्रकार उसमें बुनियादी तौर पर वही अंतर्विरोध होता है जो अंतर्विरोध पूंजीपति और मजदूर में होता है ।

निष्पादकों से कम महत्व नहीं होता तकनीशियनों का । लेकिन यह ऐसा वर्ग है जो कई स्तरों पर सक्रिय रहता है । जनसंचार माध्यम का पूरा ढाँचा जिन यंत्रों की वजह से संभव होता है, उनके निर्माण, देखरेख और मरम्मत का काम तकनीशियनों द्वारा ही किया जाता है । इसी तरह ये यंत्र जिन लोगों द्वारा काम में लाए जाते हैं, वे लोग एक स्तर पर निष्पादक होते हैं, तो दूसरे स्तर पर वे तकनीशियन भी होते हैं । प्रेस में कंपोज और प्रिंटिंग का काम करने वाले, रेडियो में रिकार्डिग और ब्राडकास्टिंग के उपकरणों का संचालन करने वाले का आमतौर पर सांस्कृतिक उत्पाद की अंतर्वस्तु से कुछ लेना-देना नहीं होता । छापी जाने' वाली पुस्तक में भजन छापे गए हैं या क्रांतिकारी कविता उनके लिए दोनों ही समान हैं । ही, उनके लिए हर पेज की छपाई और उससे जुड़ा तकनीकी कौशल महत्त्वपूर्ण होता है । वह यह चाहता है कि उसके कौशल और श्रम का पूरा पारिश्रमिक उसे मिले । लेकिन आमतौर पर निष्पादकों की तरह उसका पारिश्रमिक उतार-चढ़ाव का उस हद तक शिकार नहीं होता ।

प्रशासकों में इस उतार-चढ़ाव का असर तकनीशियनों की तुलना में ज्यादा पड़ सकता है, लेकिन सिर्फ उस हिस्से पर जो उत्पाद के व्यवसाय वाले पहलू को संभालते हैं । यानी जो उसके व्यवसाय को कम से कम कठिनाइयों के बीच संचालित करने, उसके उत्पाद के विक्रय को प्रोत्साहित करने, उसका प्रचार करने और ऐसे उत्पाद के रूप में पेश करने का काम करते हैं जो अधिकाधिक उपभोक्ताओं को अपनी तरफ आकृष्ट कर सके । आजकल की भाषा में जिसे मार्केटिंग कहा जाता हैं लेकिन वे कार्मिक जो प्रशासन और संगठन के सामान्य किस्म के काम संभालते हैं, उनका पारिश्रमिक भी प्राय: स्थिर रहता है । तकनीशियनों और कार्मिकों के ये वर्ग अपने हितों की रक्षा के लिए उसी तरह संगठित भी होते हैं जैसे कि अन्य व्यवसायों में काम करने वाले श्रमिक और दूसरे कार्मिक होते हैं । इस तरह के संगठन कनिष्ठ स्तर पर काम करने वाले निष्पादकों के भी होते हैं । चाहे वह समाचारपत्र समूह में हो या सिनेमा में । सांस्कृतिक उत्पाद से सीधे तौर पर न जुड़े होने के बावजूद इन समूहों के बिना जनसंचार माध्यम का न तो व्यवसाय के रूप में और न संस्थान के रूप में अस्तित्व संभव है ।

8.7 सारांश

इस इकाई में जनसंचार माध्यमों के संस्थानीकरण और व्यवसायीकरण की प्रक्रिया पर विचार किया गया है । जनसंचार माध्यमों के आधुनिक विकास में इन दोनों प्रक्रियाओं को संभव

बनाया है । इस विकास में तकनीकी विकास, जनता के बीच बढ़ती मांग और उससे उत्पन्न इसका फैलता व्यवसाय शामिल हैं । जनसंचार माध्यमों का व्यवसाय निजी और सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों से संबद्ध है । इसका असर जनसंचार की भूमिका और उससे उत्पन्न संदेशों पर प्रकृति पर भी पड़ता है । जनसंचार माध्यमों के संस्थानीकरण और व्यवसायीकरण की प्रक्रिया से जुड़े सभी प्रमुख पहलुओं पर और इकाई पर विचार किया गया है । इन प्रक्रियाओं में सरकार की भूमिका भी बहुत अहम है । इकाई में इस पक्ष को विस्तार से समझाया गया है ।

8.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जनसंचार माध्यमों के संस्थानीकरण से क्या तात्पर्य है? जनसंचार माध्यमों के संस्थानीकरण की प्रक्रिया पर प्रकाश डालिए ।
2. एक व्यवसाय के रूप में जनसंचार के विकास के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालिए ।
3. जनसंचार माध्यमों का स्वामित्व उसके व्यवसाय और भूमिका को कैसे प्रभावित करता है? स्पष्ट कीजिए ।
4. जनसंचार माध्यमों के संस्थानीकरण और व्यवसायीकरण में सरकारों की भूमिका का आलोचनात्मक विवेचना कीजिए ।
5. भारत में जनसंचार माध्यमों के स्वामित्व के स्वरूप का उल्लेख कीजिए ।

8.9 सन्दर्भ ग्रंथ

1. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार के सामाजिक संदर्भ, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 29ए, पाकेट-डी, दीप एन्कलेव, अशोक विहार, दिल्ली- 110052
2. जवरीमल्ल पारख, जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली, 2000
3. सुभाष धूलिया; संचार क्रांति की राजनीति और विचारधारा, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
4. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, अनुवादक, ओमप्रकाश मालवीय; संचार माध्यम और पूँजीवादी समाज, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
5. मेनी वाइसेज वन वर्ल्ड, संपादक सीन मेकब्राइड, यूनेस्को का प्रतिवेदन, कोगन पेज लि, लंदन, संस्करण, 1998
6. रेमंड विलियम्स; जनसंचार माध्यमों का वर्ग चरित्र, ग्रंथ शिल्पी, नयी दिल्ली.
7. भूमंडलीय जनमाध्यम निगम पूंजीवाद के नए प्रचारक: एडवर्ड एस हरमन, रॉबर्ट डज्यू मैकचेस्नी, अनुवादक चंद्रभूषण, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली- 110092.

इकाई 9 जनसंचार और भाषा

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 भाषा का विकास
9.3 भाषा की प्रौद्योगिकी और संप्रेषण में उसकी भूमिका
9.4 भाषा-संप्रेषण में व्यक्त वैचारिक वर्चस्व
9.5 भाषा-संप्रेषण का भाषावैज्ञानिक अध्ययन
9.6 अंग्रेजी भाषा का वर्चस्व और भारतीय मीडिया ','
9.7 मीडिया में नस्लीय, धार्मिक और जेंडर संबंधी पूर्वाग्रह
9.8 सारांश
9.9 अभ्यासार्थ प्रश्न
9.10 संदर्भ ग्रंथ

9.0 उद्देश्य

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' पाठ्यक्रम के दूसरे खंड 'जनसंचार के सिद्धांत' की चौथी इकाई और पाठ्यक्रम की नौवीं इकाई है । इस पाठ्यक्रम में जनसंचार और भाषा के अंत संबंधों पर विचार किया गया है । जनसंचार माध्यमों द्वारा संप्रेषण में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । इसलिए जनसंचार माध्यमों के अध्ययन में भाषा का अध्ययन भी एक अहम पक्ष है । इस इकाई में जनसंचार माध्यम और भाषा के पारस्परिक संबंधों पर विचार किया गया है । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- भाषा के विकास के परिप्रेक्ष्य को समझ सकेंगे ।
- भाषा की प्रौद्योगिकी के विकास और संप्रेषण में प्रौद्योगिकी की भूमिका को सकेंगे ।
- भाषा संप्रेषण में वैचारिक वर्चस्व के प्रभाव को समझ सकेंगे ।
- भाषा संप्रेषण के भाषा वैज्ञानिक अध्ययन के प्रमुख पक्षों को समझ सकेंगे ।
- भारतीय मीडिया पर अंग्रेजी के वर्चस्व के कारणों और प्रभावों को समझ ' और
- मीडिया में भाषा के माध्यम से व्यक्त होने वाले नस्लीय, धार्मिक और जेंडर संबंधी पूर्वाग्रहों को समझ सकेंगे

9.1 प्रस्तावना

जनसंचार माध्यमों के सन्दर्भ में भाषा का अध्ययन बुनियादी आवश्यकता है । भाषा स्वयं में माध्यम है । बिना भाषा के संप्रेषण संभव नहीं है । भाषा का विकास ही संप्रेषण और संवाद के लिए हुआ है । यही कारण है कि जिन माध्यमों'के द्वारा संप्रेषण का कार्य संपन्न होता है उसको भी भाषा कहने का चलन है । मसलन, सिनेमा की भाषा उसके दृश्यों में निहित है । जैसे भाषा में वर्ण, शब्द, वाक्य, होते हैं, उसी तरह सिनेमा में भी फेम, शॉट और सीन से

फिल्म की भाषा बनती है । इस इकाई में हम भाषा के इतने व्यापक अर्थ पर विचार नहीं करेंगे बल्कि भाषा के उसी रूप का अध्ययन करेंगे जिसे बोलकर, सुनकर, लिखकर और पढ़कर समझा जाता है । लिखने के लिए एक लिपि होती है । जैसे हिन्दी की लिपि को देवनागरी लिपि कहा जाता है । भाषा के साथ उसकी प्रौद्योगिकी भी जुड़ी है । व्यापक अर्थ में लिपि भी भाषा की प्रौद्योगिकी है लेकिन लिखने और बोलने के लिए जिन साधनों का इस्तेमाल प्रयोक्ता करता है, उसे भाषा की प्रौद्योगिकी कहते हैं । किसी समय शिलाओं पर लिखा जाता था, बाद में भोजपत्रों पर और उसके बाद कागज पर जहाँ लिखने के लिए स्याही का इस्तेमाल होता था लेकिन अब लिखने के लिए कंप्यूटर का इस्तेमाल होता है । इसी तरह अपनी आवाज को दूसरे स्थान और दूसरे काल में पहुँचाने के लिए लिखे हुए को सुरक्षित रखने के लिए भी यंत्रों का प्रयोग होने लगा है और इन सबका संबंध भाषा की प्रौद्योगिकी से है । भाषा की प्रौद्योगिकी के विकास ने भाषा के संप्रेषण का विकास किया है और इसी से संचार के माध्यमों का विकास हुआ है ।

इस इकाई में इसी सन्दर्भ में भाषा के विकास, भाषा की प्रौद्योगिकी का विकास और संप्रेषण में उसकी भूमिका , भाषा संप्रेषण को निर्धारित करने में वैचारिक वर्चस्व की भूमिका , भाषा के संप्रेषण में भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की जरूरत, भारतीय मीडिया के सन्दर्भ में अंग्रेजी के वर्चस्व और मीडिया पर नस्लीय, धार्मिक और जेंडर संबंधी पूर्वाग्रहों की भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति पर विचार किया गया है । ये कुछ अहम मुद्दे हैं जिनसे संचार माध्यमों के सन्दर्भ में भाषा संप्रेषण को समझा जा सकेगा ।

9.2 भाषा का विकास

भाषा का व्यवहार दो रूपों में किया जाता है: बोलकर और लिखकर । भाषा का सर्वप्रथम प्रयोग बोले जाने के रूप में हुआ था । वे ध्वनियाँ जो मनुष्य भी निकालता है और पशु भी, उन्हीं ध्वनियों को भिन्न-भिन्न रूपों में पहचान कर, उनका वर्गीकरण, और भिन्न-भिन्न रूपों में संयोजन करके मनुष्य ने विभिन्न भाषाओं का निर्माण किया है । शब्दों को इस रूप में संयोजित करना कि उनसे एक विशिष्ट अर्थ संप्रेषित हो, भाषा के विकास के कारण संभव हुआ । भाषा जब तक बोली जाती रही तब तक उस भाषा के माध्यम से कही गई बात को लंबे समय तक सुरक्षित रखना असंभव था । ज्यादा-से-ज्यादा यही संभव था कि कही गई बात को याद कर उसे कुछ समय तक और कुछ लोगों तक पहुँचाया जा सकता था । लेकिन इस याद करने में इस बात की संभावना भी निहित थी कि मूल बात में याद करने वाला कुछ संशोधन-परिवर्तन कर दे । आज भी लोकगीतों और लोककथाओं के जो कई रूप मिलते हैं उसका कारण यही है कि लोकसाहित्य वाचिक परम्परा द्वारा ही सुरक्षित रहा है ।

भाषा को सुरक्षित रखने की जरूरत के क्रम में ही लिपि का आविष्कार हुआ । इससे कही गई बात को लंबे समय तक सुरक्षित रखना और उसे आगे आने वाली पीढ़ियों को पहुँचाना संभव हुआ । लिपि एक तरह के प्रतीक चिन्हों का समूह है जिनके द्वारा बोली जाने वाली बात को जस का तस लिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है । जो बात बोलकर कही जाती है उसे प्रतीक चिन्हों के माध्यम से लिख लिया जाता है । उस लिखी हुई बात को, वह व्यक्ति जो

उस भाषा को जानता है, प्रतीक चिन्हों को समझकर न सिर्फ पढ़ सकता है बल्कि उसका मतलब भी समझ सकता है ।

लिपि के विकास के साथ ही जुड़ा हुआ है, लिखने की सामग्री का विकास । जिस पर लिखा जाए और जिससे लिखा जाए, इन दोनों चीजों में भी बदलाव होता रहा है । लगभग दो सहस्त्राब्दि पूर्व तक पत्थरों पर लिखकर संदेशों को सुरक्षित रखा जाता था । बाद में भोजपत्रों का इस्तेमाल होने लगा । इन भोजपत्रों को बाँध कर पुस्तक का रूप दिया जाता था । पत्थरों पर लिखने के लिए छेनी, हथोड़े का इस्तेमाल किया जाता था, तो भोजपत्र, कागज आदि पर लिखने के लिए स्याही और कलम का इस्तेमाल होता है । ब्लेकबोर्ड पर लिखने के लिए चाक का । लेकिन मुद्रण की प्रणालियों ने लिखने की इस पद्धति में काफी बदलाव ला दिया है । कंप्यूटर इससे भी आगे का विकास है ।

इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि कोई भी बात जो कही जाती है या सुनी जाती है वह कहे जाने और सुने जाने के साथ ही 'समाप्त' हो जाती है । सिर्फ उस बात की स्मृति के बल पर ही हम कहे जाने और सुनी जाने वाली बात का अर्थ समझ पाते हैं, और बाद में भी उसे दोहराते हैं । हजारों साल बाद आधुनिक युग में ही यह मुमकिन हो सका कि कही हुई बात को यानी कि ध्वनियों को भी सुरक्षित रखा जाने लगा है । रेडियो और टेप रिकार्ड ने मनुष्य की ध्वनियों को सुरक्षित रखने और उसे एक स्थान से दूसरे स्थान और एक समय से दूसरे समय में संप्रेषित करना संभव बनाया है । इस रिकार्ड किए जाने और संप्रेषित किए जाने की प्रौद्योगिकी में पिछले लगभग सवा सौ सालों में इतना परिवर्तन हो चुका है कि नयी पीढ़ियों के लिए यह कल्पना करना भी मुश्किल है कि सवा सौ साल पहले तक आवाज को किसी भी रूप में सुरक्षित नहीं रखा जा सकता था और न ही किसी यंत्र द्वारा दूर तक संप्रेषित किया जा सकता था । इस प्रकार भाषा के संप्रेषण के सन्दर्भ में लिपि का आविष्कार और बोली जाने वाली बातों को रिकार्ड करने की प्रौद्योगिकी का विकास दो महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं और इन दोनों उपलब्धियों ने मानव के सामाजिक और सांस्कृतिक विकाश में अहम भूमिका अदा की है ।

9.3 भाषा की प्रौद्योगिकी और संप्रेषण में उसकी भूमिका

भाषा का आधुनिक परिप्रेक्ष्य भाषा से संबंधित चारों कौशलों-बोलना, सुनना, लिखना और पढ़ना से संबंधित प्रौद्योगिकियों के विकास से है । भाषा का प्रयोग तो मनुष्य सदियों से करता आ रहा है लेकिन उसके पास अपनी बात को सुरक्षित रखने के साधन बहुत सीमित थे । उदाहरण के लिए गायन की ज्ञात परम्परा भी लगभग दो-तीन हजार साल पुरानी मानी जा सकती है । इसी तरह इतिहास में ऐसे बहुत से संगीतकारों और गायकों के नाम मिलते हैं जो गायन में अत्यंत प्रवीण थे । लेकिन उनकी गायकी और संगीत के कोई नमूने हमारे पास उपलब्ध नहीं है । ही, यह जरूर है कि विभिन्न रागों, वाद्य यंत्रों और संगीत से संबंधित जानकारियों के बल पर हम यह बता सकते हैं कि पहले के दौर के गायक विभिन्न वाद्य यंत्रों का उपयोग करते थे, विभिन्न राग-रागनियाँ गाते थे और आज उन वाद्य यंत्रों और रागों के आधार पर गाने की जो परम्परा सैकड़ों सालों से चली आ रही है, वैसा गाने वालों को सुनकर हम कुछ हद तक अनुमान लगा सकते हैं कि पहले के गायक भी इसी तरह गाते रहे होंगे ।

लेकिन आज के प्रसिद्ध गायक बड़े गुलाम अली खाँ से लेकर पंडित जसराज तक, बेगम अख्तर से लेकर परवीना बेगम तक की गायकी हमारे पास सुरक्षित है । इनमें से कई अब हमारे बीच नहीं हैं लेकिन उनकी गायकी उन्हीं की आवाज में हम सुन सकते हैं और बार बार सुन सकते हैं । इसी प्रकार लिखे हुए को भी अब लाखों-लाख लोगों तक तत्काल पहुँचाया जा सकता है और उन्हें आसानी से सुरक्षित रखा जा सकता है । यह सब भाषा से संबंधित प्रौद्योगिकियों के विकास के कारण संभव हुआ है । क्या भाषा की इन आधुनिक प्रौद्योगिकियों ने भाषा के व्यवहार पर असर डाला है?

इस असर का बहुत स्पष्ट रूप सेलफोन द्वारा भेजे जाने वाले लिखित संदेशों के जरिए समझा जा सकता है । सेलफोन एक छोटा-सा यंत्र है और अब जब उसमें सूचनाओं और ध्वनियों को भंडारित करने की क्षमता में काफी बढ़ोत्तरी हो चुकी है, इसके बावजूद उसकी भंडारण क्षमता कागज और कंप्यूटर की तुलना में काफी कम होती है । इसके अलावा लिखित संदेश भेजने वाले को उसमें लगने वाली अवधि का और संदेश भेजने पर आने वाली कीमत का भी ध्यान रखना होता है । अत: संदेश के लिए नये संकेतों का उपयोग किया जाने लगा है । इससे पहले जब टेलीग्राम भेजे जाने के लिए संकेत भाषा का प्रयोग किया जाता था और वहाँ भी संदेश को संक्षेप में भेजा जाना जरूरी था, बात को संक्षेप में कहने पर बल दिया जाता था ।

भाषा पर प्रौद्योगिकी के असर का दूसरा उदाहरण भी आधुनिक युग से संबंधित है जब मुद्रण की आधुनिक प्रणाली का विकास हुआ था । अगर हम इस बात पर ध्यान दें, तो पाएँगे कि गद्य लेखन का विकास दुनिया भर में आधुनिक दौर में ही हुआ जब मुद्रण की प्रौद्योगिकी का विकास हुआ । ' मुद्रण के विकास से पूर्व गद्य का लेखन इतने बड़े पैमाने पर नहीं होता था । लोग बात जरूर गद्य में करते रहे हैं लेकिन लिखने के लिए पद्य का प्रयोग ज्यादा किया जाता था, ताकि बात को सूत्र रूप में भी कहा जा सके और बात को याद भी रखा जा सके । मुद्रण ने संदेशों को याद रखने की आवश्यकता को कम कर दिया है । अब ज्यादा से ज्यादा बात अत्यंत विस्तार से लिखी जा सकती है और उन्हें मुद्रित कर पुस्तकाकार लोगों तक अधिकाधिक संख्या में बहुत ही अल्प समय और अल्प व्यय में उपलब्ध कराई जा सकती है । इसने ज्ञान का ही विस्तार नहीं किया है बल्कि भाषा की शक्ति का भी विस्तार किया है । यह महज संयोग नहीं है कि आधुनिक प्रौद्योगिकी के विकास के साथ उपन्यास विधा का जन्म हुआ और उससे पूर्व की सबसे महत्त्वपूर्ण विधा महाकाव्य लगभग हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त हो गई । इसी तरह गतिशील दृश्यों को दिखा सकने की प्रौद्योगिकी ने ही सिनेमा की एक नयी कला विधा का जन्म दिया है और पिछले लगभग सौ साल में इस कला माध्यम के विकास ने इसे रचनात्मक अभिव्यक्ति का सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम बना दिया है । सिनेमा और टेलीविजन ने भी भाषा के उपयोग को दूर तक प्रभावित किया है । सिनेमा ने ही इस बात का एहसास कराया है कि भाषा का अर्थ सिर्फ शब्द और वाक्य ही नहीं हैं बल्कि शॉट और सीन के द्वारा भी वह काम लिया जा सकता है जो भाषा करती है ।

भाषा का संबंध मनुष्य के विचारों और क्रियाकलापों से होता है । इसलिए जब हम भाषा को समझने की बात करते हैं, तो दरअसल हम उसके द्वारा मनुष्य के विचारों और क्रियाकलापों को समझने की ही बात कर रहे होते हैं । किसी भी भाषा को किसी भी स्थिति में

मनुष्य के सोच और कार्यों से अलग करके नहीं देखा जा सकता । यही वजह है कि रेमण्ड विलियम्स ने कहा था, 'हम चीजों को उसी रूप में देखते हैं जिस रूप में हम अपना जीवन जीते हैं । संप्रेषण की प्रक्रिया दरअसल समुदाय की प्रक्रिया है अर्थात् साझे अर्थों में भागीदारी करना, और इस प्रकार साझा गतिविधियों और उद्देश्यों में भागीदारी करना । नये अर्थों को प्रदान करना, ग्रहण करना और उनकी तुलना करना जो उन्नति और परिवर्तन से प्रेरित तनावों और उपलब्धियों की ओर ले जाते हैं (रेमण्ड विलियम्स, 1961, पृ. 55; मीडिया डिस्कोर्सेज से उद्धृत, पृ. 1) । इसलिए भाषा के प्रयोगों को समझने के लिए स्वर विज्ञान व्याकरण, वाक्य-विन्यास, और भाषा के अन्य उपकरणों को समझना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उससे आगे जाकर भाषा के सामाजिक प्रयोगों को समझने की जरूरत होती है । जैसा कि डोनाल्ड मेथेसन का कहना है, 'भाषा का प्रयोग बहुत से नियमों और परम्पराओं से घिरा होता है और उद्देश्यों और क्रियाकलापों को निर्दिष्ट करने से कहीं ज्यादा को व्यक्त कर रहा होता है । जब हम सरल वाक्यों से परे भाषा विश्लेषण को ले जाते हैं तो हम ऐसे संसार में पहुँचते हैं जहाँ भाषा विज्ञान हमारी बहुत मदद नहीं करता और तब उसके साथ समाजशास्त्र, नृविज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र और दूसरे कई अनुशासन जुड़ते चले जाते हैं । ' (मीडिया डिस्कोर्सेज एनेलाइजिंग मीडिया टेक्स्ट, पृ. 3) । यही वजह है कि मीडिया के सन्दर्भ में भाषा की बात करने का अर्थ सिर्फ संप्रेषण के एक माध्यम को समझने का ही नहीं है । संप्रेषण के माध्यम के रूप में भाषा के विश्लेषण का अर्थ है भाषा को समाज और संस्कृति के सन्दर्भ में समझना, उसका अध्ययन करना ।

इस बात को तो सभी स्वीकार करते हैं कि भाषा सामाजिक संप्रेषण का माध्यम है लेकिन इसे प्राय: स्वीकार नहीं किया जाता कि यह महज अपनी बात को दूसरे तक पहुँचाना और दूसरे की बात को समझने के सरल अर्थ तक सीमित नहीं है । नॉम चोम्स्की ने इस बात को रोचक उदाहरण के द्वारा समझाया है । 'जॉन सेव खा रहा है और जॉन खा रहा है' दोनों सामान्य वाक्य है और दोनों का अर्थ समझने में पढ़ने या सुनने वाले को कोई कठिनाई नहीं होती । दूसरे वाक्य में भले ही कर्म सेव का उपयोग न किया गया हो, लेकिन पढ़ने वाला जानता है कि जॉन कुछ-न-कुछ खा रहा होगा । लेकिन यदि पहला वाक्य 'जॉन सेव खा रहा है' कि बजाए 'जॉन जूते खा रहा है' तो यह कोई सामान्य वाक्य नहीं है । जब 'जॉन खा रहा है' कहा गया वहाँ जॉन जूते खा रहा है जैसी संभावना नहीं होती । हम हमेशा वाक्यों के अर्थ संभावित सामाजिक आचरण से ही लगाते हैं । यदि वाक्य में असामान्य सामाजिक आचरण दिखाई देता है तो उसे स्पष्ट करना जरूरी हो जाता है (पॉवर्स एंड प्रोस्पेक्टस पृ. 24-25) । हिन्दी में जूते खाना एक मुहावरा है जिसका अर्थ पिटने से है । सामान्य सामाजिक आचरण सदैव ऐसी स्वाभाविक चीज नहीं होती जिसे कि मनुष्य सहज ज्ञान से समझ लेता हो । उसके पीछे उस सांस्कृतिक वर्चस्व का प्रभाव होता है जो व्यक्ति के भाषा संस्कार को बनाने में भूमिका अदा करते हैं ।

9.4 भाषा-संप्रेषण में व्यक्त वैचारिक वर्चस्व

समाचारपत्रों में जो समाचार हम रोज पढ़ते हैं जिनसे हमें तरह-तरह की सूचनाएँ प्राप्त होती है, क्या वे महज सूचनाएँ होती हैं या उन सूचनाओं के साथ सूचना का संप्रेषण करने वाले

की समझ भी मौजूद रहती है? इसे एक उदाहरण द्वारा आसानी से समझा जा सकता है । जिस दिन इंडियन प्रीमियर लीग के लिए दुनिया भर के खिलाड़ियों की बोली लगी और समाचारपत्रों ने इस घटना को अपने अखबारों के मुखपृष्ठ पर जगह दी तो उनके द्वारा दिए गए शीर्षकों से ही उनके भिन्न-भिन्न सोच का स्पष्ट संकेत मिल रहा था । दैनिक जागरण ने शीर्षक दिया था: भारतीय युवाओं ने फीकी की विदेशी दिग्गजों की चमक' जबकि वेब दुनिया ने शीर्षक दिया 'एम.एस धोनी बिके छह करोड़ में' । इसके विपरीत जन सत्ता ने शीर्षक दिया था: 'क्रिकेट के बाजार में बिके खिलाड़ी' । इन शीर्षकों से ही साफ है कि खिलाड़ियों की नीलामी के इस समाचार में जागरण के लिए यह महत्त्वपूर्ण था कि भारत के युवा खिलाड़ियों की कीमत विदेश के दिग्गज खिलाड़ियों की तुलना में ज्यादा आँकी गई । इस बात को राष्ट्रवादी धार देने की बजाए वेब दुनिया ने अपने शीर्षक में सबसे ज्यादा कीमत पर बिकने वाले भारतीय खिलाड़ी के समाचार को केंद्रीय महत्त्व का माना । इन दोनों जगह खिलाड़ियों के 'बिकने' के न सिर्फ समर्थन दिया गया है बल्कि उसे भारत के गौरव के साथ जोड़ दिया गया है । जागरण ने बहुत स्पष्ट रूप में और वेब दुनिया ने कुछ संयम के साथ । समाचारपत्रों ने खिलाड़ियों की नीलामी को उनका बिकना सही माना । जागरण ने तो अपने पूरे समाचार में 'बिकना' शब्द का इस्तेमाल ही नहीं किया । जन सत्ता ने जो शीर्षक दिया उसमें इस घटना के प्रति एक आलोचनात्मक रुख व्यक्त होता है जो पूरे समाचार की प्रस्तुति में दिखाई देता है । निहितार्थ यह है कि अब खिलाड़ी खिलाड़ी न रहकर एक जिस में बदल गये हैं जिन्हें बोली लगाकर बेचा और खरीदा जाएगा । समाचार के लिए बोली कितने की लगी यह महत्त्वपूर्ण है या खिलाड़ियों का जिस की तरह बिकना । एक ही घटना के किस पहलू को समाचार लिखने वाले ने अधिक महत्त्व का' माना इससे उस घटना के समाचार बनने की प्रक्रिया प्रभावित हुई है । क्या कोई ऐसी स्थिति संभव हो सकती है जहाँ घटना या तथ्य को बिना किसी वैचारिक कवच पहनाए प्रस्तुत किया जा सकता है? यह संभव है कि समाचार लिखने वाला यह समझे कि वह वस्तुगत रूप में घटनाओं को लिख रहा है और उसके लिखने में किसी तरह का वैचारिक पूर्वाग्रह मौजूद नहीं है । यह भी संभव है कि उक्त समाचार को पढ़ने वाले का भी ध्यान समाचार की प्रस्तुति में निहित विशिष्ट परिप्रेक्ष्य की तरफ न जाए लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि समाचारों की प्रस्तुति निष्पक्ष और हर तरह के पूर्वाग्रह से मुक्त होती है । इस बात की तरफ कम ध्यान दिया गया है कि बाबरी मस्जिद का उल्लेख करने वाले ज्यादातर समाचारपत्र और टीवी चैनल उसे 'विवादित ढाँचा' कहकर संबोधित करते हैं । वे उसे बाबरी मस्जिद नहीं कहते । 'विवादित ढाँचा' कहकर दरअसल वे इस मामले के एक पक्ष के साथ अपने को जोड़ लेते हैं । ये कुछ उदाहरण तो बहुत सीधे और साफ हैं जिनमें वैचारिक पूर्वाग्रह की पहचान करना आसान है । लेकिन ऐसे कई मामलों में वैचारिक पूर्वाग्रहों की तरफ हमारा ध्यान नहीं जाता बावजूद इसके कि हम यह दावा करें कि हमारा दृष्टिकोण धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक और समतावादी है । भाषा में निहित पुरुषवादी पूर्वाग्रह इसका सबसे ठोस उदाहरण है । भाषा का व्यवहार करते हुए हम इस बात के आदी हो चुके हैं कि सामान्यीकृत स्थितियों को हम हमेशा पुल्लिंग रूप में ही लिखते और बोलते हैं । यही नहीं अनावश्यक रूप से भाषा को लिंग से निर्धारित ही नहीं करते बल्कि स्त्रियों के सन्दर्भ में इस सूचना को भी जरूरी मानते हैं कि वह विवाहित है या

अविवाहित और उसी के अनुरूप उनके नाम से पहले 'श्रीमती' या सुश्री' लिखने की परम्परा रही है । इसको पुरुषों के सन्दर्भ में बिल्कुल भी आवश्यक नहीं माना जाता ।

इस सन्दर्भ में इस बात को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि भाषा कोई सरल और सजातीय सरंचना नहीं है । इसमें बातचीत करने के कई तरीके निहित होते हैं और कई प्रतिद्वंद्वी अर्थ होते हैं। यह दूसरी भाषाओं से शब्द लेती है और उन्हें आविष्कृत करती है । यह निरंतर परिवर्तनशील होती है । चिंतन के निश्चित पैटर्न .के अर्थ में विचारधारा भाषा में उपस्थित नहीं रहती (डोनाल्ड मेथेसन, पृ. 5) । लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि भाषा । विचारधारा से परे होती है । भाषा की संरचना का विकास एक वर्गीय समाज में सत्तासीन वर्ग के विचारों के अनुरूप होता है । इसलिए यह स्वाभाविक है कि भाषा का विश्लेषण करते हुए समाज में मौजूद वर्गीय ढाँचे को और शासक वर्ग के वैचारिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखना जरूरी हो जाता है । जैसा कि मार्क्स ने जर्मन आइडियोलॉजी में लिखा था, "सत्ताधारी वर्ग के विचार हर युग में सत्ताधारी विचार हु करते हैं: अर्थात् जो वर्ग समाज की सत्ताधारी भौतिक शक्ति होता है, वह उसकी सत्ताधारी बौद्धिक शक्ति भी ' है । जिस वर्ग के पास भौतिक उत्पादन के साधन होते हैं, उसका साथ ही साथ बौद्धिक उत्पादन पर भी नियंत्रण रहता है, और इस तरह साधारणतया जिन लोगों के पास बौद्धिक उत्पादन के साधन नहीं होते, उनके विचार इस वर्ग के अधीन रखे जाते हैं- (जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, पृ. 93 से उद्धृत) । इस सन्दर्भ में यदि एक वर्गीय समाज में मीडिया की भूमिका पर विचार करते हैं तो इस बात को आसानी से समझा जा सकता है कि मीडिया किस तरह शासक वर्ग की विचारधारा के अधीन रहकर काम करता है । मीडिया समाज के यथार्थ को व्यक्त करने वाला कोई निष्पक्ष आईना नहीं होता । वह यथार्थ की विशेष सामाजिक सन्दर्भ में पुनर्रचना करता है । इस पुनर्रचित यथार्थ को मीडियाकार जिस भाषा में और जिस शब्दावली में व्यक्त करता है उसका निर्धारण शासक वर्ग के वैचारिक वर्चस्व से तय होता है । यह वर्चस्व मीडिया की पूरी कार्यप्रणाली का ऐसा अंतर्ग्रथित हिस्सा बन चुका होता है कि उसका अनुकरण करना प्राय: आवश्यक मानकर चला जाता है । इस बात को इतना सहज मानकर चला जाता है कि वह वस्तुपरकता और निष्पक्षता का आधार बन जाता है । लेकिन बहुत्से मामलों में इस सिद्धांत को उतनी ही सहजता से भुला भी दिया जाता है । मसलन, पटना से लगभग पैंतीस किलोमीटर दूर एक गाँव में 45 वर्षीय दलित महिला का पीटा जाना, उसे अपमानित करते हुए पेड से बांधा जाना, उसके मुँह पर चूना पोता जाना, उसे पूरे गाँव में बांधकर घुमाना और उसके बाल काटा जाना इस समाचार की प्रस्तुति में इस बात पर प्राय: सभी ने खास बल दिया है कि उस महिला को डायन बताकर पीटा गया लेकिन इस महिला के दलित होने को टाइम्स ऑफ इंडिया ने उल्लेख करने योग्य भी नहीं समझा (29 मार्च, 2008, नई दिल्ली) जबकि जन सत्ता (29 मार्च 2006, महानगर, नई दिल्ली) ने इस तथ्य को समाचार का हिस्सा बनाया कि पीटी जाने वाली महिला दलित थी लेकिन पीटने वाले लोगों की जाति बताने की बजाए उन्हें गाँव के दबंग कहना ही पर्याप्त समझा गया । यानी कि गांवों में अब भी सवर्णो द्वारा दलितों को उत्पीड़ित करने संबंधी समाचार को झाड़फूंक करने वाली कथित डायन महिला की पिटाई के समाचार में

बदल दिया गया । टाइम्स ऑफ इंडिया ने शीर्षक दिया था: वुमेन थेश्ड फॉर प्रेक्टिसिंग 'विचक्राट' इन बिहार'' दलित का यहाँ कोई उल्लेख नहीं है । जन सत्ता ने शीर्षक दिया: 'डायन बताकर महिला की पिटाई'' । शीर्षक में दलित का उल्लेख यही भी गायब है । इन दोनों समाचारों के विपरीत दि हिंदू ने शीर्षक दिया: 'टॉर्चर ऑफ दलित वुमेन रॉक्स एसेम्बली'' । यहाँ अवश्य डायन का उल्लेख शीर्षक में नहीं है । यही नहीं टाइम्स ऑफ इंडिया और जनसत्ता की तुलना में दि हिंदू (29 मार्च 2008 नगर संस्करण, दिल्ली) ने स्त्री के साथ किए गए दुर्व्यवहार के लिए 'पिटाई' जैसे अपेक्षाकृत नरम शब्द की बजाए ज्यादा कठोर शब्द 'टॉर्चर' का इस्तेमाल किया है । एक ही घटना के इन समाचारों में दलित महिला की सार्वजनिक पिटाई किए जाने और पूरे गाँव के समक्ष अपमानित किए जाने को केंद्र में रखने की बजाए झाडफूँक किए जाने और स्त्री को डायन माने जाने को ज्यादा महत्त्व दिया गया है । अकेली जीवनयापन करने वाली दलित स्त्री को डायन बताकर पीट-पीट कर मार डालने की घटनाएँ बिहार, उडीसा आदि पिछड़े राज्यों में कई बार दोहराई जा चुकी हैं । इस तरह की घटनाओं का संबंध जिस उत्पीड़नकारी सामाजिक संरचना से है उसको समाचार का परिप्रेक्ष्य बनाने की बजाए समाचारपत्र प्राय: घटनाओं में तथ्यों का विवरण और दोनों पक्षों को कथित रूप से निष्पक्ष ढंग से पेश करने में अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं ।

उपर्युका समाचार में फिर भी थोड़ा बहुत आलोचनात्मक रुख दिखाई देता है । लेकिन ऐसे राजनीतिक और आर्थिक समाचारों में जिनका सीधा संबंध नीतिगत मसलों से होता है वहाँ प्राय: उसी शब्दावली का प्रयोग किया जाता है जो शासक वर्ग के वैचारिक वर्चस्व को अभिव्यक्त करते हैं । मसलन, आर्थिक क्षेत्र में निजीकरण की कोशिशों को 'आर्थिक सुधार कहा जाना, निजी और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हितों के पक्ष में श्रम कानूनों में किए जाने वाले बदलावों को 'श्रम सुधार' कहा जाना, अपने राष्ट्रीय हितों को त्यागकर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए अपने देश के बाजार को उपलब्ध कराना और बिना किसी तरह के प्रतिबंध और नियंत्रण के काम करने की छूट देने को 'बाजार लोकतंत्र' कहना और उसे लोकतंत्र का सर्वोच्च रूप मानना, ऐसे कई पारिभाषिक पद हैं जिनका बिना किसी तरह का प्रश्न उठाए मीडिया धड़ल्ले से उपयोग करता है ।

9.5 भाषा-संप्रेषण का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन

मीडिया के सन्दर्भ में भाषा के अध्ययन को भाषा विज्ञान के विभिन्न सिद्धांतों के सन्दर्भ में भी विश्लेषित किया जाता है । भाषा विज्ञान की दृष्टि से अध्ययन करने के लिए कुछ पारिभाषिक शब्दों को समझना जरूरी है । भाषा दरअसल चिन्हों का समुच्चय है । प्रत्येक चिन्ह (साइन) का एक भौतिक रूप या पैटर्न होता है जिसे सिग्निफायर कहा जाता है और उसके द्वारा जो अर्थ या अवधारणा व्यक्त होती है उसे 'सिग्निफाइड कहा जाता है । यहाँ इस बात को ध्यान रखना जरूरी है कि साइन उसे ही कहा जाएगा जो किसी भाषाई समुदाय के सांस्कृतिक संकेत (कोड) का हिस्सा हो और जिसे वह समुदाय डिकोड (अर्थ) कर सके । 'साइन' केवल शब्दों तक सीमित नहीं होते वह ऐसे किसी भी रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं जो मनुष्य अनुभव का हिस्सा हो । मसलन, रंग, आकार, दृश्य आदि । चिन्हों का प्रयोग भाषा के नियमों के तहत

ही होता है । किसी भी तरह की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्ति जब शब्दों का चयन करता है, तो, शब्दों के जिस समूह से वह यह चयन करता है उसे पैराडाइम (paradigm,) कहा जाता है और उन चयनित शब्दों को एक खास व्यवस्था में रखे जाने को सैंटेग्म (syntagm) कहते हैं । भाषा विज्ञान के इन पारिभाषिक शब्दों को सिर्फ भाषा पर ही लागू नहीं किया जाता । इसे जीवन के किसी भी क्षेत्र में लाग किया जा सकता है । सैंटेग्स के सन्दर्भ में इस बात को याद रखने की जरूरत है कि विभिन्न शब्दों को संयोजित करने का यह कार्य कुछ नियमों और परम्पराओं के तहत होता है । मसलन, भाषा में ये नियम व्याकरण कहलाते हैं । इसी तरह गीत में छंद विशेष का उपयोग, संगीत में विशेष राग । यहाँ तक कि कपड़ों को पहनते हुए व्यक्ति इस बात का ध्यान रखता है कि जिन कपड़ों को उसने पहनने के लिए चुना है उनका संयोजन एक खास अभिरुचि के अनुरूप हो । इस प्रकार चयन और संयोजन की यह प्रक्रिया एक व्यवस्था का निर्माण करती है । यही वजह है कि भाषाविज्ञान के इन सिद्धांतों का उपयोग संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों के अध्ययन में भी किया गया है । इस अध्ययन का संबंध संरचनावाद से है ।

संरचनावाद इस सन्दर्भ में अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना जाता रहा है । भाषा विज्ञान के सन्दर्भ में संरचनावाद के बारे में विचार की शुरुआत प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक फर्डिनांड दि सम्पूर के सिद्धांतों से मानी जाती है । संरचनावादी भाषा के सन्दर्भ में किसी अनिवार्य या आभ्यंतरिक अर्थ के अध्ययन को विशेष महत्त्व नहीं देते । सामान्यत: यह माना जाता रहा है कि शब्द और वस्तु के बीच संबंध से अर्थ का निर्धारण होता है । लेकिन संरचनावादी अर्थ के अध्ययन के लिए भाषा की संरचना के अध्ययन को जरूरी मानते हैं । संरचना से तात्पर्य है व्यवस्थाओं, संबंधों और रूपों का अध्ययन करना । संरचनावाद के इन सिद्धांतों का उपयोग दर्शन, साहित्य, मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण, नृविज्ञान और मीडिया के क्षेत्र में किया गया है । लुइस अल्थूसे, रोलां बार्थ, मिशेल फूको, जॉक देरीदा आदि प्रसिद्ध चिंतकों के विचारों के सन्दर्भ में संरचनावाद की चर्चा की जाती रही है । यहाँ हम इन चर्चाओं में गए बिना मीडिया में भाषा के प्रयोग के सन्दर्भ में चिन्हशास्त्र और संरचनावाद से जुड़ी कुछ संकल्पनाओं का उपयोग करते हुए मीडिया की भाषा को विश्लेषित करने का प्रयास करेंगे।

यहाँ इस बात को समझने की जरूरत है कि चिन्हों के विश्लेषण का महत्त्व सिर्फ रचनात्मक अभिव्यक्ति के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है बल्कि किसी भी तरह की अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में इस विश्लेषण का महत्त्व है । ऊपर हमने सँटेग्म की चर्चा की है, शब्दों और दृश्यों के चयन की यह प्रक्रिया विज्ञापनों की प्रस्तुति में भी आसानी से देखा जा सकती है । सामान्यत: टेलीविजन पर दिखाए जाने वाले विज्ञापनों में जिस उत्पाद का विज्ञापन किया जाता है उसे किसी कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है ।

विज्ञापन उत्पादों का प्रचार करने के लिए उपभोक्ताओं की जरूरत को ही नहीं उनकी कथित कमजोरियों का भी पूरा लाभ उठाते हैं । लाभ उठाने के लिए यह जरूरी है कि वे उपभोक्ताओं में यह विश्वास पैदा करें कि उनकी कमजोरियाँ दरअसल कमजोरियाँ नहीं हैं बल्कि ऐसी जरूरतें हैं जिसे पूरा कर वे दूसरे सफल लोगों की तरह कामयाब हो सकते हैं । मसलन, भारत जैसे देशों में स्त्री सौंदर्य के जो पैमाने परम्परागत रूप से निर्मित हुए हैं उसे विज्ञापन न

केवल इस्तेमाल करते हैं बल्कि उन पैमानों के प्रति लोगों के पूर्वाग्रहों को मजबूत भी करते हैं । गोरापन एक ऐसा ही पैमाना है जिसे सौंदर्य प्रसाधन का निर्माण करने वाली कंपनियाँ निरंतर इस्तेमाल करती है और इस तरह सौंदर्य के संबंध में बनी लोगों की भावनाओं का दोहन करती है । चेहरे और शरीर के दूसरे अंगों पर नली जाने वाली अलग-अलग ब्रांडों की क्रीमों का उत्पादन करने वाली सभी कंपनियाँ अपने विज्ञापनों में इस बात पर बल देती हैं कि वे अल्प समय में ऐसा गोरापन प्रदान कर सकती है, जो उन्हें सफलता के शिखरों तक पहुँचा दे । अधिकांश विज्ञापनों में युवा लड़कियों का इस्तेमाल किया जाता है । लड़की के गोरे न होने के कारण अच्छे रिश्ते न मिलना इस तरह के विज्ञापनों के आरंभिक विषय थे लेकिन अब जब भारत में मीडिया में फैशन शो और सौंदर्य प्रतियोगिताओं को अनुपात से ज्यादा जगह मिलने लगी है तब से सौंदर्य प्रसाधनों के विज्ञापनों में जबर्दस्त उछाल आया है और इन विज्ञापनों में अब स्त्रियों के लिए लक्ष्य सौंदर्य प्रतियोगिताओं में कामयाबी हासिल करना या बड़ी कंपनियों में ऊँची जगह हासिल करना हो गया है । इसी के अनुसार इन विज्ञापनों की भाषा में बदलाव आया है । विवेल नाम की एक नयी सौंदर्य क्रीम का विज्ञापन जिसमें फिल्म अभिनेत्री करीना कपूर की देह का इस्तेमाल किया गया है । इस विज्ञापन में क्रीम के बारे मैं दावा किया गया है कि वह न सिर्फ गोरा बनाती है बल्कि देह को कोमल और मुलायम भी बनाती है । विज्ञापन के स्त्री-दर्शकों के लिए उसमें संदेश है: 'आप भी पाइए, रेशम-सी कोमल त्वचा'' । उस विज्ञापन का मुख्य संदेश (पंच लाइन) इन शब्दों में व्यक्त किया गया है: 'खूबसूरती बस में दुनिया कदमों के । यानी कि कोई भी स्त्री इस क्रीम का इस्तेमाल करके खूबसूरत हो सकती है और खूबसूरत होने पर दुनिया को अपने कदमों में झुका सकती है । यहाँ इसे शाब्दिक अर्थ में न लेकर लक्ष्यार्थ में लें तो तर्क यह दिया गया है कि खूबसूरत स्त्री के लिए कामयाबी हासिल करना आसान है । लेकिन क्या किसी क्रीम का इस्तेमाल करने से ही खूबसूरती हासिल की जा सकती है और क्या सिर्फ खूबसूरती से स्त्री को हर क्षेत्र में कामयाबी मिल सकती है? क्या यह विज्ञापन स्त्रियों की शारीरिक सुंदरता को उनके लिए एकमात्र जीवन लक्ष्य मानने का प्रस्ताव नहीं कर रहा है? भारत जैसे देश में जहाँ गरीबी और कुपोषण के कारण हर रोज सैकड़ों स्त्रियाँ असमय अपनी जान से हाथ धो बैठती है वहाँ कोई क्रीम किसी को कैसे खूबसूरत बना सकती है जबकि खूबसूरती का ज्यादा संबंध युवा स्त्री को मिलने वाले पर्याप्त और स्वस्थ भोजन से है । इसकी प्राप्ति के बाद ही क्रीम के इस्तेमाल का प्रश्न खड़ा होता है। स्पष्ट ही इस तरह के विज्ञापन इन गरीब स्त्रियों के लिए नहीं है ।

इस तरह के विज्ञापन जिन मध्यवर्गीय स्त्रियों के लिए है, क्या खूबसूरती उनके सशक्तीकरण का जरिया बन सकती है या खूबसूरती को ही यहाँ स्त्री का सशक्तीकरण मान लिया गया है? प्रश्न यह भी है कि खूबसूरती के जो पैमाने ये विज्ञापन प्रचारित करते हैं उसको निर्धारित करने का आधार क्या है । लम्बा कद, गोरा वर्ण, कोमल त्वचा, छरहरा बदन जो सुंदरता के मानदंड हैं इसे पूरे भारत पर कैसे लागू किए जा सकते हैं जहाँ विभिन्न नस्लों और प्रजातियों के लोग रहते हैं । विज्ञापनों में आमतौर पर बोलचाल की भाषा का इस्तेमाल होता है । भाषा की शुद्धता पर उनका आग्रह नहीं रहता। लेकिन सुंदरता बढ़ाने वाली क्रीमों के विज्ञापनों में स्किन के लिए त्वचा शब्द का ही प्रयोग किया जाता है क्योंकि इसके समानार्थी लेकिन

ज्यादा प्रचलित चमड़ी या चाम या चर्म शब्दों का प्रयोग चमड़ी की सुंदरता के अर्थ में उस तरह प्रयुक्त नहीं होता । अंग्रेजी का स्किन शब्द जो चमड़ी से संबंधित हर जगह प्रयोग किया जाता है, लेकिन हिन्दी में ऐसा नहीं है । एक स्किन के लिए हिन्दी में चमड़ी, चाम, खाल, त्वचा आदि कई प्रयोग होते हैं । खाल जो चमड़ी का समानार्थी है, आम तौर पर मृत जानवर की चमड़ी के लिए प्रयुक्त किया जाता है । इसी से खाल खींचना, खाल उधेड़ना, आदि मुहावरे निर्मित हुए हैं । इसी तरह धर्म का प्रयोग स्किन से संबंधित रोगों के लिए किया जाता है । चाम का प्रयोग भी अपमानमूलक अर्थ में होता है । इस तरह त्वचा का प्रयोग चमड़ी की सुंदरता के सन्दर्भ में प्रचारित करने का श्रेय काफी हद तक इन विज्ञापनों को है जिन्होंने त्वचा जैसे तत्सम शब्द को लोकप्रिय बना दिया है । ध्यान देने की बात है कि जिस पंच लाइन का उदाहरण इस विज्ञापन के सन्दर्भ में पहले दिया गया है उसमें प्रयुक्त सभी शब्द उर्दू परम्परा से लिए गए हैं और उसकी भाषा को उर्दू भले ही न कहें 'हिंदुस्तानी' तो कहा ही जा सकता है । इसलिए विज्ञापनों में प्रयुक्त भाषा में शब्दों के संयोजन का तर्क बेचे जाने वाले उत्पाद से तय होता है और उसके लिए शब्दों का चयन करते हुए इस बात को ध्यान में रखा जाता है कि शब्दों का प्रयोग उत्पाद के सामाजिक स्तर में बढ़ोतरी करे, एक तरह का आभिजात्य भी उससे जुड़े । यह काम सिर्फ त्वचा शब्द से ही नहीं हो रहा है करीना कपूर के द्वारा भी हो रहा है जो अपने सेलेब्रेटी स्टेटस के द्वारा उत्पाद को गरिमा प्रदान करती है । भारतीय विज्ञापनों में अंग्रेजी की तुलना में हिन्दी के प्रयोग में शब्दों के चयन में ज्यादा सावधानी बरतने की जरूरत होती है क्योंकि भारतीय मानस में अंग्रेजी वैसे ही आभिजात्य स्तर हासिल किए हुए है जबकि हिन्दी का प्रयोग करते हुए इसका निर्माण करना पड़ता है ।

9.6 अंग्रेजी भाषा का वर्चस्व और भारतीय मीडिया

मीडिया के सन्दर्भ में भाषा के बारे में विचार करते हुए इस बात को जरूर ध्यान में रखा जाना चाहिए कि यहाँ भाषा के प्रयोग में उस तरह की आत्मगतता नहीं होती जो सामान्य सामाजिक व्यवहार के दौरान दिखाई देती है । मीडिया में भाषा का सचेत प्रयोग करना होता है और वह माध्यम, उद्देश्य, अंतर्वस्तु, लक्ष्य समूह आदि कई बातों से तय होता है । भाषा का सचेत प्रयोग शब्दों के चयन, वाक्य विन्यास, शैली और संरचना में व्यक्त होता है । इस प्रयोग का मकसद सिर्फ सफल संप्रेषण तक सीमित नहीं होता बल्कि उस परिप्रेक्ष्य को संप्रेषित करने के लिए भी होता है जो संदेश के प्रभाव को ग्रहीता के मानस में स्थायित्व प्रदान कर सके । इस प्रक्रिया की शुरुआत भाषा के, चयन से हो जाती है । मसलन, भारत जैसे बहुभाषी देश में जिसके संविधान की आठवीं अनुसूची में बाईस भारतीय भाषाओं को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा दिया गया है लेकिन जिसमें अंग्रेजी शामिल नहीं है । फिर भी, अंग्रेजी के वर्चस्व को हर क्षेत्र में महसूस किया जा सकता है । अंतरराष्ट्रीय संपर्क भाषा के रूप में उसकी कथित स्वीकृति जो दरअसल अमरीका और ब्रिटेन जैसे अंग्रेजी भाषी साम्राज्यवादी देशों के तीसरी दुनिया पर कायम वर्चस्व की ही अभिव्यक्ति है, को ज्ञान की भाषा भी मान लिया गया है । अंग्रेजी भाषा के वैश्विक वर्चस्व के बारे में टिप्पणी करते हुए राबर्ट फिलिप्सन कहते हैं, 'साम्राज्यवादी संरचना सुनिश्चित करती है कि वैज्ञानिक अनुसंधान, जिनमें प्रौद्योगिकी प्रश्न भी शामिल है, तीसरी

दुनिया के विकास से संबंधित मुद्दे अथवा अंग्रेजी भाषा का शिक्षाशास्त्र इन पर पश्चिम का कमोबेश एकाधिकार बना रहे" (लिंग्विस्टिक इंपरियलिज, पृ. 58) । इस एकाधिकार का ही परिणाम है कि भारतीय संविधान जिसमें भारतीय भाषाओं की उन्नति और हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्थापित करने का संकल्प लिया गया है, उसके प्रति ईमानदार रहने की शपथ लेने वाली सरकारें पश्चिम द्वारा निर्धारित विकास के मानकों के अनुसार विकास के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए अंग्रेजी की शिक्षा को अपने देश के लिए जरूरी मानती हैं और अंग्रेजी के वर्चस्व को बनाए रखने की कोशिशों को पूरा समर्थन देती हैं । भारत सरकार द्वारा सैम पेत्रोदा के नेतृत्व में स्थापित राष्ट्रीय ज्ञान आयोग (एनकेसी) ने अपनी रपट (2007)ए में अंग्रेजी के प्रति इसी नजरिए को पेश किया है । रपट के अनुसार, 'मौजूदा परिदृश्य में अंग्रेजी भाषा की समझ और उस पर अधिकार रखना उच्चतर शिक्षा, रोजगार अवसरों और सामाजिक अवसरों की सुलभता के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्त्व है । " इसलिए ज्ञान आयोग ने इस बात की संस्तुति की है कि 'बच्चे की प्रथम भाषा (या तो मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा) के साथ-साथ एक भाषा के रूप में अंग्रेजी का शिक्षण कक्षा 1 से शुरू किया जाना चाहिए" (पृ. 18) । दरअसल, तीसरी दुनिया पर अंग्रेजी का यह वर्चस्व उस सांस्कृतिक वर्चस्व की ही अभिव्यक्ति है जिसे प्राय: तीसरी दुनिया के पश्चिमीकरण"या "अमेरिकीकरण" की प्रक्रिया कहा जाता है । हर्बट आई. शिलर ने सांस्कृतिक साम्राज्यवाद को विश्लेषित करते हुए लिखा है,.. सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की अवधारणा उन प्रक्रियाओं के योग का सर्वोत्तम विवरण पेश करती है जिनके द्वारा किसी समाज को आधुनिक विश्व व्यवस्था में शामिल किया जाता है । यह अवधारणा बतलाती है कि उस समाज की संस्थाओं को विश्व व्यवस्था के प्रभुत्वशाली केंद्र के मूल्यों और संरचनाओं की जरूरत के अनुसार ढालने या उन्हें आगे बढ़ाने के लिए उस समाज के शासक वर्ग को कैसे आकर्षित किया जाता है, उस पर दबाव डाला जाता है, उसके खिलाफ बल प्रयोग किया जाता है और कभी-कभी उसे घूस तक दिया जाता है" (संचार माध्यम और सांस्कृतिक वर्चस्व, पृ. 17) । फिलिप्सन के अनुसार इस मकसद के लिए जो साधन इस्तेमाल किए जाते हैं वे बहुमुखी होते हैं । इनमें सभी प्रकार के व्यावसायिक उत्पाद, फिल्म, टेलीविजन सीरियल (संयुक्त राज्य अमरीका विश्व भर में दूरसंचार और उपग्रह संचार पर वर्चस्व कायम किए हुए हैं), विदेशों में कायम विज्ञापन कंपनियाँ (जिनमें अधिकांश अमरीकी हैं) आदि के साथ-साथ भाषा शिक्षण से जुड़ी गतिविधियाँ भी शामिल हैं (लिंग्विस्टिक इंपरियलिज्म पृ. 58) । अमरीका में बनने वाली फिल्म, टेलीविजन सीरियल और संचार से जुड़ी सभी गतिविधियों में प्रयुक्त भाषा स्वत: ही सांस्कृतिक साम्राज्यवादी वर्चस्व की वाहक बन जाती है। शिलर की सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की परिभाषा को संरचनात्मक और विचारधारात्मक समावेशन की वैश्विक प्रक्रिया के रूप में व्याख्यायित करने के कारण फिलिप्सन ने उसे व्यापक माना है । शिलर की परिभाषा का उपयोग करते हुए फिलिप्सन ने भाषाई साम्राज्यवाद को इन शब्दों परिभाषित किया है: अंग्रेजी एक ऐसी भाषा है जिसमें यह समावेशन घटित होता है कैप), और अंग्रेजी के साथ जुड़ी संरचनाएँ और विचारधाराएँ वैश्विक स्तर पर (अंतर्वस्तु प्रचालित होती हैं । यदि शिलर ने जिसे

व्याख्यायित किया है वह 'अमेरिकीकरण या 'पश्चिमीकरण है तो अंग्रेजी भाषा इस प्रक्रिया का मुख्य माध्यम है (वही, पृ. 58) ।

इस बात को स्वीकार करते हुए भी कि किसी भाषा को औपनिवेशिक और किसी को गैरऔपनिवेशिक किसी को साम्राज्यवादी या गैर साम्राज्यवादी कहना सैद्धांतिक रूप से उपयुक्त नहीं है । किसी भाषा के सन्दर्भ में इस तरह का कथन का तात्पर्य यही है कि किसी क्षेत्र या देश विशेष में उस भाषा की स्थिति किस तरह की है । अफ्रीका के सन्दर्भ में अफ्रीकी लेखक नगुगी ने औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली के सन्दर्भ में उपनिवेश बनाए गए देशों की भाषाओं के प्रति उपनिवेशवादियों के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए लिखा था कि ".....उपनिवेशों की जनता को यह पढ़ाया जाता है कि उनका कोई इतिहास नहीं है । मतलब यह है कि उन्होंने कभी भी प्रकृति के खिलाफ न कोई संघर्ष किया और न उसे बदला" (वही, पृ. 129) । औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली इस बात से इनकार करती है कि उपनिवेशों में रहने वाले लोगों के पास सही अर्थो में मानवीय भाषाएँ थीं । इनकी भाषाओं को उपनिवेशवादियों ने वार्नक्युलर" देशी भाषा अर्थात गुलामों की भाषा या महज बर्बर लोगों की बोली कहा । इसलिए उपनिवेशों में रहने वाले बच्चे अगर अपनी मातृभाषा बोलते हुए पकड़ लिए जाते हैं तो उन्हें सजा मिलती हैं और अगर वे अपने मालिकों की भाषा यानी फ्रेंच, अंग्रेजी, पुर्तगाली या इतालवी अलग-अलग देशों में अलग-अलग शासन के अनुसार बोलते हैं तो पुरुस्कृत किए जाते हैं । इसका एक ही उद्देश्य है: उस बच्चे के अंदर अपनी भाषा और साथ ही अपनी भाषा के साथ जुड़े मूल्यों के प्रति हिकारत का भाव भर देना । इसका नि।हेतार्थ यह है कि वह खुद को और उन लोगों को तिरस्कार की भावना से देखें जो ऐसी भाषा बोलते हैं, जिसके कारण उन्हें रोज-ब-रोज अपमान और कड़े से कड़ा दंड भुगतना पड़ता है । इसी का दूसरा पहलू यह है कि वह विजेता की भाषा का प्रशसक बन जाता है, उस भाषा से जुड़े मूल्यों को श्रेष्ठ समझता है और उस भाषा को विकसित करने वालों के प्रति नतमस्तक हो जाता है" (वही, पृ. 13०) । औपनिवेशिक दासता से मुक्ति के बाद भी तीसरी दुनिया के देश इस तरह की सांस्कृतिक पराधीनता से मुक्त नहीं हो पाते । मीडिया में भाषा के सन्दर्भ में साम्राज्यवादी सांस्कृतिक वर्चस्व के प्रश्न को इस दृष्टि से भी देखा जाना चाहिए ।

मीडिया के क्षेत्र में अंग्रेजी का जो वर्चस्व अफ्रीका और लेटिन अमेरिका के देशों में दिखाई देता है वैसा वर्चस्व भारत में नहीं दिखाई देता । शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन और अनुसंधान से संबंधित उच्चतर क्षेत्रों में निश्चय ही अंग्रेजी का वर्चस्व दिखाई देता है लेकिन संस्कृति के लोकप्रिय क्षेत्रों में जिसे मनोरंजन उद्योग का क्षेत्र भी माना गया है अंग्रेजी अपनी बहुत जगह नहीं बना पाई है । इसके बावजूद यह भी सच्चाई है कि अंग्रेजी जिस अभिजात्य का प्रतिनिधित्व करती है, वह उस वर्चस्व का ही परिणाम है जो उत्तर औपनिवेशिक दौर में भी साम्राज्यवादी प्रभुत्व के कारण कायम है । इस प्रभुत्व के कारण ही हिन्दी फिल्मों में काम करने वाला प्रत्येक कलाकार उसके बारे में किसी भी तरह की बातचीत अंग्रेजी में ही करना पसंद करता है । इस प्रभुत्व का ही नतीजा है कि भारतीय मीडिया प्राय: ठीक से अंग्रेजी न बोल सकने वाले लालू प्रसाद यादव, मायावती और मुलायम सिंह जैसे नेताओं का मजाक उडाना

अपना जरूरी कर्त्तव्य समझती है । एमए, एलएलबी जैसी उच्चतर उपाधियाँ भी उनको लगभग अशिक्षित ही बना देती है । इसलिए भारतीय समाज में अंग्रेजी शिक्षित और अभिजात वर्गो के बीच संपर्क भाषा के रूप में स्थापित है जबकि हिन्दी और अन्य भाषाएं समाज के अल्पशिक्षित, अशिक्षित और गैरअभिजात वर्गो के बीच संवाद और संपर्क भाषाओं के रूप मे प्रयुक्त होती हैं । इसीलिए भारतीय समाज में उच्चतर गतिशीलता के लिए अंग्रेजी का ज्ञान एक तरह की अनिवार्यता बना दिया गया है । राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की रपट का जो हवाला दिया गया है, वह समाज की इसी वास्तविकता को दर्शाता है ।

9.7 मीडिया में नस्लीय, धार्मिक और जेंडर संबंधी पूर्वाग्रह

अंग्रेजी के वर्चस्व के सवाल से इतर भी भाषा के प्रयोग से संबंधित कई अन्य तरह के पूर्वाग्रह मीडिया में व्यक्त होते हैं जिनमें धर्म, नस्ल, जाति, लिंग संबंधी पूर्वाग्रह हैं । इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी धर्मो, नस्लों, जातियों या स्त्री-पुरूष दोनों को भाषा के माध्यम से हमले का निशाना बनाया जाता है । उदाहरण के लिए प्राय: यूरोपीयन मूल के लोग जिन्हें अफ्रीकी मूल के लोगों से भिन्नता दिखाने के लिए लाइट कहा जाता है, और जो अफ्रीकियों को ब्लेक कहते हैं, गैर श्वेतों के प्रति व्यवहार में अक्खड़पन और अभद्रता प्रदर्शित करते हैं और यह अभद्र व्यवहार मीडिया पर प्रदर्शित होने से भी नहीं बच पाता । इसी प्रकार की अकड़ता और अभद्रता मुसलमानों के प्रति भी प्रदर्शित करते हैं, खासतौर पर अमरीका पर आतंकवादी हमले के बाद से । परिणामत: मुसलमानों को और खासतौर पर दाढ़ी रखने वालों को गोरे लोगों की हिंसा का शिकार होना पड़ता है । पगड़ी और दाढ़ी के चलते अमरीका में सिक्खों पर कई बार हमले किए गए हैं यह समझ कर कि ये अरबी मूल के मुसलमान हैं ।

खेल की प्रतियोगिताएँ जिनका मकसद विभिन्न देशों और वहाँ की जनता के बीच भाईचारे को बढ़ावा देना होता है, प्राय: नस्लीय घृणा का मैदान बन जाते हैं । अभी हाल में क्रिकेट की प्रतियोगिताओं के दौरान आस्ट्रेलिया ने भारतीय खिलाड़ियों पर नस्लीय टिप्पणी का आरोप लगाया था ।

किसी व्यक्ति को नस्ल, जाति, धर्म, लिंग के आधार पर हमले का निशाना बनाना अविवेकपूर्ण ही नहीं, अवैज्ञानिक भी है । जाति और धर्म मनुष्य द्वारा निर्मित संस्थाएँ हैं । भारत में जाति व्यवस्था उस ब्राह्मणवादी वर्णव्यवस्था का परिणाम है जिसके अनुसार व्यक्तियों को चार वर्णों में बाँट दिया गया । इस व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण सबसे ऊपर और शूद्र को सबसे निम्न माना जाने लगा । ऐसा माना जाना किसी वैज्ञानिक सिद्धांत पर आधारित नहीं है । यही वजह है कि स्वतंत्र भारत में जाति के आधार पर भेदभाव को अपराध माना गया है । जहाँ तक धर्म का सवाल है मनुष्य किसी धर्म विशेष में आस्था अपनी परिवार की परम्परा का अनुगमन करते हुए करता है । लेकिन हिंदुओं को छोड़कर प्राय: सभी धर्मो में एक धर्म छोड़कर दूसरा धर्म स्वीकार करने की स्वतंत्रता है । हिंदू ऐसा इसलिए नहीं कर पाते क्योंकि वहाँ धर्म को वर्णव्यवस्था से जोड़ दिया गया है । नस्लवादी पूर्वाग्रह का आधार मनुष्य का रंग और आकृति है जिसके आधार पर विभिन्न नस्लों के लोगों को विभिन्न खानों में बाँटकर ही नहीं देखा जाता बल्कि उनको एक-दूसरे से कमतर या श्रेष्ठतर भी माना जाता है । मसलन,

औपनिवेशिक दौर में यूरोपीय लोगों ने जब अफ्रीका, एशिया, अमरीका आदि पर अपने उपनिवेश स्थापित किए तो अपनी इस विजय के आधार पर उन्होंने यह मान लिया कि हम इन क्षेत्रों में रहने वाले मूलवासियों से श्रेष्ठ हैं । श्रेष्ठता का यह भाव ही नस्लवाद का आधार है जबकि इस आधार पर किसी नस्ल को श्रेष्ठ और निम्न समझने का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है । फिलिप्सन ने 1996 में 'अमेरिकन एसोसिएशन ऑफ फिजिकल अन्थ्रोपोलोजिस्टस' की एक घोषणा को उद्धृत किया है जिसमें उन्होंने उन्नीसवीं सदी के दौरान विभिन्न नस्लों के अध्ययन को खारिज करते हुए कहा था कि 'विश्व के सभी लोगों में किसी भी मानव संस्कृति को अपने में आत्मसातीकरण करने की समान जैविक क्षमता होती है । आधुनिक या अतीत के मानव जनसमुदायों से संबंधित वैज्ञानिक ज्ञान में नस्लवादी राजनीतिक सिद्धांत के लिए कोई आधार दिखाई नहीं देता'' (मीडिया डिस्कोर्सेज, पृ. 139) । फिलिप्सन आगे टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि इस बात पर कुछ हद तक आमसहमति है कि सभी तरह के जनसमुदायों में लगभग 85 प्रतिशत आनुवांशिक भिन्नताएं समान रूप से पाई जा सकती हैं और सिर्फ सात प्रतिशत भिन्नताएं ही ऐसी हैं जो भौगोलिक कारणों से मनुष्य में अलग दिखाई देती हैं । इसी वजह से वैज्ञानिक यह मानते हैं कि यह संभव है कि दो यूरोपियन में आनुवंशिक दृष्टि से किसी अफ्रीकी, एशियाई की तुलना में ज्यादा भिन्नता दिखाई दे । यानी कि कोई यूरोपीयन आनुवांशिक रूप से एशियाई या अफ्रीकी मूल के अधिक नजदीक हो बनिस्बत कि किसी यूरोपीय के । यही बात किसी अफ्रीकी या एशियाई मूल के व्यक्ति के बारे में भी कही जा सकती है (वही, पृ. 139-40) । दरअसल, रंग और आकृति की भिन्नता जो बाहरी पहचान बनाती है, के आधार पर विभिन्न समुदायों का वर्गीकरण करना आसान हो जाता है और इसी आधार पर एक ही तरह के रंग और आकृति के लोग आपस में एक समुदाय या समूह होने का एहसास करते हैं । इसी का इस्तेमाल उन राजनीतिक सिद्धांतों के निर्माण के लिए किया जाता है जो इन समूहों और समुदायों की एकजुटता का अपने राजनीतिक लाभ के लिए इस्तेमाल करना चाहते हैं, खासकर वर्गीय समाजों में । खेलकूद में टीमों का गठन प्राय: क्षेत्र के आधार पर होता है इसलिए उस क्षेत्र में रहने वाले बहुसंख्यक लोगों के नस्ल, जाति, धर्म आदि से संबंधित पहचानों का इस्तेमाल किया जाता है ।

खेल के मैदान में खेल से इतर घटनाओं को मीडिया इतना महत्त्व इसलिए देता है कि उनके अनुसार इसी से वह सनसनी और उत्तेजना पैदा होती है जो दर्शकों और पाठकों को उनके चैनल देखने या समाचारपत्र पढने के लिए प्रेरित करती है । खासतौर पर टेलीविजन चैनल इस तरह की घटनाओं को अधिक महत्त्व देते हैं । यह सीधे-सीधे टीआरपी बढ़ाने के लिए अपनाई जाने वाली तिकड़में हैं । दिलचस्प यह है कि मीडिया के क्षेत्र में सक्रिय बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ इनको अधिक उछालती हैं और इनके माध्यम से अंधराष्ट्रवाद को ज्यादा बढ़ावा देती है । भारत में आस्ट्रेलियाई मूल के रूपर्ट मर्डोक की कम्पनी न्यूज कॉर्पोरेशन के चैनल (स्टार न्यूज आदि) इसमें अग्रणी भूमिका निभाते हैं । स्पष्ट ही यह कम्पनी प्रत्येक देश में उस देश के दर्शकों को इसी तरह के हथकंडों से अपने शिकंजे में कसती है । यही वह सिद्धांत है जो भूमंडलीकरण के दौर में पेश किया जा रहा है: सोचो वैश्विक, करो स्थानीय । मीडिया में भाषा के प्रयोग को भूमंडलीकरण के प्रभाव के सन्दर्भ में विश्लेषित करना इसीलिए जरूरी है ।

9.8 सारांश

इस इकाई में आपने जनसंचार माध्यमों के सन्दर्भ में भाषा की भूमिका के बारे में अध्ययन किया है । भाषा के बिना संप्रेषण संभव नहीं है । भाषा का विकास ही संप्रेषण और संवाद के लिए हुआ है लेकिन भाषा को शब्दों और वाक्यों तक सीमित समझना उचित नहीं है । इकाई में भाषा के विकास पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है । मनुष्य की किस जरूरत ने भाषा का विकास किया और किस तरह भाषा मनुष्य के भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने का माध्यम बनी, इस पर भी इकाई में विचार किया गया है । भाषा के विकास का संबंध भाषा से संबंधित प्रौद्योगिकी से भी है । संदेश को दूर-दूर तक पहुँचाने, एक काल से दूसरे काल तक पहुँचाने, संदेश को भंडारित करने, सुरक्षित रखने और प्रतिलिपियाँ बनाने के लिए भी प्रौद्योगिकी की जरूरत होती है । इस प्रौद्योगिकी के विकास ने भाषा की पहुँच और क्षमता दोनों का विकास किया है । भाषा के दोबारा संप्रेषण को समझते हुए इस बात को भी समझना जरूरी हो जाता है कि क्या भाषिक अभिव्यक्ति में वैचारिक वर्चस्व भी अभिव्यक्त होता है । इकाई में भाषा सम्प्रेषण में व्यक्त वैचारिक वर्चस्व में भी विचार किया गया है । भाषा की उलत्ति और विकास सामाजिक जरूरत की देन है । भाषा में प्रयुक्त विभिन्न वर्ण एक तरह के प्रतीक या चिन्ह भी है । जिसे अंग्रेजी में sign और code कहा जाता है । इनका अर्थ जाने बिना भाषा का विवेचन संभव नहीं । एक भाषिक समुदाय के सभी लोग अपनी भाषा में निहित संकेत प्रणाली को समझने की क्षमता रखते हैं । इस संकेत प्रणाली पर किन-किन बातों का प्रभाव होता है, इसका विवेचन भाषा संप्रेषण के भाषावैज्ञानिक अध्ययन के अंतर्गत किया गया है । इसी तरह भारत जैसे देशों में अंग्रेजी भाषा का वर्चस्व और नस्ल, धर्म और जेंडर संबंधी पूर्वाग्रह भाषा को कैसे प्रभावित करते हैं इस पर भी विचार किया गया है । इन विभिन्न पहलुओं के द्वारा भाषा और संप्रेषण के अंत:संबंधों को समझाया गया है ।

9.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'भाषा जनसंचार का आधारभूत माध्यम है' । इस कथन के संदर्भ में भाषा के विकास पर प्रकाश डालिए ।
2. भाषा की प्रौद्योगिकी का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए सम्प्रेषण में उसकी भूमिका को रेखांकित कीजिए ।
3. भाषा के द्वारा संप्रेषण पर वैचारिक वर्चस्व की प्रकृति और स्वरूप का विवेचन कीजिए ।
4. अंग्रेजी के वर्चस्व के कारणों पर विचार करते हुए आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास का उल्लेख कीजिए ।
5. जनसंचार माध्यमों में भाषा के जरिए व्यक्त होने वाले विभिन्न तरह के पूर्वाग्रहों का वर्णन करते हुए इससे पैदा होने वाली समस्याओं का प्रकाश डालिए ।

9.10 सन्दर्भ ग्रंथ

1. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार के सामाजिक संदर्भ, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 29ए, पाकेट-डी, दीप एंकलेव, अशोक विहार, दिल्ली- 110052
2. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली, 2000
3. सुभाष धूलिया; संचार क्रांति की राजनीति और विचारधारा, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
4. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, अनुवादक, ओम प्रकाश मालवीय; संचार माध्यम और पूँजीवादी समाज, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली ।
5. संपादक सीन मेकब्राइड मेनी वाइसेज वन वर्ल्ड, यूनेस्को का प्रतिवेदन, कोगन पेज लि, लंदन, संस्करण, 1998,
6. रेमंड विलियम्स; जनसंचार माध्यमों का वर्ग चरित्र: ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली- 11002
7. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यम और सांस्कृतिक विमर्श, 2009, ग्रंथ म०, दिल्ली- 110092.

इकाई 10 जनसंचार और साहित्य

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 साहित्य की विभिन्न विधाएँ और संप्रेषण
10.3 जनसंचार माध्यमों के दौर में साहित्य
104 साहित्यिक रचना और उसके विभिन्न 'पाठ'
10.5 साहित्यिक संरचना के अन्य कला सन्दर्भ
10.6 आख्यान और जनसंचार माध्यम
10.7 साहित्य के रूपांतरण की समस्याएँ
10.8 साहित्य और जनसंचार माध्यम : अलग-अलग चुनौतियाँ
10.9 सारांश
10.10 अभ्यासार्थ प्रश्न
10.11 सन्दर्भ ग्रंथ

10.0 उद्देश्य

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' पाठ्क्रम के खंड-2 'जनसंचार के सिद्धांत की यह दसवीं इकाई है । इस इकाई में आप साहित्य और जनसंचार माध्यम के अन्त:संबंधों को समझेंगे । इस इकाई में आधुनिक जनसंचार माध्यमों के दौर में साहित्य की भूमिका पर विचार किया जायेगा । जनसंचार के सन्दर्भ में साहित्यिक रचना और उसके विभिन्न पाठों पर भी विचार किया जाएगा । साहित्य और जनसंचार के पारस्परिक संबंधों पर विचार करते हुए उनसे संबद्ध अन्य कला संबंद्धों पर भी इकाई में प्रकाश डाला गया है । जनसंचार माध्यमों के संबंध में आख्यन का अध्ययन भी आवश्यक हैं । इकाई में इस प्रश्न पर भी विचार किया गया है । किसी साहित्यिक रचना को जब श्रव्य या दृश्य माध्यमों के रूप में प्रस्तुत किया जाना होता है तो एक माध्यम से दूसरे माध्यम में रूपांतरण की समस्या भी उपस्थित होती है । इकाई में इस पहलू पर भी विचार किया गया है । साहित्य और जनसंचार माध्यमों से जुड़े ऐसे कई पहलुओं को भी इकाई में विचार का विषय बनाया गया है । इन विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने से आप जनसंचार और साहित्य के अत:संबंधों को स्पष्ट कर सकेंगे । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- साहित्य की विभिन्न विधाओं और सम्प्रेषण के बारे में समझ सकेंगे ।
- जनसंचार माध्यमों के दौर में साहित्य के मानदण्डों को पहचान सकेंगे ।
- साहित्यिक रचना, साहसिक संरचना के अन्य कला सन्दर्भों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
- आख्यान और जनसंचार माध्यमों के पक्षों की व्याख्या कर सकेंगे ।
- साहित्य के रूपान्तरण की समस्याओं ओर उसकी चुनौतियों से परिचित हो सकेंगे ।

10.1 प्रस्तावना

जनसंचार के सिद्धांत के इस खंड में अब तक आप जनसंचार से संबंधित विभिन्न सिद्धांतों, सामाजिक सिद्धांतों, जनसंचार के संस्थान और व्यवसाय, और जनसंचार और भाषा के अंत:संबंधों के बारे में पढ़ चुके हैं । जनसंचार माध्यमों के बारे में अध्ययन के सन्दर्भ में इस बात को खासतौर पर समझने की जरूरत है कि यह माध्यम केवल मनोरंजन प्रदान नहीं करते बल्कि सूचना, शिक्षा और कलात्मक अनुभवों को अभिव्यक्त करने के माध्यम भी हैं । ललित कलाओं के अंतर्गत साहित्य को भी एक कला माना गया । साहित्य जनसंचार माध्यमों के द्वारा जन-जन तक पहुँचता है । पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से, पुस्तकों के माध्यम से, रेडियो, टेलीविजन और सिनेमा के माध्यम से । पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों में तो साहित्य ठीक उसी रूप में अपने को अभिव्यक्त करता है जिस रूप में उसकी रचना होती है । लेकिन रेडियो, टेलीविजन और सिनेमा माध्यमों में साहित्य को प्रस्तुत करने के लिए उन्हें इन माध्यमों की भाषा के अनुसार रूपांतरित करना होता है । जनसंचार का कोई विशेष माध्यम जब साहित्यिक रचना को रूपांतरित करता है तो रूपांतरण की प्रक्रिया में साहित्य की विषयवस्तु और शिल्प को भी बदल देता है । लेकिन यह रूपांतरण न तो आसान प्रक्रिया है और न ही यह रचना की मूल पाठ को हमेशा सुरक्षित रख पाती है । इसलिए रूपांतरण की प्रक्रिया को सावधानीपूर्वक समझना भी आवश्यक है । साहित्य और जनसंचार माध्यम में भाषा का प्रश्न इस दृष्टि से बहुत ही महत्त्व का हो जाता है । जनसंचार के सन्दर्भ में भाषा का अध्ययन आप पिछली इकाई में कर चुके हैं । इस इकाई में साहित्य के विशेष सन्दर्भ में हम जनसंचार माध्यमों के अंत:संबंधों को समझने का प्रयास करेंगे ।

10.2 साहित्य की विभिन्न विधाएँ और संप्रेषण

कलाओं के विकास में साहित्य का योगदान अप्रतिम है । भाषाओं के विकास के साथ-साथ साहित्य का भी विकास हुआ । साहित्य भाषाओं के माध्यम से मनुष्य की रचनात्मक अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम रहा है और आज भी है । साहित्य अपने को कई रूपों में व्यक्त करता है । बोलकर, लिखकर, गाकर, नाटकीय प्रस्तुति आदि के द्वारा । इसी के आधार पर साहित्य की विभिन्न विधाओं का विकास भी हुआ है । साहित्य की रचना और अभिव्यक्ति संप्रेषणीयता में भाषा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । प्रेस के आगमन से पहले तक गेयता संप्रेषण का एक सशक्त माध्यम थी । क्योंकि साहित्यिक अभिव्यक्ति को लिखकर सुरक्षित रखने का तरीका यानी उसे लिपिबद्ध करने और उसे दूसरे तक पहुँचाने के लिए रचना की प्रतिलिपि बनाना श्रमसाध्य कार्य था । इस कार्य को आसान बनाया प्रेस ने जिसकी वजह से रचना की सैकड़ों, हजारों प्रतियाँ बहुत कम समय में बनाई जाने लगीं । परिवहन ___ के साधनों के विकास ने इन प्रतियों को दूर-दूर तक और अल्प समय में पहुँचाया जाने लगा । इसका परिणाम। यह हुआ कि साहित्य में गेयता उसकी अनिवार्य शर्त नहीं रही । साहित्यिक रचना में गद्य जो पहले हाशिए पर था, वह केंद्र में आ गया । गद्य रचनात्मक साहित्य के ही नहीं हर तरह के ज्ञान-विज्ञान के प्रसारण का सर्वसुलभ माध्यम बन गया । प्रेस ने गेयता के महत्त्व को

कम तो नहीं किया लेकिन उसे काफी हद तक कविता की एक विधा के रूप में सीमित कर दिया । कविता के लिए गेयता अनिवार्य तत्त्व नहीं रहा और पहले शब्द की लय और बाद में अर्थ की लय के रूप में कविता की पहचान की जाने लगी । अर्थ कई लय का संबंध पड़े जाने से अधिक है और सुने जाने से कम ।

साहित्य की रचनात्मक अभिव्यक्ति का एक अन्य सशक्त माध्यम नाटक रहा है जो काव्य की तरह एक पुरानी और लोकप्रिय विधा है । नाटक में मुख्य तत्त्व है, अनुकरण । मनुष्य जिस तरह जीता है और अपने आस-पास को जिस रूप में देखता है उसे ही वह नाटक में प्रस्तुत करता है । वह जीवन को जैसा देखता और भोगता है उसे ठीक उसी रूप में नाटक में प्रस्तुत नहीं करता । उसमें वह अपनी सोच और कल्पनाशक्ति के बल पर आवश्यक परिवर्तन भी करता है । लेकिन नाट्य रचना की प्रस्तुति की प्रेरक शक्ति तो जीवन ही होता है । रंगमंच पर जब अभिनेता अभिनय द्वारा नाटक प्रस्तुत करते हैं तब उनके सामने ठीक उन्हीं स्थितियों में वास्तविक जीवन में किये जाने वाले व्यवहार ही अनुकरण के लिए उपस्थित होते हैं । वास्तविक जीवन में व्यवहार का कोई पूर्वनिर्धारित ढाँचा नहीं होता और न ही यह ढाँचा सदैव एक-सा बना रहता है । फिर भी, उनमें सामान्यीकरण के कुछ तत्त्व अवश्य होते हैं जिनके आधार पर ग्रहीता उसे अनुकरण के लिए पहचान पाता है । निश्चय ही यह नाटक के निर्देशक और अभिनेता की क्षमता पर निर्भर करता है कि वह 'अनुकरण को वास्तविक व्यवहार के ढाँचे में रखकर भी उसे कितना मौलिक और नवीन बना पाता है । इस दृष्टि से नाटक की हर प्रस्तुति अभिनेताओं के लिए एक चुनौती होती है । कमोबेश यह बात संगीत और गायन कला पर भी लागू होती थी जहाँ गाने और बजाने वाला कलाकार अपनी हर प्रस्तुति में कुछ नया करने के लिए चुनौती भी महसूस करता था और संभावना भी ।

इसी बात को जब हम काव्य रचना पर लाग करते हैं तो पाते हैं कि गायन को रिकार्ड कर सकने की यांत्रिकी के विकसित होने से पूर्व युग में हर गायक उस गीत को जिसे वह गाता था, उसे अपने गाने की शैली के अनुरूप परिवर्तित भी कर देता था । यही वजह है कि प्राक्-आधुनिक काल की उन रचनाओं को जिनको लिपिबद्ध नहीं किया गया और जो वाचिक परम्परा के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को उपलब्ध होती रहीं, उनके बारे में यकीन के साथ यह कहना मुश्किल है कि वे आरंभ से ठीक इसी रूप में रही होंगी । यह बात उन कथाओं और नाट्य रचनाओं पर भी लागू होती है जो वाचिक परम्परा द्वारा हम तक पहुँची है । इसके विपरीत जिन रचनाओं को लिपिबद्ध कर लिया गया उनमें परिवर्तन की संभावना निश्चय ही कम रही होगी, यह माना जा सकता है । लिपिबद्ध किए जाने के कारण ही इस बात को पहचाना जा सका कि कवेद की भाषा अन्य वेदों की तुलना में पुरानी है । इसका अर्थ यह भी नहीं है कि वाचिक परम्परा से प्राप्त रचनाओं में अनिवार्य रूप से परिवर्तन होते ही हैं या वे परिवर्तन इस हद तक हो जाते हैं कि उनकी पहचान करना भी मुश्किल हो जाएँ उदाहरण के लिए शास्त्रीय गायन की विभिन्न पद्धतियाँ जो कई सौ सालों की यात्रा के बाद भी सुरक्षित बनी रहती हैं उसका कारण यह है कि उन पद्धतियों को विशिष्ट नाम दे दिया गया था और इस तरह से उनकी विशिष्ट पहचान को एक ऐसा ढाँचा प्रदान कर दिया गया जिस ढाँचे में ही उस विशिष्ट राग का गायन किया जाता रहा और उन्हें पहचाना जाता रहा ।

आधुनिक युग में जब साहित्य सहित इन विभिन्न कलाओं को यंत्रों द्वारा सुरक्षित रखा जाने लगा, उनकी प्रतिलिपि बनाई जाने लगी और उनको भिन्न स्थान और काल में संप्रेषित किया जाने लगा तो, उसका प्रभाव कलाओं की रचना पर भी पड़ना स्वाभाविक था । यहाँ इस बात को रेखांकित करने की जरूरत है कि इन यंत्रों ने प्राय: किसी नयी कला को जन्म नहीं दिया बल्कि परम्परागत कलाओं को ही नया रूप प्रदान किया । मसलन, फोटोग्राफी या सिनेमा को नयी कलाओं के रूप में प्रस्तुत किया जाता है । लेकिन फोटोग्राफी चित्रकला का और सिनेमा नाट्यकला का ही विकसित रूप है जिन्हें नये यंत्रों ने संभव बनाया । दरअसल, यंत्रों ने कला की रचना और संप्रेषण की तकनीक में ज्यादा बदलाव किया है उसकी मूल प्रकृति में कम । यह सही है कि किसी चित्रकार के लिए फोटोग्राफर होना आसान नहीं है और न ही कोई सफल नाटककार फिल्म का सफल पटकथा लेखक बन सकता है और न ही यह जरूरी है कि सफल नाट्य निर्देशक फिल्म का भी सफल निर्देशक हो । इसके बावजूद यह भी सही है कि नाटक, फिल्म और टेलीविजन में अभिनय करने वाले को अभिनेता ही कहा जाता है । इसी तरह फिल्म, टेलीविजन और सिनेमा को निर्देशित करने वाला निर्देशक ही कहा जाता है । एक अच्छे फोटोग्राफर में चित्रकार की संवेदनशीलता का होना जरूरी है ।

यह सही है कि इन यंत्रों ने कला के मूल रूप पर बुनियादी प्रभाव नहीं डाला और न ही उनके अस्तित्व के लिए कोई खतरा पैदा किया । इसके विपरीत यह भी कहा जा सकता है कि इन यंत्रों ने कलाओं के दायरे को पहले की अपेक्षा अधिक विस्तृत किया है । लेकिन यह भी सही है कि कलाओं का संसार पहले की तरह का नहीं रह गया है । इनमें ऐसी कई प्रवृत्तियाँ प्रवेश कर गई हैं जिन्होंने इन कलाओं की रचना और अभिव्यक्ति पर गहरा प्रभाव डाला है । मध्ययुगीन कलाओं पर विचार करें तो हम पाते हैं कि उस दौर में अभिजात वर्ग और सामान्य जन के बीच प्राय: कलाओं का किसी तरह का आदान-प्रदान नहीं था । सामंतों के दरबार में कविता सुनाने वाले, गाने-बजाने वाले और नाचने वाले कवि, गायक और नर्तकियाँ प्राय: उन्हीं दरबारों तक सीमित थीं । उनको उनकी कला के लिए सामंतों से तरह-तरह के ईनाम मिलते थे, यश मिलता था । लेकिन गांवों और शहरों में रहने वाले लोगों के बीच गाने-बजाने वाले उन्हीं के बीच रहते थे । धार्मिक, सामाजिक और पारिवारिक अवसरों पर गाने-बजाने वाले लोगों की यह दुनिया पहले वाली दुनिया से बिल्कुल अलग थी । ऐसा नहीं था कि उनमें किसी तरह का कोई संपर्क या संवाद नहीं था । लेकिन निश्चय ही वह कम था । आम लोगों के बीच गाने-बजाने वाले कलाकारों को भी प्रतिष्ठा और व्यापक पहचान तभी मिलती थी जब उनमें से कुछ की रचनाशीलता अपने दायरे से बाहर जाकर अपना प्रभामंडल बना पाती थीं । प्राय: उनकी इस व्यापक स्वीकृति का कारण धर्म होता था । भक्तिकाल के दौर में हम इस प्रक्रिया को देख सकते हैं जब कबीर, सूर, तुलसी आदि ने अपनी रचनाओं के द्वारा अपने दायरे से बाहर जाकर प्रतिष्ठा प्राप्त की । इसी तरह मीरा जिसका संबंध सामंती अभिजन से था, अपनी रचनाओं के बल पर ही उस दायरे को लांघती हुई आम लोगों के बीच स्वीकार्य हुई । इसके विपरीत रीतिकाल के अधिकांश कवि जिन्होंने विभिन्न दरबारों में पर्याप्त ख्याति अर्जित की प्राय: जनता के लिए अनजाने ही बने रहे । इसी तरह इन दोनों युगों के वे हजारों लोकगायक और लोककवि

साहित्य के इतिहास में अनजान ही बने रहे जिनकी ख्याति अपने दायरे तक ही सीमित रही लेकिन जो अपने समय में अपने समाजों के बीच कलाओं के सृजन और आस्वादन के प्रेरणा स्रोत थे । अपने समाजों में भी इन्हें प्राय: भुला दिया गया लेकिन उनकी रचनाएँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी किसी-न-किसी रूप में सुरक्षित रहीं ।

अभिजन और सामान्य जन के आधार पर मध्ययुग में कला रचना और आस्वादन के जो विभाजित दायरे थे, उनके बीच न तो प्रतियोगिता थी और न ही कोई किसी के लिए चुनौती था । सच्चाई तो यह थी कि जनता के बीच रचनात्मक अभिव्यक्ति के ये रूप तत्कालीन शासकों और अभिजनों के लिए किसी तरह की चुनौती पेश नहीं करते थे और न ही अभिजनों की सेवा में लगी कलाएँ आम आदमी के लिए किसी तरह का खतरा पेश करती थीं । अभिजनों की सेवा में लगे कलाकारों को इस बात का ध्यान रखना पड़ता था कि वे अपने आश्रयदाताओं की अभिरुचि के अनुरूप कला की रचना करे । ऐसा न करने पर उस आश्रय के खो जाने का खतरा रहता था जिस आश्रय के बल पर ही उन्हें अर्थ और यश दोनों मिलता था । इसके विपरीत गाँवों में रहने वाले कलाकारों के आश्रय का दायित्व सामूहिक रूप में पूरे गाँव या समुदाय पर होता था । या ऐसे भी कलाकार होते थे जिनके जीवन निर्वाह के साधन अलग होते थे और कला की रचना का उससे कोई संबंध नहीं होता था । कबीर, रैदास आदि इसी तरह के उदाहरण थे जो अपना पेशेवर काम भी करते थे । या तुलसीदास जो कथा-वाचन द्वारा अपना जीवनयापन भी करते थे ।

रचनात्मकता की इस स्वायत्त दुनिया को आधुनिक युग ने काफी हद तक बदल दिया है । आधुनिक यंत्रों ने कलाओं की इन स्वायत्त दुनियाओं को लगभग मिटा दिया है । वे कलाएँ जो पहले अभिजन वर्ग तक सीमित थीं उनको इन यंत्रों के द्वारा आम आदमी तक पहुँचाना आसान हो गया है । लेकिन इन यंत्रों ने समुदायों पर निर्भर उन कलाओं के सामने अस्तित्व का संकट पैदा कर दिया है जो अपनी स्वायत्त दुनिया में पूरी तरह सुरक्षित थीं । निश्चय ही इसका कारण सिर्फ यंत्र नहीं हैं । इसका कारण वह पूँजीवादी दौर है जहाँ सयुदायगत कुछ भी नहीं है । इसलिए समुदायगत आश्रय का भी कोई अर्थ नहीं है । किसी भी कलाकार के लिए चाहे वह कवि हो या गायक, उसके लिए सबसे पहले अपने जीवन-निर्वाह का इंतजाम करना जरूरी है । उसकी चिंता स्वयं उसे ही करनी है । पूँजीवाद ने हर सामाजिक कार्य का संस्थानीकरण किया है और हर संस्थान का व्यवसायीकरण किया है । इसके बारे में आप इकाई 8 में अध्ययन कर चुके हैं । संस्थानीकरण और व्यवसायीकरण की प्रक्रिया नवीन यंत्रों के कारण संभव हुई है । इससे किसी भी तरह की कला भी नहीं बची है । लेखक और कलाकार द्वारा रची गई हर रचना का एक भौतिक मूल्य है । उसकी कीमत तय होती है । यह कीमत बाजार मे उसके मूल्य से तय होती है । मूल्य बाजार में उसकी मांग से तय होता है । यह मांग रचना की आंतरिक गुणवत्ता से तय हो यह जरूरी नहीं है । मांग को प्रभावित करने वाले बहुत-से ऐसे बाहरी कारक हैं जो अंततः रचना की पूरी प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं ।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के कारण आवाजों और दृश्यों को रिकार्ड करना, उसे दूसरे समय और दूसरे स्थान पर संप्रेषित करना, लंबे काल तक सुरक्षित रखना और उनकी अनगिनत प्रतिलिपियाँ बनाना संभव हुआ है । निश्चित ही यह मानव इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण

उपलव्यि है । इससे पूर्व तक लेखन के अलावा ध्वनि और दृश्य । सुरक्षित रखना संभव नहीं था। दृश्यों को नाटकों, चित्रों, मूर्तियो के द्वारा और ध्वनियों को गायन पद्धतियों सुरक्षित रखने की कोशिश की गई थीं । लेकिन इनमें कला की तकनीक से ज्यादा कलाकार की अपनी प्रतिभा का योगदान होता था । लेकिन इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने कलाकार की प्रतिभा को काफी हद तक कला की तकनीक के अधीन कर दिया है । यहाँ कविता का उदाहरण लिया जा सकता है । आधुनिक मुद्रण यंत्रों के आगमन से पूर्व तक कविता का आस्वादन सुनकर लिया जाता था । कविता को याद रखने के लिए गेयता जरूरी थी, इसलिए कविता को छंदबद्ध किया जाना जरूरी था । रामचरित मानस जैसे महाकाव्य भी छंदबद्ध होने के कारण गाते हुए पढ़े जाते थे । कुछ दशकों पहले तक ऐसे लोग सरलता से मिल जाते थे जिन्हें रामचरितमानस के कुछ काण्ड पूरे के पूरे याद होते थे । मुद्रण ने कविता की उपलकता को बढ़ाया है लेकिन इसके साथ-साथ गाए और सुनाए जाने का स्थान पढ़े जाने ने ले लिया है । इस तरह गाई जाने वाली कविता गीत और पढ़ी जाने वाली कविता में एक विभाजन रेखा पैदा कर दी गई है । गीत को रेडियो, टेलीविजन और फिल्म के माध्यम से प्रभावशाली रूप में संप्रेषित -किया जा सकता है इसलिए उसका व्यावसायिक इस्तेमाल ज्यादा आसान हो गया है । इसका परिणाम यह भी हुआ है कि गीतों की साहित्यिक मूल्यवत्ता में कमी आई है । ऐसा भी नहीं है कि यह कमी हमेशा वास्तविक हो, लेकिन साहित्यिक हलकों में गीतों को मुक्त छंद की कविताओं की तुलना में कमतर आका जाता है ।

कविता को मुक्त छंद में लिखे जाने का परिणाम यह भी हुआ है कि छंदबद्ध कविता की तुलना में जटिल अनुभूतियों को प्रस्तुत करना आसान हो गया है । अपनी भावनाओं को प्रस्तुत करने के लिए कवि अपने को अधिक मुक्त महसूस करता है इसलिए वह अधिक बड़ी रचनात्मक चुनौती को स्वीकार करने की स्थिति में होता है । कवि अधिक जटिल प्रविधियों का इस्तेमाल कर सकता है । वह जानता है कि उसकी कविता को पढ़ा जाना है और पढ़े जाते वक्त पाठक कविता को या उसके अंशों को अपनी सुविधा के अनुसार दोहरा सकता है । जहाँ चाहे रुक सकता है । वह जटिल बिंबों और प्रतीकों का उपयोग कर सकता है । इसका अर्थ यह भी नहीं है कि कविता का पाठ से या गेयता से संबंध समाप्त हो गया है या पाठकों की अभिरुचि में गेयता के लिए कोई स्थान नहीं रहा है । इसके विपरीत गायन ने अपनी लोकप्रियता का विस्तार किया है । यही नहीं गायन की शास्त्रीय और लोक शैलियों के पारस्परिक आदान-प्रदान ने गायन के कई नये रूपों का सृजन किया है । बीसवीं सदी के पाँचवे-छठे दशक में हिन्दी सिनेमा ने गायन के ऐसे कई नये प्रयोग किए और उन्हें लोकप्रिय बनाया । ये प्रयोग इसीलिए मुमकिन हो सके क्योंकि सिनेमा और रेडियो ने उसे विशाल जन समुदाय तक पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण काम किया था । इन प्रयासों को सिर्फ व्यावसायिकता की नजर से देखना उचित नहीं है । फिल्म की कथावस्तु का अंग होने और व्यावसायिकता के दबाव ने फिल्म के गीतों को एक दायरे में सीमित जरूर किया था लेकिन इस दायरे में रहकर भी गीतकारों और संगीतकारों ने यथासंभव रचनात्मक उत्कर्षता को व्यक्त भी किया है । फिल्मों से जुड़ी व्यावसायिकता को ही केंद्रीय तत्त्व मान लेने के कारण हिन्दी सिनेमा के गीत-संगीत का लंबे समय तक उचित मूल्यांकन नहीं किया जा सका ।

इसी तरह सिनेमा को भी लिया जाना चाहिए । सिनेमा ने नाटक का विस्तार भी किया है और उसके सामने नयी चुनौतियाँ भी प्रस्तुत की हैं । रंगमंच पर प्रस्तुत किये जाने वाले नाटक की सबसे बड़ी सीमा उसका रंगमंच ही है जिसको एक सीमा से ज्यादा विस्तार नहीं दिया जा सकता । इसलिए आरंभ से ही नाटक में स्थान समय और क्रिया की एकान्विति को आदर्श माना जाता रहा । हांलाकि नाटककारों ने हमेशा इसको अपने लिए बंधन के रूप में स्वीकार नहीं किया । नाटक में दृश्य और अंकों का विभाजन इसीलिए जरूरी था कि इसके द्वारा कथावस्तु के अनुसार स्थान और समय में परिवर्तन को दर्शाया जा सके । लेकिन दृश्य परिवर्तन के लिए नाटक को रोका जाना और एक दृश्य और दूसरे दृश्य में समय का अंतराल देना नाटक के अनवरत अनुभव में बाधा पैदा करता था । इसी तरह कथा में स्थान की संकल्पना इतनी बड़ी नहीं की जा सकती थीं कि उसको मंच पर प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाना हास्यास्पद प्रतीत हो । जयशंकर प्रसाद के नाटक 'स्कदगुप्त' में युद्ध को मंच पर प्रस्तुत करने आदि का जो उल्लेख आता है उसे मंच की बजाय फिल्म में अधिक यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है । सिनेमा ने रंगमंच की इन भौतिक बाधाओं को तकनीक के द्वारा पूरी तरह समाप्त कर दिया । फिल्म का आस्वादन भी दर्शक रंगमंच की तरह एक 'फ्रेम' में ही ग्रहण करता है । लेकिन फिल्म का यह 'फ्रेम' एक ऐसा जादुई चौखटा है जिसके अंदर की तस्वीर निरंतर आगे-पीछे, ऊपर-नीचे और छोटी-बड़ी हो सकती है । रंगमंच और दर्शक के बीच दूरी पूरे नाटक के दौरान स्थिर रहती है । फिल्म में भी पर्दे और दर्शक के बीच की दूरी स्थिर रहती है लेकिन पर्दे पर आने-जाने वाले दृश्यों से दर्शक की दूरी स्थिर नहीं रहती । उसे फिल्मकार अपनी जरूरत के अनुसार घटाता-बढ़ाता रहता है । यह काम कैमरे के द्वारा मुमकिन होता है । इससे स्पष्ट है कि सिनेमा ने यथार्थ को अधिक विश्वसनीय और प्रामाणिक रूप में पेश करने की संभावना को बढ़ा दिया है । यही नहीं उसने उन सब चमत्कारिक और विराट कल्पनाओं को जिन्हें मनुष्य ने अपनी भाषा की शक्ति का इस्तेमाल करके शब्दबद्ध किया था, अब उन्हें सिनेमा के पर्दे पर यथार्थ रूप में प्रस्तुत करना संभव बनाया है । यही वजह है कि सिनेमा ने पौराणिक कथाओं को लोकप्रिय बनाने में अहम भूमिका निभाई है । रामायण और महाभारत पर बने धारावाहिकों की लोकप्रियता का एक कारण यह भी है जो लोगों की सामूहिक चेतना का पहले से हिस्सा बने हुए थे ।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने साहित्य की श्रेष्ठ उपलब्धियों को न सिर्फ मुद्रण की तकनीक द्वारा बल्कि रेडियो, टेलीविजन और फिल्मों के जरिए भी विशाल जनसमुदाय तक पहुँचाने का काम किया है । लेकिन इस काम का राजनीतिक पहलू यह है कि इसने उन पौराणिक कथाओं और रूढ़िबद्ध मान्यताओं को भी लोकप्रिय बनाने का काम किया है जिसके कारण जनता की पिछड़ी चेतना को न सिर्फ पिछड़ा रखा जाता है बल्कि उस पिछड़ेपन का राजनीतिक इस्तेमाल भी किया जाता है । इस बात की परीक्षा की जानी चाहिए कि बाबरी मस्जिद के विध्वंस के लिए जनसमर्थन जुटाने में रामायण सहित विभिन्न पौराणिक कथाओं पर बने धारावाहिकों ने कितनी भूमिका निभाई है ।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया विशेष रूप से दृश्य माध्यम की सबसे बड़ी शक्ति उसका आभासी यथार्थ है । सिनेमा और टेलीविजन के पर्दे पर दिखने वाले दृश्य इतने वास्तविक प्रतीत होते हैं

कि दर्शक इस बात को भूल जाता है कि जो कुछ दिखाया जा रहा है उसमें तकनीक का योगदान ज्यादा है । तकनीक ने इतना अधिक विकास किया है कि अब उसके माध्यम से कुछ भी दिखाया जाना असंभव नहीं रहा है । अतीत के डायनासोर से लेकर दूसरे ग्रहों के एलियन्स तक फिल्मों के माध्यम से पर्दे पर उतारे जा रहे हैं । लेकिन इन काल्पनिक कथाओं का एक राजनीतिक परिप्रेक्ष्य भी होता है और इस राजनीतिक परिप्रेक्ष्य का सन्दर्भ वर्तमान से जुड़ा होता है । हॉलीवुड में बनने वाली ऐसी अधिकांश फिल्में जो पूरी दुनिया में लोकप्रिय होती हैं अमरीकी साम्राज्यवाद के राजनीतिक मिशन को लोकप्रिय बनाने का काम करती हैं । ये फिल्में आमतौर पर लोकप्रिय उपन्यासों पर आधारित होती हैं । बाद में इन पर चित्रकथाएँ भी बनाई जाती हैं, दुनिया की प्रमुख भाषाओं में इन्हें डब किया जाता है और डी.वी.डी आदि के माध्यम से इनको घर-घर पहुँचा दिया जाता है । इस तरह मनोरंजन के लिए बनाई जाने वाली फिल्में एक राजनीतिक अभियान का हिस्सा भी होती हैं ।

साहित्य के परिदृश्य को इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने काफी दूर तक प्रभावित किया है । यदि इसने व्यावसायिकता के दबाव को बढ़ाया है तो यह भी सही है कि साहित्य की रचना प्रक्रिया को भी प्रभावित किया है । यह प्रभाव कई रूपों में व्यक्त हुआ है । इसे सदैव नकारात्मक रूप में ग्रहण करना उचित नहीं है । मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' कविता संभव ही नहीं हुई होती यदि वे सिनेमा के संपादन की तकनीकों का उपयोग उसमें नहीं करते । इस तकनीक ने 'अंधेरे में' कविता को महाकाव्यात्मक ऊंचाई प्रदान की है । ऐसे कई उदाहरण साहित्य में मिल सकते हैं । लेकिन इसके साथ ही यह भी सच्चाई है कि दृश्य माध्यमों ने साहित्य को नकारात्मक रूप से भी प्रभावित किया है । सुरेंद्र वर्मा के उपन्यास मुझे चाँद चाहिए' को पढ़ने से ही स्पष्ट हो जाता है कि कथाकार के दिमाग में पहले से ही उसके फिल्मातरण की बात रही है और यही वजह है कि उसने कथा को साहित्य की जरूरत के अनुसार नहीं बल्कि दृश्य माध्यम की जरूरत के अनुसार लिखा है और परिणामत: उसकी साहित्यिक मूल्यवत्ता क्षतिग्रस्त हुई है ।

10.3 जनसंचार माध्यमों के दौर में साहित्य

जनसंचार के सभी आधुनिक माध्यमों में भाषा की भूमिका का महत्त्व बहुत अधिक है। मुद्रण, ध्वनि और दृश्य किसी भी माध्यम में भाषा के प्रयोग के बिना संप्रेषण संभव नहीं है । मुद्रण में भाषा के लिखित रूप का इस्तेमाल होता है जबकि रेडियो में बोली जाने वाली भाषा का। लेकिन इसके साथ ही अन्य तरह की ध्वनियों का जिनमें संगीत भी शामिल है, इस्तेमाल किया जाता है । इसी तरह सिनेमा, टेलीविजन आदि दृश्य माध्यमों में अभिनय, चित्र आदि दृश्य रूपों का इस्तेमाल होता है लेकिन साथ ही भाषा और ध्वनि का भी । कंप्यूटर और इंटरनेट के जरिए हम सभी तरह के माध्यमों का एक ही स्थान और एक ही समय में इस्तेमाल कर सकते हैं ।

जब यह कहा जाता है कि संदेशों को संप्रेषित करने के लिए भाषा का इस्तेमाल किया जाता है तो इसका मतलब यह नहीं है कि संदेश केवल तात्कालिक महत्त्व की सूचनाओं तक ही सीमित हो सकता है । अखबार में छपा हुआ समाचार या रेडियो पर सुनाया गया समाचार भले ही तात्कालिक महत्त्व का हो लेकिन न तो अखबार में और न ही रेडियो द्वारा सिर्फ सूचनाएँ

संप्रेषित होती हैं । रेडियो पर सुनाए जाने वाले फिल्मी गीत इस तात्कालिकता 'से काफी हद तक मुक्त होते हैं । रेडियो पर हम आजकल की फिल्मों के गीत सुनते हैं, तो आज से पचास-साठ साल पहले रिकार्ड किए गए गीत भी सुनते हैं । फिल्मों के गीत भी एक तरह के संदेश हैं लेकिन इन गीतों के माध्यम से श्रोता ऐसे किसी संदेश को ग्रहण नहीं करता जिसका उसके जीवन में कोई तात्कालिक महत्त्व हो । यही बात रेडियो पर सुनाए जाने वाले नाटक पर भी लागू होती है । समाचार की तुलना में कोई वार्ता अधिक स्थायी महत्त्व की हो सकती है । इसी तरह से समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तकें, रेडियो, सिनेमा और टेलीविजन के माध्यम से प्रेषित होने वाले संदेशों का काफी बड़ा हिस्सा तात्कालिकता और भौतिक उपयोगिता के सामान्य. मापदंड से परे होता है । आज जब टेलीविजन के स्वतंत्र समाचार चैनल काफी बड़ी संख्या में हैं तो भी हम जानते हैं कि लोगों का टेलीविजन देखने के समय का बड़ा हिस्सा उन धारावाहिकों या फिल्मों को देखने में जाता है जिन्हें हम तात्कालिक संदेशों की श्रेणी में नहीं रख सकते । इसी तरह से टेलीविजन के इस युग में भी फिल्मों कें दर्शक कम नहीं हुए हैं बल्कि पहले की तुलना में कई गुना बढ़ गये हैं । चाहे लोग फिल्में सिनेमाघरों में देखें या टेलीविजन स्कीन पर।

सिनेमा और टेलीविजन दोनों दृश्य माध्यम हैं इसलिए माना जा सकता है कि दोनों का आस्वादन लगभग एक -सा है । दोनों में दृश्य और ध्वनि के संयोजन से संदेश हम तक पहुँचता है । लेकिन सिनेमा में दृश्यों के दिक् की दृष्टि से ज्यादा व्यापक रूप में निर्मित किया जा सकता है । जबकि टेलीविजन में ऐसी व्यापकता संभव नहीं है । वहाँ काल की निरंतरता में भी व्यापकता का बोध नहीं होता । फिर भी, दृश्यों में मानव संवेदनाओं को प्रभावित करने की क्षमता शब्दों के मुकाबले अधिक होती है । टेलीविजन और सिनेमा में दिखाई देने वाले दृश्य तत्काल असर पैदा करते हैं । वे यथार्थ होने का प्रभाव आसानी से पैदा कर लेते हैं । लकिन क्या इसका अर्थ यह लगाया जा सकता है कि लोगों की साहित्य के प्रति अभिरुचि इन नये जनसंचार माध्यमों के दौर में कम हो गई है? विकसित और विकासशील हर देशों का अनुभव यही बताता है कि साहित्य के प्रति लोगों की रुचि के कम होने का ऐसा कोई ठोस प्रमाण नहीं है । बल्कि इसके विपरीत यही देखा गया है कि जनसंचार माध्यमों के विकास ने एक भाषा के साहित्य को दूसरे भाषाई समाजों तक पहुँचाने में मदद की है या एक देश के साहित्य को दूसरे देशों के पाठकों तक पहुँचाने में मदद की है । यही नहीं इन नये माध्यमों ने साहित्य की रचना को रूपांतरित कर बिल्कुल भिन्न रूप में अभिव्यक्त करना भी संभव कर दिया है । हम फिल्मों और टेलीविजन धारावाहिकों के माध्यम से रामायण और महाभारत ही नहीं देखते बल्कि शेक्सपीयर के नाटक, प्रेमचंद और शरतचंद्र के उपन्यास भी देखते हैं । साहित्य की कथात्मक विधाओं का रूपांतरण तो रेडियो, टीवी और फिल्मों के माध्यम से हो ही रहा है, इसके साथ ही कविताओं को कहीं ज्यादा बड़े पैमाने पर लोगों तक पहुँचाना रेडियो की वजह से मुमकिन हो सका है । आज कबीर, मीरा, रैदास आदि के भक्ति पद, गालिब, मीर, फैज की शायरी को रेडियो के माध्यम से आसानी से लोगों तक पहुँचाया जा सका है । यही नहीं बल्कि ग्रामोफोन कंपनियों ने उनके ऑडियो कैसेट और सी.डी उपलब्ध कराकर लोगों के लिए उन्हें संग्रहणीय बना दिया है । कह सकते हैं कि जनसंचार माध्यमों ने साहित्य की उप्लब्यता को कम नहीं किया है बल्कि उन्हें पहले की तुलना में कहीं ज्यादा बढ़ाया है ।

10.4 साहित्यिक रचना और उसके विभिन्न पाठ'

साहित्य और जनसंचार माध्यमों का संबंध यहीं तक सीमित नहीं है । इसे हमें दूसरे स्तरों पर भी देखना और विचार करना होगा । इसके लिए सबसे पहले साहित्य और भाषा की शक्ति और भूमिका के बारे में भी विचार करने की जरूरत है । भाषा का प्रयोग हम अपने जीवन में संदेशों के आदान-प्रदान के लिए इतना अधिक करते हैं कि भाषा की उपयोगिता और शक्ति के बारे में अलग से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है । इसके बावजूद उसी भाषा का उपयोग जब साहित्य के लिए किया जाता है तो हम भाषा के इस उपयोग को सृजनात्मक कहकर उसे रोजमर्रा के उपयोग से अलगाते हैं । यहाँ यह प्रश्न उठता है कि साहित्य क्या सिर्फ भाषा के सर्जनात्मक उपयोग के लिए ही होता है? साहित्य भाषा की उन सारी क्षमताओं का इस्तेमाल करता है जिनसे कि व्यक्त संदेश अपने सर्वोत्तम रूप में अभिव्यक्त हो सके । सर्वोत्तम अभिव्यक्ति से तात्पर्य संदेश के ऐसे सौदर्यबोधीय संप्रेषण से है जो पाठक को विशेष तरह के अनुभव से गुजरने का अवसर प्रदान करता है । यह अनुभव इस रूप में रोजमर्रा के जीवन से अलग होता है कि इससे मनुष्य की भाव चेतना और विचार चेतना का विस्तार होता है । सच्चा साहित्य मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाने के प्रयत्न में भागीदार बनता है । संदेश की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति के अर्थ में ही भाषा की सर्जनात्मक क्षमता का भान होता है । ऐसा नहीं है कि साहित्य में भाषा उन नियमों का उल्लंघन करती है जिनका उस भाषाई समूह के लोग अपने रोजमर्रा के जीवन में इस्तेमाल करते हैं । लेकिन इसके बावजूद साहित्य में भाषा अपने को कुछ इस ढंग से व्यक्त करती है कि वह दैनंदिन जीवन के प्रयोग से बिल्कुल अलग नजर आने लगती है । यह अलग नजर आना सिर्फ शब्दों या वाक्यों तक सीमित नहीं होता बल्कि रचना की पूरी संरचना में निहित होता है ।

साहित्य का साहित्यपन उसमें निहित संदेश से न तो अलग होता है और न अलग किया जा सकता है । वह उस संदर्भ से भी अलग नहीं हो सकता है जो साहित्य के आस्वादन के दौरान पाठक के मानस में उभरने लगता है । यह जरूरी नहीं कि यह सन्दर्भ ठीक वही हो जो रचनाकार के मन में रचना के दौरान रहा होगा । फिर भी, हर पाठक जब रचना का आस्वादन कर रहा होता है तो एक सन्दर्भ भी साथ-ही-साथ उभरने लगता है । यह सन्दर्भ उस रचना के विशिष्ट अर्थ को तय करता है । एक ही रचना पाठक की चेतना में उत्पन्न हुए सन्दर्भ की भिन्नता के कारण अलग-अलग पाठक के लिए अलग-अलग अर्थ को ध्वनित करती है । आस्वादन की इस प्रक्रिया में रचना के कई 'पाठ' बनने लगते हैं । रचना और पाठक के बीच की (काल और दृष्टि के सन्दर्भ में) दूरी 'पाठ' की भिन्नता को तय करती है । मसलन, हम यह नहीं जानते कि. कालिदास या शेक्सपीयर ने ठीक-ठीक किस सन्दर्भ में साहित्य की रचना की होगी । इन रचनाकारों के बारे में हमारी अधिकतम जानकारी भी हमें यकीन के साथ नहीं बतला सकती कि रचना ठीक इसी सन्दर्भ में लिखी गई थी । अतीत की हमारी समझ हमारे वर्तमान के कारकों पर पूरी तरह निर्भर रहती है इसलिए अतीत को जानने के हमारे सारे दावे अंततः वर्तमान सापेक्ष ही हो सकते हैं, वर्तमान निरपेक्ष नहीं । यह बात काफी हद तक

समकालीन रचनाधर्मिता पर भी लागू होती है । समकालीन लेखक की रचना को भी जरूरी नहीं कि पाठक उसी सन्दर्भ में पड़े जिस सन्दर्भ में रचनाकार ने उसे रचा है ।

10.5 साहित्य संरचना के अन्य कला सन्दर्भ

रचना का आस्वादन पाठक में रचना के जिस सन्दर्भ को पैदा करता है वह रचना की व्याख्या को यानी कि उसके पाठ को भी तय करता जाता है । रचना का सन्दर्भ रचना से प्रेरित होकर भी रचना पर पूरी तरह निर्भर नहीं होता लेकिन रचना का अर्थ उस सन्दर्भ और रचना के मूल पाठ पर ही निर्भर होता है । साहित्य भाषा के माध्यम से अपने को व्यक्त करता है इसलिए इस पूरी प्रक्रिया में भाषा की भूमिका आधारभूत होती है । हम सन्दर्भ और अर्थ तक भाषा के माध्यम से ही जाते हैं । यहाँ जैसा कि पहले कहा जा चुका है भाषा सिर्फ शब्दों और वाक्यों तक ही सीमित नहीं होती बल्कि शब्दों और वाक्यों के उस पूरे संयोजन पर निर्भर करती है जो रचना की बुनावट को तय करता है । इस बुनावट में वे खामोश अंतराल भी शामिल होते हैं जो शब्दों, पदों और वाक्यों के बीच मौजूद होते हैं और जिनकी उपस्थिति अत्यंत महत्वपूर्ण होती है । इन अंतरालों को हम कविताओं में ही नहीं कहानियों, नाटकों और उपन्यासों तक में देख सकते हैं । दरअसल, साहित्य में भाषा उन बुनावटों का भी इस्तेमाल करती है जिसका संबंध भाषा से इतर कला-माध्यमों से होता है । कहानी और उपन्यास लिखते हुए लेखक सिला स्थितियों और घटनाओं का वर्णन ही नहीं करता बल्कि उनका शब्दों के माध्यम से फोटो भी निर्मित करता है । साहित्य रचना में भी लेखक भाषा के माध्यम से ऐसे उपकरणों का प्रयोग करता है जो दरअसल दूसरे माध्यमों की विशेषता कहे जा सकते हैं । प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' जब लिखी गयी थी तब सिनेमा एक माध्यम के रूप में सामने आ चुका था लेकिन यह कहानी सिनेमा माध्यम की विशिष्टताओं से प्रेरित होकर लिखी गई होगी यह मानने का कोई कारण नहीं है । 1930 के दशक में सिनेमा अभी भारत में बहुत आरंभिक अवस्था में था । 'शतरंज के खिलाड़ी की अंतिम पंक्तियों में प्रेमचंद ने जो चित्रविधान प्रस्तुत किया है, वह सिनेमा की भाषा के अधिक नजदीक है । कहानियों और उपन्यासों में इस तरह के वर्णन सिर्फ यह साबित करते हैं कि स्वयं साहित्य रचना में दूसरे माध्यमों की विशिष्टता के बीज छिपे होते हैं । लेकिन उनकी प्रकृति ठीक वही नहीं होती जो नये माध्यमों में व्यक्त होती है । इसलिए साहित्य और बाद में विकसित होने वाले माध्यमों की विशिष्टताओं के बीच एक स्वाभाविक अंत:संबंध आसानी से पहचाना जा सकता है, लेकिन दोनों को एक समझना उपयुका नहीं है ।

यह बात सिर्फ साहित्य और फिल्म के सन्दर्भ ही सत्य नहीं है रेडियो और साहित्य के सन्दर्भ में भी सत्य है । रेडियो जो पूरी तरह से आवाज का माध्यम है, साहित्य के अधिक नजदीक होने का आभास दे सकता है । मसलन, जिस कविता और कहानी को हम पढ़ रहे हैं उसे हम रेडियो पर सुन भी सकते हैं । क्या सुनने और पढ्ने की प्रक्रिया में इतना अंतर होता है कि उनका आस्वादन एक दूसरे से बिल्कुल अलग तरह का हो? क्या कविता को पढ़ना और उसे रेडियो पर सुनना दो अलग-अलग तरह के अनुभव हैं? यदि ऐसा है तो क्या इससे उनका 'पाठ' भी अलग हो जाता है? या यह सिर्फ अनुभव का तीव्रता का ही फर्क है? कौन-सी रचना पढ्ने से अधिक अर्थवान बनती है और कौन सी सुनने से इसका निर्णय काफी हद तक रचना

की प्रक्रिया में निहित होता है । गीत इसीलिए गेय होते हैं कि वे लिखे ही गाने के लिए गये हैं। इसलिए उनका सही मूल्यांकन उनको गीत रूप में गाए जाने और सुने जाने के द्वारा ही हो सकता है । इसी प्रकार जो नाटक मूल रूप में रेडियो के लिए लिखा गया है उसे मंच पर या फिल्म के रूप में ठीक उसी रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता । यही बात इसके उलटे रूप पर भी लागू होती है । यानी जो नाटक मंच के लिए लिखा गया है उसे रेडियो पर ठीक उसी रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता । यदि प्रस्तुत किया भी जाएगा तो अभिव्यक्ति की प्रक्रिया पूरी नहीं होगी । उसमें कुछ-न-कुछ अधूरेपन का एहसास जरूर होगा ।

कहानी के दृश्यात्मक रूपांतरण से कम कठिन नहीं है रेडियो रूपांतरण । अगर कहानी को रेडियो पर सिर्फ पढ़ा जाना है तो समस्या सिर्फ अच्छे ढंग से वाचन की है । ही, यहाँ सिर्फ अच्छा वाचक कहानी को पढ़ते हुए स्वरों के उतार-चढ़ाव और गति को कम-ज्यादा करते हुए कहानी को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत कर सकता है । इस तरह के वाचन के साथ भी समस्याएँ जुड़ी होती है । मसलन, वाचन की पूरी प्रक्रिया को रचना के संप्रेषण के अधिकतम अनुकूल होना जरूरी है । खराब वाचन रचना के संप्रेषण के बलाबल को बदल सकता है । उसमें अपनी तरफ से नाटकीयता थोप सकता है या ऐसी लयात्मकता जो रचना की नैसर्गिक लय के विपरीत हो । इस तरह, वह उसके अर्थ-गांभीर्य को क्षति पहुँचा सकता है । इसलिए वाचन भी एक चुनौतीपूर्ण. काम है । लेकिन यदि कहानी का रेडियो के लिए नाट्य रूपांतरण किया जाना है तो ऐसा किया जाना और भी मुश्किल काम होगा ।

जब हम किसी रचना को पढ़ते हैं तो हमारे सामने सिर्फ शब्द उपस्थित होते हैं । ये शब्द किसी-न-किसी वस्तु, भाव, स्थिति या विचार के प्रतीक होते हैं । पढ़ते हुए हम इन शब्दों में निहित संकेतों को समझते हुए अर्थ ग्रहण करते चलते हैं । लेकिन जब हम रेडियो पर कोई गीत सुनते हैं या सिनेमाघर में कोई फिल्म देख रहे होते हैं तो अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया भिन्न तरह की होती है । रेडियो पर गीत सुनते हुए हमारे कानों में शब्द ही नहीं पड़ते ध्वनियाँ भी पड़ती हैं जो शब्दों से भिन्न होती हैं और इन ध्वनियों के साथ जुड़कर ये शब्द ठीक वही अर्थ नहीं देते जो पढ़ते हुए देते हैं । या यह कहना चाहिए कि यहाँ शब्द और ध्वनियाँ मिलकर रचना के अर्थ को तय करती है । ये ध्वनियाँ संगीत के रूप में हो सकती हैं, शोर के रूप में हो सकती हैं और मौन के रूप में भी । यानी कि ध्वनियों की अनुपस्थिति भी शब्दों के अर्थ को तय करने में भूमिका निभाती हैं । इसी तरह जब फिल्म देखते हैं तो दृश्य भी शब्दों और ध्वनियों के साथ जुड़कर ही फिल्म का अर्थ तय करते हैं । इस प्रकार प्रत्येक माध्यम की अपनी अलग भाषा होती है और एक माध्यम की भाषा से दूसरे माध्यम की भाषा में रूपांतरण उसी भाषा के व्याकरण की शती पर ही हो सकता है । एक भाषा के व्याकरण को दूसरी भाषा पर थोपकर इस काम को सफलतापूर्वक संपन्न नहीं किया जा सकता । लेकिन हमें यह जरूर ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक माध्यम की भाषा में कुछ लक्षण ऐसे जरूर होते हैं जो दूसरे माध्यमों से मेल खाते हैं । इसी तरह साहित्य में रेडियो की तरह ध्वनियों का प्रयोग किया जा सकता है । निराला, पंत की कविताओं में हम ध्वनियों के !इस सौंदर्य को देख सकते है ।

इससे एक बात और साफ होती है कि प्रत्येक माध्यम दूसरे माध्यम के लक्षणों को अपनी भाषा में व्यक्त करने की कोशिश करता है । उसका ऐसा करना उस माध्यम की

अभिव्यक्ति क्षमता को बढ़ाता है । इसी में उसकी रचनात्मक क्षमता निहित होती है । लेकिन जिस माध्यम में वह लक्षण उसकी स्वाभाविक पहचान् है_ वहाँ उस लक्षण की यथावत अभिव्यक्ति में उसकी गुणवत्ता और सर्जनात्मकता नहीं निहित होती । मसलन, चित्र-विधाक्त-साहित्य में तो गुण हो सकता है लेकिन सिनेमा में सामान्य अर्थ में नहीं । इसी तरह ध्वनि-बिम्ब साहित्य का युग हो सकता है लेकिन रेडियो का नहीं । तब प्रश्न यह पैदा होता है कि प्रत्येक माध्यम क्या अपनी रचनात्मकता को अपनी स्वभावगत विशेषताओं का अतिकमण करके ही प्राप्त करता है या स्वभावगत विशेषताओं में भी रचनात्मकता की क्षमताएँ निहित होती है? दरअसल, ये दोनों बातें सही है । प्रथमत: तो प्रत्येक माध्यम को अपनी सर्जनात्मकता अपनी भाषा के आधारभूत गुणों में ही खोजनी होती है । उसी में उसे नये -नये रास्ते तलाश करने होते हैं । ऐसा करते हुए ही वह दूसरे माध्यमों की विशेषताओं को भी अपनी भाषा के माध्यम से कह सकने की क्षमता हासिल कर लेता है । यहाँ हम सिनेमा का उदाहरण ले सकते हैं । सिनेमा दृश्यों के द्वारा ही अपने को व्यक्त करता है । लेकिन कैमरे से लिया गया प्रत्येक दृश्य कलात्मक क्षमता नहीं हासिल कर लेता । इसके लिए फिल्मकार को दृश्यों के फिल्मांकन और संयोजन की ऐसी प्रविधि विकसित करनी होती है जो सामान्य किस्म के फिल्मांकन से उसके काम को अलग कर सके । यह बिल्कुल वैसा ही है, जैसे साहित्य में भी हम शब्दों और वाक्यों का प्रयोग करते हैं लेकिन साहित्य में यह प्रयोग सामान्य प्रयोग से अलग होता है । साहित्य में भाषा का यह प्रयोग उसके व्याकरण के मूल नियमों का उल्लंघन करके या अतिक्रमण करके नहीं किया जाता बल्कि उसमें नयी संभावनाएँ तलाश करके किया जाता है । कह सकते हैं कि साहित्य और दूसरे सभी माध्यमों में रचनात्मक अभिव्यक्ति के प्रयत्न मूल रूप में एक होते हैं लेकिन भाषा की भिन्नता रचनाकार में अलग-अलग तरह की क्षमताओं की मांग करती हैं ।

10.6 आख्यान और जनसंचार माध्यम

यहाँ कुछ ऐसे पहलुओं को रेखांकित कर लेना चाहिए जो साहित्य और जनसंचार माध्यमों के अंतसंबंधों को किसी न किसी रूप में निर्धारित और प्रभावित करते हैं । साहित्य और दृश्य माध्यमों का संबंध जोड़ने वाला तत्त्व आख्यान या नेरेशन है । यही तत्त्व साहित्य और फिल्म को जीवन से भी जोड़ता है । फर्क यह है कि मनुष्य का जीवन वृतांत रैखिक रूप में होता है । मनुष्य जन्म लेता है, बचपन की दहलीज पार कर किशोर और फिर युवा और अन्त में वृद्ध होकर मर जाता है । यहाँ समय की एक रैखिक गति है जिसका उल्लंघन संभव नहीं है । मनुष्य इसी जन्म और मृत्यु की लंबी और सीधी रेखा के बीच जो जीवन जीता है वही उसके जीवन की कथा है । लेकिन किसी कहानी या उपन्यास में या फिल्म में मनुष्य की यह कथा ठीक इसी रूप में नहीं वर्णित होती । यहाँ मनुष्य की कथा उसकी मृत्यु से, उसकी जवानी से या उसके बुढ़ापे से भी शुरू हो सकती है और बाद में कहानी आगे-पीछे गतिमान होकर आगे बढ़ सकती है । आख्यान की इस विशेषता को 'दोहरी काल संरचना' नाम दिया गया है । इस संरचना का इस्तेमाल साहित्य और सिनेमा दोनों में देखा जा सकता है । काल की गति में जो निरंतरता होती है जीवन उसके साथ बहता चला जाता है । लेकिन यह बहना पूरी तरह काल के हाथ में नहीं होता । काल के साथ हमारे जीवन के क्षण बीतते हैं । लेकिन यह

कैसे बीतेंगे यह जीवन जीने वाले के हाथ में और उन स्थितियों के वश में होते हैं जिससे जीवन की कहानी बनती है । यह दो स्तरों पर द्वंद की सृष्टि करता है । एक व्यक्ति और स्थिति इस स्थिति में समाज और इसके विभिन्न रूप भी शामिल हैं के बीच और दूसरा व्यक्ति और काल के बीच । मनुष्य जीवन के सन्दर्भ में काल पर व्यक्ति का नियंत्रण नहीं होता और स्थितियों को व्यक्ति अकेले या समूह में प्रभावित और परिवर्तित करने का प्रयत्न करता है । लेकिन साहित्य और सिनेमा में काल की निरंतरता नहीं बल्कि जिया हुआ जीवन महत्त्वपूर्ण होता है और उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण होता है वह द्वंद्व जो व्यक्ति, स्थिति और काल के बीच घटता चलता है । जीवन के इन द्वंद्वों को ही साहित्य और सिनेमा में लेखक और फिल्मकार रूपांतरित करने का प्रयत्न करता है । जीवन से इनका फर्क यह है कि यहाँ काल की सृष्टि करना भी उसके हाथ में होता है । रचनाकार जीवन काल ऐतिहासिक काल को कथा-काल में परिवर्तित कर देता है । वह अतीत, वर्तमान और भविष्य की संकल्पना को आख्यान की जरूरत के अनुसार बदल सकता है । इस प्रकार फिल्मकार और साहित्यकार काल का भी नियंता हो जाता है । साहित्य और फिल्म के यथार्थ के साथ संबंधों को समझने के लिए नेरेशन की इस विशेष प्रकृति को समझना जरूरी है । इसमें नेरेशन की प्रस्तुति की अनंत सर्जनात्मक संभावनाएँ छिपी होती है । स्पष्ट ही नेरेशन की प्रस्तुति की इस मूलभूत एकता के बावजूद प्रत्येक कला माध्यम अपनी विशिष्ट भाषा और संरचना के अनुसार ही आख्यान की रचना करता है और प्रत्येक माध्यम परस्पर संबंधों को तय भी करता है । आगे साहित्य और फिल्मों के अंत:संबंधों को समझते हुए इस बात को ध्यान में रखना जरूरी है ।

10.7 साहित्य के रूपान्तरण की समस्याएँ

साहित्य और जनसंचार माध्यमों के अत: संबंधों को लेकर कई दूसरे तरह के सवाल भी पैदा होते हैं । लेखक जनसंचार माध्यमों को किस रूप में ग्रहण करता है? क्या वह नये माध्यमों को साहित्य के लिए खतरे के रूप में देखता है या उन्हें साहित्य की तरह अन्य कलारूप समझता है? किसी साहित्यिक रचना के अन्य माध्यम में रूपान्तरण में मूल रचना का किस हद तक अनुकरण किया जाना चाहिए? साहित्यिक रचना पर आधारित फिल्म, धारावाहिक या रेडियो नाटक उसकी पुनर्रचना है, या रूपान्तरण या आलोचनात्मक प्रस्तुति? किसी महान रचना पर आधारित फिल्म का महत्त्व और मूल्य क्या है? क्या रचना की महानता फिल्म को भी महान बना देगी? 'गोदान' पर बनी फिल्म 'गोदान' जैसी श्रेष्ठ रचना क्यों नहीं बन पाई? यदि ऐसा संभव नहीं है तो क्या महान समझी जाने वाली कृतियों पर फिल्म बनाया जाना उचित है? क्या फिल्म को रचना का विकल्प माना जा सकता है?

यहाँ हम फिल्म के सन्दर्भ में इस पर विचार करेंगे । इससे आपको अन्य माध्यमों में साहित्यिक रचना के रूपांतरण और स्वयं उस माध्यम में साहित्यिक रचनात्मकता की जरूरत को समझने में मदद मिलेगी । किसी भी फिल्म की रचना के लिए कहानी और पटकथा लेखन अनिवार्य है । पटकथा लिखने के लिए किसी साहित्यकार की आवश्यकता हो यह अनिवार्य नहीं है, लेकिन यह कार्य जो भी करेगा चाहे वह निर्देशक ही क्यों न हो, वह साहित्य की परिधि में ही काम कर रहा होगा । यानी कि कोई भी फिल्म जिसे अभी बनना है, बनने से पहले उसे

कागज पर शब्दों के रूप में निर्मित होना होता है । यह शाब्दिक कल्पना ही बाद में दृश्य कल्पना के रूप में सामने आती है । जाहिर है शब्दशः नहीं । लेकिन आधार शाब्दिक कल्पना ही बनती है । कलात्मक दृष्टि से जो फिल्म जितनी ही उत्कृष्ट होगी उसकी पटकथा भी उतनी ही श्रेष्ठ होगी । लेकिन पटकथा की उत्कृष्टता इस बात पर निर्भर करेगी कि वह किस तरह की मूल कथा पर आधारित है । अगर मूल कथा ही कमजोर है तो बेहतर पटकथा का लेखन संभव नहीं है ।

मूल कथा के कमजोर होने को भी सही परिप्रेक्ष्य में समझने की जरूरत है । कई बार कहानी में निहित विचार और कथानक प्रासंगिक और प्रभावशाली होता है लेकिन स्वयं रचना उतनी श्रेष्ठ नहीं होती । 'पाथेर पाँचाली और 'तमस' के मामले में हम यही देखते हैं । यही उपन्यास की दृष्टि से दोनों रचनाओं को साधारण से कुछ बेहतर कहा जा सकता है क्योंकि इनमें वर्णनात्मकता पर अधिक बल है । 'पाथेर पाँचाली उपन्यास में छोटे-छोटे विवरण बहुत अधिक हैं जिनका सत्यजित राय ने अपनी फिल्म में सर्जनात्मक इस्तेमाल किया है । जो कहानी या उपन्यास वर्णन पर या सामान्य किस्म के चित्र-विधान पर अधिक निर्भर होता है वह साहित्यिक दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट रचना नहीं मानी जा सकती । लेकिन उनमें निहित विचार और उनका कथानक रचनाओं की तुलना में ज्यादा उत्कृष्ट हो सकता है । ऐसे में उनसे प्रेरित होकर फिल्मकार मूल रचनाऔं से बेहतर फिल्मों का निर्माण कर सकता है ।

साहित्यिक दृष्टि से जो रचना जितनी चुनौतीपूर्ण होगी उसका फिल्मांतरण उतना ही कठिन होगा । देखा यही गया है कि अच्छी रचनाओं पर बहुत कमजोर फिल्में बनी है । 'गोदान' पर बनी फिल्म इसका उदाहरण है । इसी तरह यह भी सही है कि कई बार बेहतर पटकथा के बावजूद फिल्म कमजोर बन जाती है क्योंकि कथा, पटकथा और फिल्म इन तीनों में से कोई भी अन्य का विकल्प नहीं है । इन तीनों की अपनी स्वायत्तता है और इनकी रचना में भिन्न-भिन्न तरह के रचनात्मक कौशलों की जरूरत होती है । यह जरूरी नहीं कि जो अच्छी कहानी या उपन्यास लिख सकता हो, वह अच्छी पटकथा भी लिख सकता है और न ही यह जरूरी है कि अच्छी पटकथा लिखने वाला अच्छी कहानी लिख सकता है या अच्छी फिल्म भी बना सकता है । कहानी और उपन्यास अपने में संपूर्ण रचना है जब कि पटकथा असंपूर्ण । यह फिल्म का लिखित प्रारूप है । और कोई भी प्रारूप रचना का दर्जा नहीं हासिल कर सकता । शायद यही कारण है कि पटकथाकार को साहित्य की दुनिया में रचनाकार का दर्जा नहीं मिलता और फिल्मी दुनिया में उसके काम को निर्देशक और अभिनेताओं से कम महत्त्व का समझा जाता है ।

इसके बावजूद सत्य यही है कि पटकथा के लिए भी उन सभी रचनात्मक विशेषताओं की जरूरत होती है जो कला रचना के लिए जरूरी है और पटकथा के लिए भी उन्हीं द्वंद्वों से गुजरना होता है जिनसे कि कथाकार और फिल्मकार गुजरता है । मसलन, रचना की सोद्देश्यता का सवाल यहाँ भी पैदा होता है । फिल्म किसलिए या कहानी किसलिए । इसी तरह दूसरे की कहानी पर और दूसरे की फिल्म पर पटकथा लिखने वाले के सामने भी क्या यह सवाल नहीं उत्पन्न नहीं होता कि वह किस मकसद के लिए लिख रहा है । यदि वह सिर्फ अर्थ प्राप्ति के लिए लिख रहा है तो क्या वह किसी भी तरह की कहानी या फिल्म के लिए पटकथा लिखने के

लिए तैयार हो जाएगा? वह पटकथा के माध्यम से जीवन का यथार्थ प्रस्तुत करना चाहता है या उससे पलायन? यानी उसकी रचना पलायनवादी है या यथार्थवादी? वह इन प्रश्नों से भाग नहीं सकता । इनसे जूझते हुए भी पटकथाकार का काम मौलिक केवल इसलिए नहीं माना जाता क्योंकि वह किसी अन्य रचना का प्रारूप है । वह तब भी प्रारूप है जब मूलकथा या कथा का विचार भी उसका अपना हो । तब इसका अर्थ यह भी है कि मूलकथा जो साहित्यिक रचना के रूप में चाहे जितनी महान क्यों न हो, फिल्म के लिए वह भी प्रारूप ही है । इसलिए फिल्म और मूल रचना की परस्पर तुलना करने का कोई औचित्य नहीं है ।

जब पटकथा लेखक किसी साहित्यिक रचना को पटकथा में रूपांतरित कर रहा होता है तो वह अपने में सम्पूर्ण रचना को पुन: कच्चे माल में बदलता है । लेकिन यह बदलना अनुवाद की तरह नहीं होता । अनुवाद में एक लिखित भाषा दूसरी लिखित भाषा में रूपांतरित होती है यद्यपि माध्यम वही रहता है । लेकिन कहानी को फिल्म में बदलने के लिए पटकथा का लिखा जाना ऐसा रूपांतरण नहीं है । यहाँ माध्यम बदल जाता है । सबसे पहला प्रश्न तो यही उपस्थित होता है कि फिल्म बनाने के लिए उस रचना को क्यों चुना गया? क्या उसमें फिल्म में रूपांतरित होने की संभावना निहित है या सभी रचनाएँ फिल्म के रूप में बदली जा सकती है? सात सौ से अधिक पृष्ठों वाले उपन्यास 'अपराध और दंड' पर दो-ढाई घण्टे की फिल्म का निर्माण किया गया और आठ-दस पृष्ठों वाली कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' पर भी लगभग उतनी ही अवधि की फिल्म बना दी गई । इनमें से कौन-सी फिल्म ने अपनी मूल रचना के साथ न्याय किया? शरतचंद्र के उपन्यास 'देवदास' पर बंगला और हिन्दी दोनों में एक से अधिक बार फिल्में बनाई जा चुकी है और अब फिर हिन्दी में ही संजय लीला भंसाली एक और फिल्म 'देवदास' बना चुके हैं । क्या यह उपन्यास फिल्म रचना के लिए इतना अनुकूल है कि हर कोई उसे रूपांतरित करना चाहता है? यह अनुकूलता किसमें है उपन्यास की कथा में, कथानक में या उसके विचार में? रूपांतरण करते हुए फिल्मकार मूलरचना में से किस चीज को अक्षुण्ण रखता है कथानक को या उसमें निहित विचार को? एक ही रचना 'देवदास' पर आधारित होकर भी क्या ये सभी फिल्में एक दूसरे से भिन्न हैं या एक-सी? यदि वे एक-सी हैं तो फिर दोहराव किसलिए और भिन्न है तो यह भिन्नता रचना से आ रही है या फिल्मकार द्वारा आरोपित है? प्रश्न यह भी है कि एक अत्यंत लोकप्रिय रचना जिसे उपन्यास के रूप में भी काफी पढ़ा गया है, उसके फिल्मांतरण को दर्शक क्यों देखना चाहते है? एक उपन्यास जिसे पहले भी कई बार फिल्माया जा चुका है उसे फिर बनाने की इच्छा फिल्मकारों में क्यों जगती है? क्या यह इच्छा वैसी ही है जैसी कि रामकथा पर बारबार काव्यों की रचना होना? क्या यह एक तरह की रचनात्मक चुनौती है?

फिल्मकार भी कलाकार होता है । यदि वह पैसा बनाने और सस्ते मनोरंजन के लिए फिल्म नहीं बना रहा है तो अपनी फिल्म के लिए वह एक चुनौतीपूर्ण कहानी की तलाश में रहता है । ऐसी कहानी जिसके जरिए वह अपनी बात कह सके । यह कहानी उसकी अपनी हो सकती है और किसी अन्य की । यदि वह किसी अन्य की कहानी लेता है तो वह सिर्फ उसका रूपांतरण नहीं करता बल्कि रचना के उस 'पाठ' को वह फिल्म के रूप में प्रस्तुत करता है जिसे

कि उसने 'पढ़ा' है या जिस अर्थ में उसने ग्रहण किया है । कई बार वह ग्रहण तो उसी रूप में करता है जो लेखक कहना चाहता है, लेकिन फिल्मांतरण करते हुए अपनी व्याख्या आरोपित करने से वह अपने को रोक नहीं पाता । 'शतरंज के खिलाड़ी' और 'कफन' पर आधारित फिल्मों को देखते हुए बराबर यह एहसास होता है कि इन दोनों कहानियों के फिल्मांतरण में जो परिवर्तन किये गये वे सचेत परिवर्तन थे । इनमें कहानियों का फिल्मकारों का अपना 'पाठ' नहीं था बल्कि यह उनकी अपनी 'व्याख्या' थी । यह व्याख्या फिल्मकारों के समय और समझ से पैदा हुई थी । रचना के आस्वादन की जिस प्रक्रिया का उल्लेख हमने आरंभ में किया है उससे आप इस बात को समझ सकते हैं ।

उपर्युक्त उदाहरण से यह बात साफ हो जाती है कि साहित्य का फिल्मातरण एक जटिल प्रक्रिया है । इसमें रचना के मूल रूप से किस हद तक फिल्मकार स्वतंत्रता चाहता है यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि उसने उसे किस रूप में ग्रहण किया है, वह उसके माध्यम से क्या संप्रेषित करना चाहता है, जीवन और कला के प्रति उसकी अपनी दृष्टि क्या है और एक फिल्मकार के रूप में साहित्यिक रचना को फिल्म में रूपांतरित करने की क्षमता कितनी है ।

विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय और रवींद्रनाथ ठाकुर की रचनाओं को फिल्मों के लिए पसंद करने वाले सत्यजित राय जब हिन्दी फिल्मों के निर्माण से जुड़े तो उन्होंने प्रेमचंद को चुना । 'शतरंज के खिलाडी' वह कहानी है जिसे सत्यजित राय ने अपनी पहली हिन्दी फिल्म के लिए स्वीकार की । यह कहानी 1857 से पहले के अवध के बारे में है । इतिहास से इसका संबंध इतना ही है कि यह उस ऐतिहासिक घटना से प्रेरित है जब नवाब वाजिदअली शाह को अपदस्थ करने के लिए अंग्रेजों की सेना लखनऊ में प्रवेश करती है और बिना किसी प्रतिरोध के वह लखनऊ पर कब्जा कर लेती है । प्रेमचंद दो काल्पनिक चरित्रों मीर और मिर्जा के माध्यम से उस समय के लखनऊ का चित्र प्रस्तुत करते हैं । लेकिन कहानी मीर और मिर्जा के शतरंज खेलने के ही इर्दगिर्द चलती है और उनके साथ ही खत्म भी हो जाती है । लखनऊ पर अंग्रेजों के काबिज होने को सिर्फ पृष्ठभूमि में सांकेतिक रूप में पेश किया गया है । प्रेमचंद इस कहानी के माध्यम से उस सामंतवाद की ऐतिहासिक पराजय को दर्शा रहे थे जिसमें बदलते समय के आगे अपनी रक्षा करने की कुव्वत भी नहीं रह गई थी । लखनऊ पर अंग्रेजों का कब्जा हो जाना और मीर और मिर्जा का शतरंज के लिए आपस में लड़ते हुए मर जाना इसी बात का द्योतक था । लेकिन जब सत्यजित राय ने इस कहानी पर फिल्म बनाई तो उनके सामने अपने समय के शासक वर्ग का चेहरा भी था । वे एक तरफ भारत को पराधीन करने की अंग्रेजों की कोशिशों को भी दिखाना चाहते थे तो दूसरी ओर सामंतवाद के अवशेष को भी जो मरकर भी जिंदा था और मौजूदा शासक वर्ग का हिस्सा बना हुआ था । यह वह हकीकत थी जो प्रेमचंद के सामने नहीं आ सकी थी । फिल्म में कहानी के 'अंत' में किया गया परिवर्तन सिर्फ उस वर्तमान से ही प्रेरित नहीं था जिसे सत्यजित राय देख रहे थे बल्कि इसने उस अतीत को देखने की दृष्टि भी बदल दी थी जो भिन्न रूप में कहानी में मौजूद है । यही कारण है कि सत्यजित राय फिल्म में विस्तार से उस राजनीतिक शतरंज को भी पेश करते हैं जो अंग्रेजों और वाजिदअली शाह के बीच खेली जा रही थी । एक छोटी-सी कहानी में इतने भारी परिवर्तन के बाद क्या इस

फिल्म को प्रेमचंद की रचना पर आधारित कहना उचित है? इस सवाल का जवाब इस बात में निहित है कि जब हम प्रेमचंद की कहानी को सत्यजित राय की फिल्म के रूप में देखते हैं तो एक तरह से उस कहानी के एक नये पाठ से गुजर रहे होते हैं । यह नया पाठ उस पुराने पाठ के बिना संभव नहीं था । लेकिन यह उससे विचलन भी नहीं है बल्कि समय के अंतराल से पैदा हुई नयी रचना है । मूल रचना से दूर जाकर भी इस फिल्म में वह मूल रचना अक्षुण्ण रूप में मौजूद है और इस नयी रचना के महत्त्व को हम तभी समझ पाते हैं जब हमारी चेतना में मूल रचना मौजूद रहती है ।

10.8 साहित्य और जनसंचार माध्यम: अलग-अलग चुनौतियाँ

साहित्य और जनसंचार माध्यमों में कई समानताएँ होते हुए भी कई भिन्नताएँ भी हैं । एक कलाकार का रचनात्मक संघर्ष दोनों माध्यमों में समान होते हुए भी माध्यम की भिन्नता उन्हें अलग तरह के रचनात्मक कौशल की मांग करता है । कहानी और उपन्यास की रचना लेखक अकेले करता है और उसका माध्यम सिर्फ भाषा होती है लेकिन रेडियो, टेलीविजन, फिल्म इस दृष्टि से कुछ हद तक सामूहिक कला माध्यम हैं । फिल्म और टेलीविजन निर्देशक के माध्यम माने जाकर भी पूरी तरह से उसके कौशल और उसकी प्रतिभा पर निर्भर नहीं करते । उन्हें धारावाहिक या फिल्म बनाने के लिए पटकथाकार, अभिनेता, कैमरामेन संगीतकार, साउंड रिकार्डिस्ट आदि की मदद की जरूरत पड़ती है । यदि वे निर्देशक की कल्पना को साकार करने में अक्षम रहते हैं तो निर्देशक की इच्छा के बावजूद भी फिल्म या धारावाहिक वैसा नहीं बन सकता जैसा वह चाहता है ।

दूसरा बड़ा फर्क यह है कि साहित्य की तुलना में दृश्य माध्यम महँगे माध्यम हैं । एक फीचर फिल्म बनाना एक कहानी या उपन्यास लिखने की तरह आसान नहीं है । फिल्मकार को फिल्म बनाने के लिए जरूरी यंत्रों, कच्चे माल, कलाकार और तकनीशियन की जरूरत पड़ती है । इन सबसे काम लेने के लिए उसे भुगतान करना होता है । यह भुगतान लाखों से करोड़ों रुपये के बीच हो सकता है । इसी तरह टेलीविजन के लिए आधे घण्टे की फिल्म बनाने में भी कई लाख रुपये खर्च होते हैं । ऐसे में फिल्म बनाते हुए निर्देशक उतना आजाद नहीं होता जितना कि लेखक होता है । फिल्मकार की यह मजबूरी उसके काम को गहरे रूप में प्रभावित करती है और एक हद तक उसकी अभिव्यक्ति की आजादी में बाधक बन कर उपस्थित होती है । जाहिर है लेखक के सामने ऐसी कोई विवशता नहीं होती । वह चाहे तो व्यावसायिकता से निरपेक्ष रहकर रचना कर सकता है । लेकिन इसका अर्थ यह भी नही है कि फिल्म की उत्कर्षता की परीक्षा करते हुए हम इन कारकों को निर्णायक मानकर उसके अनुसार मूल्यांकन करेंगे । इसका सिर्फ इतना ही अर्थ है कि फिल्मकार के सामने लेखक से भिन्न किस्म की चुनौतियाँ होती है और उन चुनौतियों का असर उसके काम पर पड़ना स्वाभाविक है ।

तीसरा बड़ा फर्क यह है कि फिल्म की भाषा दृश्य है और यह लेखन की भाषा से अलग है । भाषा में जो स्थिति शब्द की होती है वही फिल्म में फ्रेम की होती है और जो वाक्य की होती है वह शॉट की । जिस प्रकार कहानी में सही शब्दों का चयन और सर्वाधिक उपयुक्त वाक्य रचना कहानी की कलात्मक उत्कर्षता के लिए जरूरी है, उसी तरह फिल्म में भी प्रत्येक फ्रेम और प्रत्येक शॉट का वही महत्त्व होता है । शब्दों और वाक्यों के महत्त्व को स्वीकार

करने के बावजूद पूरी रचना में उनकी स्वायत्त सत्ता नहीं होती । इसी तरह फिल्म में भी फ्रेम और शॉट की स्वतंत्र सत्ता नहीं होती । वह पूरे सीन में ही अपनी उपयुक्तता और उत्कर्षता को प्रमाणित करते हैं । और सीन पूरी फिल्म के सिक्वेंस में ही अपनी अर्थवत्ता को सिद्ध करते हैं । यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि फ्रेम और शब्द एक दूसरे के विकल्प नहीं हैं और न ही वाक्य और शॉट । इनकी तुलना का तात्पर्य सिर्फ इतना ही है कि फिल्म के सन्दर्भ में इनकी स्थिति को समझा जा सके । फिल्मकार के जिए जरूरी है कि वह फ्रेम और शॉट की भाषा में फिल्म की कल्पना करे । जब पटकथाकार पटकथा लिखता है! तो वह कहानी नहीं लिखता बल्कि सीन लिखता है । वह उन फ्रेम और शॉट का प्रारूप प्रस्तुत करता है जिसके हारा पूरा सीन निर्मित होगा । इस प्रारूप को ही ड्ब्बिंग करता हुआ फिल्मकार प्रत्येक शॉट को फिल्माता है और सीन को साकार करता है ।

फिल्म का कोई भी सीन तब तक पूरा नहीं होता जब तक कि उसके साथ शब्द और ध्वनि का संयोग नहीं हो जाता । सिनेमाई भाषा की पूर्णता इसी से निर्मित होती है । सिनेमा में शब्द और ध्वनि लिखित रूप में नहीं वरन् उच्चरित रूप में प्रयुक्त होते हैं । यहाँ कलाकार की कल्पनाशीलता दृश्य और शब्द केर संयोजित रूप में सक्रिय रहती है जबकि साहित्य में कल्पनाशीलता शब्दों के माध्यम से ही सामने आती है । फिल्म का माध्यम अपनी प्रकृति में यथार्थपरक होता है जबकि साहित्य में लेखक को यथार्थ निर्मित करना होता है । फिल्म का माध्यम यथार्थ का भ्रम आसानी से निर्मित कर सकता है जबकि साहित्य को इसके लिए प्रयत्न करना होता है । अपने माध्यम की इसी विशिष्टता के कारण फिल्म का यथार्थ विरोधी इस्तेमाल ज्यादा आसार है और फिल्मकार साहित्य के नजदीक आकर इस खतरे से बचने का प्रयत्न करता है । फिल्म की यह माध्यमगत विशिष्टता उसे स्वतंत्र कला माध्यम बनाती है, उसकी शक्ति और सीमा को तय करती है और ग्रहीता को साहित्य से भिन्न तरह का आस्वाद प्रदान करती है । साहित्य और फिल्म के अन्त:संबंधों पर विचार करते हुए इस भिन्नता को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए ।

10.9 सारांश

'जनसंचार और साहित्य' नामक इस इकाई में आपने जनसंचार और साहित्य के अन्त:संबंधों का अध्ययन .किया है । इकाई के आरंभ में अपने साहित्य को विभिन्न विधाओं के संप्रेषण से जुड़े विभिन्न पक्षों की जानकारी प्राप्त की है । किस तरह विभिन्न युगों में साहित्य की विभिन्न विधाओं की प्रकृति में परिवर्तन आता गया है । ये परिवर्तन भाषा के विकास और संप्रेषण की प्रौद्योगिकी में हुए परिवर्तनों ने संभव किया है । जनसंचार माध्यमों के आधुनिक दौर ने साहित्य की रचना और आस्वादन में भी बदलाव किए हैं । इकाई में इन बदलावों पर प्रकाश डाला गया है । साहित्यिक रचना के संप्रेषण में उसके विभिन्न पाठों का भी खास महत्व है । साहित्यिक संरचना के संप्रेषण में किस तरह अन्य कला रूप भूमिका निभाते हैं, इसपर भी इकाई में विचार किया है । फिल्म में आख्यान का खास महत्त्व है, और साहित्य में भी । इसमें 'काल' के रूपांतरण की प्रक्रिया को समझना जरूरी है । ऐतिहासिक काल को कला-काल में बदलना रचनात्मकता के लिए क्यों जरूरी है इकाई में इस पर भी प्रकाश डाला गया है । साहित्य को दृश्य और श्रव्य माध्यमों में रूपांतरण की प्रक्रिया सर्वाधिक चुनौतीपूर्ण होती है ।

मूल रचना, पटकथा और फिल्म के विभिन्न स्तरों पर रचनात्मकता का अतर समझना जरूरी है। इकाई में इस पर भी गहन दृष्टि डाली गयी है, साहित्य और जनसंचार माध्यम के अंत:संबंधों को उन चुनौतियों के परिप्रेक्ष्य में भी व्याख्यायित किया गया है । जिन्हें जानना आवश्यक है ।

10.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. दृश्य माध्यमों के इस दौर में साहित्य की महत्ता और प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए ।
2. साहित्य के दृश्य माध्यम में रूपांतरण से संबद्ध विभिन्न पक्षों पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए ।
3. साहित्यिक भाषा और सिनेमाई भाषा के अंतर को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए ।
4. रचनात्मक और कलात्मक दृष्टि से क्या सिनेमा को भी साहित्य के समकक्ष माना जा सकता है' अपना मत प्रस्तुत कीजिए ।
5. गोदान या तमस पर बनी हिन्दी फिल्मों के संदर्भ में साहित्य और सिनेमा के पारस्परिक संबंधों पर प्रकाश डालिए ।

10.11 सन्दर्भ ग्रंथ

1. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली, 2000
2. सुभाष धूलिया; संचार क्रांति की राजनीति और विचारधारा, लेखक, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
3. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, अनुवादक, ओमप्रकाश मालवीय; संचार माध्यम और पूँजीवादी समाज, संपादक ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
4. मेनी वाइसेज वन वर्ल्ड - संपादक सीन मेकब्राइड, यूनेस्को का प्रतिवेदन, कोगन पेज लि, लंदन, संस्करण, 1998
5. रेमंड विलियम्स; जनसंचार माध्यमों का वर्ग चरित्र, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली- 110092
6. जनसंचार माध्यम और सांस्कृतिक विमर्श: जवरीमल्ल पारख; 2009;ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली- 110092.
7. भारतीय सिनेमा का अंत-संघर्ष: विनोद दास; मेधा पब्लिकेशंस, दिल्ली ।

इकाई 11 जनसंचार का समकालीन परिदृश्य

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 जनसंचार का समकालीन परिदृश्य राजनीतिक परिप्रेक्ष्य ।
11.3 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
11.4 नया परिदृश्य
11.5 नया वैश्विक मीडिया
11.6 भारतीय जनसंचार परिदृश्य
11.7 हिन्दी मीडिया
11.8 सारांश
11.9 अभ्यासार्थ प्रश्न
11.10 सन्दर्भ ग्रंथ

11.0 उद्देश्य

यह जनसंचार के सिद्धांतों नामक दूसरे खण्ड की इकाई है और पाठ्क्रम की 11 वीं इकाई है । इस पाठ्क्रम का उद्देश्य जनसंचार के समकालीन परिदृश्य से परिचित कराना है । जनसंचार के समकालीन परिदृश्य को राजनीतिक परिप्रेक्ष्य के बिना नहीं समझा जा सकता । इसलिए इकाई के आरंभ में इस पहलू पर विचार किया गया है । इसके बाद जनसंचार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का उल्लेख करते हुए जनसंचार के समकालीन परिदृश्य के नये पक्षों को वैश्विक और भारतीय सन्दर्भ में प्रस्तुत किग्रा गया है । जनसंचार के समकालीन परिदृश्य में अब हिन्दी का भी महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप है । इस इकाई में आपको हिन्दी मीडिया के विभिन्न पहलुओं के बारे में भी बताया जा रहा है । इस प्रकार इस इकाई को पढ्ने से आप जनसंचार के समकालीन परिदृश्य के सभी पक्षों की न केवल जानकारी प्राप्त कर सकेंगे बल्कि उसे ऐतिहासिक और राजनीतिक संदर्भो में समझ भी सकेंगे । इस प्रकार इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

- जनसंचार का समकालीन परिदृश्य एवं उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की चर्चा कर सकेंगे।
- जनसंचार में नवाचार वैश्विक मीडिया के बारे में समझ सकेंगे ।
- भारतीय जनसंचार परिदृश्य को वैश्विक धरातल पर वर्गीकरण कर सकेंगे ।
- जनसंचार के हिन्दी मीडिया में आ रहे बदलाव पर टिप्पणी कर सकेंगे ।

11.1 प्रस्तावना

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता नामक इस पाठ्यक्रम के खण्ड 2 में आप अब तक पाँच इकाईयों का अध्ययन कर चुके हैं । इन इकाईयों में जनसंचार के सिद्धांत, जनसंचार के

सिद्धांत, जनसंचार के संस्थान और व्यवसाय, जनसंचार और भाषा, और जनसंचार और साहित्य के पारस्परिक संबंधों के बारे में अध्ययन किया है । ये सभी इकाईयाँ जनसंचार के सिद्धांतों को समझने के लिए उपयोगी हैं । इससे आपको जनसंचार के विभिन्न माध्यमों द्वारा जो संदेश प्रसारित होते हैं उन संदेशों को विभिन्न पहलुओं से समझने की दृष्टि प्राप्त होगी । अगले खंड में आप जनसंचार और समाज के अंतःसंबधों के बारे में अध्ययन करेंगे । इन दोनों खंडों को जोड़ने वाली यह इकाई इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि इससे आपको जनसंचार के सिद्धांतों और जनसंचार के सामाजिक पक्षों को समझने के लिए समकालीन जनसंचार की स्थिति और दशा का ज्ञान हो सकेगा ।

जनसंचार माध्यमों के सन्दर्भ में इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि यह कोई राष्ट्रीय या क्षेत्रीय परिघटना नहीं है । जब हम टेलीविजन पर समाचार सुन रहे होते है या कोई फिल्म देख रहे होते है तो बहुत मुमकिन है कि ठीक उसी समय किसी और स्थान पर कोई और व्यक्ति भी बिल्कुल भिन्न परिस्थितियों में उसी कार्यक्रम में देख रहा होता है । यह दूसरा व्यक्ति हजारों किलोमीटर दूर किसी अन्य देश में भी हो सकता है इसलिए जब भी जनसंचार माध्यमों के परिदृश्य की बात की जाती है तो इस बात को ध्यान में रखना होता है वैसे भी अब जनसंचार माध्यमों की पहुँच इतनी व्यापक हो चुकी हैं कि इसी वजह से अब विश्व ग्राम और विश्व बाजार जैसी संकल्पनाएँ सामने आयी । विश्व का इस तरह सिकुड़ना या लोगों का इस तरह नजदीक आना क्या बताता है, जनसंचार माध्यमों के सन्दर्भ में यह एक अहम् प्रश्न है इस इकाई में जनसंचार से संबंधित ऐसे कई मसलों का उल्लेख किया गया है जो वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण है ।

11.2 जनसंचार का समकालीन परिदृश्य : राजनीति परिप्रेक्ष्य

समकालीन जनसंचार परिदृश्य अपने आप में अनोखा और बेमिसाल है । जनसंचार के क्षेत्र में जो भी परिवर्तन आए और जो आने जा रहे है उनको लेकर कोई भी पूर्व आकलन न तो किया जा सका था और न ही किया जा सकता है । सूचना क्रांति के उपरांत जो मीडिया उभर कर सामने आया है वह राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन के केंद्र में है । आज मानव जीवन का लगभग हर पक्ष मीडिया द्वारा संचालित हो रहा है । आज मीडिया इतना' शक्तिशाली और प्रभावशाली हो गया है कि लोकतांत्रिक विमर्श अधिकाधिक मीडिया तक ही सीमित होता जा रहा है । एक तर्क ये भी है कि लोकतंत्र का स्थान मीडिया तंत्र ले चुका है । संचार क्रांति के उपरांत आज पूरी दुनिया एक वैश्विक गाँव बन चुकी है । दूरसंचार, सेटेलाइट और कंप्यूटर से आज हर तरह की सूचनाओं का आदान-प्रदान तत्काल और बाधाविहीन हो चुका है । आज इंटरनेट के रूप में एक ऐसा महासागर पैदा हो गया है जहाँ मीडिया की हर नदी, हर छोटी-मोटी धाराएँ आकर मिलती हैं । इंटरनेट के माध्यम से आज किसी भी क्षण दुनिया के किसी भी कोने में संपर्क साधा जा सकता है । इंटरनेट पर सभी समाचार पत्र, रेडियो और टेलीविजन चैनल उपलब्ध हैं । आज हर बड़े से बड़े और छोटे से छोटे संगठनों की अपनी वेबसाइट हैं जिन पर इनके बारे में अनेक तरह की जानकारियाँ हासिल की जा सकती हैं ।

इंटरनेट पर नागरिक पत्रकार ने भी अपनी प्रभावशाली उपस्थिति दर्ज की है । इंटरनेट पर ब्लॉगों के माध्यम से अनेक तरह की आलोचनात्मक बहसें होती हैं, उन तमाम तरह के विचारों को अभिव्यक्ति मिलती है जिनकी मुख्यधारा का कॉरपोरेट मीडिया अनदेखी ही नहीं उपेक्षा भी करता है क्योंकि इनमें कॉरपोरेट व्यापारिक हितों पर कुठाराघात करने की भी क्षमता होती है । भले ही ब्लॉग एक सीमित तबके तक ही सीमित हो लेकिन फिर भी ये समाज का एक प्रभावशाली तबका है जो किसी भी समाज और राष्ट्र को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। ब्लॉगिग ने अत्यधिक व्यापारीकृत मीडिया बाजार में अपनी प्रभावशाली उपस्थिति दर्ज करायी है । विकसित देशों में लगभग एक-चौथाई आबादी इंटरनेट का इस्तेमाल करती है इसलिए ब्लॉग अभिव्यक्ति के एक प्रभावशाली माध्यम बन चुके हैं । विकासशील देशों में भी ब्लॉग लोकतांत्रिक विमर्श के मानचित्र पर अपनी प्रभावशाली उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं । ब्लॉग निश्चय ही आज के शोरगुल वाले मीडिया बाजार की मंडी में एक वैकल्पिक स्वर को अभिव्यक्त करता है । लेकिन इस नये वैकल्पिक मीडिया में कुछ निहित कमजोरियां भी हैं । मीडिया बाजार में उपस्थित शक्तिशाली तबके ब्लॉग की दुनिया को भी प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं । बड़े कॉरपोरेट संगठन और सरकारी एजेंसियाँ अनेक ब्लॉग खोलकर या पहले से ही सक्रिय ब्लॉगों में प्रवेश कर इस लोकतांत्रिक विमर्श को प्रभावित करने की अपार क्षमता रखते हैं । ऐसे में शक्तिशाली संगठनों का ब्लॉग संसार में दखल और उसके परिणामों का आकलन करना भी जरूरी हो जाता है । मीडिया।, के केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण को समझने के लिए शक्तिशाली संगठनों की इस क्षमता की उपेक्षा नहीं की जा सकती । ब्लॉग के गुरिल्ला ने व्यापारीकृत मीडिया के बाजार में प्रवेश कर हलचल तो पैदा कर दी है लेकिन अभी ये देखा जाना बाकी है कि यह इस मंडी में अपने लिए कितने स्थान का सृजन कर पाता है और किस हद तक कॉरपोरेट और सरकारी संगठनों के इसे विस्थापित करने के प्रयासों को झेल पाता है ।

इस दृष्टि से सबसे अधिक आशावाद इस बात से पनपता है कि मुख्यधारा कॉरपोरेट मीडिया के समाचारों और मनोरंजन की अवधारणाओं में जो रुझान पैदा हो रहे हैं उससे इसकी साख और विश्वसनीयता में जबरदस्त गिरावट आ रही है । इस रुझान के कारण अब लोग इस तरह के समाचारों से ऊबने लगे हैं, निराश होने लगे हैं । मुख्यधारा कॉरपोरेट मीडिया की साख में इस गंभीर संकट से ब्लॉग संसार के लिए अपने स्थान से विस्तार की नयी संभावनाएँ पैदा हो गयी हैं । लेकिन अभी ये थोड़ा कशमकश का दौर है और ऐसा महीं कहा जा सकता है कि साख के इस संकट की कॉरपोरेट मीडिया अनदेखी ही करता रहेगा और बाजार इस स्थिति में बदलाव लाने के लिए' व्यापारिक हितों और साख के बीच नया तालमेल कायम करने का प्रयास नहीं करेगा । मीडिया बाजार में अच्छे व्यापार के लिए उत्पाद की साख का एक स्तर बनाए रखना भी अनिवार्य है ।

आज मीडिया बाजार में एक भ्रम की स्थिति है और विकासशील देशों में इसे अधिक प्रखर रूप से देखा जा सकता है । मीडिया उत्पाद, उपभोक्ता और विइग़पन उद्योग के संबंध अभी स्थायित्व के स्तर पर नहीं पहुँचे हैं । आज भले ही मीडिया के बाजार के प्रति कोई साफ-सुथरी सोच विकसित नहीं हो पायी है लेकिन अभी यह एक बाजार है, इसे मापने के जो भी और जितने भी अपर्याप्त पैमाने हैं विज्ञापन उद्योग उन्हीं से ही प्रभावित होता है । इस बाजार

को हथियाने की होड़ में एंटरटेनमेंट नाम के नये मीडिया उत्पाद का जन्म हुआ है जिसमें सूचना के स्थान पर मनोरंजन को प्राथमिकता मिलती है । इसके तहत सूचना की विषयवस्तु बौद्धिक स्तर पर इतनी हल्की और मनोरंजक बना दी जाती है कि वह एक विशाल जनसमुदाय को आकृष्ट कर सके । अनेक अवसरों पर इस तरह के समाचार और समाचार कार्यक्रम पेश किये जाते है कि वे लोगों का ध्यान खींच सकें भले ही साख और विश्वसनीयता के स्तर पर वे कार्यक्रम खरे न उतरते हों ।

इसके साथ ही 'पॉलिटिकॉटेनमेंट' की अवधारणा का भी उदय हुआ है जिसमें राजनीति और राजनीतिक जीवन पर मनोरंजन उद्योग हावी हो रहा है । राजनीति और राजनीतिक जीवन के विषयों का चयन, इनकी व्याख्या और प्रस्तुतीकरण पर मनोरंजन के तत्व हावी होते चले जा रहे हैं । कई मौकों पर बड़े राजनीतिक विषयों को सतही रूप से और तमाशे के रूप में पेश किया जाता है और आलोचनात्मक होने का आभास भर पैदा कर वास्तविक आलोचना किनारे कर दी जाती है । कई अवसरों पर टेलीविजन के परदे पर प्रतिद्वंदी राजनीतिज्ञों की बहसों का इस दृष्टि से मूल्यांकन करें तो यह तमाशा ही अधिक नजर आता है । इन बहसों में वास्तविक विषयों और विभिन्न राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य नदारद रहते हैं । इस तरह के कार्यक्रम बुनियादी राजनीति मतभेदों के स्थान पर तू तू-मैं मैं के मनोरंजन की ओर ही अधिक झुके होते हैं । इससे अनेक बुनियादी सवाल पैदा होते हैं और राजनीति के इस सतहीकरण और एक हद तक विकृतीकरण से लोकतंत्र के हास का आकलन करना जरूरी हो जाता है । राजनीति और राजनीतिक जीवन के सतहीकरण की इस प्रक्रिया का सबसे बड़ा हथियार सेलेब्रिटी संस्कृति का उदय है । सेलीब्रिटीज का राजनीति में प्रवेश हो रहा है जिससे राजनीतिज्ञ सेलेब्रिटीज बन रहे हैं । सेलेब्रिटी संस्कृति की वजह से राजनीतिक विमर्श के सन्दर्भ में एक नये टेलीविजन का उदय हुआ है । राष्ट्रीय सुरक्षा जैसे गंभीर मुद्दों पर एक बड़ा फिल्मस्टार टेलीविजन के पर्दे पर आधे घण्टे तक यह बताता है कि क्या करना चाहिए, तो दूसरी ओर, राष्ट्रीय पार्टी का एक बड़ा नेता सेलेब्रिटी बनने के लिए इसी राष्ट्रीय सुरक्षा से संबद्ध विषय को इस तरह पेश करता है कि देखने वालों को मजा आ जाए और वह विषय की तह में कम जाता है ।

मुंबई पर आतंकवादी हमलों के उपरांत गंभीर समाचारों, राष्ट्रीय सुरक्षा से संबद्ध विषयों। पर इस तरह का रुझान स्पष्ट रूप से देखने को मिला था । आतंकवाद से देश किस तरह लड़े- इस बात की। नसीहत वे लोग टेलीविजन पर्दे पर दे रहे थे जिनका न तो सुरक्षा और न ही आतंकवाद जैसे विषयों पर किसी तरह की समझ का कोई रिकॉर्ड है और न ही इन विषयों पर कभी कोई योगदान रहा है । इस तरह हम कह सकते हैं कि एक नरम (सीट) मीडिया का उदय हुआ है जो कड़े-कठोर विषयों का नरमी से पेश कर लोगों को रिझाना चाहता है और कुल मिलाकर इस तरह गंभीर राजनीतिक विमर्श का हास हो रहा है । इसी दौरान लोकतांत्रिक राजनीति के चरित्र में ही भारी बुनियादी परिवर्तन आए और इसी के अनुरूप मीडिया तंत्र के साथ इसके संबंध पुन: परिभाषित हुए । विश्वभर में आर्थिक विकास से उपभोक्ताओं की नयी पीढ़ी का उदय हुआ । इससे मीडिया के लिए नये बाजार पैदा हुए और इस बाजार में अधिक से अधिक हिस्सा पाने के लिए एक नयी तरह की बाजार होड़ पैदा हुई । इस बाजार होड़ के कारण मीडिया उन उत्पादों की ओर झुकने लगा जो व्यापक जनसमुदाय को आकृष्ट कर सकें ।

ऐसा नहीं है कि समाचारों में मनोरंजन का तत्त्व पहले नहीं रहा है । समाचारों को रुचिकर बनाने के लिए हमेशा ही नाटकीयता के तत्त्वों का समावेश किया जाता रहा है । लेकिन अधिकाधिक उपभोक्ताओं को आकृष्ट करने की होड़ में समाचारों को मनोरंजन के तत्त्वों का विस्तार होता चला गया । मीडिया के जबर्दस्त विस्तार और चौबीसों घण्टे चलने वाले चैनलों के कारण भी समाचारों की मांग बेहद बढ़ गयी जिसकी वजह से ऐसी अनेक घटनाएँ भी समाचार बनने लगी जो मुख्यधारा की पत्रकारिता की कसौटी पर खरी नहीं उतरती थी । पहले विचारधारात्मक राजनीतिक संघर्ष, स्वतंत्रता और उसके बाद विकास की आकांक्षा के दौर में मुख्यधारा समाचारों में लोगों की दिलचस्पी होती थी । विकास की गति बढ़ने से ऐसे सामाजिक तबकों का उदय हुआ जो उन तमाम मुद्दों के प्रति उदासीन होते चले गए जो इससे पहले तक ज्वलंत माने जाते थे । इसी के समानांतर अतिरिक्त क्रय शक्ति के सामाजिक तबके के विस्तार के कारण मीडिया के व्यापारीकरण का दौर भी शुरू हुआ । यह नया तबका ही बाजार था और इस बाजार ने एक नया सामाजिक माहौल पैदा किया जिसमें ' ज्वलंत समाचार 'ज्वलंत' नहीं रह गये और एक तरह की अराजनीतिकरण की प्रक्रिया शुरू हुई । अराजनीतिकरण की यह प्रक्रिया समाचारों से शुरू हुई और फिर स्वयं समाचारों के चयन को ही प्रभावित करने लगी ।

समाज के संपन्न तबकों में राजनीति के प्रति उदासीनता कोई नयी बात नहीं है । विकास का एक स्तर हासिल करने के बाद इस तबके को इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि सत्ता की बागडोर किसके हाथ में है जब तक कि राजनीति किसी बड़े परिवर्तन की ओर उन्मुख ना हो । इस कारण भी समाचारों का मूल स्वभाव और चरित्र प्रभावित हुआ और व्यापारीकरण की गति तेज हुई । लेकिन व्यापारीकरण की इस प्रक्रिया के प्रभाव और परिणामों के सन्दर्भ में विकसित और विकासशील देशों के बीच एक बड़ा बुनियादी अंतर है । विकसित देशों में व्यापारीकरण की यह प्रक्रिया तब शुरू हो गयी जब लगभग पूरा समाज ही विकास का एक स्तर हासिल कर चुका था । लेकिन विकासशील देशों में विकास की यह प्रक्रिया तभी शुरू कर दी गयी जब समाज का एक छोटा-सा तबका ही विकसित की श्रेणी में आ पाया था । विकासशील देशों में विकासशीलता के दौर में मीडिया से सहभागी होने की अपेक्षा की जाती थी जो संभव नहीं हो पायी और व्यापारीकरण के कारण विकास का एजेंडा काफी हद तक किनारे हो गया । विकासशील समाज पर व्यापारीकरण की इस प्रक्रिया के प्रभाव और परिणामों का सही मूल्यांकन कर पाना अभी संभव नहीं दिखता लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इसके नकारात्मक परिणाम सकारात्मक परिणामों की तुलना में कहीं अधिक व्यापक और गहरे होने जो रहे हैं । अपेक्षतया बौद्धिक रूप से कुशल उपभोक्ता-नागरिक और एक विकासशील समाज के एक आम' नागरिक पर एक ही तरह के मीडिया उत्पाद का प्रभाव भिन्न होगा- कहीं यह मनोरंजन-रोमांच पैदा कर सकता है, तो अन्यत्र यह वैज्ञानिक सोच पर कुठाराघात कर अंधविश्वास की जड़ों को गहरा कर सकता है ।

मीडिया और मनोरंजन का रिश्ता भले ही नया नहीं है लेकिन नया यह है कि इतिहास में मीडिया इतना शक्तिशाली कभी नहीं था । मीडिया के मनोरंजन के उत्पाद लोकप्रिय संस्कृति की ही उपज होते हैं और आज समाचारों को भी मनोरंजक बनाने के लिए भी लोकप्रिय संस्कृति और रुचियों का सहारा लिया जा रहा है । आज शक्तिशाली मीडिया लोकप्रिय संस्कृति के

सकारात्मक पहलुओं के बजाय कुछ खास ऐसे बिंदुओं के आधार पर मनोरंजन की नयी अवधारणाएँ पैदा कर रहा है और लोकप्रिय संस्कृति के चरित्र और स्वरूप को बदलने में सक्षम हो गया है । यह प्रक्रिया आज इतनी तेज हो चुकी है कि यह कहना मुश्किल हो गया है कि 'लोकप्रिय' क्या है और 'संस्कृति' क्या है? यह कहना भी मुश्किल हो गया है कि इनका सृजन कही से सेता है और कौन करता है? पर फिर भी अगर हम लोकप्रिय संस्कृति को उसी रूप में स्वीकार कर लें जिस रूम में हम इसे जानते थे, तो हम यह कह सकते हैं कि आज लोकप्रिय संस्कृति समाचार और समाचारों पर आधारित कार्यक्रमों पर हावी हो चुकी है और गंभीर और सार्थक विमर्श का स्थान संकुचित हो गया है । इस प्रक्रिया से तथ्य और कल्पना का एक घालमेल सा पैदा हो गया है जिससे पैदा होने वाला समाचार उत्पाद अपने मूल स्वभाव से ही समाचार की अवधारणा से भटका हुआ दिखायी पड़ता है ।

नब्बे के दशक में नव-उदारवादी अर्थव्यवस्था के उदय के उपरांत उपभोक्ता की राजनीति और उपभोक्तावादी संस्कृति का उदय हुआ और इसका सीधा असर समाचारों पर पड़ा । नव-उदारवादी अर्थव्यवस्था में नये-नये उपभोक्ता उत्पाद बाजार में आए और इनको बेचने के लिए नयी-नयी मीडिया तकनीकों का इस्तेमाल किया गया जिसके परिणामस्वरूप 'सेलेब्रिटी लाइफस्टाइल' पत्रकारिता का उदय हुआ । पक नये मेट्रो बाजार का उदय हुआ और इसके अनुरूप नये-नये उपभोक्ता उत्पादों की बाढ़-सी आ गयी लेकिन देर सवेर इस बाजार और इस बाजार की मांग में ठहराव आना स्वाभाविक है । इस स्थिति में बाजार और समाचर के संबंध भी प्रभावित होंगे । व्यापारीकृत मीडिया ने पूरे देश के बजाय केवल मेट्रो बाजार पर ही ध्यान केन्द्रित किया और इसे हथियाने की होड़ में बाकी देश की अनदेखी की । इस होड़ से जिस तरह के समाचारों का उभार आया उससे स्वयं मध्यमवर्ग की संवेदनाओं को भी ठेस पहुँची । इस कारण राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में समाचार एक तरह से स्वाभाविक स्थान से विस्थापित होकर शरणार्थी बन गये जिनका कोई पता-ठिकाना नहीं बचा । समाचारों के विषय चयन समाचार या घटनाओं को परखने की परंपरागत सोच और दृष्टिकोण के पैमाने और मानदंड बेमानी हो गये । इसके परिणामस्वरूप आज का उपभोक्ता-नागरिक इस बात को नहीं समझ पाता है कि देश-दुनिया की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ कौन-सी हैं? परम्परागत रूप से मीडिया एक ऐसा बौद्धिक माध्यम होता था जो लोगों को यह भी बताता था कि कौन सी घटनाएँ उनके जीवन से सरोकार रखती हैं और उनके लिए महत्त्वपूर्ण है । इस तरह मीडिया एक तरह का मध्यस्थ भी होता है जो किसी घटना को एक सन्दर्भ में पेश करता है, इसे अर्थ देता है और एक परिप्रेक्ष्य में इसे प्रस्तुत करता है । आज का मीडिया मध्यस्थ की इस भूमिका को बहुत प्रभावशाली ढंग से निभाता प्रतीत नहीं होता । इस दृष्टि से समाचारों को नापने-परखने के कुछ सर्वमान्य मानक होते थे । आज ये सर्वमान्य मानक काफी हद तक विलुप्त से हो गये हैं और एक उपभोक्ता-नागरिक समाचारों के समुद्र में गोते खाकर कभी प्रफुल्लित होता है, कभी निराश होता है और कभी इतना भ्रमित होता है कि समझ ही नहीं पाता कि आखिर हो क्या रहा है?

11.3 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अन्तर्राष्ट्रीय मीडिया परिदृश्य को समझने के लिए विश्व राजनीति पर एक निगाह डालना जरूरी हो जाता है । पिछले दो दशकों में दुनिया में कुछ ऐसे परिवर्तन आए हैं जिससे विकास की दिशा और दशा दोनों बदल गये । लेकिन यह कह सकते हैं अब तक कोई ऐसी विश्व व्यवस्था नहीं आ पायी है जिसमें स्थायित्व निहित हो । पिछली सदी की अस्सी-नबे के दशक की कुछ घटनाओं ने राजनीतिक, आर्थिक और सूचना संचार की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाओं को एक तरह से फिर से परिभाषित कर दिया जिससे विश्व राजनीति के चरित्र और स्वभाव में बड़े परिवर्तन आए । अस्सी के दशक में विकास के सोवियत समाजवादी मॉडल के चरमराने की प्रक्रिया शुरू हुई और 1991 में सोवियत संघ का अवसान हुआ । इस घटना को पश्चिमी उदार!र लोकतंत्र और मुक्ता अर्थव्यवस्था की विजय के रूप में देखा गया । इसी दशक में सूचना क्रांति ने भी बेमिसाल ऊचाइयाँ हासिल की और इसी के समांतर दुनिया भर में मुक्त अर्थव्यवस्था की ओर उज़कआर्थिक सुधारों की प्रक्रिया भी शुरू हुई । इस आर्थिक प्रक्रिया को मूर्त रूप देने में भूमंडलीकरण ने भी नयी गति हासिल की ।

इन घटनाओं के उपरान्त विश्व में एक नयी सूचना और संचार व्यवस्था का भी उदय हुआ । एक रूप से इस व्यवस्था ने विकासशील देशों की उन तमाम दलीलों को ठुकरा दिया जो उन्होंने विश्व में एक नयी सूचना और संचार व्यवस्था कायम करने के लिए छठे और सातवें दशक में पेश की थीं और जिन्हें 1980 में यूनेस्को में मैक्ब्राइड कमीशन की रिपोर्ट के रूप में एक संगठित अभिव्यक्ति प्रदान की । विकासशील देशों की मांग थी कि विश्व में सूचना और समाचारों के प्रवाह में असंतुलन है और फिर इन पर विकसित देशों की चंद मीडिया संगठनों का नियंत्रण है । इसकी वजह से विकासशील देशों के बारे में नकारात्मक सूचना और समाचार ही छाये रहते हैं जिससे विकासशील देशों की नकारात्मक छवि ही बनती है जबकि विकसित देशों को लेकर सब कुछ सकारात्मक है ।

यूनेस्को ने इन तमाम मसलों को संबोधित करने के लिए मैखाइड कमीशन का गठन किया और इसने 1980 में मैनी वॉइसेज वन वर्ल्ड' (दुनिया एक, स्वर अनेक) शीर्षक से अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें विश्व में सूचना और समाचारों के प्रवाह में असंतुलन को दूर करने के लिए अनेक सिफारिशें की गयी थीं । लेकिन अमेरिका के नेतृत्व में विकसित देशों ने इन सिफारिशों को इस आधार पर खारिज कर दिया कि इनमें असंतुलन को दूर करने के नाम पर सरकारी हस्तक्षेप का न्यौता निहित है और इस तरह ये सिफारिशें प्रेस की स्वतंत्रता को बाधित करती हैं । अमरीका, ब्रिटेन और सिंगापुर तो इस मसले पर यूनेस्को से अलग हो गए और इन देशों के अलग होने से यूनेस्को को मिलने वाली आर्थिक मदद बंद हो गयी जिसकी वजह से यूनेस्को एक तरह से पंगु हो गया । लेकिन अस्सी-नब्बे के दशक की घटनाओं के उपरांत इस तरह की नयी विश्व सूचना और संचार व्यवस्था की मांग भी बेमानी हो गयी । इसका सबसे मुख्य कारण तो यही था कि इस मांग को करने वाले सबसे प्रबल स्वर ही शांत हो गए । गुटनिरपेक्ष आंदोलन और विकासशील देशों के अन्य संगठन या तो अपना अर्थ खो बैठे या अप्रसांगिक हो गए । इसका मुख्य कारण यह था कि विकासशील देशों में इस मांग को उठाने वाले अधिकांश देशों ने आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के मॉडल का रास्ता छोडकर उदार भूमंडलीकरण

का रास्ता अपना लिया था । दूसरा प्रमुख कारण यह भी था कि यहाँ आते-आते सूचना क्रांति एक ऐसी मंजिल तक पहुँच चुकी थी जिसमें दूरसंचार, सेटेलाइट और कंप्यूटर प्रौद्योगिकी के बल पर एक ऐसे तंत्र का उदय हुआ जिसमें सूचना समाचारों के प्रवाह पर किसी भी तरह का अंकुश लगाना संभव ही नहीं रह गया । विकासशील देश सूचना-समाचारों के लिए एकतरफा प्रवाह की शिकायत करते थे उसका आवेग इस नये दौर में अब पहले से कहीं अधिक तेज हो गया और इसे रोक पाना वास्तविक रूप से संभव नहीं रह गया था ।

11.4 नया परिदृश्य

सूचना क्रांति से निश्चय ही दुनिया एक तरह के वैश्विक गाँव में परिवर्तित हो गयी । सूचना समाचारों और इस तरह के मीडिया उत्पादों का प्रवाह बाधाविहीन होने के उपरांत वैश्विक मीडिया के स्वरूप में भी बड़ा परिवर्तन आया । पहले वैश्विक मीडिया विश्व भर में सूचना और समाचारों के प्रवाह का नियंत्रण करता था लेकिन उसका काफी हद तक एक देश के भीतर इसका सीधा नियंत्रण नहीं होता था, यानी नियंत्रण का स्वरूप अप्रत्यक्ष था और ये संगठनों के माध्यम से उस देश के ही घरेलू बाजार में मीडिया उत्पाद वितरित करते थे । लेकिन आज वैश्विक मीडिया का प्रसार देशों की सीमा के भीतर तक हो चुका है जहाँ वह प्रत्यक्ष रूप से मीडिया के बाजार में अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुके हैं ।

मीडिया उत्पादों के वैश्विक प्रवाह के बाधाविहीन बनने के बाद एक नये तरह का सूचना और संचार का परिदृश्य पैदा हुआ है । समकालीन परिदृश्य में मीडिया उत्पादों और इनके वितरण के माध्यमों में भी बुनियादी परिवर्तन आ रहे हैं । प्रिण्ट, रेडियो, टेलीविजन और मल्टीमीडिया इंटरनेट बहुत सारे मीडिया उत्पाद और व्यापक विकल्प पेश कर रहे हैं । विकसित देशों में इस उभरते बाजार के कारण प्रिण्ट मीडिया पर संकट के बादल मण्डरा रहे हैं । विकसित देशों में समाचार पत्रों का सर्कुलेशन घट रहा है और उनके पुराने और प्रतिष्ठित मीडिया संगठन बंद होकर बाजार से बाहर हो गये हैं । नये बाजार में अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए लगभग हर समाचारपत्र और मीडिया संगठन इंटरनेट का इस्तेमाल कर रहा है और इंटरनेट पर ये उपलब्ध हैं । लेकिन इंटरनेट पर इनकी मौजूदगी ने संकट को दूर करने की बजाय इसमें एक नया आयाम जोड़ दिया है । दरअसल, विकसित देशों में जहाँ लगभग तीन-चौथाई लोग इंटरनेट का इस्तेमाल करते हैं, वे समाचारपत्रों को इंटरनेट पर ही पढ़ लेते हैं । इस वजह से समाचारपत्र इंटरनेट पर पढ़े तो जा रहे हैं लेकिन इससे सर्कुलेशन गिर रहा है । एक सर्वे के अनुसार अमेरिका में 2006 में जहाँ नौ प्रतिशत लोग ही समाचारपत्रों को इंटरनेट में पढ़ते थे, वहीं 2008 में यह बढ़कर 14 प्रतिशत हो गया साथ ही प्रिण्ट मीडिया के उपभोक्ता भी 34 प्रतिशत से घटकर 25 प्रतिशत ही रह गये ।

विकसित देशों में मीडिया बाजार एक ठहराव की स्थिति में आ गया है और एक मीडिया की कीमत पर दूसरे मीडिया के चयन की प्रक्रिया शुरू हुई है । इस कारण प्रिण्ट, टेलीविजन, रेडियो और इंटरनेट के बीच एक तरह की होड़ शुरू हो गयी है । भारत जैसे विकासशील देशों में मीडिया बाजार में अभी ठहराव की स्थिति पैदा नहीं हुई है और हर तरह के माध्यमों- प्रिण्ट, टेलीविजन, रेडियो और इंटरनेट का विस्तार हो रहा है । समाज के नये-नये

तबके मीडिया बाजार में प्रवेश कर रहे हैं और अपनी क्रय शक्ति के आप्तार पर मीडिया उत्पादों के उपभोक्ता बन रहे हैं । अगर आज प्रिण्ट, टेलीविजन, रेडियो और इंटरनेट के उपभोक्ताओं के तुलनात्मक उपभोग पर नजर डालें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि लोगों की मीडिया उत्पादों के उपभोग की प्राथमिकताओं में लगातार परिवर्तन आ रहे हैं । मनोरंजन और समाचारों को दिए जाने वाले समय का अनुपात बदल रहा है और इसी तरह का बदलाव विभिन्न माध्यमों के समाचारों को लेकर भी आ रहा है । उदाहरण के तौर 'पर पिछले 10 वर्षा में आये बदलाव के तहत लोग टेलीविजन देखने में काफी समय बिताते हैं और इस कारण समाचारपत्र पढ़ने में उतना समय नहीं दे पाते जो पहले देते थे ।

11.5 नया वैश्विक मीडिया

समकालीन मीडिया परिदृश्य में केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण की प्रक्रियाएँ एक साथ चल रही हैं । एक ओर तो नई प्रौद्योगिकी और इंटरनेट ने किसी भी व्यक्ति विशेष को अपनी बात पूरे। अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय तक पहुँचाने का मंच प्रदान किया है, तो दूसरी ओर, मुख्यधारा मीडिया में केंद्रीकरण की प्रक्रिया भी तेज हुई है । पूरे विश्व और लगभग हर देश के भीतर मीडिया शक्ति का केंद्रीकरण हो रहा है । एक ओर तो मीडिया का आकार विशालकाय होता जा रहा है और दूसरी ओर इस पर स्वामित्व रखने वाले संगठनों कॉर्पोरेशन की संख्या कम होती जा रही है । पिछले कुछ दशकों से यह प्रक्रिया चल रही है और अनेक बड़ी मीडिया कंपनियों ने छोटी मीडिया कंपनियों का अधिग्रहण कर लिया है । इसके अलावा कई मौकों पर बड़ी-बसी कंपनियों के बीच विलय से भी मीडिया के केंद्रीकरण को ताकत मिली है ।

आज वैश्विक संचार और सूचनातंत्र पर चन्द विशालकाय बहुराष्ट्रीय मीडिया कॉर्पोरेशन का प्रभुत्व है जिनमें से अधिकांश अमेरिका में स्थित हैं । बहुराष्ट्रीय मीडिया कॉरपोरेशन स्वयं अपने आप में व्यापारिक संगठन तो हैं ही लेकिन इसके साथ ही ये सूचना-समाचार और मीडिया उत्पाद के लिए एक वैश्विक बाजार तैयार करने और एक खास तरह के व्यापारिक मूल्यों के प्रचार-प्रसार के लिए ही काम करते हैं । इन कॉर्पोरेशन के इस व्यापारिक अभियान में आदर्श पत्रकारिता और सांस्कृतिक मूल्यों की कोई अहमियत नहीं होती । इस रुझान को आज राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है । मोटे तौर पर यह कह सकते हैं कि वैश्विक मीडिया वैश्विक व्यापार के अधीन ही काम करता है और दोनों के उद्देश्य एक-दूसरे के पूरक होते हैं ।

पूरी वैश्विक मीडिया व्यवस्था पर इस वक्त मुश्किल से नौ-दस मीडिया कॉर्मोरेशन का प्रभुत्व है और इनमें से अनेक कॉर्पोरेशन का एक-तिहाई से भी अधिक कारोबार अपने मूल देश से बाहर दूसरे देशों में होता है । उदाहरण के लिए रूपर्ट मर्डोक की न्यूज कॉर्पोरेशन का अमेरिका, कनाडा, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया, एशिया और लैटिन अमेरिका में मीडिया के एक अच्छे-खासे हिस्से पर स्वामित्व है । जर्मनी के बर्टेल्समन्न कॉर्पोरेशन का विश्व के 53 देशों की 600 कंपनियों में हिस्सेदारी है । विश्व की सबसे बड़ी मीडिया कम्पनी एओएल टाइम वार्नर भी अमेरिका की है और विश्व की दूसरी सबसे बड़ी कम्पनी वियाकॉम कम्पनी भी अमेरिका की है जिनका विश्व के मीडिया बाजार के एक बड़े हिस्से पर नियंत्रण है । सोनी कॉर्पोरेशन शुरू में

इलेक्ट्रॉनिक्स के उत्पादों में नाम कमा चुका था लेकिन आज एक मीडिया कम्पनी के रूप में दुनिया भर में इसकी एक हजार सहयोगी कंपनियाँ काम कर रही हैं । इनके अलावा डिजनी वियाकॉम एमटीवी, टेली-कम्युनिकेशन इक, यूनिवर्चल (सीग्राम), माइक्रोसॉट, ग्तल और याहू का भी एक बड़े बाजार पर कब्जा है जो लगभग दुनिया के हर देश ने फैला हुआ है । अमेरिका की जनरल इलेक्ट्रिक जैसी हथियार बनाने वाले कॉरपोरेशन ने भी मीडिया जगत में अपनी उपस्थिति दर्ज कर दी है और अमेरिका के एक प्रमुख समाचार चैनल एनबीसी पर इसका नियंत्रण है ।

इन विशालकाय निगमों के बाद दूसरे स्तर के भी मीडिया संगठन हैं जिनका व्यापार दुनिया भर में बढ़ रहा है । इस वक्त विश्व में मीडिया और मनोरंजन उद्योग सबसे तेजी से उभरते सैक्टरों में से एक है ऐसे रोज नयी-नयी कंपनियाँ अपना नया और अलग मीडिया उत्पाद लेकर बाजार में कूद रही हैं । अधिकांश बहुराष्ट्रीय मीडिया निगम संचार के क्षेत्र से जुड़े कई क्षेत्रों में काम कर रहे हैं जिनमें समाचारपत्र और रेडियो और टेलीविजन चैनल के अलावा पुस्तक प्रकाशन, संगीत, मनोरंजन पार्क और अन्य तरह के मीडिया और मनोरंजन उत्पाद शामिल हैं । प्रौद्योगिक क्रांति ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपनी गतिविधियों के विस्तार के लिए अपार संभावनाओं को जन्म दिया है । आज अधिकांश बड़े मीडिया निगम दुनिया भर में अपनी गतिविधियाँ चला रहे हैं । अनेक निगमों ने या तो किसी देश में अपनी कोई सहयोगी कम्पनी खोल ली है या किसी देशी कम्पनी के साथ साझेदारी कर ली है । हमारे देश में ही अनेक बहुराष्ट्रीय मीडिया निगम के भारतीय संस्करण बाजार में उपलब्ध हैं । ये वैश्विक संगठन अपनी गतिविधियों के विस्तार के लिए स्थानीयकरण की ओर उपज हैं और स्थानीय जरूरतों और रुचियों के अनुसार अपने उत्पादों को ढाल रहे हैं । इस तरह भूमंडलीकरण स्थानीयता का रूप ग्रहण कर रहा है और बहुराष्ट्रीय निगमों की यह स्थानीयता दरअसल वैश्विक उपभोक्ता मूल्यों और व्यापार संस्कृति को प्रोत्साहित करते हैं ।

इस सन्दर्भ में सांस्कृतिक उपनिवेशवाद की अवधारणा भी नया स्वरूप ग्रहण कर रही है और आज यह पहले से कहीं अधिक व्यापक गहरी और विशालकाय हो चुकी है । वैश्विक सूचना और संचार तंत्र पर आज पश्चिमी देशों का नियंत्रण और प्रभुत्व उससे कहीं अधिक मजबूत हो चुका है जिसे लेकर कुछ दशक पहले विकासशील देशों में विरोध के प्रबल स्वर उठ रहे थे । आज अगर सांस्कृतिक उपनिवेशवाद पर पहले जैसी बहस नहीं चल रही है और न ही पहले जैसा प्रतिरोध हो रहा है तो इसका मुख्य कारण यही है कि शीतयुद्ध के बाद उभरी विश्व व्यवस्था में विकासशील देशों की सामूहिक सौदेबाजी की क्षमता क्षीण हो गयी है । विकासशील देशों की सरकारों के स्तर पर इस तरह के प्रभुत्व का कोई प्रतिरोध न होने के कारण एक सीमा तक यह प्रतिरोध धार्मिक कट्टरपंथ जैसे नकारात्मक रूपों में अभिव्यक्त हो रहा है ।

शीतयुद्ध के बाद दो विचारधाराओं के बीच संघर्ष का अंत हो गया । पश्चिम की पूँजीवादी विचारधारा ही प्रभुत्वकारी बन गयी और इसका कोई वास्तविक रूप से प्रभावशाली विकल्प नहीं उभर पाया । इन कारणों से पश्चिमी शैली की उदार लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था, आर्थिक स्तर पर मुक्त अर्थतंत्र और निगम भूमंडलीकरण- यही आज की विश्व व्यवस्था के मुख्य स्तंभ हैं । राजनीतिक अर्थव्यवस्था के इस स्वरूप के अनुरूप ही सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य ढल रहे हैं इसलिए यह कहा जा सकता है कि मौजूदा विश्वव्यवस्था में पश्चिमी जीवन शैली और सांस्कृतिक मूल्यों का ही विस्तार हो रहा है और वैश्विक मीडिया

इसमें अग्रणी भूमिका अदा कर रहा है । दरअसल भूमंडलीकरण की मौजूदा प्रक्रिया एक "टोटल पैकेज" है जिसमें राजनीति, आर्थिक और सांस्कृतिक तीनों ही पक्ष शामिल हैं । मीडिया नयी जीवनशैली और नये मूल्यों का इस तरह सृजन करता है जिससे नये उत्पादों की मांग पैदा की जा सके और एक बाजार का सृजन किया जा सके । अनेक अवसरों पर मीडिया ऐसे उत्पादों की भी मांग पैदा करता है जो स्वाभाविक और वास्तविक रूप से किसी समाज की मांग नहीं होते हैं।

निष्कर्ष के तौर पर यह कह सकते हैं कि शीतयुद्ध के उपरांत उभरी विश्व व्यवस्था पर राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से पश्चिम का दबदबा है और वैश्विक मीडिया को भी यही नियंत्रित करता है । मीडिया पर नियंत्रण का मतलब किसी भी व्यक्ति, देश, संस्कृति, समाज आदि की छवि पर भी नियंत्रण करना है और इसी नियंत्रण से सही गलत के पैमाने निर्धारित होते हैं । मीडिया के नियंत्रण से विरोधी को शैतान साबित किया जा सकता है और अपनी तमाम बुराइयों को दबाकर अपनी थोड़ी से अच्छाईयों का ढिंढोरा पीटा जा सकता है । मीडिया ऐसे मूल्य और मानक तय करता है जिनके आधार पर यह तय होता है कि कौन-सा व्यवहार सभ्य है और कौन सा असभ्य? इसी निर्धारण से सांस्कृतिक उपनिवेशवाद की सीमा शुरू होती है ।

11.6 भारतीय जनसंचार परिदृश्य

समकालीन भारतीय जनसंचार परिदृश्य में वैश्विक स्तर की विकासयात्रा की छवियां देखी जा सकती हैं । मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि अगर पिछले 50 साल का भारतीय जनसंचार मीडिया अपने आप में अनोखा था और इसके वैश्विक या पश्चिमी जनसंचार के बीच कोई खास समानता नही थी । लेकिन आज इतने ही निश्चय से यह भी कह सकते हैं कि भारतीय और पश्चिमी जनसंचार के बीच समानता लगातार बढ़ रही है और अंतर दिनोंदिन संकुचित होते जा रहे हैं । मीडिया के पिछले 50 वर्षा के इतिहास को मोटे तौर पर तीन चरणों में विभाजित कर सकते हैं ।

पहले चरण की बात करें तो यह स्वतंत्रता के बाद का जनसंचार मीडिया था जो मुख्य रूप से आर्थिक स्वतंत्रता को पुख्ता करने और काफी हद तक सामाजिक सुधारों के प्रति प्रतिबद्ध था । उस दौर में राजनीतिक स्तर पर विकास और एक आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था का निर्माण देश के एजेंडे में सबसे अपर थे और इसमें मीडिया भी सरकार का सहभागी था । आजादी के दौरान की मिशनरी पत्रकारिता की छाप इस दौर के मीडिया पर नजर आती थी । विकास और सामाजिक परिवर्तन पूरे राष्ट्रीय जीवन को उद्वेलित किये हुए थे और मीडिया भी अभिन्न रूप से इस बड़े परिवर्तन के साथ जुड़ा हुआ था । छठे दशक में देश की राजनीति बदलने लगी थी और सत्ता पर कांग्रेस का एकाधिकार रू रहा था । 1967 में देश के कई राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारें सत्तासीन हुई और इसी के अनुरूप मीडिया में भी परिवर्तन आए । विकास और सामाजिक परिवर्तन को लेकर सरकार और मीडिया की जो भागीदारी थी उसमें दरारें पड़ने लगीं। सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार का प्रवेश होने लगा, तो दूसरी ओर नयी प्रौद्योगिकियों के बल पर मीडिया में व्यापारीकरण का प्रवेश होने लगा ।

इस ऐतिहासिक घटनाक्रम के उपरांत यानी 70 के दशक में दूसरे चरण की पत्रकारिता अस्तित्व में आई जिसमें पेशेवर तत्त्वों का प्रभाव बढ़ने लगा । एक तरह की वस्तुपरकता और निष्पक्षता की पत्रकारिता और सरकार के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण रखने वाली मीडिया का उदय हुआ । इस दौर में चाहे समाचार मीडिया हो या हिन्दी सिनेमा सब जगह एक खास तरह के आक्रोश के स्वर अभिव्यक्त हो रहे थे । इस रूझान का मुख्य कारण बदलती राजनीतिक परिस्थितियाँ भी थीं । एक ओर तो विचारधारात्मक राजनीतिक संघर्ष तेज हो रहे थे और दूसरी ओर सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार की जड़ें फैल रही थीं । इन रूझानों की अभिव्यक्ति मीडिया में भी हो रही थी और कुछ मौकों पर मीडिया ने 'वाचडॉग की भूमिका अदा की और भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया । इसके साथ ही आलोचनात्मक पत्रकारिता भी प्रखर हुई और इस दौर में एक व्यवस्था (सरकार) विरोधी मीडिया का उदय हुआ ।

तीसरे चरण की शुरुआत को नब्बे के दशक से जोड़ा जा सकता है जब भारत समेत दुनियाभर में मुक्त अर्थव्यवस्था की ओर उन्मुख आर्थिक सुधारों का दौर चला । इस दौरान निजीकरण और नयी प्रौद्योगिकी की मदद से उत्पादकता और कुशलता में तेज इजाफा हुआ । निजी क्षेत्र का उद्योग नयी प्रौद्योगिकी को आत्मसात करने में अधिक गतिशील साबित हुआ और जिसकी वजह से इसकी उत्पादकता और कुशलता में भारी वृद्धि हुई और सम्पत्ति के सृजन की इसकी क्षमता नये आसमान छूने लगी । इसी दौरान सार्वजनिक क्षेत्र पर टिकी अर्थव्यवस्था जड़ता का शिकार होती चली गयी और चंद अपवादों को छोड़कर सार्वजनिक प्रतिष्ठान आर्थिक रूप से टिकाऊ साबित नहीं हो सके । उदारीकरण और निजीकरण के इस दौर में आर्थिक समृद्धि का एक बड़ा उफान आया और एक नया वर्ग पैदा हुआ जिसके पास अच्छी खासी क्रय शक्ति थी और यह पारंपरिक भारतीय मध्यमवर्ग की तुलना में कहीं बड़ा उपभोक्ता था । आज देश में जो उपभोक्ता क्रांति देखने को मिल रही है उसका झंडाबरदार यही वर्ग है । यह उपभोक्ता क्रांति अभी जारी है और एक नये दौर की मीडिया क्रांति इसी वर्ग पर टिकी है । इस नये बाजार के उदय के बाद अन्य उपभोक्ता उत्पादों के साथ-साथ मीडिया उत्पादों की मांग में भारी वृद्धि, हुई। देश में मीडिया और मनोरंजन उद्योग का तेजी से विस्तार इसी उपभोक्ता क्रांति के बल पर हो रहा है । इन रूझानों के चलते 1990 के दशक में मीडिया के व्यापारीकरण का नया दौर शुरू हुआ जिसकी गति और आकार अपने आप में बेमिसाल थी । इस दौर में मीडिया व्यापार की ओर अधिकाधिक झुकता चला गया और सार्वजनिक हित की पूर्ति करने की इसकी भूमिका हास हुआ ।

आर्थिक सुधारों से आयी संपन्नता से सराबोर नया मध्यमवर्ग एक बड़ा उपभोक्ता बनकर उभर चुका था और मीडिया अब सार्वजनिक व्यापारिक उद्यम से हटकर व्यापारिक-सार्वजनिक उद्यम बन चुका था । सार्वजनिक हित की बजाय व्यापारिक हित मीडिया के केंद्र में आ गए थे । आज मीडिया के व्यापारीकरण की यह प्रक्रिया अपने चरम पर है । एक व्यापारिक उद्यम के रूप में मीडिया की करीब पिछले 20 वर्षा की यात्रा जबरदस्त सफलताओं से भरी पड़ी है । जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका है मीडिया और मनोरंजन उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था के सबसे तेजी से विकसित होते क्षेत्रों में से एक है । फिक्की द्वारा कराये गये एक

अध्ययन की रिपोर्ट (2008) के मुताबिक आने वाले कुछ वर्षो में भारतीय मीडिया और मनोरंजन उद्योग की वृद्धि दर सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की तुलना में दोगुनी रहेगी । रिपोर्ट के अनुसार सन 2008 में 19 प्रतिशत वृद्धि दर के साथ यह उद्योग 79 अरब डॉलर का था जो सन 2010 तब बढ़कर 18 अरब डीलर का हो जाएगा ।

भारतीय मीडिया बाजार एक हद तक भूमंडलीकृत हो चुका है और विश्व के बड़े-बड़े बहुराष्ट्रीय निगम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय मीडिया में प्रवेश कर रहे हैं । सरकार की उदारीकरण की नीति से भी इस प्रक्रिया को काफी बल मिला है । एक समय था जब मीडिया को वैचारिक और सांस्कृतिक उद्यम की श्रेणी में मानकर इस क्षेत्र में विदेशी स्वामित्व और निवेश लगभग वर्जित था । लेकिन अब सरकार ने मीडिया कम्पनी में 26 प्रतिशत तक विदेशी स्वामित्व की इस शर्त पर अनुमति दे दी है कि इसकी 51 प्रतिशत हिस्सेदारी (इक्विटी) किसी भारतीय के पास होनी चाहिए । वहीं गैर-समाचार मीडिया में 100 प्रतिशत विदेशी निवेश किया जा सकता है । केबल और डीटीएच में सरकार ने 49 प्रतिशत की विदेशी हिस्सेदारी की अनुमति दी है । सरकार पर विदेशी निवेश और हिस्सेदारी को और भी उदार बनाने के लिए दबाव है और आने वाले समय में किसी न किसी रूप में मीडिया में विदेशी उपस्थिति का विस्तार होगा । विदेशी निवेश और हिस्सेदारी से भारतीय मीडिया और मनोरंजन उद्योग को नयी ताकत मिलेगी और इसके विस्तार की गति और भी तेज होगी । दुनिया के कई बड़े-बड़े बहुराष्ट्रीय निगम भारतीय बाजार में प्रवेश कर चुके हैं और कई अन्य प्रवेश करने के लिए कमर कस रहे हैं ।

हाल ही में भारतीय मीडिया बाजार का तेजी से विस्तार हुआ है और इसके विस्तार की संभावनाएँ लगातार विस्तृत होती जा रही है । भारत में 30 करोड़ का मध्यवर्ग आका गया है । मध्यवर्ग से आशय उस तबके से है जिसके पास अतिरिक्त क्रय शक्ति होती है । यही मध्यमवर्ग तमाम तरह के उपभोक्ता उत्पादों का संभावित खरीददार होता है । भारतीय बाजार के इस विस्तार के साथ ही मीडिया का बाजार भी विकसित ओर विस्तृत हो रहा है । विकसित इस रूप में कि नये-नये विशेषीकृत उत्पादों का बाजार उभर रहा है । विस्तृत इस रूप में कि इसका आकार तेजी से बढ़ रहा है ।

नेशनल रीडरशिप सर्वे (एन.आर.एस.) 2006 की रिपोर्ट में साक्षरता दर 71 प्रतिशत आँकी गयी थी । यानी इस आकड़ों और मीडिया के मौजूदा बाजार के आकार के हिसाब से इस वक्त 37 करोड़ लोग ऐसे हैं जो पढ़-लिख सकते हैं लेकिन अभी किसी मीडिया उत्पाद का उपभोग नहीं कर रहे हैं । इसके अलावा भारत में अभी 27 प्रतिशत लोग समाचारपत्र पढ़ते हैं जबकि विश्व में यह औसत 50 प्रतिशत है । इन तमाम आकड़ों से सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि भारतीय मीडिया बाजार कितना विस्तृत होने जा रहा है और इसमें लाभकारी व्यापार की कितनी संभावनाएँ पैदा होती जा रही हैं ।

इन रूझानों के चलते हाल ही के वर्षो में देश में प्रिण्ट, रेडियो, टेलीविजन और इंटरनेट का तेजी से विस्तार हो रहा है । आज बाजार के बदलते स्वरूप और तेज होती होड़ के कारण भले ही कुछ मीडिया संगठन बंद हो रहे हों या छोटे हो रहे हों लेकिन सकल रूप से हम देखें

तो मीडिया के हर क्षेत्र में तेज वृद्धि ही रिकॉर्ड की गयी है । एन।आर.एस. 2006 (इसके बाद की रिपोर्ट अभी प्रकाशित नहीं हुई) के अनुसार देश के 22 करोड़ लोग समाचार पत्रिकाओं के दायरे में आ चुके थे । भारतीय भाषायी मीडिया के विस्तार से ग्रामीण क्षेत्रों में समाचारपत्र पढ़ने वालों की संख्या में अधिक तेज विस्तार देखने को मिला और इसकी तुलना में अंग्रेजी मीडिया में वृद्धि दर कम रही और इसमें लगातार कमी होने के संकेत हैं । शहरी क्षेत्रों में 45 प्रतिशत और ग्रामीण क्षेत्रों में 19 प्रतिशत लोग समाचारपत्र पढ़ते हैं लेकिन संख्या के हिसाब से शहर और गाँव में समाचार पढ़ने वाले लोग लगभग बराबर यानी लगभग 11 - 11 करोड़ हैं । हालांकि प्रिण्ट मीडिया का विस्तार तो जारी है लेकिन पत्रिकाओं का बाजार सिकुड़ रहा है । लेकिन अनेक ऐसी पत्रिकाओं का उदय हुआ है जो एक छोरे से खास वर्ग की जरूरतों की शर्त करती हैं । पत्रिकाओं की इस नयी प्रवृत्ति में वे पत्रिकाएँ शामिल हैं जो विज्ञान, स्वास्थ्य चिकित्सा जैसे क्षेत्रों के बारे में विशेषज्ञीकृत ज्ञान लिये होती हैं ।

इसी तरह हाल ही के वर्षों में टेलीविजन का तेजी से विस्तार हुआ है । एन.आरसी. की रिपोर्ट के अनुसार देश के करीब 11.2 करोड़ घरों में टेलीविजन सैट लगे हैं और इनमें से 65 प्रतिशत घर ऐसे हैं जो केबल-सेटेलाइट चैनलों से जुड़े हैं । इस आधार पर यह कह सकते हैं कि देश में 6-7 करोड़ ऐसे घर हैं जहाँ टेलीविजन के कम से कम 100 चैनल पहुँच रहे हैं । फिक्की द्वारा प्रायोजित एक रिपोर्ट के अनुसार 2010 तक कम से कम 30 प्रतिशत टेलीविजन घरों में डिजीटल टीवी होगा ।

आकाशवाणी के विशाल नेटवर्क के कारण रेडियो की पहुँच लगभग देश के हर। कोने में हैं । ग्रामीण भारत में रेडियो हमेशा से ही सशक्त माध्यम रहा है । हाल ही में एक समय ऐसा लग रहा था कि चौबीसों घंटों के टेलीविजन चैनलों और छोटे-छोटे शहरों में भी दैनिक समाचारपत्रों के संस्करण निकलने से रेडियो विलुप्त सा होता जा रहा था लेकिन अचानक ही एफएम रेडियो के कारण इस सैक्टर में एक क्रांति सी आयी जिसकी बदौलत रेडियो ने जबर्दस्त वापसी की । हाल ही के वर्षा में मीडिया में रेडियो सैक्टर का सबसे तेजी से विस्तार हुआ है । एनआरएस के अनुसार देश में 27 प्रतिशत लोग रेडियो सुनते हैं । लेकिन रेडियो मीडिया के सन्दर्भ में किसी भी सर्वे के आकड़ों का आलोचनात्मक मूल्यांकन जरूरी हो जाता है क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में रेडियो की गहरी पैठ को मापने के लिए कोई सटीक पैमाना नहीं है ।

इसी तरह इंटरनेट के उपभोक्ताओं की संख्या का आंकलन करना भी मुश्किल है । एन.आर.एस. ने इंटरनेट उपभोक्ताओं की संख्या 94 लाख आंकी थी लेकिन पिछले दो-तीन वर्षा में इंटरनेट का उपयोग जिस तरह बढ़ा है उसके सामने यह आकड़ा प्राचीन इतिहास जैसा नजर आता है । सिनेमाहॉल जाने वालों की संख्या लगातार गिर रही है । लेकिन टेलीविजन चैनलों के माध्यम से संगीत और मनोरंजन के! उपभोक्ताओं की संख्या में तीव्रतर वृद्धि हो रही है ।

11.7 हिन्दी मीडिया

भारतीय मीडिया के मानचित्र पर जो भारी परिवर्तन आ रहे हैं इनमें सबसे बड़ा और एक हद तक ऐतिहासिक परिवर्तन भारतीय भाषाओं और खारा तौर से हिन्दी भाषा के मीडिया का भारी विस्तार है । भारतीय भाषाओं के समाचारपत्रों को पढ़ने वालों की संख्या 20 करोड़ से

कहीं अधिक हो चुकी है और अंग्रेजी पढ़ने वाले लोग 2 करोड़ के लगभग हैं । हाल ही के वर्षा में अंग्रेजी की तुलना में हिन्दी समाचारपत्र के पाठकों की संख्या में वृद्धि हुई । एक अनुमान के अनुसार देश के समाचारपत्रों के बाजार में हिन्दी समाचारपत्रों का हिस्सा 44 प्रतिशत और अन्य भारतीय भाषाओं का 46 प्रतिशत और अंग्रेजी का महज 10 प्रतिशत हिस्सा है: । देश में एक तरह की मीडिया क्रांति अगर आयी है तो इसका मुख्य कारण हिन्दी मीडिया की चहुंमुखी वृद्धि और विकास है । सत्तर के दशक में नयी प्रौद्योगिकी के आने के समय से ही हिन्दी मीडिया का विस्तार शुरू हो गवा था । नयी प्रौद्योगिकी से समाचारों को कई केंद्रों से प्रकाशित करना संभव हो गया । इससे मीडिया तक लोगों की पहुँच का विस्तार हुआ और इसी के साथ साक्षरता बढ़ने से नये-नये लोग समाचार पत्र पढ़ने लगे । क्रयशक्ति बढने से भी अधिक लोग समाचारपत्र खरीदने लगे । ग्रामीण क्षेत्रों में संचार की सुविधाओं के कारण एक बड़ा स्थानीय और ग्रामीण बाजार का उदय हुआ है जिस पर हिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी मीडिया का लगभग एकाधिकार है । साक्षरता के सन्दर्भ में यह बात महत्त्वपूर्ण है । हिन्दी भाषी क्षेत्रों में नवसाक्षर केवल हिन्दी ही पढ़-लिख सकते थे जबकि अंग्रेजी पढ़-लिख सकने वाले पहले से ही समाचारपत्रों के पाठक थे । इसलिए पिछले कुछ दशकों में हिन्दीभाषी क्षेत्रों में समाचारपत्रों का जितना भी विस्तार हुआ है उसका बहुत बड़ा हिस्सा हिन्दी मीडिया के खाते में ही जाता है ।

आज देश में सबसे ज्यादा पढ़े जाने वाले पहले और दूसरे नंबर के समाचारपत्र हिन्दी में हैं । देश के दस सबसे बड़े समाचारपत्रों में नौ हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के हैं । मोटे तौर पर यह कह सकते हैं कि सत्तर के दशक में हिन्दी मीडिया में एक क्रांति की शुरूआत हुई । इस दौर में हिन्दी मीडिया का जबरदस्त विस्तार हुआ और साथ ही इसके ढाँचे और स्वामित्व में भी बड़े परिवर्तन आए । परम्परागत रूप से भारतीय मीडिया को राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और जिला स्तर पर बांटा जाता था । इस समाचारपत्र की क्रांति के दौर में क्षेत्रीय मीडिया का सबसे अधिक विस्तार हुआ और राष्ट्रीय मीडिया के भी उस हिस्से का भी विस्तार हुआ जिसने क्षेत्रीय मीडिया में प्रवेश किया । समाचारपत्रों के अनेक स्थानों के प्रकाशन और समाचारों के स्थानीयकरण से जिला स्तर का वह छोटा प्रेस विलुप्त हो गया जिसका सर्कुलेशन हजार-दो हजार होता था और जो स्थानीय समस्याओं पर केंद्रित था । अब बड़े अखबार ही स्थानीय अखबार की जरूरतों को पूरा करने लगे।

नब्बे के दशक के मीडिया का व्यापारीकरण और विस्तार भी भारतीय भाषाओं पर ही केंद्रित रहा है और इस विस्तार का सबसे बड़ा हिस्सा हिन्दी मीडिया का ही था । पिछले कुछ समय में मीडिया और मनोरंजन उद्योग में जो बेमिसाल वृद्धि हुई है वह मुख्य रूप से भारतीय और हिन्दी भाषा में ही हुई है । टेलीविजन ने मात्र दस वर्षा में एक बड़े उद्योग का रूप धारण कर लिया है । टेलीविजन ने आज देश के राजनीतिक और सामाजिक मानचित्र पर अपने लिए अहम और महत्त्वपूर्ण भूमिका अर्जित कर ली है । आज देश के पूरे मीडिया और मनोरंजन उद्योग में टेलीविजन का हिस्सा सबसे अधिक है । भारत दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा केबल टेलीविजन का बाजार है । दरअसल टेलीविजन माध्यम अपने स्वभाव से अंतरंग मीडिया है और साथ ही यह लोकप्रिय संस्कृति से भी काफी गहरे से संबद्ध रखता है । इस कारण टेलीविजन माध्यम अपने स्वभाव से काफी हद तक एकमात्र भाषाई माध्यम है । इसके परिणामस्वरूप

टेलीविजन मीडिया का हिन्दी भाषी राज्यों में जो विस्तार हो रहा है वह एक तरह से हिन्दी मीडिया का ही विस्तार है । सिनेमा और मनोरंजन के क्षेत्र में हिन्दी मीडिया केवल हिन्दीभाषी प्रदेशों तक ही सीमित नहीं है बल्कि पूरे देश में ही अच्छा खासा बाजार पैदा कर चुका है । इस इकाई में भारतीय मीडिया के विकास के जिन रुझानों का विवरण दिया गया है उसी दिशा में हिन्दी मीडिया की भी वृद्धि और विकास हो रहा है । दरअसल भारत की मौजूदा मीडिया क्रांति के बाद हिन्दी मीडिया का ही सबसे तेजतर विस्तार हुआ है और आने वाले समय में यह रुझान और भी प्रबल होने के संकेत स्पष्ट हैं 1

1.8 सारांश

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' नाम छठे पाठ्यक्रम के दूसरे खंड की इस इकाई में जनसंचार के समकालीन परिदृश्य से परिचय कराया गया है । इसके अंतर्गत अंतरराष्ट्रीय, भारतीय और हिन्दी मीडिया की वर्तमान स्थिति का विवरण प्रस्तुत किया गया है । जनसंचार के वर्तमान परिदृश्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस विस्तार की पृष्ठभूमि में वह प्रौद्योगिकी विकास है जिसने ऐसे माध्यमों को संभव बनाया जिसकी पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी । दूरसंचार, कृत्रिम उपग्रह, कंप्यूटर आदि ने संचार के क्षेत्र में क्रांति ला दी है । इंटरनेट ने तो अब तक इस क्षेत्र में हुई सभी उपलब्धियों को अपने में समाहित कर लिया है । मीडिया के इस विस्तार ने एक विस्तृत मीडिया का विश्व बाजार विकसित किया है । इस बाजार पर विश्व के विशाल बहुराष्ट्रीय निगमों का वर्चस्व है । ये बहुराष्ट्रीय निगम मीडिया के माध्यम से केवल बाजार का ही विस्तार नहीं कर रहे हैं बल्कि विकसित देशों के हितों के पक्ष में राजनीतिक माहौल बनाने का काम कर रहे हैं । इसके साथ ही सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में भी वे अपना प्रभाव बढ़ाने में सक्षम हैं ।

भारत इस सूचना और संचार क्रांति से अलग नहीं है । आज देश के लगभग सभी भागों में नवीन माध्यमों का फैलाव हो चुका है । लेकिन आर्थिक और शैक्षिक कारणों से लगभग एक-तिहाई आबादी इससे बाहर है । 1980 के दशक तक तीसरी दुनिया के देश मीडिया के क्षेत्र में विकसित देशों के वर्चस्व का विरोध कर रहे थे. लेकिन 1980 के बाद के दशकों में यह विरोध धीमा पड़ता गया है और पश्चिम का वर्चस्व बढ़ता गया है । इस अवधि में रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, टेलीफोन, इंटरनेट, मोबाइल सभी का उपयोग करने वाले उपभोक्ताओं की संख्या में निरंतर और तेजी से वृद्धि हो रही है । लेकिन उनके माध्यम से प्रसारित होने वाले संदेशों का मकसद जनता का हित करना नहीं है, न ही जनता की आवाज को सत्ता की ऊँची मीनारों तक पहुँचाना है । इस नये मीडिया के लिए तो हर वस्तु मनोरंजन के लिए हैं । क्योंकि मनोरंजक होकर ही, वे जनता को प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों का उपभोग करने के लिए अपनी ओर खींच सकते हैं ।

इस अवधि में हिन्दी मीडिया का भी विस्तार हुआ । पत्र-पत्रिकाएँ, टेलीविजन और सिनेमा सभी में हिन्दी की उपस्थिति सबसे अधिक हैं । हिन्दी मीडिया 44 प्रतिशत ग्रहीताओं को अपनी ओर खींचने में कामयाब है । जनसंचार के समकालीन परिदृश्य के इन तीनों पक्षों के अध्ययन से आपको जनसंचार को समझने में आसानी हुई होगी ।

11.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जनसंचार के समकालीन परिदृश्य के पीछे निहित राजनीति परिप्रेक्ष्य की सोदाहरण व्याख्या कीजिए ।
2. भारतीय जनसंचार के वर्तमान परिदृश्य की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिये ।
3. जनसंचार के वैश्विक आयाम की पृष्ठभूमि में सक्रिय राजनीतिक और आर्थिक लक्ष्यों की विवेचना कीजिए ।
4. हिन्दी मीडिया की उन विशेषताओं का विवरण प्रस्तुत कीजिए जो उसे अन्य भाषायी मीडिया से अलग करती हो ।
5. समकालीन जनसंचार परिदृश्य के सांस्कृतिक आयाम विषय पर एक निबंध लिखिए ।

11.10 सन्दर्भ ग्रंथ

1. जबरीमल्ल पारख; जनसंचार के सामाजिक संदर्भ, 2001, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 29ए, पाकेट-डी, दीप एन्क्लेव, अशोक विहार, दिल्ली- 110052
2. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली, 2000
3. सुभाष धूलिया; संचार क्रांति की राजनीति और विचारधारा, लेखक, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
4. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, अनुवादक, ओमप्रकाश मालवीय; संचार मध्यम और पूँजीवादी समाज, संपादक, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
5. मेनी वाइसेज वन वर्ल्ड, संपादक सीन मेकब्राइड, यूनेस्को का प्रतिवेदन, कोगन पेज लि, लंदन, संस्करण, 1988
6. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यम और सांस्कृतिक विमर्श, 2009 ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली- 110092.
7. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यमों का राजनीतिक चरित्र: 2006; अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली- 11002.
8. भूमंडलीय जनमाध्यम निगम पूँजीवाद के नए प्रचारक: एडवर्ड एस हरमन, रॉबर्ट डज्यू मैकचेस्ती, अनुवादक चंद्रभूषण, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली- 110092.

इकाई 12 जनसंचार माध्यम और जनमत निर्माण

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 सूचना की आवश्यकता और जनसंचार माध्यम
12.3 एजेंडा निर्धारित करना
12.4 मीडिया विमर्श और उसका व्यापारीकरण और विशेषज्ञीकृत प्रबंधन कला
12.5 जनमत और शासक वर्ग
12.6 जनमत की सीमाएँ
12.7 सारांश
12.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
12.9 सन्दर्भ ग्रंथ

12.0 उद्देश्य

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' पाठ्यक्रम की इस 12वी इकाई 'जनसंचार माध्यम और जनमत निर्माण का अध्ययन करेंगे । इस इकाई में इस बात पर विचार किया गया है कि लोगों को सूचना की आवश्यकता क्यों होती है और जनसंचार माध्यम सूचनाओं को प्रचारित और प्रसारित करने में क्या भूमिका निभाते हैं । जनसंचार माध्यम के मुख्य प्रकार्य हैं - सूचना, शिक्षा और मनोरंजन । लेकिन पिछले दो-तीन दशकों से जब से जनसंचार माध्यमों का भूमंडलीकृत विस्तार हुआ है और उस पर बहुराष्ट्रीय निगमों और राष्ट्रीय निगमों का वर्चस्व बढ़ा है, उसकी मुख्य भूमिका जनमत निर्माण करना हो गया है । जनमत निर्माण का उद्देश्य जनता को किसी खास राजनीतिक मत के पक्ष में एकजुट करना है । इस इकाई में आप जनमत निर्माण का अर्थ, वास्तविक जनमत और निर्मित जनमत में अंतर तथा जनमत निर्माण में मीडिया की भूमिका के निहितार्थो का अध्ययन करेंगे । इससे आप जनसंचार माध्यमों द्वारा जनमत निर्माण की कोशिशों को सही परिप्रेक्ष्य में समझ सकेंगे । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- सूचना की आवश्यकता और जनसंचार माध्यम के विभिन्न पहलुओं को समझ सकेंगे ।
- मीडिया विमर्श और उसका व्यापारीकरण और प्रबन्धक्ता के बारे में अपने विचार प्रस्तुत कर सकेंगे ।
- जनमत और शासक वर्ग के बीच के संवाद को समझ सकेंगे ।
- जनमत की सीमाओं के बारे में टिप्पणी कर सकेंगे ।

12.1 प्रस्तावना

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता पाठ्यक्रम के तीसरे खंड की यह पहली इकाई है । इस इकाई में आप जनसंचार माध्यम और जनमत निर्माण में उसकी भूमिका का अध्ययन करेंगे। इस इकाई से पूर्व आप जनसंचार की अवधारणा और स्वरूप और जनसंचार के विभिन्न सिद्धांतों का अध्ययन कर चुके हैं । इस खंड में जनसंचार और समाज के पारस्परिक संबंधों का विवेचन किया जाएगा । किसी भी व्यापक और विविध समाज में जनमत की कोई स्पष्ट अवधारणा निर्धारित करना संभव नहीं है लेकिन मोटे तौर पर यह कह सकते हैं कि किसी भी विषय पर व्यक्तिगत विचारों, दृष्टिकोणों और विश्वासों से समान बिंदुओं पर सहमति और इनकी सामूहिकता ही जनमत है । जनसंचार माध्यम इस सामूहिकता को अभिव्यक्ति प्रदान करते है । किन विषयों पर और किस 'तरह वे अभिव्यक्ति करते हैं इससे भी जनमत प्रभावित होता है । जनसंचार माध्यमों द्वारा जनमत की अभिव्यक्ति और इस अभिव्यक्ति से जनमत का निर्माण एक जटिल प्रक्रिया है और हाल ही के वर्षो की जनसंचार क्रांति से ये प्रक्रिया और भी जटिल हो गयी है । उनके ऐसे विषय होते हैं जिन पर एक जनमत विकसित होता है और जनसंचार माध्यमों से इसे अभिव्यक्ति मिलती है । लेकिन अनेक विषय ऐसे भी होते हैं जो 'जन' के हिसाब से ज्वलंत हो लेकिन आज के जनसंचार माध्यमों में इन्हें अभिव्यक्ति नहीं मिलती ।

यहाँ हम किसी भी विषय पर जनमत और जनसंचार माध्यमों के पारस्परिक संबंधों पर चर्चा करेंगे जिनसे राजनीति और समाज प्रभावित होते हैं । यहाँ हम उस जनमत की चर्चा. करेंगे जो जनसंचार माध्यमों में अभिव्यक्ति पाते हैं और यह एक तरह से प्रभावी और कार्यशील जनमत है जो राजनीति और समाज को प्रभावित करता है । इस कार्यशील और प्रभावी जनमत में जनसंचार माध्यमों की अहम भूमिका होती है । इसके साथ ही यह उल्लेख करना भी जरूरी है कि एक वास्तविक जनमत होता है और जनसंचार माध्यमों में अभिव्यक्ति न पाने के कारण इसका तात्कालिक प्रभाव नहीं होता ।

12.2 सूचना की आवश्यकता और जनसंचार माध्यम

जनसंचार माध्यमों से ही लोगों को किसी विषय के बारे में अधिकांश जानकारियाँ मिलती हैं जिसमें किसी विषय के बारे में सूचना और विचार और इससे सृजित होने वाला ज्ञान शामिल है । आधुनिक समाज के सन्दर्भ में हम कह सकते हैं कि छवि का संचार है । किसी भी ऐसे विषय के बारे में हम इसके बारे में प्राप्त सूचनाओं के आधार पर ही इसकी एक छवि विकसित करते हैं और इस विषय पर यही छवि हमारे लिए यथार्थ होती है । वास्तविक रूप से दुनिया का यह एक छोटा-सा ही हिस्सा होता है जो स्वयं हमारे अपने प्रत्यक्ष अनुभवों के दायरे में होता है और इसके बारे में कोई जानकारी के लिए हम किसी बाहरी सूचना माध्यम पर निर्भर न होकर खुद ही इसके बारे में जानकारी हासिल करते हैं । लेकिन हमारे प्रत्यक्ष दायरे की इस छोटी सी दुनिया के बाहर का जो व्यापक संसार है उसके बारे में हमें जो बताया जाता है उसी के अनुसार हम इसके यथार्थ का सृजन करते हैं ।

किसी भी विषय पर सूचनाएँ प्राप्त करने के अनेक' साधन हो सकते हैं । संचार के अनेक तरीके से अनेक विषयों के बारे में हमें सूचनाएँ मिलती हैं या हम सूचनाएँ इकट्ठा करते हैं। हाल ही के वर्षो में किसी भी विषय पर जानकारियाँ हासिल करने के लिए लोग अधिकाधिक जनसंचार माध्यमों पर निर्भर होते जा रहे हैं । दुनिया में सूचना क्रांति के दौरान सूचनाओं का विशाल महासागर पैदा हो गया है लेकिन इसके साथ ही हमारे पड़ोस में होने वाली घटनाओं के बारे में भी जानकारी हमें जनसंचार माध्यमों से ही मिलती है और इसी के आधार पर हम कोई मत और दृष्टिकोण विकसित करते हैं । इस सन्दर्भ में यह भी समझना जरूरी हो जाता है कि जनसंचार माध्यम किन घटनाओं, विचारों और समस्याओं को समाचार योग्य समझते हैं और फिर इनके किस पक्ष और पहलू को कितना महत्त्वपूर्ण आंकते हैं । घटना के किसी एक खास पक्ष को उजागर कर घटना के बारे में पहला प्रभाव पैदा कर दिया जाता है ।

देश दुनिया में रोज ही हजारों घटनाएँ होती है और हर घटना के बारे में जानकारियों का अंबार होता है लेकिन जनसंचार माध्यम कुछ ही घटनाओं को समाचार योग्य मानते हैं और इस घटना के बारे में चंद जानकारियों को समाचार में शामिल करते हैं । जनसंचार माध्यम समाचारीय घटनाओं और इनके बारे में जानकारियों के मानदंड तय करती है । इस रूप में विचार और बहस के वही मुद्दे हावी रहते हैं जिनके बारे में जनसंचार माध्यम हमें जानकारियाँ देते हैं । इस दृष्टि से जनसंचार माध्यम एक मध्यस्थ की भूमिका अदा करते हैं और हमें बताते हैं कि देश और दुनिया की महत्वपूर्ण घटनाएं कौन-सी हैं और फिर इन घटनाओं के बारे में जानकारियों का चयन कर इन्हें कुछ अर्थ प्रदान करते हैं, एक परिप्रेक्ष्य में इनका प्रस्तुतीकरण करते हैं । चयन और प्रस्तुतीकरण की इस प्रक्रिया से ही जनसंचार माध्यम हमें बताते हैं कि कौन से विषय महत्त्वपूर्ण हैं और इन विषयों के बारे में हमें किस तरह सोचना चाहिए और इस तरह इन विषयों पर एक जनमत के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं । जनसंचार माध्यम हमें भले ही यह न बताते हों कि हम क्या सोचें लेकिन काफी हद तक यह बताने में सफल होते हैं कि वे विषय कौन-से हैं जिनके बारे में हमें सोचना चाहिए । इसके समानांतर ढेर सारे ऐसे विषय और घटनाएँ होती हैं जिन्हें जनसंचार माध्यमों में कोई उल्लेख नहीं होता ।

12.3 एजेंडा निर्धारित करना

इस प्रक्रिया में जनसंचार माध्यम एक तरह से एजेंडा निर्धारित करते हैं- ये तय करते हैं कि आज कौन-कौन से विषय 7 मुद्दे हैं जो एक राष्ट्र के रूप में और एक समाज के रूप में हमसे सरोकार रखते हैं । हम कह सकते हैं कि इन विषयों पर इस तरह से सृजित होने वाले जनमत से ही एक समाज, एक राष्ट्र और एक सरकार की अपनी प्राथमिकताएँ तय होती है । यही जनमत सार्वजनिक जीवन को प्रभावित करता है और एक लोकतंत्र में इस तरह सृजित जनमत की अहम भूमिका होती है । लोकतंत्र की अवधारणा का आधार ही यही है कि किसी भी विषय पर लोगों को इतनी पर्याप्त जानकारियाँ प्राप्त हों कि इस पर वे एक सही मत का निर्माण कर सकें और राजनीतिक जीवन में सक्रिय भागीदार बन सकें । एक आदर्श स्थिति में लोकतंत्र का मतलब ही यही है कि निर्वाचित सरकार आम लोगों के हितों और सरोकारों का प्रतिनिधित्व करे । इस प्रतिनिधित्व के संपूर्ण होने की स्थिति में ही आम लोगों का एजेंडा

(पब्लिक एजेंडा) ही सरकार का बन सकता है । सरकार के कार्यकाल के लिए पब्लिक एजेंडा ही इसका जनादेश (मेंडेट) होता है । सैद्धांतिक रूप से लोकतंत्र का चौथा स्तंभ होने के नाते जनसंचार माध्यमों का यही कर्तव्य और उत्तरदायित्व होता है । जब कभी पब्लिक एजेंडा और सरकार के एजेंडा में कोई दूरी पैदा हो तो वह इसमें हस्तक्षेप करके इस दूरी को पाटने का प्रयास करें ।

चौथे स्तम्भ और 'वाचडॉग की भूमिका में जनसंचार माध्यमों को सरकार के कामकाज के बारे में लोगों को सूचना देना और लोगों के पक्ष में सरकार पर नजर रखना होता है । इस दृष्टि से एक आदर्श स्थिति यही होती है कि पब्लिक एजेंडा, सरकार का एजेंडा और मीडिया एजेंडा में परस्पर संवाद बना रहे और एक ऐसा तंत्र अस्तित्व में रहे कि इनके बीच पनपने वाली किसी भी दूरी, विरोधाभास या असंतुलन को दूर करने के लिए इनके पैदा होते ही सक्रिय हो उठे । लेकिन आज लोकतंत्र, जनमत और मीडिया के बीच इस तरह के तंत्र के चरित्र और स्वरूप ही बहस का बड़ा मुद्दा बन गया है । आज एक तर्क यह भी है कि पब्लिक और सरकार के बीच एक मध्यस्थ की भूमिका अदा करने की बजाय जनसंचार माध्यमों का एक अपना एजेंडा भी है । इस तरह जनसंचार माध्यम जनमत को प्रतिबिंबित करने से कहीं अधिक जनमत को कुछ खास राजनीतिक और व्यापारिक हितों के अनुरूप ढालने की ओर अधिक झुके हैं । इस तरह आधुनिक जनसंचार माध्यमों में लोकतांत्रिक विमर्श का स्थान सीमित हुआ है या यह कह सकते हैं कि पूरी राजनीति का चरित्र और स्वरूप इस तरह बदल चुका है कि लोकतांत्रिक विमर्श की लोकपरिधि (पब्लिक स्पेयर) के भी वह अर्थ नहीं रह गए हैं जिस रूप में इसकी परिकल्पना की गयी थी ।

12.4 मीडिया विमर्श और उसका व्यापारीकरण और विशेषज्ञीकृत प्रबंधन कला

एक ओर तो हर तरह का विमर्श अधिकाधिक मीडिया के माध्यम से हो रहा है, तो दूसरी ओर, मीडिया का व्यापारीकरण हो रहा है जिसकी वजह से व्यापक मीडिया विमर्श की बजाय मुनाफा कमाने का उद्यम बन चुका है । आधुनिक समाज में संवाद और विमर्श के अनेक माध्यम लगभग विलुप्त और निष्प्रभावी से हो गए हैं । एक तर्क तो यह दिया गया कि आज लोकतंत्र भी सिमट कर मीडिया तक ही सीमित हो गया है और इस तरह लोकतंत्र का स्थान मीडियातंत्र ले चुका है । लोकपरिधि की परिकल्पना का सीधा संबंध जनमत और दूसरे माध्यम से लोकतंत्र में लोगों की भागीदारी को लेकर था लेकिन आज एक ऐसा परिदृश्य पैदा हो रहा है कि किसी विषय के पक्ष में भारी 'जनमत' होने के बावजूद भी पक्के तौर पर यह नहीं कहा जा सकता कि इस मुद्दे और इस जनमत को जनसंचार माध्यमों में अभिव्यक्ति मिले । सहमति के निर्माण की परिकल्पना भी कोई नयी नहीं रही है । बहुत पहले भी कहा गया था कि लोकतंत्र में जनसंचार माध्यमों के जरिये लोगों के बीच स्वाभाविक रूप से सहमति न होने पर भी एक ऐसे विमर्श का सृजन किया जा सकता है और इस विमर्श को ऐसे: रास्ते पर ले जाया जा सकता है कि आखिर में किसी भी विषय पर एक सहमति का निर्माण किया जा सके और इस तरह की निर्मित सहमति ही आधुनिक लोकतंत्र का आधार बन गई है । इसका आशय

यह है कि यह सहमति स्वाभाविक रूप से जनता के बीच से उभर कर नहीं आई बल्कि ऊपर से एक विशिष्ट, अभिजात शासक वर्ग ने इसे तैयार किया या यह भी कह सकते हैं कि इसे थोपा।

सहमति के निर्माण की इस परिकल्पना में भी हाल ही में भारी परिवर्तन आए हैं । अब आधुनिक जनसंचार माध्यम और इनके माध्यम से प्रचारित की गयी जानकारियाँ इस कदर विशेषज्ञीकृत हो चुकी है कि इन्हें किसी खास मकसद के लिए खास तरह से ढाल कर लोगों को एक खास रास्ता चुनने के लिए प्रेरित किया जा सकता है । जनसंचार माध्यम परम्परागत रूप से निश्चय ही लोकतांत्रिक विमर्श के माध्यम रहे हैं; इन्होंने उनके लोकहित और सामाजिक मुद्दों को उठाकर बड़े परिवर्तनों का मार्ग प्रशस्त किया; सशक्तीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई; सूचना संसाधन के लाभकारी उपयोग के मार्ग प्रशस्त हुए; सूचना और ज्ञान के संसार का भारी विस्तार हुआ; सूचना के स्रोतों में भारी वृद्धि हुई और लोगों के सामने हमने अनेक विकल्प प्रस्तुत किए । लेकिन सत्तर-अस्सी के दशक में जनसंचार माध्यमों की शक्ति और प्रभाव में भारी इजाफा हुआ और इसके साथ ही इनका स्वामित्व अधिकाधिक निगमीकृत होता चला गया । साथ ही वैचारिक संघर्ष की राजनीति के कमजोर पड़ने से भी जनसंचार माध्यमों पर जन-दबाव में कमी आई और व्यापारीकरण के रास्ते पर उन्मुख होने का इनका रास्ता आसान हो गया । इस दौरान मीडिया प्रबंधक की कला में निरंतर विकास हुआ और यह परिष्कृत होती चली गई । इस सदी के प्रारंभ में ही यह प्रक्रिया अपना लगभग संपूर्ण स्वरूप ग्रहण कर चुकी थी और इसका सबसे ज्वलंत उदाहरण इराक पर आक्रमण करने से पहले और आक्रमण करने के बाद भी अमेरिकी प्रशासन का मीडिया प्रबंधन और सूचना नियंत्रण रहा । स्वयं अमेरिका के मीडिया विशेषज्ञों ने यह साबित कर दिया है कि इराक पर आक्रमण को लेकर जनसंचार माध्यम के इस दौरे में सरकार द्वारा दी गई सूचनाओं पर ही निर्भर रहे और इस कारण तीन वर्षा तक इराक युद्ध को लेकर अमेरिकी नागरिकों को अंधेरे में रखा गया और युद्ध के पक्ष में जनमत निर्मित किया गया । आज सूचनाओं पर नियंत्रण और जनसंचार माध्यमों के प्रबंधन की कला अत्यंत परिष्कृत और विशेषज्ञीकृत हो चुकी है । आज किसी खास समय किसी खास विषय पर एक निर्धारित जनमत का निर्माण किया जा सकता है । इस दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि मौजूद दशक के दौरान मीडिया, जनसंचार माध्यम सहमति के निर्माण के अगले चरण में प्रवेश का चुके हैं । जिसमें सहमति का परम्परागत चरित्र और स्वरूप विकृत हो चुका है । जनसंचार माध्यमों राजनीति और जनमत का केंद्र नागरिकों का वह समुदाय है जो लोकतंत्र में मतदाता होता है । लोकतंत्र की अवधारणा के अनुसार राजनीतिक सत्ता पर इसी नागरिक समुदाय का नियंत्रण होना चाहिए । इसी समुदाय का मत वह क्रियाशील जनमत है जिसके कारण सरकार हारती-जीतती हैं और नीतिगत फैसले प्रभावित होते हैं । यही जनमत है जो लोकतंत्र का आधार होता है । इस जनमत के निर्माण में आधुनिक जनसंचार माध्यम अहम भूमिका अदा करते हैं । लेकिन जैसे-जैसे इस जनमत को तोड़ने-मरोड़ने की कला प्रभावशाली होती गई है इसी के साथ एक लोकतांत्रिक जनमत के निर्माण की जनसंचार के माध्यमों की भूमिका में भी जबरदस्त हास हुआ है । भले ही यह न कहा जा सके कि जनसंचार माध्यमों की यह भूमिका पूरी तरह विकृत हो चुकी है लेकिन इस बात की भी अनदेखी नहीं की जा सकती है कि लोकतंत्र का आधार एक सूचित और जानकार नागरिक ही हो सकता है । लेकिन व्यापारीकरण की प्रक्रिया और नई

उपभोक्ता संस्कृति के उदय के बाद एक नागरिक का उपभोक्ता वाला पक्ष ही हावी होता चला गया है । एक नागरिक सही तरह से सूचित और जानकारी होता है वहीं वह कह सकते है कि एक उपभोक्ता सही ढंग से सूचित नहीं होता और अनेक अवसरों पर इसकी सोच को कुछ खास मकसद की पूर्ति के लिए ढाला जा सकता है । जनसंचार माध्यमों के नागरिक से विमुख होकर उपभोक्ता पर केंद्रित होने से लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में अनेक ऐसे रुझान पैदा हो रहे हैं जिन्हें वास्तविक रूप से लोकतांत्रिक नहीं कहा "जा सकता ।

जनमत की अवधारणा का सबसे प्रबल रूप चुनाव के दौरान ही अभिव्यक्त होता! है । व्यापक नागरिक समुदाय और सत्ता पर नियंत्रण रखने वाले वर्ग के बीच हमेशा ही विरोधाभास रहे हैं लेकिन फिर भी लोकतांत्रिक विमर्श भी किसी न किसी रूप में अस्तित्व में रहा है और नागरिक समुदाय और शासक वर्ग के बीच एक सामंजस्य और संतुलन बनाए रखता है । इस सामंजस्य और संतुलन को बनाने में जनसंचार माध्यम महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं जब वे सरकार के एजेंडा और लोगों के एजेंडा के बीच की दूरी को बाँटने के लिए हस्तक्षेप करते हैं । लेकिन अक्सर यह देखा जा सकता है कि चुनाव के दौरान तो जनसंचार माध्यमों, राजनीतिज्ञ और पत्रकारों का एक ऐसा मंच सा उभर आता है जो मतदाताओं को आकृष्ट करने में जुटा रहता है और बाकी समय वास्तविक मुद्दों से लोगों का ध्यान हटाने पर केंद्रित रहता है । इस तरह की स्थिति का एक पक्ष यह भी है कि किसी न किसी रूप में शासक वर्ग सूचना प्रबंधन और जनसंपर्क की परिष्कृत तकनीकों का सहारा लेकर जनसंचार का इस्तेमाल करता है । इससे एक ऐसा परिदृश्य उभरता है कि सत्ताहीन तबके सूचना प्रबंधन और जनसंपर्क के परिष्कृत तरीकों से जनसंचार माध्यमों का इस्तेमाल व्यापक तबकों (शासितों) को जनमत के निर्माण और इसे प्रभावित करने के लिए करता है।

12.5 जनमत और शासक वर्ग

अस्सी के दशक की सूचना क्रांति के बाद जनसंचार माध्यमों की शक्ति और प्रचार निरंतर बदलता चला गया और इसी के साथ इनमें व्यापारीकरण की प्रक्रिया भी तेज हुई । सूचना क्रांति के साथ-साथ अस्सी के दशक में विकास का सोवियत मॉडल भी डगमगा गया । वैचारिक राजनीति का हास हुआ और नवउदारवादी भूमंडलीकरण से एक नए व्यापारिक मूल्यों और एक नयी उपभोक्ता संस्कृति का उदय हुआ । इन सबका जबर्दस्त प्रभाव जनसंचार माध्यमों पर भी पड़ा । जनसंचार माध्यम काफी हद तक इस प्रक्रिया का हिस्सा बन गये और राजनीतिक और व्यापारिक हितों के अधीन होते चले गए । व्यापारीकरण की यह प्रक्रिया आज अपने चरम पर है । भले ही विभिन्न देशों और विभिन्न समाजों में इसका रूप-स्वरूप कितना ही भिन्न क्यों न हो ।

जनसंचार माध्यमों की इस बदली भूमिका से सत्तासीन कुलीन वर्ग और नागरिकों के व्यापार समुदाय के बीच लोकतांत्रिक विमर्श का स्वरूप बदल ही नहीं गया है बल्कि इसमें निहित 'विमर्श' के तत्त्वों में जबर्दस्त हास हुआ है और नागरिक समुदाय के मत को तोड़ने-मरोड़ने और विकृत करने के लिए सूचना प्रबंधन और जनसंपर्क की परिष्कृत तकनीकें अस्तित्व में आई हैं । इससे नागरिक समुदाय की तुलना में सत्तासीन वर्ग की क्षमता बढ़ी । नागरिक समुदाय की भूमिका में हास और हुआ इससे मत को तोड़ने-मरोड़ने की सत्तासीन वर्ग की

क्षमता में वृद्धि के समानांतर नागरिक समुदाय का एक हिस्सा सत्तासीन वर्ग का हिस्सा बन गया । पिछले कुछ वर्षो में समृद्धि में उफान से मध्यम वर्ग का विस्तार हुआ और इसके साथ ही सत्तासीन वर्ग का भी विस्तार हुआ । इसका सामाजिक आधार भी व्यापक हो गया । लेकिन 'शासन' और 'शासित' के बीच का सत्ता समीकरण 'शासक' के पक्ष में झुकता चला गया । जनसंचार माध्यमों ने नियंत्रण और शासन के नए हथियार पैदा किए । इस पूरी प्रक्रिया में राजनीतिज्ञों, सूचना विशेषज्ञों और पत्रकारों की धुरी के पैदा होने से जनमत को किसी खास पक्ष में मोड़ने की क्षमता में जबर्दस्त वृद्धि हुई ।

आज विकसित और काफी हद तक भारत जैसे विकासशील देशों में जनसंचार माध्यमों द्वारा प्रसारित जानकारियों में प्रबंधन और जनसंपर्क की तकनीकों का अधिकाधिक इस्तेमाल किया जा रहा है । सूचना विशेषज्ञों का वर्ग जनसंचार माध्यमों से ऐसी छवियों का निर्माण करता है जिससे जनमत को किसी खास दिशा में मोड़ा जा सकता है । इस तरह के सूचना प्रबंधन और जनसंपर्क तकनीकों के उदय के उपरांत राजनीति और राजनीतिक जीवन का इस तरह का मीडियाकरण हो गया है और इससे जनमत को प्रभावित करने में जनसंचार माध्यमों की अहम भूमिका हो गई है । इस तरह के मीडियाकरण के कारण भी जनसंचार माध्यमों में जनमत के प्रतिबिंबित होने से कहीं अधिक भूमिका जनमत को प्रभावित करने की हो गई है ।

पश्चिमी लोकतांत्रिक देशों में यह प्रक्रिया एक व्यापक रूप अख्तियार कर चुकी है और विकासशील देश भी विकास के रास्ते पर जितना आगे बढ़ रहे हैं उतनी ही यह प्रक्रिया भी तेज हो रही है । इससे लोकतंत्र में लोगों की सक्रिय भागीदारी और उनमें वास्तविक जनमत से कहीं अधिक भूमिका जनसंचार माध्यमों द्वारा सृजित जनमत की हो गई है । इससे जनमत का निर्माण वही सूचना छवियाँ ही अधिक प्रभावित करती हैं जिसका निर्माण जनसंचार माध्यम करते हैं । इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि लोकतांत्रिक विमर्श और इससे सृजित होने वाले जनमत के लिए जिस जन की परिकल्पना की गई थी, उसका दायरा काफी। सीमित होता चला गया है । सूचना विस्फोट के उपरांत उभरे जनसंचार माध्यमों से इस जन के विचार की अपेक्षाएँ पूरी होने के बजाय इससे यह कुछ बेडोल और बेमेल हो गई है । पश्चिमी बुद्धिजीवियों के एक वर्ग ने तो यहाँ तुक कह दिया है कि विकसित देशों में जिनके बारे में यह पाया गया है कि वे सूचना समाज में परिवर्तित हो चुके, हैं, वही लोग सूचित कम हैं और गलत सूचनाओं के शिकार अधिक हैं । अमेरिका में एक सर्वेक्षण में तो यह निष्कर्ष निकला गया था कि जो लोग टेलीविजन अधिक देखते हैं, इराक युद्ध के बारे में उनकी समझ उन लोगों से कम हैं जो टेलीविजन अधिक नहीं देखते हैं ।

12.6 जनमत की सीमाएँ

हर समाज में इस सूचना विस्फोट और इससे उपजे जनसंचार माध्यमों की भूमिका समान नहीं है । यहाँ तक कि विकसित देशों में भी इस भूमिका में असमानता देखी जा सकती है । विकसित समाजों में भी यह माना गया है कि आधुनिक जनसंचार माध्यम इस छोटे से वर्ग को भी प्रभावित कर पाते 'हैं लेकिन राजनीतिक सत्ता में इस तबके का ही दबदबा होता है इसलिए इस प्रभाव को कम नहीं आका जा सकता । जनसंचार माध्यम जिन-जिन मुद्दों को उठाते हैं उनका भी प्रभाव जनमत और सरकार पर अवश्य पड़ता है इसलिए इसके परिणाम ही

वास्तविक परिणाम होते हैं । लेकिन इसके साथ ही इस बात की अनदेखी नहीं की जा सकती कि व्यापारीकृत मीडिया के पब्लिक एजेंडा से हटने से इसके द्वारा दी जाने वाली जानकारियों की साख और विश्वसनीयता को लेकर भी अनेक सवाल उठ रहे हैं । साख और विश्वसनीयता के इस संकट को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि तात्कालिक रूप से यह अल्पावधि के लिए जनमत को प्रभावित करने की जनसंचार माध्यमों की जो क्षमता दिखाई पड़ती है उसका दीर्घकाल में टिकाऊ रहना संभव नहीं है । किसी खास विषय पर जनसंचार माध्यम जनमत को निर्णायक रूप से प्रभावित कर सकते हैं लेकिन साख और विश्वसनीयता पर उमड़ रहे संकट के बादलों को देखते हुए दीर्घकाल में जनसंचार माध्यमों की यह भूमिका संदेहास्पद हो जाती है । इस दृष्टि से तात्कालिक जनमत और दीर्घकालीन परिवर्तनों को जन्म देने वाले जनमत के बीच के अंतर को समझना भी जरूरी हो जाता है । तात्कालिक रूप से जनसंचार माध्यमों की मदद से निर्मित जनमत प्रभावी होता है और किसी चुनाव में हार-जीत का फैसला करने में सक्षम हो सकता है लेकिन वास्तविक जनमत दीर्घकालीन और बड़े परिवर्तनों को जन्म देता है । दरअसल निर्मित जनमत और वास्तविक जनमत के बीच हमेशा एक कशमकश चलती रहती है । निर्मित जनमत की मदद से वास्तविक जनमत को दबाए रखने का प्रयास निरंतर चलता रहा है । निर्मित जनमत के तर्क पर बनी सरकारों को भी आम लोगों के हितों के अनुकूल भी चलना होता है जिन्हें वास्तविक जनमत को दबाए रखने के प्रयास के रूप में भी देखा जा सकता है और इस रूप में इसकी व्याख्या की जा सकती है कि इससे निर्मित जनमत और वास्तविक जनमत के बीच एक संतुलन बनाए रखा जाता है । इसकी एक व्याख्या यह भी हो सकती है कि निर्मित जनमत वास्तविक जनमत का ही एक कार्यशील रूप है और इस दृष्टि से निर्मित जनमत का भी एक लोकतांत्रिक स्वरूप उभरता है ।

सत्ता, जनमत और आधुनिक जनसंचार माध्यमों के पारस्परिक संबंधों और बनते-बिगड़ते समीकरणों से उभरे परिदृश्य के रूप-स्वरूप, हर राष्ट्र, हर समाज में समान नहीं है और भारत जैसे विशाल और विविध राष्ट्र और समाज के भीतर भी यह समान नहीं है । सबसे बड़ा अंतर तो यही है कि विकसित देशों में लगभग पूरी आबादी ही जनसंचार माध्यमों से संबद्ध हो चुकी है बल्कि कुछ स्थितियों में तो इसे इतनी सूचनाएँ मिलती हैं कि इन सब को परखना-समझना उनके बौद्धिक कौशल से परे होता है । विकासशील देशों में अभी पूरी आबादी जनसंचार माध्यमों से संबद्ध नहीं हुई है । पूरा समाज अभी मध्यमवर्गीय नहीं हुआ है और सूचनाओं के उपभोग में समानता नहीं है । विकसित देशों के समाज में विकास के इस दौर में काफी समरूपता आ चुकी है, काफी हद तक मूल्यों में समानता आ चुकी है इसलिए जनसंचार माध्यमों का प्रभाव भी अपेक्षाकृत समान रूप से होता है । जनमत के निर्माण और प्रभाव के सन्दर्भ में भी सूचना प्रबंधन और जनसंपर्क कई तकनीकों को परिष्कृत करना आसान हो गया है । विकासशील देशों के समाज असमान है, विविध हैं 'और संस्कृति और मूल्यों में व्यापक अंतर है । इन देशों में जनमत निर्माण और इसे प्रभावित करने के लिए इस तरह की तकनीकों या कौशल का विकास संभव नहीं है जैसा कि विकसित देशों में है । एक बड़ा कारण यह भी है कि विकसित देशों में अक्सर जनमत को सही परख लिया जाता है जब कि भारत में जनमत को भांपना मुश्किल है । हाल ही का इतिहास बताता है कि जनमत को मापने के अधिकांश तरीके

बहुत सफल नहीं रहे हैं । विकासशील देश अनेक तरह की जटिलताओं से भरे पड़े हैं और जनमत निर्माण में अनेक कारकों का योगदान होता है और इन कारणों के अंतरसंबंधों और हरेक के अलग-अलग प्रभाव को समझना और इसका मूल्यांकन करना काफी कठिन साबित हुआ है । इन देशों में जनसंचार माध्यम की विविध हैं, इनकी अनेक परतें हैं इसलिए जनमत निर्माण में इनकी भूमिका भी इस तरह परिभाषित नहीं किया जा सकता जैसा कि विकसित देशों में है ।

जनमत की चुनावों के माध्यम से होने वाली अभिव्यक्ति को ही लें तो भारत और अमेरिका में भारी अंतर है । अमेरिकी चुनाव में जनमत का पूर्वानुमान सही-सही लगा लिया जाता है पर भारत में ऐसा नहीं है । अमेरिका जैसे विकसित देशों में तो चुनाव मुख्य रूप से मीडिया के धरातल पर ही लड़ा जाता है और पूरा चुनाव प्रबंधन (सूचना प्रबंधन और जनसंपर्क) जनसंचार माध्यमों पर ही केन्द्रित होता है । इन देशों में राजनीति का इस तरह से टेलीविजनीकरण हो चुका है ।

इसके विपरीत भारत में भले ही पनपे रुझानों की दिशा यही हो लेकिन एक तो विकासशील होने और दूसरा समाज और जनसंचार माध्यम दोनों का ही विशाल, विविध और जटिल होने से ऐसे राजनीति उत्पाद पैदा नहीं हो पाते हैं जो समान रूप से कोई प्रभाव पैदा कर सकें, समान रूप से किसी जनमत का निर्माण कर सकें । जनसंचार माध्यमों द्वारा निर्मित जनमत चुनाव परिणामों को निर्णायक रूप से प्रभावित करने में अक्सर विफल रहा है । व्यापारीकरण के उपरांत भारत में भी राजनीतिक जीवन और राजनीतिक मुद्दों के सतहीकरण और मनोरजनीकरण का रुझान प्रबल हुआ है । इससे वास्तविक मुद्दों को दरकिनार कर सतही मुद्दों पर जोर दिया जाता है और कई अवसरों पर तो गैर-मुद्दे भी मुद्दे बना दिए जाते हैं । गैर-मुद्दों को मुद्दा बना देने का रुझान भारत में कुछ विचित्र आयाम ग्रहण कर रहा है । जनसंचार माध्यमों के इस रुझान के कारण भी भारत से जनमत निर्माण में इनकी भूमिका में हास हुआ है ।

व्यापारीकरण और उपभोक्ता संस्कृति के समानातर एक नई राजनीतिक संस्कृति का भी उदय हुआ है जिसमे जनसंचार माध्यम अपनी स्वायतत्ता काफी हद तक खो चुके हैं और राजनीतिक और व्यापारिक हितों की ओर झुक गए हैं ।

जनसंचार माध्यम नागरिक के बजाय उपभोक्ता पर और 'जन' के स्थान पर बाजार पर केन्द्रित होते चले जा रहे हैं । जनसंचार माध्यम एक ऐसी राजनीतिक संस्कृति के हिस्सेदार हो गए हैं जिसमें पहले खास राजनीतिक भूमिकाओं का निर्माण किया जाता है फिर इस भूमिकाओं के लिए राजनीतिज्ञ तैयार किए जाते हैं और इन राजनीतिज्ञों के लिए 'जन' संगठित कर जनमत का निर्माण किया जाता है । इस पूरी प्रक्रिया और इस तरह के जनमत के निर्माण में राजनीतिज्ञों, सूचना विशेषज्ञों और जनसंपर्क और जनसंचार माध्यमों का तंत्र केन्द्रीय भूमिका अदा करता है । यह प्रक्रिया एक खास वर्गीय समाज को बचाए और बनाए रखने के लिए की जाती है ।

12.7 सारांश

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' के इस पाठ्यक्रम के खंड 3 'जनसंचार और समाज' की इस पहली इकाई में आपने 'जनमत निर्माण की प्रक्रियाओं' का अध्ययन किया है । आमतौर पर जनसंचार माध्यमों की भूमिका का आकलन करते हुए सूचना, शिक्षा और मनोरंजन प्रदान करना उसकी प्रमुख भूमिकाएँ स्वीकार की गई हैं । लेकिन पिछले कुछ दशकों से जनसंचार माध्यमों की जो भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बनकर उभरी है वह है जनमत निर्माण । जनसंचार माध्यमों की वस्तुगत भूमिका तो यह होती है कि वह जनता के मत को प्रतिबिंबित करें लेकिन देखा यह गया है कि वह जनता के वास्तविक मत को प्रतिबिंबित करने की बजाय जनता के मत को तोड़ने-मरोड़ने और खास दिशा देने में ज्यादा दिलचस्पी लेता है । जनसंचार माध्यम जिनपर अधिकांश देशों में स्वामित्व राष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय निगमों का हैं वे शासन पर आरूढ़ राजनीतिक। पार्टियों, मीडियाकर्मियों, बुद्धिजीवियों और प्रबंधकों का सहयोग लेते हुए जनता के विचारों को इस ढंग से प्रस्तुत करते हैं कि ऐसा प्रतीत हो जैसे व्यापक समुदाय की यही इच्छा और समझ हैं इसी को जनमत निर्माण कहा जस्ता है । वास्तविक जनमत और निर्मित जनमत में क्या अंतर है? और किस तरह वास्तविक जनमत को प्रभावित किया जाता है? इसका अध्ययन आपने इस इकाई में किया है । इकाई में इस बिंदु पर भी विचार हुआ है कि जनता के मत को तोड़ने-मरोड़ने की इन कोशिशों की भी एक सीमा है । एक हद के बाद लोग इन कोशिशों से बहुत प्रभावित नहीं होते । इसी तरह इस इकाई में यह भी बताया गया है कि जनमत निर्माण की ऐसी कोशिशें ज्यादातर विकसित देशों का अनुकरण करते हुए की जाती है । जबकि भारत जैसे विकासशील देशों की समस्याएँ बिल्कुल अलग तरह की हैं और यही कारण है कि भारत के जनसंचार माध्यम अपने प्रभाव का अतिरंजित मूल्य आंकते हुए जो अनुमान लगाते हैं वे अनुमान ज्यादातर गलत साबित होता है । इन सभी पक्षों के बारे में आपने इस इकाई में पढ़ लिया है ।

12.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. लोकतांत्रिक देशों में सूचना की आवश्यकता क्यों होती है' जनसंचार माध्यमों द्वारा प्रसारित सूचनाओं को आप किस हद तक विश्वसनीय मानते हैं और क्यों? अपने विचार प्रस्तुत कीजिए ।
2. क्या जनसंचार माध्यमों को जनमत निर्माण के प्रयास करने चाहिए? इस प्रयास के पीछे निहित मीडिया के उद्देश्यों और लक्ष्यों का उल्लेख कीजिए ।
3. जनसंचार माध्यमों द्वारा प्रस्तुत विचारों को शासक वर्ग क्यों और कैसे प्रभारित करता है? भारतीय समाचार चैनलों की भूमिका के आधार पर अपना मत पेश कीजिए ।
4. मीडिया के व्यापारीकरण ने ही उसे अपने हित में इस्तेमाल करने को प्रेरित किग्रा है । इस मत से आप कहीं तक सहमत हैं? अपनी राय दीजिए ।
5. मनोरंजन के लिए प्रस्तुत कार्यक्रम जनता के सोच को किस हद तक प्रभावित करते है ? किसी लोकप्रिय धारावाहिक की समीक्षा द्वारा अपना मत प्रस्तुत कीजिए ।

12.9 सन्दर्भ ग्रंथ

1. नोम चोमस्की; जनमाध्यमों का मायालोक, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली- 110092.
2. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली,
3. सुभाष धूलिया; संचार क्रांति की राजनीति और विचारधारा, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
4. संपादक, मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, अनुवादक, ओमप्रकाश मालवीय, संचार माध्यम और पूँजीवादी समाज, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
5. मेनी वाइसेज वन वर्ल्ड संपादक सीन मेकब्राइड, यूनेस्को का प्रतिवेदन, कोगन पेच लि, लंदन, संस्करण, 1998
6. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यमों और सांस्कृतिक विमर्श, 2009, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली- 110092.
7. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यमों का राजनीतिक चरित्र, 2006, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली- 110092.
8. भूमंडलीय जनमाध्यम निगम पूंजीवाद के नए प्रचारक: एडवर्ड एस हरमन, रॉबर्ट डज्यू मैकचेस्नी, अनुवादक चंद्रभूषण, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली- 110092.

इकाई- 13 जनसंचार और समाज (भाग- 1)

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 संचार के प्रकार
13.3 जनसंचार की प्रक्रिया और कार्य
13.4 जनसंचार और समाज
13.5 समाज के लिए जनसंचार का महत्त्व
13.6 जनसंचार साधनों का समाज पर दुष्प्रभाव
13.7 जनसंचार अनुकूलन के उपाय
13.8 सारांश
13.9 अभ्यासार्थ प्रश्न
13.10 सन्दर्भ ग्रंथ

13.0 उद्देश्य

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' पाठ्यक्रम की तीसरे खंड 'जनसंचार और समाज' की यह दूसरी इकाई है । इस इकाई का उद्देश्य है समाज और जनसंचार के परस्पर संबंध को प्रकट करना और समाज में जनसंचार के योगदान को अवगत कराना । इसमें आप -

- समाज और जनसंचार के परस्पर संबंधों को समझ सकेंगे ।
- जनसंचार के प्रकार, प्रक्रिया, माध्यम और कार्य को जान समझ सकेंगे ।
- समाज में जनसंचार का महत्त्व को समझ सकेंगे ।
- जनसंचार साधनों के सामाजिक प्रभावों का विवेचन कर सकेंगे ।
- जनसंचार के साथ अनुकूलन के उपायों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

इसके अतिरिक्त आप समाज और जनसंचार के विभिन्न पहलुओं से भली-भांति परिचित हो सकेंगे ।

1.3.1 प्रस्तावना

'जनसंचार और समाज' नामक इस इकाई के अध्ययन से पूर्व आप जनसंचार के सन्दर्भ में जनमत निर्माण के बारे में जान चुके हैं । जनमत निर्माण का संबंध जनसंचार की भूमिका से है । जनसंचार के अध्ययन के अंतर्गत उसके समाज के साथ संबंध की विवेचना भी आवश्यक है । जनसंचार का तात्पर्य ही है, जनता के लिए संचार । जनता यानी व्यक्तियों का समूह । लेकिन यह कहना पर्याप्त नहीं है । व्यक्ति को सामाजिक के रूप में भी समझना आवश्यक है । क्योंकि जनसंचार के व्यक्ति सामाजिक के रूप में जुड़ा होता है ।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । सामाजिक प्राणी होने के कारण उसके आसपास जो कुछ भी घटित हो रहा है उसके संबंध में जानने की जिज्ञासा तथा अपने अनुभवों को जताने की उत्सुकता, मनुष्य में सदैव विद्यमान रही है । विदित है कि प्रत्येक परिस्थिति अथवा घटना उसके वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन को प्रभावित करती है । इन्हीं प्राणियों के समूहों से समाज निर्मित होता है । समाज को नियंत्रित, संगठित और संचालित करने में विशेष प्रकार की सावधानी अपेक्षित है । अगर हम चाहते हैं कि हमारे समाज का, राष्ट्र का समुचित विकास हो; व्यवस्था सुगठित रहे, तो आवश्यक है कि समाज में रहने वाले प्राणियों की पूर्ण प्रक्रिया ही संचार कहलाती है । संचार के अभाव में न तो मानव समाज की स्थापना हो सकती है और न ही मनुष्य की सामाजिक व्यवस्था का संचालन । यही संचार अथवा संप्रेषणीयता समुदाय की धुरी और विकास के मूल में है

13.2 संचार के प्रकार

संचार अथवा संप्रेषण की प्रक्रिया विभिन्न रूपों में संचरित होती है । यह प्रक्रिया अथवा उपभोक्ता की प्रवृत्ति पर भी निर्भर है । जैसे संप्रेषण अथवा संचार की यह प्रक्रिया जब आंतरिक संवेगो अथवा मनोवैज्ञानिक स्तर पर संचरित होती है तो व्यक्तिगत आंतरिक संचार (Intra Personal Communication) कहलाती है और जब दो व्यक्ति अथवा छोटे समूह के संपर्क में सहायक होती है तो अंतःव्यक्ति संचार (inter-person communication) कहलाती है । संचार की यही प्रक्रिया जब समान हित तथा उद्देश्यपरक समूह में संचरित होती है तो समूह संचार (group communication) का रूप धारण कर लेती है और जब यत्र-तत्र बिखरे अपार जनसमूह को व्यापक ढंग से सूचित, संदेषित प्रबोधित और एकत्र करने के लिए नवीन प्रौद्योगिकी और संस्थागत रूपों का सहारा लेते हुए संचार को संभव बनाती है, तो जनसंचार संज्ञा (Mass Communication) से पहचानी जाती है।

13.3 जनसंचार की प्रक्रिया और कार्य

अब प्रश्न यह उठता है कि जनसंचार की प्रक्रिया कैसे क्रियान्वित होती है? वास्तविकता यह है कि प्रक्रिया उभयपक्षी प्रतिक्रियाओं से पूर्ण होती है । संचार की प्रक्रिया से संबंधित अनेक प्रारूप विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किए हैं । जिसमें प्रो. लासवेल द्वारा प्रस्तुत कौन क्या कहता है, किस माध्यम से कहता है, किससे कहता है, और किस भाव से कहता है, व्यावहारिक, सरल तथा स्पष्ट प्रतीत होता है । विद्वतजन द्वारा प्रस्तुत प्रारूपों के विश्लेषण के पश्चात हम जनसंचार प्रक्रिया से संबंधित निम्नलिखित प्रारूप मानक रूप में ग्रहण कर सकते हैं ।

स्रोत संदेश माध्यम प्राप्तकर्ता प्रभाव प्रतिक्रिया

यहाँ मन में जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि जनसंचार प्रक्रिया किन माध्यमों से जन तक पहुँचती है? यह ज्ञान करने के लिए जनसंचार साधनों से परिचित होना पड़ेगा । जैसा कि हम जानते हैं कि ।समाज में जनसंचार प्रक्रिया को क्रियान्वित करने के लिए मनुष्य ने कभी प्रतीकों का आश्रय लिया, तो कभी संकेतों का, कभी भाषा को माध्यम बनाया, तो कभी शारीरिक चेष्टाओं को । कभी संगीत की ओर उन्मुख हुआ तो कभी चित्रकला, वास्तुकला की ओर । संकेत

से प्रारंभ मनुष्य की संप्रेषण प्रक्रिया वार्ता, कथा-मेले, उत्सव-पर्व, लोकगीत, लोकनाटक शिलालेख, लोककला, पशु-पक्षी तथा मनुष्यों का आधार ग्रहण करके विकसित होती हुई, वर्तमान में मुद्रण तथा प्रौद्योगिकी माध्यम तक पहुँच गई है । डाक प्रणाली, संभाषण, रंगमंच के साथ-साथ मुद्रण, फिल्म एवं इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों ने जनसंचार के क्षेत्र में क्रांति ला दी है । आकाशवाणी, दूरदर्शन, कंप्यूटरयुक्त विभिन्न प्रणालियों ने विश्व को संकुचित करके 'विश्वग्राम' अथवा 'वसुधैव कुटुंबकम्' की कल्पना को साकार किया है । अगर जनसंचार के लिए बहु उपयोगी अथवा वर्तमान में लोकप्रिय साधनों पर विचार किया जाए तो निःसंकोच कहा जा सकता है कि रंगमंच, समाचारपत्र, पत्रिकाएँ, पोस्टर, होर्डिंग, आकाशवाणी, फिल्म, कंप्यूटर आदि माध्यम, समाज में विशेष प्रभावी है । संप्रति, इन्हीं पर जनसंचार का दायित्व भी है ।

जनसंचार के कार्य

समाज में जनसंचार के महत्त्व पर विचार करने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम बात से अवगत हो जाएँ कि जनसंचार के कौन-कौन से कार्य हैं? हमें उससे क्या अपेक्षाएँ हैं? जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि संचार के बिना न तो मानव समाज की स्थापना हो सकती है और न ही सामाजिक व्यवस्था का संचालन । अर्थात् जिस प्रकार जीवित रहने के लिए प्राणी को हवा की आवश्यकता होती है, वैसे ही आज विकास के लिए संचार की । कल्पना कीजिए कि आपके माता-पिता, अभिभावक, सगे-संबंधी, दोस्त आदि न होते और न होता खेलने के लिए मैदान, पढ़ने को स्कूल, मनोरंजन कें लिए विभिन्न संसाधन, तब क्या आपका जीवन उतनी तन्यमयता, सुविधा, आनन्द से व्यतीत हो रहा होता, जैसा कि आज है? उत्तर होगा - नहीं । क्यों? क्योंकि उपर्युक्त वातावरण मनुष्य के सर्वांगीण विकास में सहायता करता है । आपसी विचार विनिमय से ही मनुष्य अपने अतीत, वर्तमान तथा भविष्य में अपनी आकांक्षाओं-अपेक्षाओं में सामंजस्य बैठाता है । यह विचार-विनिमय, उपर्युक्त उल्लिखित वातावरण निर्मित करता है । जनसंचार तथा उसके साधनों द्वारा अर्थात समस्त संबंधों की धुरी संचार पर ही निर्भर है । अत: उसका उत्तरदायित्व भी बढ़ जाता है ।

जनसंचार के कार्यो के संबंध में विद्वानों ने विस्तार से विचार किया है । प्रसिद्ध विद्वान प्रो. लॉसवेल का मत है कि जनसंचार माध्यम समाज को गतिशील बनाते हैं समाज में विभिन्न संबंध स्थापित करते हैं तथा विभिन्न सामाजिक संबंधों, क्रियाकलापों को प्रचारित-प्रसारित, हस्तांतरित करते हैं । एक अन्य विद्वान विलवर श्राम जनसंचार माध्यमों को एक प्रहरी, मंच तथा शिक्षक के रूप में देखते हैं । उनका मानना है कि जनसंचार माध्यम हमें एक सजग प्रहरी की भांति पूर्वानुमान द्वारा खतरों से आगाह कराते हैं, उचित-अनुचित कार्यो की पहचान कराते हैं और विचारों को सकारात्मक बनाने के लिए उचित मंच प्रदान करते हैं । साथ ही एक शिक्षक की भांति विकास में सहायक होते हैं ।

सच भी यही है कि जनसंचार का प्रमुख कार्य नित्य नयी सूचनाएँ प्रदान करना, मनोरंजन के साधन उपलब्ध कराना, शिक्षा का प्रचार-प्रसार करना, सामाजिक मामलों में जागरूकता उत्पन्न करना, तथा विकास के लिए आवश्यक मानसिक क्षमता विकसित करना है ।

इतना ही नहीं जनसंचार प्रक्रिया अपने संसाधनों की असीमित क्षमताओं के कारण सौहार्द, समन्वय स्थापित करके समाज तथा राष्ट्र के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है । सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थितियों का आकलन करके, उनके सत्य से जनता को परिचित करा कर, समयानुकूल हस्तक्षेप द्वारा उचित दिशा देती है । साथ ही जनता की रुचियों-अभिरुचियों को पोषित करने, उन्हें राष्ट्र हित में परिवर्तित करने तथा राष्ट्र एवं समाज के अनुकूल वातावरण निर्मित करने में जनसंचार प्रक्रिया सक्षम है । कहने का तात्पर्य यह है कि जनसंचार की असीमित क्षमताएँ हैं । जिनका उपयुक्त दोहन करना उन स्थितियों और व्यक्तियों पर निर्भर करता है, जिसके बीच और जिनके सक्रिय योगदान से जनसंचार क्रियाशील रहता है ।

13.4 जनसंचार और समाज

जनसंचार की क्षमताओं से परिचित होने के पश्चात हमारे मन में प्रश्न कौंधता है कि जनसंचार किस प्रकार समाज के हित में कार्य करता है? क्या जनसंचार वास्तविक रूप में समाज के विकास में सहायक है? क्या जनसंचार अपनी प्रकृति एवं अपेक्षाओं पर खरा उतरा है।

उपर्युक्त प्रश्नों के उतरो की पुष्टि करने से पूर्व हमें यह भी ज्ञात होना चाहिए कि समाज कोई मूर्त संगठन नहीं है । प्रसिद्ध समाजषास्त्री मैकाइवर तथा पेज का कथन है कि समाज, सामाजिक संबंधों का एक जाल है । अर्थात व्यक्तियों के मध्य पाए जाने वाले सामाजिक संबंध जब एक व्यवस्था में बंध जाते हैं तो यह व्यवस्था ही समाज कहलाती है । प्रश्न यह उठता है कि सामाजिक संबंध से क्या तात्पर्य है? मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण समाज पर आश्रित रहता है । अर्थात प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य व्यक्तियों के साथ जुड़ा रहता है, जिससे उनके मध्य कुछ संबंध विकसित होते हैं । यह विकसित संबंध ही सामाजिक संबंध हैं । आशय यह है कि संबंधों के निर्माण और विकास में, जो क्रिया पाई जाती है वह जनसंचार का ही अंग है ।

जनसंचार के सभी माध्यम सामाजिक उत्पाद हैं । उनके द्वारा जो संदेश संप्रेषित होते हैं, वे भी सामाजिक उत्पादक हैं । जो भी इन संदेशों को ग्रहण करता है, वह मनुष्य तो सामाजिक है ही । इस प्रकार समाज के बिना जनसंचार का अस्तित्व संभव नहीं है और जनसंचार के माध्यमों के बिना समाज की गतिविधियाँ भी संभव नहीं है । समाज और जनसंचार के परस्पर संबंधों को समझने के लिए समाज की संरचना को भी समझना आवश्यक है । समाज कहने मात्र से उसे समझना आसान नहीं है । समाज जैसा कि पहले कहा जा चुका है, एक अमूर्त संकल्पना है । लेकिन इस संकल्पना के पीछे कुछ ठोस अवधारणाएँ काम कर रही होती है । समाजों की संकल्पना धर्म, जाति, वर्ग, व्यवसाय, लिंग, राष्ट्र, भाषा आदि पर निर्भर करता है । जनसंचार की संरचना, उद्देश्य और प्रकार्य भी इन अवधारणाओं से संबद्ध होकर ही हमारे सामने आते हैं । इनके अभाव में जनसंचार और समाज के अंतसंबंधों को समझना संभव नहीं है ।

13.5 समाज के लिए जनसंचार का महत्त्व

जिस प्रकार एक प्राणी के सर्वागीण विकास के लिए सजग अभिभावक, शिक्षक, निर्देशक, मित्र, आलोचक आदि की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार किसी भी समाज को गतिशील करके, उसके सर्वागीण विकास के लिए, उपर्युक्त कारकों को एकत्र करने का दायित्व जनसंचार द्वारा पूर्ण किया जाता है । अर्थात् जनसंचार माध्यम में एक प्रहरी, अभिभावक, शिक्षक, निर्देशक, मित्र, आलोचक आदि के गुण विद्यमान हैं जो कि समयानुकूल उद्भूत होकर, प्रत्येक समाज को संचरित करने में सहायक होते हैं । संप्रति, किस ऐसे समाज के विकास की परिकल्पना करना संभव नहीं है जो जनसंचार की आवश्यकता अनुभव न करता हो । अंतरराष्ट्रीय-राष्ट्रीय घटनाओं की सूचना आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विषयों की जानकारी, प्रकृति के खतरों से पूर्व परिचय आदि विभिन्न ऐसे विषय हैं जो किसी भी विकासशील समाज के लिए आवश्यक हैं । यह संभावनाएँ पूर्ण होती हैं-जनसंचार तथा उसके साधनों से ।

संक्षेप में समाज के लिए जनसंचार का महत्त्व निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर रेखांकित किया जा सकता है -

सामाजिक हित में जनसंचार

सामाजिक हित जनसंचार का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है । जैसा कि पूर्वोल्लिखित। है कि समाज का निर्माण सामाजिक संबंधों पर होता है, और सामाजिक संबंधों के निर्माण में जनसंचार की महत्त्व पूर्ण भूमिका रहती है । जनसंचार साधनों से अपेक्षा की जाती है कि वह समाज में रहने वाले प्राणियों को सुख-सुविधाओं से परिचित कराएंगे, जन को शिक्षित करेंगे, जन के स्वास्थ्य, मनोवृत्तियों, रूचियों-अभिरूचियों को पोषित करेंगे ।

सामाजिक प्राणियों के हित का उत्तरदायित्व निर्वाह करते हुए जनसंचार साधन उन्हें स्वस्थ मनोरंजन भी उपलब्ध कराते हैं । जनसंचार के संसाधनों से एक बंद कमरे में मनोरंजन के समस्त साधन उपलब्ध हो जाते हैं । टेलीविजन, वी.सी.आर, आदि के द्वारा घर का छोटा-सा कमरा थियेटर में तब्दील हो जाता है । दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले चलचित्र, धारावाहिक, गीत-संगीत के कार्यक्रम मनोरंजन के इसी उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हैं । आकाशवाणी पर प्रसारित संगीत प्रस्तुतियाँ, नाटक, रूपक आदि, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानी, कार्टून, लेख, कविताऐ आदि भी समाज को स्वस्थ मनोरंजन उपलब्ध कराने के उपक्रम हैं । अगर इन माध्यमों से जनसंचार को गतिशील न किया जाए तो सामाजिक प्राणियों के नैतिक पतन का खतरा बढ़ जाता है । मनोरंजन की तलाश में भटकते हुए सामाजिक जन, असामाजिक कार्यो-जुआखोरी, मद्यपान, वैश्यावृत्ति आदि अनैतिक कृत्यों की ओर मुखर हो सकता है, जिससे सामाजिक पतन संभव है ।

जनसंचार एक शिक्षक की भूमिका का निर्वाह करता है । जनसंचार अपने विभिन्न माध्यमों-संस्थाओं, जनसंपर्क, पत्र-पत्रिकाओं, सिनेमा, आकाशवाणी, दूरदर्शन, कंप्यूटर आदि के द्वारा लोगों और समाज के विकास के लिए शिक्षा का प्रचार-प्रसार करता है । संप्रति, समाज में जो साक्षरता का ग्राफ बढ़ा है, उसमें जनसंचार का भी योगदान है । जनसंचार साधनों का

जितना व्यापक नेटवर्क होगा, उतना ही यह प्रक्रिया तीव्र होगी । पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कहानी, प्रश्नोत्तरी, देश-विदेश की सूचनाएँ, नवीन तथा प्राचीन उपलब्धियाँ, धरोहरों की जानकारी आदि स्तंभ छपते हैं । वहीं दूरदर्शन, आकाशवाणी के द्वारा निरंतर विभिन्न सूचनाओं के अतिरिक्त शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण होता है । दूरदर्शन की शिक्षा के प्रसार में अहम भूमिका रही है । प्राथमिक कक्षाओं से लेकर उच्च कक्षाओं तक की शिक्षा के हेतु दूरदर्शन पर व्यवस्था की गई है। 'साईट' तथा यूजीसी. जैसे कार्यक्रमों ने इसमें क्रांति ला दी है । 'स्काई रेडियो' प्रणाली से विभिन्न कक्षाओं में शैक्षिक कार्यक्रम आकाशवाणी के द्वारा सुलभ हुए हैं । 'इंटरनेट' के प्रयोग से तथा विभिन्न विश्वविद्यालयों के पुस्तकालय एवं सूचना तंत्र 'इंटरनेट' पद्धति पर (केबिल नेट, अरनेट, टेलनेट आदि) उच्च शिक्षा तथा शोधपरक कार्यो में उन्नति करने के लिए और शिक्षित करने के लिए प्रयत्नरत है । मुद्रित पुस्तकों के अतिरिक्त विभिन्न शैक्षिक पत्रिकाएँ, प्रतियोगिता दर्पण, विज्ञान प्रगति आदि भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम है ।

साक्षरता के अतिरिक्त लोगों को स्वास्थ्य के प्रति सचेत करने, स्वस्थ रहने के लिए विभिन्न सावधानियों तथा नई-नई चिकित्सा प्रणालियों से परिचित कराने आदि का प्रयास भी जनसंचार साधनों द्वारा किया जाता है । जनसंचार जन के पोषण की ओर भी सक्रिय हुआ है । जनसंचार माध्यमों द्वारा जन को रोजगार उपलब्ध कराने के साथ-साथ रोजगार चुनने के अवसर भी प्रदान किए जाते हैं । पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रोजगार सूचनाएँ तथा आकाशवाणी दूरदर्शन पर प्रसारित रिक्त पदों की सूचनाएँ इस दिशा में कार्यरत हैं । इसके अतिरिक्त स्व-व्यवसाय के लिए उद्यमों की जानकारी, ऋण उपलखता, सरकारी योजनाओं आदि के संबंध में भी इन माध्यमों द्वारा विस्तार से चर्चा-परिचर्चा प्रसारित होती है । आकाशवाणी, दूरदर्शन तथा पत्र-पत्रिकाओं द्वारा प्रसारित विज्ञापनों से करोड़ों लोग लाभान्वित होते हैं ।

इन सेवाओं के अतिरिक्त रेलवे, हवाई जहाज, बस-यात्रा, यातायात, पर्यटन, खेलकूद, सामयिक घटनाएँ, बाजार भाव आदि से संबंधित सूचनाएँ और सुविधाएं घर बैठे जनसंचार माध्यम उपलब्ध करा देते हैं । इससे सामाजिक प्राणियों को सुव्यवस्थित जीवन निर्वाह करने में सहयोग मिलता है ।

सामाजिक जागरूकता

जनसंचार प्रक्रिया अपने संसाधनों से समाज में जागरूकता फैलाने का कार्य भी करती है। प्रारंभ में जनसंपर्क, मेले, पर्व-उत्सव, लोकनाट्य, लोकगीत तथा लोक कलाएँ आदि विधाएँ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थितियों से अवगत कराके, समाज में जागरूकता उत्पन्न करती थीं । कालांतर में फिल्म, रेडियो, टेलीविजन तथा मुद्रण माध्यम अधिक प्रभावी हो गए । पल प्रति पल होने वाले नवीन परिवर्तनों की सूचना क्षण भर में जनसाधारण तक पहुँचाने की जनसंचार माध्यम की क्षमता ने सामाजिक जागृति में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है । अन्तर्राष्ट्रीय-राष्ट्रीय घटनाओं की समुचित जानकारी के लिए विभिन्न समाचार बुलेटिन, ऑडियो, वीडियो, मुद्रित, पत्रिकाएँ अपना अमूल्य सहयोग दे रही हैं । आज तक, तीसरी आँख, आँखों

देखी, जिले की डायरी, प्रादेशिक घटनाएँ, साप्ताहिकी आदि दूरदर्शन तथा आकाशवाणी के कार्यक्रमों ने इस दिशा में अपनी विशेष पहचान स्थापित की है ।

समाज में जागरूकता लाने के लिए विश्व में प्रत्येक क्षण होने वाली नवीन खोजों अथवा घटनाओं की सूचना इन माध्यमों द्वारा जनता तक पहुँचाई जाती है । आवश्यकता अनुरूप इन पर विशेष कार्यक्रम भी प्रस्तुत किए जाते हैं । जैसे कि गतवर्ष सूर्यग्रहण अथवा धूमकेतु आदि से संदर्भित सजीव कार्यक्रम दूरदर्शन ने प्रसारित करके लोगों को चमत्कृत कर दिया । परिणामत: युग-युग से चली आ रही विभिन्न मान्यताओं पर से लोगों का ध्यान बंटा और जागरूकता आई ।

शिक्षा के प्रचार के साथ-साथ आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से किसानों के लिए विशेष कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं, जिनमें उन्हें खेती की तकनीक, अधिक फसल उत्पादन के उपाय, बीज आदि की गुणवत्ता, फसल संरक्षण आदि की विस्तृत जानकारी दी जाती है । विकसित राष्ट्रों की स्थिति, वहाँ का रहन-सहन. उद्योग, कार्य प्रणाली आदि पर विशेष कार्यक्रम करके, किसानों-उद्योगपतियों आदि को नई तकनीक, नई संभावनाओं, विकास के नए क्षेत्र, बाजार में वस्तु की मांग एवं स्थिति आदि का विस्तृत ज्ञान प्रस्तुत करके, जनता में जागरूकता उत्पन्न करते हैं । इनके अतिरिक्त नारी जागरण, पर्यावरण, संरक्षण स्वास्थ्य, राष्ट्र हित आदि के प्रति भी जनसंचार ने अपने विभिन्न संगठनों एवं माध्यमों से एक नवीन वातावरण तैयार किया है । समाज में कार्यरत अनेक स्वैच्छिक संगठन तथा दूरदर्शन पर प्रसारित आज की नारी, डिस्कवरी ऑफ इंडिया, टर्निंग प्व्यइट आदि कार्यक्रम उद्धरणीय हैं ।

दूरदर्शन, आकाशवाणी, पत्र-पत्रिकाओं में प्रसारित होने वाले एड्स, पोलियो, सफेद दाग, विकलांगता, नसबंदी, उचित आयु में विवाह आदि विषयों से संबंधित विज्ञापन तथा कार्यक्रम भी इसी दिशा में कार्यरत हैं । यह माध्यम केवल विज्ञापन द्वारा ही नहीं अपितु विविध स्वास्थ्य संबंध कार्यक्रमों में स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने वाले तत्त्वों, कारणों तथा स्वास्थ्य के लिए उनके निवारण हेतु भी सुझाव देते हैं । पल प्रति पल आविष्यकारित होती नई-नई तकनीकों, संस्थाओं, विषयों आदि की समुचित जानकारी, प्रामाणिक तथ्यों सहित दूरदर्शन, आकाशवाणी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से उपलब्ध कराई जाती है । संप्रति पल्स पोलियो निवारण, वैक्सीन का प्रचार आकाशवाणी तथा दूरदर्शन पत्रिकाओं द्वारा तथा इस अभियान के क्रियान्वयन सामाजिक, प्रशासनिक संस्थाओं द्वारा जनसंपर्क को आधार बनाया गया है । निरोगधाम, अरोग्य, 'संजीवनी' आदि पत्रिकाएँ तो चिकित्सा क्षेत्र में जागरूकता लाने के लिए ख्यात हो गई हैं । इन पत्रिकाओं ने घर-घर में घरेलू उपचार के प्रति जागरूकता जगाई है।

जनसंचार समाज की एक प्रहरी की भाँति सजगता से रक्षा करता है । वह अपने संसाधनों से प्राकृतिक, मानुषिक आपदाओं के आगमन की पूर्व सूचनाएँ उपलब्ध कराके समाज को सचेत कर देता हैं । टेलीविजन, रेडियो और समाचारपत्रों में प्रसारित मौसम संबंधी सूचनाएँ इसका उदाहरण है । यह माध्यम केवल मौसम की ही जानकारी नहीं देते बल्कि फसल पर, जनजीवन पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा इक्का विश्लेषण भी करते हैं । भविष्य में खाद्यान्न,

पेट्रोलियम पदार्थों तथा अन्य वस्तुओं का उत्पादन, भंडारण, मूल्य आदि क्या रहेंगे? किन-किन घटनाओं से प्रभावित होंगे? ऐसी स्थिति में जन का क्या उत्तरदायित्व होना चाहिए? इन तथ्यों के प्रति भी आकाशवाणी, दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले विभिन्न कार्यक्रमों में विस्तार से चर्चा की जाती है । इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय-राष्ट्रीय स्तर पर घटित होने वाली घटनाओं से अर्थव्यवस्था, सामाजिक एवं राजनीतिक स्थितियों पर पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी प्रसारित की जाती है, सीमा पर घटित होने वाली घटनाओं की त्वरित एवं प्रामाणिक जानकारी तीव्र गति से प्रसारित करके जनसंचार माध्यम ने राष्ट्र-रक्षा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । इसके अतिरिक्त सामाजिक पतन अथवा विनाश के लिए उत्तरदायी स्थितियों, कारकों की सूचना भी जनसंचार माध्यमों द्वारा प्रसारित की जाती है ।

टेलीविजन, रेडियो तथा पत्र-पत्रिकाएँ सामाजिक प्राणियों के दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी प्रयासरत रहती हैं । ये माध्यम जन के लिए आवश्यक वस्तुओं का परिचय समाज को देते हैं । वस्तुओं की उपयोगिता, गुणवत्ता से परिचित कराते हैं तथा विभिन्न विज्ञापनों के माध्यम से बाजार में उपलब्ध-उत्पादों का विवरण प्रस्तुत करके, उपभोक्ता को उचित एवं सही वस्तु के चुनाव में सहयोग करते हैं । यहाँ तक कि घर के कमरे में ही दुकान लगाकर, वस्तुओं के क्रय-विक्रय की सुविधा भी जन साधारण को उपलब्ध करा देते हैं । टेलीविजन पर प्रसारित 'स्काई-शॉप कार्यक्रम अपनी इस प्रवृत्ति के कारण विशेष चर्चित हैं। पत्र-पत्रिकाओं में भी कूपन द्वारा रजिस्ट्री अथवा वी.पी.पी से वस्तुएं उपलब्ध कराने के विभिन्न विज्ञापन नित्य प्रकाशित होते हैं ।

सिनेमा ने भी सामाजिक जागरूकता उत्पन्न करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । 'सलाम बांबे', 'माचिस, 'रोजा, 'क्रांतिवीर,. फायर, 'बोर्डर 'आस्था, 'सत्या' आदि फिल्मों ने समाज को दहेज, आतंकवाद, नारी जागरण. पति-पत्नी संबंध, झौपड-पट्टी बाल-श्रम आदि विभिन्न विषयों पर सोचने के लिए विवश किया है ।

जनसंचार के द्वारा सामाजिक रूढ़ियों, अंधविश्वास, कुरीतियों को समाप्त करके के प्रति भी समाज में जागरूकता का वातावरण निर्मित किया जाता है । जनसंपर्क तथा आकाशवाणी, दूरदर्शन तथा पत्रिकाओं में विभिन्न दैविक कही जाने वाली क्रियाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रमाण सहित प्रस्तुत करके समाज को आधुनिक सोच देने का. प्रयास किया जा रहा है । तात्पर्य यह है कि जनसंचार सामाजिक जागरूकता उत्पन्न करने में विशेष सहायक सिद्ध हुआ है ।

जनमत द्वारा रचनात्मक सुधार

जनसंचार द्वारा समाज में रचनात्मक कार्य करने का वातावरण निर्मित किया जाता है, जिससे समाज में सुधार होता है । प्रश्न उपस्थित होता है कैसे? इसके लिए हमें समाज में आयोजित होने वाले कार्यक्रमों को देखना होगा, जहाँ आलोचना, असहमति-सहमति आदि चर्चाओं के आधार पर समाधान निकाले जाते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि जनसंचार माध्यम सामाजिक सुधार लाने के लिए विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामयिक बिंदुओं पर बहस, सेमिनार, साक्षात्कार इत्यादि क्रियाओं द्वारा विभिन्न विषयों पर चर्चा करने के लिए मंच प्रस्तुत करते हैं। टेलीविजन के चैनल हों या रेडियो के अथवा पत्र-पत्रिकाएँ या संगोष्ठियाँ सभी किसी विषय को

केंद्र में रखकर उपर्युक्त पद्धति को अपनाकर गंभीर चर्चाएँ, परिचर्चा आयोजित करा के समाधान ढूँढने का प्रयत्न करते हैं, सकारात्मक परिणाम जुटाते हैं । चुनावों के समय दूरदर्शन, आकाशवाणी तथा पत्र-पत्रिकाओं में पार्टियों के एजेंडों पर होने वाली बहसें, उनका विश्लेषण, पार्टी अधिकारियों से साक्षात्कार इसी का प्रयत्न है । जनसंचार के द्वारा गंभीर से गंभीर विषयों पर संवाद स्थापित करके सहमति का वातावरण निर्मित किया जाता है । अधुनातन तकनीक के आगमन से डाक्यूमेंट्री, धारावाहिक, रूपक आदि विधाओं द्वारा यह कार्य सरल और प्रभावी हो गया है । जसपाल भट्टी का लाफ़्टर शो, जी.टीवी. का आपकी अदालत, दूरदर्शन पर बुजुर्गों की समस्याओं पर आधारित 'जीवन संध्या, बच्चों की समस्याओं पर आधारित तीन कमान, बच्चों की अदालत, साक्षात्कार के लिए अनुराधा टॉक शो, नारी जागृति पर आधारित विभिन्न धारावाहिक, नसबंदी, परिवार नियोजन, विधवा विवाह, उचित आयु के विवाह आदि विषयों पर आधारित विज्ञापन समाज की दशा में सुधार लाने के रचनात्मक कदम हैं ।

सामाजिक गतिशीलता

जनसंचार के द्वारा समाज की विभिन्न इकाईयों में समन्वय स्थापित करके, गतिशीलता लाई जाती है । उदाहरणार्थ, सरकार, सरकारी कार्यक्रम, योजनाएँ, योजना के उपभोक्ता, इन सब के मध्य, समाज और प्राणियों के मध्य जनसंचार द्वारा समन्वय स्थापित करने की प्रवृत्ति देखी जा सकती है । जनसंचार माध्यम विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक विषयों को जनता के समक्ष तथ्यों सहित प्रस्तुति द्वारा जन में जागरूकता उत्पन्न करके, सहभागिता और सहमति का वातावरण बनाते हैं । विश्व फलक पर नित्य प्रतिदिन प्रसारित होने वाली सूचनाओं को जन के समक्ष प्रस्तुत करके, विश्व परिदृश्य में उनकी सहभागिता जन की सोच विस्तृत करने तथा उन्हें गतिशील करने की प्रेरणा भी जनसंचार द्वारा ही संभव होती है ।

समाज में व्याप्त अंधविश्वासों. रूढ़ियों, कुरीतियों, व्याभिचार, भ्रष्टाचार आदि विषयों पर सार्थक बहसें, प्रस्तुत करके जनसंचार जड़ होती व्यवस्था को गतिशील करके समाज के प्रति उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हैं । संचार माध्यमों से प्रसारित-प्रकाशित समाचार-वृत्तचित्र, धारावाहिक, लेख आदि समाज को गतिशील करने में अत्यंत सहायक सिद्ध हुए हैं ।

सामाजिक व्यवस्था की सुदृढ़ता

जनसंचार ने सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अगर हम जनसंचार को सामाजिक नियंत्रण का साधन कहें तो यह अतिशयोक्ति न होगी । जनसंचार द्वारा सामाजिक मूल्यों के प्रचार-प्रसार का उत्तरदायित्व निर्वाह करके सामाजिक संबंधों में सुदृढ़ता लाई जाती है । विदित हो कि प्राचीनकाल में ऋषि-मुनि, पंडित आदि जनसंपर्क द्वारा, उपदेश तथा कथावचन के द्वारा उपर्युका कर्म करते थे । अशोक ने बौद्ध धर्म के उपदेश को शिलालेख पर खुदवाया था । सामाजिक जागरूकता प्रसारित करने में लोकगीतों और लोक नाटकों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया ।

इन माध्यमों द्वारा ग्रामीण जनता को ऐसे सभी प्रश्नों पर सुचिंतित समाधान खोजने के लिए प्रेरित किया जा सकता है जो उनके जीवन को प्रभावित करते हों । संप्रति, दूरदर्शन,

आकाशवाणी, पत्र-पत्रिका आदि जनसंचार माध्यमों द्वारा समाज को राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं तथा उनसे राष्ट्र की व्यवस्था पर अथवा समाज पर पड़ने वाले प्रभावों से अवगत ही नहीं कराया जाता बल्कि उनका विश्लेषणकरके, उनका सामाजिक प्रभाव भी परिलक्षित किया जाता है । जन में चेतना पैदा करके उचित निर्णय लेने की क्षमता का विकास किया जाता है । इतना ही नहीं अपितु विभिन्न वर्गो के प्रतिनिधिया? के साक्षात्कार, परिचयात्मक वार्ताएँ अथवा विशेष परिस्थितियों में वृत्तचित्र, रूपक आदि प्रस्तुत करके जनसंचार माध्यम जन को उचित चुनाव का अवसर भी देते हैं ।

सांस्कृतिक विकास और संरक्षण

जनसंचार द्वारा सांस्कृतिक विकास और संरक्षण में भी सहायता प्राप्त होती है । संस्कृति अमूर्त होती है । मेले, वस्त्राभूषण, खान-पान, परम्पराएँ, रीति-रिवाज आदि संस्कृति के अंग हैं । प्रारंभ में व्यापार आदि के द्वारा संस्कृति का प्रचार-प्रसार तथा आदान-प्रदान हो जाता था । जनसंचार के प्राचीन साधन-लोक साहित्य, लोक कलाएँ, वास्तु शिल्प, चित्रकला आदि ने सांस्कृतिक संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह की है । क्या कृष्ण-परम्परा के प्रचार-प्रसार में ब्रज की सांझी, कांगड़ा की चित्रकला भुलाई जा सकती है? राम के चरित्र को संरक्षित करने में मधुबनी पेटिंग का योगदान नहीं है? क्या अजंता-एलोरा की गुफाएँ खजुराहो-कोणार्क आदि के मंदिर, जनचेतना में सांस्कृतिक का प्रचार नहीं करते? क्या यह हमारी सांस्कृतिक धरोहर नहीं है?

आधुनिक संचार माध्यमों ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । संचार माध्यमों ने भारतीय संस्कृति के संरक्षण के साथ-साथ समयानुकूल प्रवेश करने वाले आधुनिक तत्त्वों को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करके, सांस्कृतिक परिवर्तन में सहयोग दिया है । टेलीविजन और रेडियो पर सांस्कृतिक स्वरूप को व्याख्यायित तथा संरक्षित करने के लिए विभिन्न कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं । पत्र-पत्रिकाओं में विशेष लेख प्रकाशित होते हैं । सांस्कृतिक स्थलों के पर्यटन के लिए विशेष व्यवस्था की जाती है । सरिता, गृहशोभा आदि गहस्थ पत्रिकाओं में छुट्टियों में भ्रमण के लिए उपयुक्त स्थलों पर विशेष फीचर प्रसारित किए जाते हैं । यात्रा वृतांत द्वारा सुदूर प्रदेशों की सांस्कृतिक जानकारी प्रसारित की जाती है । दूरदर्शन पर प्रसारित सांस्कृतिक-पत्रिका सुरभि, अनदेखा इंडिया, डिस्कवरी ऑफ इंडिया, किलों के रहस्य तथा विभिन्न ऐतिहासिक धारावाहिक, भारतीय संस्कृति से परिचित कराते हैं । दूरदर्शन पर ट्रेवलॉस यात्रा वृत्तचित्र प्रस्तुत किए जाते हैं जिनमें भारत के विभिन्न अंचलों की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक स्थिति की जानकार प्रसारित की जाती है । रेडियो पर भी लोकगीत, लोकनाट्य आदि लोक विधाओं तथा लोक कलाओं, और शिल्प पर वार्ताओं आदि का प्रसारण किया जाता है जिनमें भारतीय संस्कृति के दर्शन होते हैं । चलचित्रों ने भी संस्कृति के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह की है ।

संरक्षण के साथ-साथ समयानुकूल प्रवेश कर रहे आधुनिक परिवर्तनों की सूचनाएँ भी फिल्मों द्वारा प्रस्तुत की जाती हैं । देश-विदेश में सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया

जाता है । 'भारत उत्सव', 'अपना-उत्सव 'युवा-उत्सव आदि अभी भी स्मरणीय हैं । सरकार ने सांस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए विभिन्न योजनाएं बनाई हैं और सांस्कृतिक विभाग, संस्कृति संबंध परिषद आदि संस्थाओं का गठन किया है । संचार माध्यमों पर इनके द्वारा अथवा सामाजिक-स्वैच्छिक संगठनों द्वारा यत्र-तत्र आयोजित होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रम की सूचना रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है । तात्पर्य यह है कि जनसंचार ने सांस्कृतिक विकास में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है ।

मानसिक क्षमता का विकास

जनसंचार ने मनुष्य की मानसिक क्षमता को विकसित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । पूर्वोल्लिखित है कि संचार परस्पर आदान-प्रदान की क्रिया है । नित्य प्रति अन्तर्राष्ट्रीय-राष्ट्रीय स्तर पर घटित होने वाली घटनाओं तथा उनके प्रभाव, नित्य होने वाले नवीन आविष्कार, सुधार आदि से संबंधित जानकारी प्रसारित करके जनसंचार साधनों ने सामाजिक प्राणियों की बौद्धिक क्षमता को विकसित किया है । संप्रति रेडियो, टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले, कार्यक्रमों तथा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित जानकारियों के कारण नई पीढ़ी, पुरानी पीढ़ी से अधिक सजग दिखाई पड़ती है । नई पीढ़ी अपने हितों, अपने भविष्य, अपने वातावरण के प्रति अधिक जागरूक दिखाई देती है । इसका श्रेय निश्चित ही अधुनतम जनसंचार संसाधनों को है ।

जनसंचार साधनों के द्वारा विभिन्न विषयों पर लेख तथा परिचयात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं । जनसंचार साधन केवल हमें विभिन्न विषयों की समुचित जानकारी ही नहीं देते अपितु अपनी स्मृति और बौद्धिक क्षमता जॉचने के लिए भी अवसर प्रदान करते हैं । पत्र-पत्रिकाओं में प्रसारित प्रश्नोत्तरी पहेलियां, प्रतियोगात्मक प्रश्न आदि इसी का उपक्रम हैं । रेडियो, टीवी द्वारा भी ऐतिहासिक, राजनीतिक, खेलकूद आदि विषयों पर कोई न कोई 'क्विज कार्यक्रम' अवश्य प्रस्तुत किया जाता है । टेलीविजन पर प्रसारित प्रश्नमंत्र लूडो क्विज कांटेस्ट आदि कार्यक्रम उल्लेखनीय हैं । यह बात भी स्मरणीय है कि वर्तमान में लगभग प्रत्येक कार्यक्रम में स्मृति एवं मानसिक क्षमता जाँचने के लिए भी इनामी प्रतियोगिताओं का आकर्षण उपस्थित किया जा रहा है ।

एकता तथा सौहार्द

जैसा कि हम जानते हैं कि एक समाज में विभिन्न भाषा-भाषी, वर्ण, वर्ग, धर्म के लोग रहते हैं। कई बार ऐसे क्षण आते हैं कि जब इनमें टकराव या मनमुटाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसका प्रभाव समाज तथा राष्ट्र पर पड़ता है । आवश्यकता इस बात की है कि इस टकराहट को रोका जाएँ इसके लिए जरूरी है कि लोगों के मन में भेदभाव, मनमुटाव, वैमनस्य मिटाकर, उनमें एकता तथा सौहार्द का भाव जगाया जाएँ विभिन्न सरकारी-गैर सरकारी संगठन अपने स्तर से, अपने कार्यकर्ताओं की सहायता से जनसंपर्क करके यह कार्य करते हैं । इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जनसंपर्क, संगोष्ठी, नुक्कड़ नाटक, जागरूकता गीत आदि विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया जाता है । रेडियो, टेलीविजन, पत्र-पत्रिकाओं द्वारा भी अपने इस दायित्व का पालन सजगता से किया जा रहा है । हिंदू-मुस्लिम एकता, अंतरजातीय विवाह, वर्ग वैशम्य आतंकवाद आदि ऐसे विषय है जिन्हें केंद्र में रखकर अनेक धारावाहिकों और फिल्मों का निर्माण हुआ है ।

13.6 जनसंचार साधनों का समाज पर दुष्प्रभाव

कहा जाता है कि जनसंचार माध्यमों ने समाज का ब्रेनवाश करने की अद्भुत क्षमता है। संप्रति, जहाँ एक ओर जनसंचार के आधुनिक माध्यम-विशेषत: टेलीविजन, फिल्म तथा पत्रकारिता ने समाज निर्माण में सकारात्मक भूमिका निर्वाह की है, वहीं इनकी कार्य प्रणाली पर प्रश्नचिन्ह भी लगे हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि इन माध्यमों से समाज को जो अपेक्षाएं थीं उन पर यह संसाधन पूर्णत: खरे नहीं उतरे । परिणामत: गह साधन अपनी निष्पक्षता के लिए संदिग्ध हो गए । इन माध्यमों पर आरोप है कि राजनीतिक तथा प्रशासनिक दबाव के कारण कई सूचनाएँ जनता तक अधूरी अथवा तोड़-मरोड़ का प्रस्तुत करते हैं । सामाजिक मूल्यों में गिरावट के कारण यह सभी माध्यम संकीर्णता का शिकार हो गए हैं, जिस कारण इन संसाधनों की बागडोर विशेष संस्थाओं, व्यक्तियों और निर्माताओं -के हाथों में चली गई है । इसका प्रभाव यह पडा कि संसाधनों से प्रसारित कार्यक्रम 'टाइप्ट' हो गए हैं ।

टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रम में बढ़ती विकृतियाँ अश्लील प्रदर्शन से, इन माध्यमों में सांस्कृतिक, सामाजिक विघटन और पतन की प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं । टेलीविजन पर प्रसारित कार्यक्रमों में मार-धाड़, उन्मुक्त यौन संबंध आदि के प्रदर्शन के कारण भारतीय युवा प्रभावित हुए हैं और अपराधीकरण का ग्राफ बढ़ा है ।

इन माध्यमों द्वारा 'खुलेपन' तथा विकास की आड लेकर जो अंधविश्वास, धन का नग्न प्रदर्शन समाज में परोसा गया है, उससे सामाजिक जन की ऑखें चौंधिया गई हैं । परिणामत: येन-केन-प्रकारेण बड़े-बड़े बंगले, नई-नई कारें, वस्त्राभूषण, मनोरंजन, सैर-सपाटे के अधुनातन तरीके मध्य वर्ग को प्राप्त करने की होड़ में लग गई हैं । जिससे सामाजिक विघटन उपस्थित हुआ है ।

कहने का तात्पर्य यह है कि जनसंचार जहाँ समाज के लिए उपयोगी रहा है वहीं उसने सामाजिक विघटन को भी बढ़ावा दिया है ।

13.7 जनसंचार अनुकलन के उपाय

जनसंचार ने समाज पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों तरह के प्रभाव डाले हैं । आज जन संचार को समाज में प्रतिकूल गतिविधियों के लिए जो उत्तरदायी माना जा रहा है, यह बहुत उचित नहीं हैं क्योंकि यह जनसंचार साधन प्रत्येक वर्ग, समुदाय, आयु, रूचि के दर्शकों के लिए कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं । ऐसी स्थिति में इसका उपभोग करने वाले उपभोक्ताओं पर यह निर्भर है कि वह उसे सकारात्मक अथवा नकारात्मक रूप में ग्रहण करें

उपयुक्त माध्यमों पर प्रसारित कार्यक्रमों को समाज के अनुकूल बनाने के लिए इन पर विभिन्न अंकुश भी लगाए गए हैं । सरकार द्वारा कार्यक्रमों की गुणवता जाँचने के लिए सेंसर बोर्डो की स्थापना की गई हैं । इन बोर्डो का यह दायित्व है कि वह विषय वस्तु तथा समाज के अनुकूल मूल्यों को ध्यान में रखकर प्रसारित धारावाहिक फिल्म, स्टोरी आदि का निष्पक्ष अवलोकन करके, उन्हें प्रदर्शन का प्रमाणपत्र दें । किन्तु इसके साथ-साथ इन माध्यमों से जुड़े कर्मियों से ये अपेक्षा की जाती है कि कार्यक्रमों की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए मानवीय सौहार्द

और भाईचारे के अनुरूप कार्यक्रम प्रस्तुत करें । सरकार से भी अपेक्षा की है कि इन माध्यमों को स्वायतत्ता मजबूत करें, जिससे यह माध्यम स्वतंत्रतापूर्वक विचारों को अभिव्यक्त करके जनदायित्व का निर्वाह कर सके । इन उपायों के अतिरिक्त उपभोक्ताओं-दर्शक / श्रोता / पाठक को भी सतर्क रहना चाहिए । उनका भी यह दायित्व है कि वे सामाजिक रूचि अनुकूल होने वाले उपयोगी कार्यक्रमों की सराहता करें और प्रतिकूल की आलोचना करके अपनी प्रतिक्रिया प्रस्तुत करें । उपभोक्ताओं के जागरूक होने से कार्यक्रमों की गुणवत्ता भी निःसंदेह बढ़ेगी ।

13.8 सारांश

इस इकाई में जनसंचार और समाज के पारस्परिक संबंधों पर प्रकाश डाला गया है । जनसंचार किस तरह सामाजिक विकास और एकता के प्रसार में योगदान कर सकता है, इस पर इकाई में विचार किया गया है । उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जनसंचार ने समाज में सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार की भूमिका निर्वाह की है । संचार माध्यमों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों के प्रति अगर ग्रहीता सजग हो जाए तो निश्चित ही वह सभी प्रस्तुतियाँ प्रभावित होंगी जो कि समाज के अनुकूल नहीं है । हालांकि इस विचार से इंकार नहीं किया जा सकता कि टेलीविजन, फिल्म आदि माध्यमों की सामाजिक विघटन में महत्त्वपूर्ण भूमिका है किंतु यह भी वास्तविकता है कि अगर यह माध्यम न होते तो समाज का विकास भी प्रभावित होता । आज भारत जिस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है, उसका कुछ श्रेय अधुनातन माध्यमों को है । तात्पर्य यह है कि जनसंचार समाज के लिए अत्यंत उपयोगी है, अगर उसके प्रयोग के प्रति उपभोक्ता तथा शासन से जुड़े लोग सतर्क रहें तो इनका लाभ-द्विगुणित हो सकता है ।

13.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जनसंचार समाज का अंग भी है और समाज का उत्पादन भी । इस कथन के परिप्रेक्ष्य में जनसंचार की सामाजिक भूमिका का विवेचन कीजिए ।
2. क्या दृश्य-श्रव्य माध्यमों ने सामाजिक एकता बढ़ाने में भूमिका निभाई है? भारतीय संदर्भ को ध्यान में रखकर अपना मत प्रस्तुत कीजिए ।
3. एक ऐसे समाज की कल्पना कीजिए जो जनसंचार माध्यमों से पूरी तरह मुक्ता हो? ऐसा समाज वर्तमान समाज से किन रूपों में भिन्न होगा? बताइए ।
4. जनसंचार माध्यमों को समाज कैसे प्रभावित करता है' सोदाहरण स्पष्ट कीजिये ।
5. जनसंचार के सामाजिक सिद्धांतों की समीक्षा कीजिए ।

13.10 सन्दर्भ ग्रंथ

1. नोम चोमसकी; जनमाध्यमों का मायालोक: ग्रंथशिल्पी, दिल्ली- 11oo92.
2. जवरीमल्ल पारख, जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली, 2000
3. सुभाष धूलिया; संचार क्रांति की राजनीति और विचारधारा, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली

4. संपादक मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, अनुवादक, ओमप्रकाश मालवीय; संचार माध्यम और पूँजीवादी समाज, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली ।
5. मेनी वाइसेज वन वर्ल्ड - संपादक सीन मेकब्राइड, यूनेस्को का प्रतिवेदन, कोगन पेज लि, लंदन, संस्करण 1998
6. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यम और सांस्कृतिक विमर्श, 2009, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली- 110092.
7. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यमों का राजनीतिक चरित्र, 2006, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली- 110092.
8. भूमंडलीय जनमाध्यम निगम पूंजीवाद के नए प्रचारक: एडवर्ड एस हरमन, रॉबर्ट डज्यू मैकचेस्ती, अनुवादक चंद्रभूषण, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली- 110092.
9. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यमों का सामाजिक संदर्भ, 2006; अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली- 110002.

इकाई-14 जनसंचार और समाज (भाग-2)

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 जनसंचार में 'जन' की अवधारणा
14.3 जनसंचार और सूचना समाज
14.4 भारत में जनसंचार माध्यमों का स्वरूप और चरित्र
14.5 भारतीय समाज की संरचना और जनसंचार
14.5.1 भारत के जनसंचार माध्यमों में स्त्री
14.5.2 भारत के जनसंचार माध्यमों में ग्रामीण
14.6 सारांश
14.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
14.8 सन्दर्भ ग्रंथ

14.0 उद्देश्य

इस इकाई में जनसंचार और समाज के परस्पर संबंध और आदान-प्रदान की पड़ताल करने का प्रयास किया जा रहा है । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- जनसंचार में 'जन के अर्थ और भूमिका से परिचित हो सकेंगे ।
- जनसंचार द्वारा निर्मित सूचना समाज की प्रकृति से रूबरू हो सकेंगे । ।
- भारतीय जनसंचार माध्यमों के स्वरूप को पहचान सकेंगे ।
- भारतीय सामाजिक ढाँचे के बरक्स (खासतौर पर स्त्री और दलित) भारत के जनसंचार माध्यमों की भूमिका की समीक्षा कर सकेंगे ।

14.1 प्रस्तावना

मीडिया या जनसंचार आज समाज का अनिवार्य और अभिन्न अंग बन गया है । जनसंचार में जुड़ा उपसर्ग जन द्योतन है कि सम्प्रेषण का एक ऐसा साधन है जो जन-जन तक पहुँचे । आमतौर पर समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ, रेडियो, टेलीविजन, इन्टरनेट आदि को जनसंचार का प्रमुख माध्यम माना जाता है । इन सभी माध्यमों का विकास पूँजीवादी विकास के साथ-साथ हुआ । इसलिए इसका स्वरूप और चरित्र भी पूँजीवाद का राग अलापने लगा और इससे समाज से उनका रिश्ता तय हुआ और जन की अवधारणा भी प्रभावित हुई । जनसंचार के प्रचार-प्रसार से लोकतंत्र मजबूत हुआ । लोगों तक सूचनाएँ पहुँचने लगीं और एक सूचना समाज बना' । लेकिन इस सूचना समाज का भी एक वर्ग चरित्र है जो इसे एक वृत्त में सीमित करता है । जनसंसार के चरित्र और स्वरूप को निर्धारित करने में सस्ता और स्वामित्व की अहम भूमिका है। जनसंचार और समाज पर पड़नेवाले उनके प्रभाव को समझने के लिए इस संबंध को समझना

बहुत जरूरी है । आजादी के पहले जनसंचार माध्यम खासतौर पर समाचारपत्र, पत्रिकाएँ और पुस्तक नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन को जन-जन तक पहुँचाने में कामयाब रहे और आजादी के बाद भी विभिन्न तबकों तक ये सूचनाएँ पहुँचाते रहे । परंतु 1990 के बाद इनके चरित्र में भीषण बदलाव आया और बाजारवाद, उदारीकरण और भूमंडलीकरण के सांचे में ढलकर यह पूँजीवाद का प्रचारतंत्र बन गया ।

क्या इस प्रकार के जनसंचार माध्यमों से यह अपेक्षा की जा सकती हैं कि यह समाज के निर्धन, शोषित और हाशिए पर ढकेले गए लोगों की चिंता करेगा ? क्या जनसंचार माध्यम 'सही' और जरूरी सूचनाएँ जन-जन तक पहुँचा रहा है? जनसंचार और समाज के परस्पर संबंध को समझने के लिए क्या इनकी अपनी-अपनी भूमिकाओं को समझना पड़ेगा? जनसंचार समाज में पैदा होता है या समाज अपनी जरूरत के अनुसार जनसंचार पैदा करता है? मीडिया का स्वामित्व किसके हाथ में है? मीडिया किस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है? इन्हीं सभी सवालों का जवाब ढूंढने का प्रयास इस इकाई में किया जाएगा ।

14.2 जनसंचार में 'जन' की अवधारणा

आम धारणा है कि जनसंचार जनता के लिए है परंतु यदि हम जनसंचार माध्यमों में मुद्रित, प्रसारित, प्रकाशित विषयों को गौर से देखें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि ये जनसंचार माध्यम जनता की भावनाओं का उपयोग कर उन्हें उपभोक्तावादी संस्कृति से या दूसरे शब्दों में कहें तो सीधे बाजार से जोड़ने का प्रयत्न करते हैं । जनसंचार में 'जन' वह है जिन तक इन जनसंचार माध्यमों की पहुँच है । अखबार की पहुँच पढ़े लिखे लोगों तक है इसलिए इसकी जद में केवल साक्षर लोग ही आते हैं; निरक्षर लोग या जिन तक अखबार नहीं पहुँचता वे इसके ग्राहक नही हैं । लेकिन रॉबिन जेफ्री ने अपनी पुस्तक 'भारत की समाचार पत्र क्रांति' में यह बताया है कि किस प्रकार स्थानीय भाषा के अखबार न केवल पढ़े जाते हैं बल्कि सुने भी जाते हैं । इसलिए एक-एक हिन्दी अखबार को 10 से 20 लोग पढ़ते हैं । इस विषय पर हम आगे विचार करेंगे ।

इसी प्रकार रेडियो भी अब एक ऐसे जनसंचार माध्यम के रूप में उभरा है जिसकी पहुँच अखबार से भी ज्यादा है । मोबाइल फोन में रेडियो आने से अब तो इसके पहुँच की कोई सीमा ही नहीं है । इसलिए रेडियो का लगातार विस्तार पा रहा है और इसके 'जन' की संख्या बढ़ रही है ।

टेलीविजन एक सशक्त जनसंचार माध्यम के रूप में उभरा है और यह 'जन' के मन मस्तिष्क को बांधने और एक खास दिशा में ढालने का प्रयत्न कर रहा है । गौरतलब है कि मीडिया एक सांस्कृतिक उत्पाद है और यह अर्थशास्त्र से परिचालित और प्रभावित होता है । मीडिया मुनाफा कमाने का एक उद्योग है जो अपने कार्यक्रमों के माध्यम से सामान बेचता है । जनसंस्कृति भी बाजार में बेचा जानेवाला एक ऐसा सामान है । मीडिया का उद्देश्य होता है अपने पाठक, श्रोता, दर्शक वर्ग की संख्या में ज्यादा से ज्यादा बढ़ोत्तरी करना ताकि जनता को वह बाजार से जोड़ सके । गौरतलब है कि जनसंस्कृति को और जनता की भावनाओं को उत्पाद के रूप में परोसा जाता है और उसके माध्यम से बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपना सामान बेचने' का

जुगाड़ करती हैं।समाचारपत्र, रेडियो, सिनेमा और टेलीविजन जैसे जनसंचार माध्यम 'जन' को व्यक्ति के रूप में ढालता है उसे सामूहिक नहीं बनाता । उसी तरह जैसे कोई वोटर वोट देने जाता है और अपने मत का प्रयोग करता है लेकिन एक-एक व्यक्ति का मत सामूहिक बनता है और इसे ही लोकप्रियता का मानदंड माना जाता है । टेलीविजन मे TRP का जो प्रचलन है वह उसी प्रकार का 'जनमत' निर्णय है । जनसंचार में लोकप्रियता सर्वाधिक केन्द्रीय वस्तु है । कोई कार्यक्रम या वस्तु जितने लोगों द्वारा पसंद की जाती है उसे उतना ही लोकप्रिय मानी जाती है। लोकप्रियता बाजार का स्वीकृत मानदंड है । प्रो. जवरीमल्ल पारख ने अपनी पुस्तक 'जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य' में जनसंचार माध्यम के सन्दर्भ में 'जन' की संकल्पना पर विचार करते हुए लिखते हैं कि ' 'इस प्रकार जनसंचार माध्यमों में जन की पूरी संकल्पना ऐसे लोगों के समूह के रूप में होती है, जो अपनी सांस्कृतिक, शैक्षिक और सूचनापरक जरूरतों के लिए पूरी तरह नहीं तो कम से कम इस हद तक बाजार पर निर्भर अवश्य हो कि वह अपने निर्णय अपने स्वतंत्र विवेक से नहीं बल्कि जनमाध्यमों से प्रेरित और प्रभावित होकर ले । जन की यहपरिकल्पना जाहिर है, जनता की परिकल्पना से नितांत भिन्न है, जो स्वतंत्र विवेकवान और दायित्वपूर्ण माना जाता है । "

प्रो. पारख के इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि जनसंचार में 'जन' को इस रूप में परिभाषित किया जाता है जो बाजार का हिस्सा बना दिया गया और जिसके आत्मनिर्णय और विवेक पर इस प्रक्रिया में अंकुश लगाया जाता है ।

मीडिया लोकतंत्र के वाहक के रूप में अपने को सामने रखता है परंतु इस लोकतंत्र और लोकप्रियता की अवधारणा का खोल ओढ़कर वह लोगों की अंत:चेतना को इस तरह प्रभावित करता है कि वे बाजार से जुड़ जाते हैं । इस गफलत में हमें नहीं रहना चाहिए कि मीडिया हमारा मनोरंजन कर रहा है और एक स्वस्थ समाज बनाने के लिए कृत संकल्प है । हमें इससे जनकल्याण की आशा नहीं रखनी चाहिए । निश्चित रूप से मीडिया लोगों का मनोरंजन करता है परंतु उसका मुख्य उद्देश्य है लोगों को एक खास दिशा में निर्देशित करना और वह दिशा है बाजार की ओर । इसलिए समाज पर मीडिया के पड़ने वाले प्रभाव पर विचार करते समय इन सब पक्षों का ध्यान रखना चाहिए । ऐसा नहीं है कि मीडिया लोकतंत्र से बिलकुल अछूता है । लकिन इस पहलू पर आगे चर्चा की जाएगी ।

14.3 जनसंचार और सूचना समाज

औद्योगिक क्रांति ने एक औद्योगिक समाज निर्मित किया जिसमें एक ओर पूँजीपति थे तो दूसरी ओर कारखानों में काम करनेवाले मेहनतकश सर्वहारा मजदूर । इसी दौरान मध्यवर्ग का भी उदय हुआ । औद्योगिक समाज से सूचना समाज में परिवर्तन का मुख्य आधार प्रौद्योगिकी में हुए ऐसे परितर्वन है, जिन्होंने सूचना को एक ऐसे उत्पाद में बदल दिया है, जिन्हें व्यापक पैमाने पर खरीदा और बेचा जा सकता है । सूचना चूँकि भौतिक उपभोग की वस्तु नहीं बल्कि सांस्कृतिक उत्पाद है, इसलिए उसका प्रभाव भी भिन्न लेकिन अधिक गहन होता है । औद्योगिक विकास के साथ बाजार विकसित हो रहे थे ओर इस बाजार पर नियंत्रण स्थापित करने और जनता को इस बाजार से जोड़ने के लिए जनसंचार माध्यमों का उपयोग

किया गया । जनसंचार माध्यम ने मध्यवर्ग को शक्तिशाली भी बनाया और उन्हें बाजार के मजबूत उपभोक्ता के रूप में विकसित किया । जनसंचार माध्यमों के जरिए जो रणनीति अपनाई गई उसमें अर्थव्यवस्थाओं का भूमंडलीकरण भी शामिल है और बड़ी होशियारी और खूबसूरती से जनसंचार माध्यमों के जरिए मध्यवर्ग को भूमंडलीकरण से जोड़ दिया गया और उन्हें इस भ्रम में रखा गया और यह भरोसा दिलाया गया कि उनका हित और उन्नति बाजार से जुड़ने में है । जनसंचार माध्यमों के आगमन से एक नया समाज बना जिसे हम सूचना समाज कहते हैं । यह ऐसा समाज होता है जो जनसंचार माध्यमों से प्राप्त सूचनाओं को ग्रहण करता है । जनसंचार माध्यम के जरिए बाजार इस सूचना समाज पर अपना नियंत्रण कायम करता है और साथ ही साथ अपने उद्देश्यों की पूर्ति करता है । जनसंचार के बढ़ते प्रभाव के कारण सूचनातत्रों का महत्त्व बढ़ गया है और आज के युग को सूचना का युग कहा जाने लगा है ।

यहाँ इस बात पर गौर किया जाना चाहिए कि इस सूचना और सूचना समाज पर किसका नियंत्रण है । एक और बात भी विचार करने की है कि क्या सूचना और ज्ञान एक दूसरे के पर्याय हैं? रेडियो, टेलीविजन और अखबार में जो हम खबरें सुनते हैं, देखते हैं और पढ़ते हैं वे ज्यादातर सूचनाएँ होती हैं ज्ञान नहीं । सारे जनसंचार माध्यम अपनी खबरों के जरिए भिन्न-भिन्न प्रकार की सूचनाएँ लोगों तक पहुँचाते हैं । ये सूचनाएँ बार-बार हमारे सामने आकर हमारे मस्तिष्क में घर करने लगती हैं और निश्चित रूप से इसका हमारे मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है।

जनसंचार माध्यमों और उनके द्वारा प्रचारित-प्रसारित कार्यक्रमों को समझने के लिए हमें यह भी देखना होगा कि जनसंचार के इन माध्यमों पर किसका अधिकार है । मौजूदा मिल्कियत पर गौर करें तो समाचारपत्र पर बिडला, गोयनका जैसे व्यावसायिक घरानों का अधिकार है और समाचारपत्र पूरी तरह से निजी उद्योग बन चुका है । एक मिशन के साथ लोगों ने राष्ट्रीय आंदोलन के साथ अखबार की शुरूआत की । लेकिन धीरे-धीरे अखबार भी व्यावसायिक होता चला गया और आज व्यावसायिक और मुनाफा कमाने वाला साधन बन गया है ।

एडवर्ड एस हरमन और रॉबर्ट डब्लयू मैकचेस्नी ने अपनी पुस्तक 'भूमंडलीय जनमाध्यम: निगम पूँजीवाद के नए प्रचारक' की प्रस्तावना में लिखा है कि आधुनिक जनसंचार माध्यमों का केन्द्रीकरण और भूमंडलीकरण हुआ है और (व्यापक वाणिज्यवाद), सार्वजनिक प्रसारण तथा 'सार्वजनिक सेवा मानकों की अनुप्रयोजनीयता के सापेक्ष महत्त्व में इसके साथ ही जुड़ी हुई स्पष्ट गिरावट इसकी मुख्य विशेषताएँ हैं । ये जनसंचार माध्यम विज्ञापन समर्थन पर चलते हैं और मुख्य तौर पर मुनाफा कमाना इनका मुख्य ध्येय है । जनसंचार माध्यमों की ताकत का ऐसा केन्द्रीकरण पहले कभी नहीं देखा गया । यह केन्द्रीकरण लोगों की सार्वजनिक भागीदारी, सार्वजनिक मुद्दों पर एक समझ विकसित करने और लोकतंत्र को सही दिशा दिखाने में एक बहुत बड़ा खतरा है ।

इसी प्रस्तावना में जनमाध्यमों की भूमिका, सार्वजनिक दायरे की अवधारणा और इसका महत्व में एडवर्ड एस. हरमन और रॉवर्ट डब्लयू मैकचेस्नी बताते हैं कि किस प्रकार संचार के विभिन्न माध्यम घर और सार्वजनिक स्थलों पर व्यक्तिगत मुलाकातों के जरिए बनते हैं ।

उन्होंने यह भी बताया है कि अपनी सूचनाओं और छवियों के साथ जनसंचार माध्यम एक सामूहिक स्रोत हैं जो सूचनाएँ और संचार प्रसारित करने का काम करते हैं । वे लिखते हैं कि "संचार माध्यम लोगों को मनोरंजन प्रदान करते हैं और रोजमर्रा की परेशानियों से उनका मन हटाते हैं । ये अतीत और वर्तमान के बारे में सूचना (अथवा मिथक और सूचना निषेध-डिसइंफरर्मेशन) मुहैया कराते हैं, जो एक साझा संस्कृति और मूल्यों, परम्पराओं और विश्व दृष्टिकोणों की एक प्रणाली की रचना में मददगार बनती हैं । संचार माध्यम कभी-कभी वृहतार संस्कृतियों के भीतर मौजूद अल्पसंख्यकों और उपसंस्कृतियो को स्थानीय खबरें और मनोरंजन मुहैया कराते हुए खुद को और दुनिया को खास अपने चश्मे से उन्हें देखने की इजाजत देते हुए उनकी सेवा भी करते हैं।"

जनसंचार साधनों पर जिस व्यापक वाणिज्यवाद का प्रभाव है वह उसके चरित्र और मंशा को स्पष्ट कर देता है । वे निश्चित रूप से पूरे समाज को अपने नियंत्रण में रखना चाहते हैं । संचार साधनों और सामाजिक जीवन पर पड़नेवाले उनके प्रभाव को ठीक से समझने के लिए हमें भारतीय समाज की संरचना और जनसंचार के पैंतरों को समझना होगा क्योंकि यह स्पष्ट है कि समाज के विभिन्न तबकों के बीच जिस प्रकार का सम्प्रेषण होगा उसी से यह निश्चित हो सकेगा कि हमारे समाज का ढाँचा कौन सा रूप ग्रहण करेगा ।

14.4 भारत में जनसंचार माध्यमों का स्वरूप और चरित्र

भारतीय सामाजिक संरचना और जनसंचार के स्वरूप और उनके परस्पर संबंध को समझने से पहले भारत के मुख्य जनसंचार माध्यमों के स्वरूप और चरित्र पर एक निगाह डाल लेना उचित प्रतीत होता है । भारत में जनसंचार माध्यमों का विकास उस समय हुआ जब भारत गुलाम था । 18वीं शताब्दी में भारत में प्रेस की स्थापना हुई और उसके बाद पुस्तकों और समाचारपत्रों का प्रकाशन आरंभ हुआ । इसी प्रकार भारत में रेडियो की स्थापना 1923 में हुई । भारत में टेलीविजन प्रसारण की शुरूआत 1959 में हुई । रेडियो और टेलीविजन से भी पहले हमारे देश में 1899 में फिल्म निर्माण की शुरूआत हो चुकी थी । इस प्रकार आजादी मिलने से पहले टेलीविजन को छोड़कर विश्व में स्थापित सभी जनसंचार माध्यमों की शुरूआत हो चुकी थी। यह तय है कि आजादी से पहले समाचारपत्र और सिनेमा दो सर्वाधिक विकसित माध्यम थे।

समाचार पत्र

मुद्रण कला का आरंभ जनसंचार के क्षेत्र में पहला ऐतिहासिक और क्रांतिकारी कदम था। इसने विचारों के सार्वजनीकरण का नया मार्ग प्रशस्त किया । हालांकि ईसा की पहली शताब्दी में चीन में इस कला के विकास के प्रमाण मिले हैं परंतु इस दिशा में जर्मनी के एक सुनार गुटेन बर्ग का आविष्कार आधुनिक मुद्रण कला की आधारभूमि बनी । उसने पहली बार जोहानेस प्रथम नामक एक वकील के साथ मिलकर 42 पंक्तियों की बाइबिल 1455 ई. में प्रकाशित की। बाइबिल का प्रकाशन अपने आप में एक अद्भुभुत घटना थी । अभी तक बाइबिल के बारे में पादरी जो कुछ बताते थे जनता उसे सुनती थी और उसे ग्रहण करती थी लेकिन अब लोग खुद बाइबिल पढ़ने और समझने लगे और इस प्रकार ईश्वर से जोड़ने की पुरोहित वर्ग के वर्चस्व को

गहरा धक्का लगा । जेम्स करन अपने लेख 'संचार, सत्ता और समाज व्यवस्था' में लिखते हैं कि "इस प्रकार मुद्रण के कारण पादरी वर्ग की मध्यस्थता और हस्तक्षेप करने वाली प्रवृति को हटा दिया गया और यहाँ तक कि चर्च की भूमिका क्षीण हो गई क्योंकि ईसाइयों को अपने ईश्वर के साथ जोड़ने के लिए एक नया माध्यम मिल गया था ।"

उसी लेख में उन्होंने यह बताया है कि 1543 में इंगलिश चर्च ने एक आदेश निकाला कि निम्नवर्ग के लोग जिसमें स्त्रियाँ भी शामिल थीं बाइबिल नहीं पढ़ सकते । ध्यातव्य है कि हिंदू धर्म ग्रंथ भी स्त्रियों और दलितों पर ऐसा ही प्रतिबंध लगा चुके थे । समाचारपत्रों और पुस्तकों के इस क्रांतिकारी कदम के कारण इन पर समय-समय प्रतिबंध लगाया गया और उन्हें कठोर कानूनी नियंत्रण में रखने की कोशिश की गई । इससे साक्षरता भी विकसित हुई । मध्यवर्ग का विस्तार हुआ । मध्यवर्ग की आर्थिक क्षमता जैसे-जैसे बढ़ती गई वे समाचारपत्र खरीदकर पढ़ने लगे और व्यापार में निरंतर बढ़ोत्तरी के कारण उन्हें विज्ञापन भी मिलने लगे और इस प्रकार व्यापारिक प्रेस का उदय हुआ । भारत और इस व्यापारिक प्रेस ने मध्यवर्गीय हितों को प्रभावित भी किया और बढ़ावा भी दिया ।

भारत में समाचारपत्रों का जन्म उस समय हुआ जब भारत गुलाम था । हमारे देश में पत्रकारिता की शुरुआत जेम्स आगस्टस हिकी ने की । उन्होंने 29 जनवरी 1780 को बंगाल गजट का प्रकाशन आरंभ किया । भारत की पहली बहुभाषीय पत्रिका दिग्दर्शन नाम से 1818 में निकली । यह अंग्रेजी, बंगला और हिन्दी में प्रकाशित होती थी । हिन्दी का पहला साप्ताहिक पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' के नाम से प्रकाशित हुआ जिसके संपादक थे युगल किशोर शुक्ल । इसके बाद राजा राममोहन राय 1829 में 'बंगदूत', राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद ने 1845 में बनारस' अखबार आदि का प्रकाशन आरंभ किया । 'अमृत बाजार पत्रिका' भी इस दौर का एक महत्त्वपूर्ण समाचारपत्र था जिसका प्रकाशन साप्ताहिक रूप में हुआ परंतु 1891 से यह दैनिक हो गया । भरतेंदू हरीशचन्द्र, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, बाबूराव विष्णु पराड़कर और बालमुकुंद गुप्त इस युग के प्रख्यात पत्रकार थे । लगभग नवजागरण और स्वाधीनता आंदोलन के सभी राष्ट्रीय नेताओं ने अखबार निकाला । इनमें से कई पत्र-पत्रिकायों को औपनिवेशिक शक्ति से जूझना पड़ा। खबरें सेंसर करना तो उन दिनों आम बात थी । उस समय की सरकार अखबार को अपना सबसे बड़ा दुश्मन मानती थी परंतु इन अखबारों ने नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन के प्रचार प्रसार में अहम भूमिका अदा की । यह याद रखना चाहिए कि उस समय पत्रकारिता एक मिशन था व्यवसाय नहीं और उनके सामने एक ही लक्ष्य था देश को आजाद कराना । रॉबिन जेफी ने अपनी पुस्तक 'भारत की समाचारपत्र क्रांति' में विस्तार से बताया है कि किस प्रकार आजादी के बाद और खासतौर पर 80 के दशक के बाद भारतीय भाषाओं के समाचारपत्र में अभूतपूर्व तेजी आई । भारतीय भाषाओं के समाचारपत्रों के प्रचार-प्रसार ने एक जनाधार विकसित किया और लोगों को राजनीति और राष्ट्रीय धारा से जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की । लाखों लोग अन्याय के खिलाफ विरोध करने लगे । सत्ता के विरोध की खबरें लाखों लोगों तक पहुँचने लगी। लाखों लोगों का असंतोष अखबार की ध्वनि बनने लगा और लोगों में एक आत्मविश्वास पैदा होने लगा । रॉबिन जेफी का यह कथन द्रष्टव्य है ' 'जनसंचार के अभाव में जनाधार की

कल्पना असंभव है । जनाधार का रंगमंच लोकतंत्र में भागीदारी का अभिन्न हिस्सा है । आजादी के समय सम्प्रेषण की यह क्षमता मुट्ठी भर लोगों तक ही सीमित थी । 1980 और 1990 के दशक में हुई समाचार क्रांति के फलस्वरूप जनाधार विकसित हुआ और कस्बों तथा देहातों में रहनेवाले करोड़ों लोगों को अपनी गिरफ्त में ले लिया । "

रेडियो

भारत में रेडियो का आगमन समाचारपत्रों के बाद हुआ । व्यावसायिक स्तर पर भारत में रेडियो प्रसारण की शुरुआत 23 जुलाई 1927 को इंडियन ब्रॉडकास्टिंग कम्पनी की मुम्बई में स्थापना के साथ हुई । 1936 में इसका नाम ऑल इंडिया रेडियो कर दिया गया और इसका मुख्यालय दिल्ली बन गया । आकाशवाणी के लगभग 214 केंद्र लगभग शत प्रतिशत (99.13) आबादी तक अपना कार्यक्रम पहुँचा रहे हैं ।

20वी शताब्दी के अन्त और 21वीं शताब्दी के आरंभ में रेडियो ने एक नया स्वरूप अख्तियार किया । सरकारी तंत्र के अलावा प्राइवेट कम्पनियों को भी रेडियो स्टेशन चलाने की छूट दी गई और प्राइवेट एफ एम चैनलों की स्थापना हुई । टेलीविजन के आगमन तक रेडियो सर्वाधिक लोकप्रिय इलेक्ट्रोनिक माध्यम था । 1990 के दशक के पहले रेडियो पूरी तरह सरकारी नियंत्रण में था और यह सरकार के प्रवक्ता के रूप में भी काम किया करता था । सूचना, शिक्षा, और मनोरंजन की जिम्मेदारियों से लैस रेडियो एक आदर्श लेकर चला । उसके समक्ष एक आदर्श संहिता थी जिसका वह पूर्णरूपेण पालन किया करता था । इस रूप में पूरे राष्ट्र को जोड़ने में आकाशवाणी की मुख्य भूमिका थी और सूचना प्रसारित करने का यह एकमात्र त्वरित माध्यम था । अपनी पहुँच और त्वरा के कारण रेडियो सूचना का एक विश्वसनीय और सकारात्मक माध्यम बना । भूमंडलीकरण के पहले आकाशवाणी से विज्ञापनों के प्रसारण पर भी रोक थी यानी रेडियो बाजारीकरण से बिलकुल मुक्त था और इस प्रकार समाज के व्यापक हिस्से पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ा ।

लेकिन टेलीविजन के आगमन के बाद रेडियो की लोकप्रियता, खासतौर पर शहरों में, तेजी से घटने लगी और जैसे जैसे टेलीविजन की पहुँच बढ़ती गई रेडियो सिकुडने लगा और ऐसा लगा कि रेडियो की भूमिका सीमित हो जाएगी । लेकिन ऐसा हुआ नहीं; जरूरत के मुताबिक रेडियो का मिजाज भी बदला । यह भी बाजार से जुड़ा और आकाशवाणी से भी विज्ञापन प्रसारित होने लगे यानी रेडियो भी लोगों को बाजार से जोड़ने की भूमिका निभाने लगा। प्राइवेट चैनलों के आगमन से रेडियो एक बार फिर लोकप्रिय हो गया । परंतु ज्ञान और शिक्षा के अपने दायित्व को छोड़कर यह सूचना और मनोरंजन की ओर अग्रसर हुआ । इससे रेडियो की सामाजिक और राष्ट्रीय भूमिका को नुकसान पहुँचा । रेडियो में आए इस बदलाव को पूँजीवाद के समग्र विकास से जोड़कर देखें तो रेडियो में हुए इस बदलाव को आसानी से समझा जा सकता है । इसके बावजूद अभी भी आकाशवाणी समाज के वंचित, शोषित और हाशिए पर खड़े लोगों की बात करता है, उनकी समस्याओं पर विचार-विमर्श करता है और उनके सरोकार को मुख्यधारा से जोड़ता है । इस लिहाज से रेडियो खासतौर पर आकाशवाणी सही अर्थो में 'जन माध्यम' है ।

टेलीविजन

हमारे देश में 15 सितम्बर 1959 को टेलीविजन की शुरूआत हुई । इसका भी वही उद्देश्य था सूचना, शिक्षा और मनोरंजन । आरंभ में टेलीविजन का उपयोग शिक्षा के लिए किया गया और 1961 में 250 स्कूलों में टेलीविजन सेट लगाए गए । 1967 में किसानों के लिए कृषि दर्शन कार्यक्रम शुरू किया गया । लेकिन भारत में 15 अगस्त 1982 को टेलीविजन क्रांति आई जब 21 दूरदर्शन केंद्रों के जरिए दर्शकों ने भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी को भाषण देते हुए सुना और देखा । दूरदर्शन ने भी अपने सामने एक आदर्श रखा जन-जन तक पहुँचने का और समाज को मुख्यधारा से जोड़ने का । 'हमलोग', 'बुनियाद', 'महाभारत', 'रामायण' आदि धारावाहिक के प्रसारण ने टेलीविजन को लोकप्रिय बनाया और भारतीय जनता को घर में सिनेमाघर मिल गया । टेलीविजन जनता के मनोरंजन का एक लोकप्रिय और सहज सुलभ माध्यम बनने लगा ।

1990 के दशक में भारत में टेलीविजन का विस्तार हुआ और कई प्राइवेट चैनल सामने आए और जनता की मांग और रूचि को देखते हुए भारतीय भाषाओं में कार्यक्रम प्रसारित किए जाने लगे । मनोरंजन के माध्यम के रूप में टेलीविजन लोकप्रिय हुआ और लोग इसके प्रति मोहित होने लगे । टेलीविजन विज्ञापन दिखाने लगा । टेलीविजन का उपयोग एक ऐसे माध्यम के रूप में भी किया जाने लगा जिससे जनता के मत को प्रभावित किया जा सके । टेलीविजन भूमंडलीकृत मीडिया का एक सशक्त माध्यम बनकर उभरा और उसने एक खास ढंग से लोगों तक सूचना पहुँचाई और संस्कृति को उत्पाद बनाकर बेचा । टेलीविजन के माध्यम से लोगों पर वैचारिक नियंत्रण स्थापित किया गया । अब टेलीविजन 24 घण्टे चलता है और इनमें आपस में बाजार पर कब्जा करने की होड़ मची रहती है और इस होड़ में यह लोगों तक पहुँचने के लिए मनोरंजन को सीढ़ी बना रहे हैं । यहाँ तक कि समाचार भी अब मनोरंजन बन गया है जिसका काम लोगों को सूचित और खबरदार करना कम मनोरंजन करना अधिक है ।

सिनेमा

20वी सदी सिनेमा के उद्भव और विकास की दृष्टि से उल्लेखनीय है । भारत में भी सिनेमा का आगमन 19वीं शदी के अंत और 20 वीं सदी के आरंभ में हो चुका था । मूक फिल्मों से यह यात्रा शुरू हुई और आज यह डिजिटल तकनीक तक पहुँच चुकी है । जब से भारत में फिल्में बनने और दिखाई जाने लगी तब से यह मनोरंजन का प्रमुख साधन बनी हुई है । भारत में आरंभ में बननेवाली फिल्मों में एक सामाजिक प्रतिबद्धता दिखाई पड़ती है । वी. शान्ताराम, सत्यजीत, मृणाल सेन, ऋत्विक घटक बिमल रॉय, गुरदत, महबूब जैसे फिल्मकारों ने भारतीय सिनेमा को भारतीय यथार्थ का आइना बनाया । 1980 का दशक संगीतमय प्रेम कथाओं का दशक रहा । 90 के दशक में हिंसा और अपराध कथा का केंद्र बना और इस प्रकार भारत में फिल्मों ने एक लम्बी यात्रा तय की । उपदेशात्मक फिल्में' जनता को नहीं भाती । कलात्मक फिल्में' भी जनता के बीच नहीं चल पाती । लेकिन यह स्पष्ट है कि लोग सिनेमाघरों में मनोरंजन के लिए जाते हैं और जो फिल्म उनका मनोरंजन करती है वह बॉक्स ऑफिस पर हिट होती है । लेकिन 'लगान जैसी फिल्म का हिट होना इस बात का प्रमाण है कि जन सरोकार से जोड़कर भी फिल्मों द्वारा मनोरंजन किया जा सकता है और ऐसी फिल्में सफल भी होती हैं ।

भारतीय भाषाओं में बनी फिल्में आमतौर पर प्रगतिशील रही हैं जिनमें भारत की सामाजिक, संस्कृति और राष्ट्रीय एकता को मजबूत बनाने का प्रयास किया जाता रहा है । इस लिहाज से हिन्दी सिनेमा की अहम भूमिका है ।

14.5 भारतीय समाज की संरचना और जनसंचार

2001 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या की 722 प्रतिशत जनता 6 लाख 38 हजार गाँवों में रहती है और बाकी 27.8 प्रतिशत जनता छोटे-बड़े 5500 शहरों में रहती है । इनमें 80.5 प्रतिशत हिन्दू 13.4 प्रतिशत मुसलमान और अन्य में सिक्ख, बौद्ध, ईसाई आदि अल्पसंख्यक शामिल हैं । अनुसूचित जातियों और जनजातियों का प्रतिशत लगभग 25 है । भारत में साक्षरता का प्रतिशत लगभग 70% है ।

जनसंचार माध्यमों का विकास भारत में निजी और सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में हुआ । यदि पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ से ही निजी क्षेत्र में होता रहा है, तो रेडियो और टेलीविजन के लिए प्रसारण गतिविधियों का संचालन सरकारी संरक्षण में आरंभ हुआ । 1990 के बाद ही रेडियो और टेलीविजन के क्षेत्र में निजी पूँजी का अबाध प्रवेश आरंभ हुआ । टेलीविजन प्रसारण में अब बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भी व्यापक पैमाने पर सक्रिय है । सिनेमा का क्षेत्र भी आरंभ से निजी क्षेत्र के अधीन रहा है । आर्थिक और शैक्षिक रूप से अपनी परम्परागत मजबूत स्थिति के कारण इन क्षेत्रों में कार्य करने वाले लोगों का अधिकांश सवर्ण हिन्दुओं का रहा है जिसमें पिछले दो-दशकों में धीमे-धीमें बदलाव आ रहा है । अब स्त्रियॉ, पिछड़ी जातियाँ, दलित और धार्मिक अल्पसंख्यकों का प्रवेश भी हो रहा है । मीडिया पर उच्च मध्य वर्गीय उच्च जाति समूहों के वर्चस्व ने कुछ हद तक उनकी राजनीतिक- सामाजिक भूमिका को भी प्रभावित किया है, जो सांप्रदायिकता, आरक्षण आदि प्रश्नों पर अपनाए गए प्रतिगामी रूखों से जाहिर भी होती है।

14.5.1 भारत के जनसंचार माध्यमों में स्त्री

जनसंचार माध्यमों में महिलाओं की उपस्थिति को तीन रूपों में देखा जा सकता है । एक पत्रकार, कलाकार, प्रबंधक और तकनीशियन के रूप में । दो, ऐसे सामाजिक वर्ग के रूप में जिससे संबंधित समस्याओं और अन्य पक्षों को मीडिया का विषय बनाया जाता है । और तीन, जिसके जीवन को लेकर विभिन्न माध्यमों पर फिल्म, धारावाहिक, नाटक, कहानी, उपन्यास आदि प्रस्तुत किए जाते हैं । महिलाएँ प्रत्येक समाज के आधे भाग का प्रतिनिधित्व करती हैं । लेकिन उनका कार्यक्षेत्र, उनके अधिकार और उनसे जुड़ी समस्याएँ पुरुषों से काफी भिन्न हैं । मीडिया में स्त्रियों की उपस्थिति उनकी आबादी की तुलना में लगभग नगण्य है, इसलिए उनके जीवन की अभिव्यक्ति भी, उनका अपना दृष्टिकोण भी मीडिया में हाशिए पर ही बना रहता है । यदि उनके जीवन का यथार्थ व्यक्त भी होता है, तो उस पर पितृसत्तावादी दृष्टिकोण हावी रहता है । इस सच्चाई को टीवी धारावाहिकों, समाचारों और स्त्रियों से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों में देखा जा सकता है । लेकिन इसका अर्थ यह नहीं लिया जाना चाहिए कि जनसंचार माध्यमों में स्त्री की मुक्ति से संबंधित दृष्टिकोण पूरी तरह से गायब रहता है । यह कहना सही

नहीं है । फिल्मों, धारावाहिकों और न्यूज चैनलों पर भी स्त्री जीवन का यथार्थ प्रगतिशील दृष्टि से प्रस्तुत करने की कोशिशें भी निरंतर स्थान पाती रही हैं । जब हम स्त्री की बात करते हैं तो इस बात को ध्यान में रखना होगा कि उनमें भी कमोबेश वे सभी भेद-उपभेद हैं, जो पुराषों में दिखाई देती है । अमीर-गरीब, शहरी-ग्रामीण, शिक्षित-अशिक्षित, नारी सशक्तिकरण के जिस जेहाद की शुरुआत की थी वह काफी पीछे छूट चुका है । अभी सवर्ण-अवर्ण, बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक, घरेलू-कामकाजी के भेदों को ध्यान में रखकर ही मीडिया में स्त्री की उपस्थिति को समझा जा सकता है । लेकिन चाहे जिस वर्ग और समुदाय से स्त्रियों का संबंध क्यों न हो, सिर्फ 'स्त्री होने के कारण उनको ऐसी कई सच्चाइयों से दो-चार होना पड़ता है, जिसका सामना पुरुषों को नहीं करना पड़ता । जनसंचार माध्यमों में 'स्त्री' पर एक स्वतंत्र इकाई में विस्तार से विचार किया गया है ।

14.5.2 भारत के जनसंचार माध्यमों में ग्रामीण

दलित समाचार का हिस्सा तभी बनते हैं जब वे आत्महत्याएँ करते हैं या उन पर सामूहिक रूप से अत्याचार किया जाता है, उनके घर जलाए जाते हैं । दलितों के बारे में जागरूकता फैलाने के नाम पर मीडिया इन्हें उत्पाद बनाकर पेश करती है और कभी-कभी तो दलितों और किसानों की आत्महत्याएँ खबर बनती ही नहीं क्योंकि उस समय मटुकनाथ प्रसंग या फिर कोई एम एम एस प्रसंग टेलीविजन पर छाया रहता है । रेडियो पर भी अब भारत की शोषित पीड़ित जनता की खबर लेनेवाला कोई नहीं है । जनसंचार माध्यम लोककल्याणकारी माध्यम नहीं रहा । वह मुंनाफे का माध्यम है, उसे अपना माल बेचना है और जो भी खबर सनसनीखेज बनती है वही उसके काम की है । अपवाद स्वरूप कभी-कभी दलित भी हीरो बन जाते हैं जब स्लमडॉग करोड़पति की रूबीना(लतिका) अचानक महत्त्वपूर्ण हो उठती है । पिंकी भी खबरें भी चारों ओर फैलती हैं जिसे ऑस्कर मिला है ।

14.6 सारांश

जनसंचार और समाज के परस्पर संबंध पर विचार करते हुए कई प्रमुख मुद्दों की चर्चा इस इकाई में की गई है । सबसे पहली बात तो यह समझ लेनी चाहिए कि जनसंचार एक ऐसा माध्यम है जो जून के लिए तो है पर जन नियंत्रण में नहीं है । जनता को इसके माध्यम से क्या परोसना है इसका निर्णय मुठ्ठी भर लोग करते हैं जिनका संबंध शासक और व्यापारिक वर्ग से होता है इसलिए जनसंचार माध्यमों से यह उम्मीद करना कि वे एक लोककल्याणकारी माध्यम के रूप में काम करेंगे, भ्रम में रहना होगा ।

जनसंचार माध्यम को एक एजेंडा के तहत जरूर चलाया जाता है लेकिन मीडिया जैसा चाहती है वैसा जनता करे यह जरूरी नही है । इसलिए कई बार जनता के बारे में लिए गए निर्णय और उनके बारे में किए गए पूर्वाभास गलत साबित होते हैं लेकिन संचार माध्यम विज्ञापनों और प्रचार का एक ऐसा माध्यम है जो जनता के मन मस्तिष्क पर अपना प्रभाव तो स्पष्ट करता ही है ।

जनसंचार माध्यमों ने जाने अनजाने जनता को जागरूक बनाया है । जनता ने अपने को शक्तिशाली महसूस किया है । समाज को विश्वास में लिए बिना संचार माध्यम टिक नहीं सकते । इसलिए वे एक स्वप्निल संसार रचते हैं और एक मोहक दुनिया का निर्माण करते हैं ताकि आम जनता अपनी वास्तविकता और परेशानियों को भूल सके । जनसंचार माध्यमों में निर्णय की बागडोर उन्हीं लोगों के हाथ में है जो सदियों से भारतीय समाज पर राज करते आए हैं । भारतीय जनसंचार माध्यम पर इसका स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है । खासतौर पर ' स्त्रियों और दलितों के सन्दर्भ में स्थिति निराशाजनक है ।

14.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जनसंचार माध्यम सामाजिक परिवर्तन में किस तरह की भूमिका निभा सकता है? अपना मत प्रस्तुत कीजिए ।
2. जनसंचार की सामाजिक परिवर्तन में वर्तमान भूमिका की समीक्षा कीजिए ।
3. जनसंचार माध्यम समाज के कमजोर वर्गो की समस्याओं और उत्थान में किस हद तक उपयोगी साबित हुआ है? भारतीय संदर्भ को ध्यान में रखकर उत्तर दीजिए ।
4. जनसंचार माध्यम और ग्रामीण समाज विषय पर एक निबंध लिखिए ।
5. जनसंचार माध्यमों में दलित समाज की सीमित उपस्थिति के कारणों का विवेचन कीजिए।
6. क्या वर्तमान समाज को सूचना समाज कहा जा सकता है? ठोस तर्क देकर अपना मत पेश कीजिए ।

14.8 सन्दर्भ ग्रंथ

1. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, लेखक, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली ।
2. भूमंडलीय जनमाध्यम : निगम पूंजीवाद के नए प्रचारक, एडवर्ड एस हरमन,, लेखक :रॉवर्ट डब्लू मैकवेस्तीनी , अनुवादक चंद्रभूषण, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली ।
3. रॉबिन जेफ्री, अनुवादक प्रो. सत्यकाम; भारत की समाचारपत्र क्रांति, जन संचार संस्थान नई दिल्ली ।
4. डी. कृष्ण कुमार रत्तू, विश्व मीडिया बाजार, लेखक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली ।
5. सुभाष धूलिया; संचार क्रांति की राजनीति और विचारधारा, लेखक : ग्रंथ शिल्पी नई दिल्ली ।
6. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, अनुवादक, ओमप्रकाश मालवीयसंचार माध्यम और ०?? समाज, संपादक, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
7. रेमंड विलियम्स, अनुवादक सत्यम वर्मा और प्रमोद झासंचार माध्यमों का वर्ग ??, लेखक : ग्रंथशिल्पी, नई दिल्ली

इकाई- 15 जनसंचार के विभिन्न आयाम

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 नई संचार प्रौद्योगिकी
15.3 संचार के आर्थिक आयाम
15.4 संचार के राजनीतिक आयाम
15.5 संचार के सामाजिक आयाम
15.6 संचार के सांस्कृतिक आयाम
5.7 सारांश
15.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
15.9 सन्दर्भ ग्रंथ

15.0 उद्देश्य

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' पाठ्यक्रम के खंड-3 'जनसंचार और समाज' की इस इकाई 'जनसंचार के विभिन्न आयाम' पर विचार किया गया है । यह इस पाठ्यक्रम की पंद्रहवीं इकाई है । इकाई में आप संचार के नए आयामों तथा नई सूचना प्रौद्योगिकी का अध्ययन करेंगे । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- संचार की नयी प्रौद्योगिकी तथा नयी सूचना प्रौद्योगिकी को जान सकेंगे ।
- संचार के क्षेत्र में होने वाले नवीनतम परिवर्तनों की रोशनी में उन आर्थिक पहलुओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे जिन्होंने अर्थव्यवस्थाओं पर निर्णायक असर डाला हैं ।
- संचार के आधुनिकतम परिवर्तनों का राजनीतिक कारकों पर प्रभाव की समीक्षा कर सकेंगे।
- संचार के नए परिवर्तनों के समाज पर पड़ने वाले विभिन्न प्रभावों का विवेचन कर सकेंगे ।
- संचार के नवीनतम परिवर्तनों का सांस्कृतिक परिदृश्य पर पड़ने वाले प्रभाव की प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।

15.1 प्रस्तावना

'जनसंचार के विभिन्न आयाम' नामक इस इकाई से पूर्व की इकाईयों में आपने जनसंचार के विभिन्न सिद्धांतों का अध्ययन किया था । जनसंचार ऐसा क्षेत्र है जिसका भारत के विश्वविद्यालयों में अध्ययन पिछले लगभग दो दशक में आरंभ हुआ है । जनसंचार के क्षेत्र का महत्त्व पिछले दो दशकों में बहुत तेजी से बढ़ा है । इसका कारण यह है कि सन 1980 के बाद से जनसंचार के प्रसार की तरफ सरकारों का खासतौर पर ध्यान गया । इसकी शुरुआत टेलीविजन प्रसारण के विस्तार से हुई जब देश के कोने-कोने में रिले केंद्र स्थापित किए गए ।

इसके बाद कंप्यूटर का तेजी से विस्तार हुआ । दूरसंचार व्यवस्था का भी विस्तार हुआ और गाँव-गाँव में टेलीफोन की सुविधा ही नहीं पहुँच गई बल्कि दूरदराज के गाँवों से दुनिया के किसी भी कोने से टेलीफोन द्वारा सीधे बातचीत करने की सुविधा भी उपलब्ध हो गई । कंप्यूटर ने अब तक उपलब्ध सभी माध्यमों को एक ही स्थान पर उपलब्ध करा दिया । कंप्यूटर पर मोडेम लगाकर और उसे टेलीफोन से जोड़कर व्यक्ति इंटरनेट के जरिए दुनिया के किसी भी कोने से मुद्रित, दृश्य और श्रव्य संदेशों का आदान-प्रदान कर सकता है । यह संचार के क्षेत्र में एक बहुत बड़ी छलांग थी । खास बात यह है कि यह सुविधा बहुत महंगी भी नहीं है और इसका उपयोग करना भी आसान है । संचार के क्षेत्र में इन परिवर्तनों से भारत भी अछूता नहीं है । यहाँ भी इन नये संचार माध्यमों का तेजी से प्रवेश ही नहीं हो रहा है बल्कि ये माध्यम महानगरों से शहरों और कस्बों से होते हुए गाँवों तक पहुँचने लगे हैं । इसका लाभ आम आदमी भी कैसे ले सकता है यह आजकल संचार से जुड़े लोगों के विचार का मुख्य मुद्दा हो गया है ।

जनसंचार के क्षेत्र में होने वाले तकनीकी परिवर्तनों ने हमारे आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों को तेजी से प्रभावित करना शुरू कर दिया है । इसका परिणाम क्या होगा । क्या इससे भारत तेजी से विकास की ओर बढ़ सकेगा? क्या इससे देश में व्याप्त गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा और असमानता को मिटाने में मदद मिलेगी? आज अमरीका और यूरोप में इस नयी संचार टेक्नालॉजी के कारण एक नये तरह की निरक्षरता बढ़ने की बात की जा रही है, एक नयी तरह की सामाजिक असुरक्षा का खतरा बढ़ रहा है और विद्वानों का एक वर्ग यह भी मान रहा है कि इससे न सिर्फ आर्थिक विषमता में बढ़ोतरी हो रही है बल्कि लोगों के बुनियादी लोकतांत्रिक अधिकारों पर हमला भी हो रहा है । जनसंचार में होने वाले परिवर्तनों ने हमारे सामूहिक और वैयक्तिक जीवन पर कितना और किस तरह का प्रभाव डाला है, इस पर भी इस इकाई में विचार किया गया है । संचार के विभिन्न पहलुओं पर विचार करते हुए ही हम संचार के नए आयामों को समझ सकते हैं ।

15.2 नयी संचार प्रौद्योगिकी

संचार के नए आयामों के बारे में विचार करने से पूर्व संचार की नई प्रौद्योगिकी। के बारे में जानना जरूरी है, जिनके कारण संचार के ये नए आयाम सामने आए हैं । संचार की प्रौद्योगिकी के इतिहास को हम तीन कालखंडों में बांट सकते हैं-

1. प्राक् आधुनिक युग की संचार प्रौद्योगिकी;
2. आधुनिक युग की संचार प्रौद्योगिकी और
3. उत्तर आधुनिक युग की संचार प्रौद्योगिकी ।

प्राक् आधुनिक युग की संचार प्रौद्योगिकी

प्राक् आधुनिक युग की संचार प्रौद्योगिकी के अंतर्गत हम उन गुफा चित्रों का उल्लेख कर सकते हैं जिनके माध्यम से पाषाण कालीन मनुष्य आगे आनेवाली पीढ़ियों तक अपने समय के में सूचनाएँ प्रेषित करने में कामयाब हुआ । दूसरा महत्त्वपूर्ण माध्यम भाषा की खोज है, जो आज भी सूचना और संचार का आधारभूत और सशक्त माध्यम कहा जा सकता है । लिपि की खोज ने भाषा को लिखना सम्भव बनाया, जिसके कारण लोगों के लिए यह संभव हुआ कि वे

संदेशों को लिखकर आगे आने वाले सैकड़ों और हजारों साल के लिए सुरक्षित रख सके । तीसरा माध्यम मुद्रण का काम संपन्न किया गया था । मुवेबल ब्लॉक ऐसे सांचे होते थे जिन पर अक्षर या शब्द का वाक्य खुदे होते थे और जिन पर स्याही लगाकर छापा जाता था । बाद में इसी पद्धति में सुधारकर प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना की गई । प्राक् आधुनिक युग में सूचनाओं के प्रेषण के लिए ऐसी व्यवस्थाएँ सामने आई जिन्हें डाक व्यवस्था का पूर्व रूप कहा जा सकता है। यात्रा करने वाले लोगों के साथ संदेश भेजना, पक्षियों के गले में संदेश (पत्र) बांधकर भेजना । हुंडी की व्यवस्था एक तरह बैंकिंग थी जिसमें आप एक जगह पैसे देकर दूसरी जगह प्राप्त कर सकते थे ।

आधुनिक युग की संचार प्रौद्योगिकी

आधुनिक युग से हम औद्योगिक समाज भी कह सकते हैं, संचार के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तनों का वाहक बना । इस युग में सूचना टेक्नोलॉजी का विकास स्वतंत्र रूप से नहीं हुआ। इनका संबंध दूसरे आविष्कारों से है, जिसने उत्पादन के साधनों में बुनियादी किस्म के परिवर्तनों की शुरुआत की । उत्पादनों के इन साधनों में ऊर्जा और यांत्रिक बल की उत्पत्ति की नयी प्रौद्योगिकी शामिल है । विद्युत और भाप से उत्पन्न ऊर्जा की खोज ने परिवहन और संचार के क्षेत्र में नये माध्यमों का मार्ग प्रशस्त किया । उदाहरण के लिए भाप के इंजन के कारण रेल का आविष्कार हुआ । पानी के जहाज में भी भाप के इंजन का इस्तेमाल होने लगा । इसके कारण यातायात के नए साधन सामने आए जो पहले की तुलना में ज्यादा तीव्र गति से चलने में सक्षम थे । साथ ही, वे पहले से ज्यादा बड़ी तादाद में लोगों और माल को ढो सकते थे । इसने डाक व्यवस्था को व्यापक बनाने के लिए जरिया मुहैया कराया । औद्योगिक समाज में संचार प्रौद्योगिकी. में जो सबसे बड़ा परिवर्तन हुआ वह यह था कि पहली बार संदेश और संदेश के माध्यम में अलगाव पैदा हुआ । अभी तक संदेश को उसी रूप में भेजा जाता था । लिखकर, चित्र बनाकर या मौखिक रूप में । लेकिन अब ऐसी प्रौद्योगिकी खोजी गई जिसमें भेजा गया संदेश उसी रूप में प्रेषित नहीं होता था, वह संकेतों की भाषा में प्रेषित किया जाने लगा । यानी अब संदेश को ऐसे माध्यम द्वारा भेजा जाने लगा था जो संदेश को कोड में बदल देता था और वह कोड बाद में संदेश प्राप्त करने वाले के पास डिकोड होकर प्राप्त होता था । इसके लिए विद्युत की चुंबकीय शक्ति का प्रयोग किया गया । इस शक्ति को पहले तारों के द्वारा और बाद में बिना तार के तरंगों के द्वारा भेजा जाना और ग्रहण किया जाना संभव हुआ । तार, टेलीफोन, रेडियो, सिनेमा और टेलीविजन के द्वारा संदेशों का मुद्रित, श्रव्य और दृश्य रूप में संप्रेषण आधुनिक प्रौद्योगिकी की प्रमुख देन है ।

इस आधुनिक प्रौद्योगिकी में नया परिवर्तन तब हुआ जब कंप्यूटर, उपग्रह प्रणाली और डिजिटल प्रणाली की खोज कर ली गई । कृत्रिम उपग्रह प्रणाली और कंप्यूटर के कारण संचार मीडिया का विस्तार भूमंडलीय स्तर पर हो गया है । आज संचार का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसका विस्तार भूमंडलीय स्तर पर न हो रहा हो । इसको संभव बनाया है उपग्रह संचार प्रणाली ने । उपग्रह संचार प्रणाली ने ही केबल टीवी के लिए मार्ग प्रशस्त किया है । केबल टीवी का तात्पर्य यहा है कि डिश एंटिना के माध्यम से उन टीवी चैनलों के प्रसारण को भी संभव बनाना जो पहले सिर्फ एक सोभित क्षेत्र में ही प्रसारित होते थे । डिश एंटीना में अलग-

अलग चैनल के लिए अलग-अलग ट्रांसपोंडर लगे होते हैं जो उनके प्रसारण को एक सीमित क्षेत्र में संभव बनाते हैं केबल टीवी की इस नई टेक्नालॉजी के कारण देश-विदेश के उन चैनलों का ऐसे स्थानों पर प्रसारण होने लगा जहाँ तक दूरदर्शन भी नहीं पहुँचा था । यहाँ यह नोट करना भी जरूरी है कि केबल टीवी की यह नई तकनीक ज्यादा महँगी भी नहीं है और किसी भी स्थान पर इसे स्थापित किया जा सकता है । अब केबल टीवी से आगे की तकनीक का भी आविर्भाव हो चुका है । डीटीएच यानी डायरेक्ट टु होम तकनीक के आने के बाद केबल टीवी पर निर्भरता भी समाप्त हो रही है । अब कोई भी व्यक्ति मनचाहे टीवी चैनलों को डीटीएच के जरिए आसानी से हासिल कर सकता है । कुछ नियमन के साथ भारत सरकार ने हाल में डीटीएच तकनीक की भारत में प्रवेश की अनुमति दे दी है । हालाँकि इसकी कामयाबी बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करेगी कि यह आर्थिक रूप से उपभोक्ताओं की पहुँच के अधीन होगी या नहीं ।

उत्तर आधुनिक युग की संचार प्रौद्योगिकी

दूसरा काम बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में यह हुआ कि ऑडियो और वीडियो के क्षेत्र में पुनरुत्पादन की ऐसी प्रौद्योगिकी का विकास हुआ है जिसके कारण किसी भी ऑडियो और वीडियो कार्यक्रम को आसानी से लाखों की संख्या में पुनरुत्पादित किया जा सकता है । छोटे से कैसेट में लंबे टेप पर आवाज को अंकित किया जाता है और जिसे कैसेट प्लेयर पर बजाया जा सकता है । कैसेट पर आवाज को रिकार्ड करने की यह तकनीक आसान है और कोई भी व्यक्ति इसे अंजाम दे सकता है जिसके पास कैसेट रिकार्डर हो । ऑडियो कैसेट की कीमत इतनी कम होती है कि निम्न मध्यवर्ग का व्यक्ति भी इसे आसानी से अपने पास रख सकता है । इसी तरह वीडियो कैसेट पर दृश्यों को रिकार्ड किया जा सकता है और रिकार्ड किये गये वीडियो को टेलीविजन पर देखा जा सकता है, लेकिन वीडियो कैसेट रिकार्डर और प्लेयर महँगे होते हैं और संपन्न मध्यवर्ग ही इन्हें रख सकते हैं । किसी भी ऑडियो या वीडियो कार्यक्रम की हजारों प्रतियाँ बनाई और उन्हें बेची जा सकती है । अब इस क्षेत्र में भी एक नई तकनीक आ गई है । यह है काम्पेक्ट डिस्क जिसे आम भाषा में सीडी कहा जाता है । सीडी और सीडी-रॉम (काम्पेक्ट डिस्क-रीड ऑन मेमोरी) का संबंध नयी मल्टी मीडिया तकनीक से है जिसमें डिजिटल प्रणाली के द्वारा सूचनाओं को अंकित और भंडारित किया जाता है । सीडी में आवाज और ध्वनियों को रिकार्ड किया जाता है जिसे सीडी प्लेयर पर बजाया जा सकता है, जबकि वीसीडी में आवाज और दृश्य दोनों को अंकित किया किया जा सकता है । सीडी और वीसीडी दोनों का प्रयोग ऐसे कंप्यूटर के माध्यम से भी किया जा सकता है जिसमें मल्टीमीडिया की सुविधा है । मल्टीमीडिया कंप्यूटर पर उपलब्ध ऐसी तकनीकी सुविधाएँ है जिनके कारण कोई भी व्यक्ति उनका उपयोग बहुत तरह के संचार और सूचना माध्यमों के लिए कर सकता है । इसके लिए टेलीफोन के माध्यम का प्रयोग किया जाता है । टेलीफोन के तार से सिर्फ आवाज ही नहीं बल्कि दृश्य रूपों का भी संप्रेषण संभव है और वह भी दुतरफा ।

हाल के वर्षो में सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण विकास डिजिटल टीवी प्रणाली है जो सैकड़ों चैनलों को एक साथ उपलब्ध करा सकता है । कृत्रिम उपग्रहों से यह डिजिटल प्रणाली संभव हुई है और दुनिया के लगभग सभी टीवी चैनल अंततः डिजिटल होने की

तरफ बढ़ रहे हैं । यह निश्चित है कि डिजिटल टेलीविजन ने तकनीकी गुणवत्ता में वृद्धि की है, उत्पादन लागत कम हुई है और चैनलों की संख्या में बेतहाशा बढ़ोतरी संभव हो गई है । अगर घरेलू डिश एंटिना प्रणाली जिसे डायरेक्ट टू होम (डीटीएच) कहा जाता है, के जरिये प्रसारण की शुरुआत हिन्दुस्तान में भी हो चुकी है । इसके द्वारा टेलीविजन पर दुनिया के लगभग सभी चैनलों को देखना संभव हो जाएगा । यह और बात है कि किसी के लिए भी इतने चैनलों को देखना मुमकिन नहीं है । अंततः लोग आठ-दस चैनलों के बीच ही अपनी पसंद तय करते हैं ।

इतना ही महत्वपूर्ण है इंटरनेट जो एक ऐसा मंच प्रदान करता है जिसका उपयोग कोई भी कर सकता है । इसका संबंध भी डिजीटल और सेटेलाइट टेक्नोलॉजी से है । इस प्रौद्योगिकी के माध्यम से सब तरह की सूचनाओं और आकड़ों को विशाल पैमाने पर सुरक्षित रखना और उन्हें किसी भी समय और कहीं भी संप्रेषित करना संभव हो सका है । डिजिटल ने कंप्यूटर की भाषा को भी बदल दिया है । उसने रेडियो, टेलीविजन और फिल्म के उत्पादन और वितरण को पूरी तरह से अपने अधिकार में ले लिया है । यही तक कि सूचना और आकड़ों के सभी रूपों को अब अंतरपरिवेरतन डिजीटल बिट में उत्पादित और भंडारित करनी मुमकिन हो सकेगा । जब डिजीटल संचार उपग्रह संचार और फाइबर ऑप्टिक वायरड संचार नेटवर्क के साथ जुड़ जाता है तो वह सूचना सुपर हाइवे या भूमंडलीय सूचना इंफ्रास्ट्रक्चर में तब्दील हो जाता है । जिसके जरिए कोई भी व्यक्ति तत्काल सभी तरह के डाटा को भूमंडलीय स्तर पर उपलब्ध कर सकता है और अपने निजी कंप्यूटर के माध्यम से किसी के साथ संप्रेषण कायम कर सकता है । (राबर्ट मेक्येस्ने, दि ग्लोबल मीडिया, पृ. 106) यह सूचना और संचार के क्षेत्र में क्रांति से कम नहीं है। खास बात यह भी है कि यह बहुत कम खर्चीला है । मसलन, इस मामले को इस तरह देखें। डाक व्यवस्था में समाचार भेजने के लिए भारत में पोस्टकार्ड सबसे सस्ता माध्यम है । लेकिन इंटरनेट के माध्यम से ई-मेल के जरिये भेजे गए समाचार पर उतना ही खर्च आता है जितना कि एक लोकल कॉल पर । भारत में इसकी कीमत एक रुपये से कम है । पोस्टकार्ड की तुलना में ई-मेल बहुत जल्दी पहुँचता है । यानी कि जिस समय ई-मेल भेजा जाता है, ठीक उसी समय उसे प्राप्त किया जा सकता है । उसको दुनिया के किसी भी हिस्से में भेजा जा सकता है और खर्च में अंतर नहीं आता और पोस्टकार्ड से ज्यादा मात्रा में संदेश भेजा जा सकता है । इसी प्रकार सौ से ज्यादा चैनल के टीवी ने दुनिया भर के कार्यक्रमों को घर बैठे उपलब्ध करा दिया है । व्यक्ति छोटे से टीवी सेट के जरिए सारी दुनिया के सूचना, शिक्षा और मनोरंजन कार्यक्रमों का रसास्वादन ले सकता है ।

संचार के एक प्रमुख क्षेत्र दूरसंचार में भी प्रौद्योगिकी ने समाज पर जबरदस्त प्रभाव डाला है । इस रूपांतरण को निकोलास बरान के शब्दों में इस तरह प्रस्तुत कर सकते हैं, ' 'आज ज्यादातर दूरसंचार, मसलन टेलीफोन से बातचीत, रेडियो व टेलीविजन प्रसारणों में, ऐनलोग सिग्नल के जरिए संचार होता है । ऐनलोग सिग्नल का अर्थ है वह प्राकृतिक तरंग रूप, जोकि धीरे-धीरे अधिकतम तथा न्यूनतम सघनता के बीच आगे-पीछे गति करती है, एक एनॉलोग तरंग का रूप होती है । बहरहाल इस एनॉलोग परिघटना को डिजीटल फार्मेट सरल

चालू /बाधित/ (ऑन / ऑफ) सिग्नल के रूप में होता है यानी सिग्नल दो में से एक अवस्था में होता है..... चालू या बाधित ।

जैसे-जैसे कंप्यूटर ज्यादा शक्तिशाली हुए हैं और सॉफ्टवेयर ज्यादा उन्नत हुए हैं, अब यह संभव हो गया है कि फोटोग्राफों से लेकर फीचर फिल्मों तक, लगभग हर तरह की सूचनाओं को, डिजीटल फार्मेट में बदल दिया जाए और इस सब की खासियत यह है कि जब एक बार ध्वनि या छवियों को डिजीटल फार्मेट में प्रस्तुत कर दिया जाता है, उन्हें दूसरी किसी भी डिजीटल सामग्री की तरह, कंप्यूटर के जरिए परिचालित किया जा सकता है या उन्हें कंप्यूटर के संजाल के जरिए संप्रेषित किया जा सकता है । इस तरह कंप्यूटर का ध्वनि तथा प्रकाश को परिचालित करने में समर्थ होना ही 'डिजीटल युग' का आधार है (कैपिटलिज एंड इनफोर्मेषन एज, पृ. 124) । संचार के नए आयाम के बारे में बातचीत करते हुए इन प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों को नजर में रखना जरूरी है । आगे हम इस बात को ध्यान में रखते हुए आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं के बारे में बातचीत करेंगे ।

15.3 संचार के आर्थिक आयाम

संचार की नई प्रौद्योगिकी ने जनसंचार के बारे में काफी हद तक बदला है । आज सूचना को पूँजी की तरह एक केंद्रीय सत्ता प्राप्त हो गई । जिस तरह औद्योगिक समाज को पूँजीवादी समाज कहा जाता था उसी तरह आज के समाज को सूचना समाज कहने का आग्रह बढ़ रहा है । भारत में भी इसके प्रबल समर्थकों का एक समूह तैयार हो गया है । सूचना प्रौद्योगिकी के प्रबल समर्थक स्व. दिवांग मेहता का मानना है कि सूचना प्रौद्योगिकी को रोटी, कपड़ा और मकान की तरह एक बुनियादी जरूरत के रूप में लिया जाना चाहिए । क्या वास्तव में सूचना ने पूँजी को विस्थापित कर दिया है? क्या ऐसा कोई समाज अभी तक बन सका है जिसे कि हम सूचना समाज कह सकें और क्या ऐसे समाज में सूचना को वह शक्ति प्राप्त हो सकी है जो कि पूँजी को प्राप्त रही है । जनसंचार के आर्थिक आयाम पर विचार करते हुए हम जनसंचार माध्यमों के आधुनिकतम विकास से जुड़े आर्थिक पहलू पर विचार करेंगे ।

सूचना प्रौद्योगिकी के आर्थिक पहलू को लेकर कई तरह के अध्ययन सामने आए हैं । आमतौर पर यह तर्क दिया जाता है कि कृषि समाज से औद्योगिक समाज और उससे सूचना समाज में रूपांतरण का स्रोत सामाजिक सत्ता में आया बदलाव है और इसका कारण वह नई प्रौद्योगिकी है, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं । अगर तर्क के लिए यह मान भी लिया जाए कि सत्ता के इस परिवर्तन का स्रोत भूमि के स्वामित्व से पूँजी के स्वामित्व और पूँजी के स्वामित्व से सूचना के स्वामित्व में निहित है । लेकिन तब भी यह सवाल तो अनुत्तरित ही रह जाता है कि इससे समाज की संरचना में क्या बुनियादी फर्क आता है । जबकि हर परिवर्तन के बाद एक नया अभिजात वर्ग जो पुराने से ही उत्पन्न हुआ है, सत्ता के स्रोत की उपलब्धता को नियंत्रित करता हो । (सीस जेज होमलिक का लेख 'इज देयर लाइफ आटर दि इकोर्मेशन रिवोल्युशन?') माइकल ट्रेवर की पुस्तक : दि मिथ ऑफ दि इकोर्मेशन रिवोल्युशन सेज पब्लिकेशन, लंदन, 1986 पृ. 10) सूचना प्रौद्योगिकी सहित नई प्रौद्योगिकी के विकास ने यह भ्रम पैदा किया है कि तकनीकी विकास से मानव जीवन में गुणात्मक परिवर्तन लाया जा सकता

है । लेकिन हिरोशिमा और नागासाकी या चेर्नोबिल और भोपाल में हुई घटनाएँ यही बताती हैं कि तकनीकी विकास मानव जीवन में बेहतरी लाए यह आवश्यक नहीं है । तकनीकी विकास वस्तुत: कुछ लोगों के लिए आर्थिक लाभ का जरिया होता है । इसलिए वे यह तर्क देते हैं कि तकनीकी प्रगति का मकसद मानवजाति की बेहतरी और लाभ है । इसलिए समाज अपनी मर्जी से यह या वह रास्ता नहीं चुन सकता । मनुष्य के सामने सिर्फ एक ही मार्ग है कि वह तकनीकी विकास को स्वीकार करे और उसे अपनाएँ । यह तर्क एकतरफा, संख्या केंद्रित प्रौद्योगिकी समाज के निम्नस्तरीय खंडित मानसिकता को छिपाता है । तकनीकी विकास के मसले को इस तरह से पेश करने का उद्देश्य यही है कि ऐसा प्रतीत हो मानों लाखों-लाख लोग इसे स्वीकार करते हों । यह तकनीकी विकास को सार्वजनिक जवाबदेही और आलोचनात्मक-दार्शनिक जाँच से भी दूर ले जाता है (सीस जेज होमलिक वही, पृ. 12) । इस सन्दर्भ में इस बात को भी ध्यान में रखने की जरूरत है कि आधुनिकतम सूचना प्रौद्योगिकी का समर्थन करने वाला वर्ग सब तरह की टेक्नोलॉजी के प्रसार में दिलचस्पी नहीं लेता है । वह सिर्फ उसी में दिलचस्पी लेता है जिसमें उसे अकूत व्यापार और मुनाफे की संभावना नजर आती हो । यदि कोई टेक्नोलॉजी जिससे सामाजिक व्यवहार और विकास में सकारात्मक बदलाव आता है लेकिन जिसमें मुनाफे की संभावना बहुत कम है तो यह वर्ग उसके विकास से न सिर्फ दूर रहेगा बल्कि वह राजसत्ता को भी उससे दूर रखने के लिए उकसाएगा ।

आज सूचना और संचार क्षेत्र सबसे तीव्र गति से प्रगति करने वाला क्षेत्र है । दुनिया की सबसे बड़ी साठ कंपनियों में से सोलह कंपनियाँ इसी क्षेत्र की हैं । सूचना और संचार क्षेत्र में तीन क्षेत्रों की गणना की जाती हैं दूरसंचार, कंप्यूटर और जनमाध्यम । इसमें दूरसंचार का हिस्सा 46 फीसदी, जबकि कंपुटर का 33 फीसदी और जनसंचार माध्यमों का 21 फीसदी है । (दि ग्लोबल मीडिया, पृ. 108) । इस क्षेत्र के विस्तार ने इस बात के लिए देशों को मजबूर किया है कि दूरसंचार के क्षेत्र के निजीकरण और विनिमय के लिए रास्ता साफ करें । 1978 में संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट पर 78 देशों ने हस्ताक्षर किए थे । उसमें कहा गया था कि निजी भूमंडलीय संचार नेटवर्क के आविर्भाव से राष्ट्रीय संप्रभुता के आगे प्रश्नचिद्दन लग सकता है (वही, पृ. 110) । लेकिन आज प्राय: सभी देशों में दूरसंचार क्षेत्रों का तेजी से निजीकरण हो रहा है और बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ या एकाधिकारवादी कंपनियाँ उनका स्थान ले रही है । भारत भी इन देशों में अग्रणी है ।

जनसंचार माध्यमों के अभूतपूर्व विकास ने भूमंडल को एक गाँव में बदल दिया है । यही कारण है कि आज हर कहीं भूमंडलीय. आयाम की चर्चा हो रही है । अमरीका के प्रसिद्ध मीडिया विशेषज्ञ राबर्ट मेक्येस्ने ने जनसंचार के इस भूमंडलीय आयाम पर गंभीरता से विचार किया है । उनका मानना है कि " 1990 के दशक का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विकास भूमंडलीय है । यह भूमंडलीय व्यावसायिक बाजार प्रभुत्वशाली फर्मो के उग्र दांव-पेंचों नई प्रौद्योगिकी जिसने भूमंडलीय प्रणालियों को लागत-सक्षम बनाया है और विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश विश्व व्यापार संगठन और अमरीकी सरकार द्वारा प्रोत्साहित नई उदारवादी आर्थिक नीतियों का परिणाम हैं जिसके कारण भूमंडलीय व्यापारिक मीडिया और दूरसंचार बाजार की नियमन संबंधी

बाधाएं खत्म हो रही हैं (केपिटलज एंड दि इनफोर्मेषन एज, पृ. 20-21) । " मेस्वेस्ने का मानना है कि मीडिया जगत पर एक अल्पतंत्रीय भूमंडलीय बाजार हावी है और उसने अब बहुत उच्चस्तरीय अवरोधकों का रूप धारण कर लिया है । कहने को राष्ट्रीय बाजार अब भी कायम है लेकिन उनका महत्त्व कम हो गया है । भूमंडलीय मीडिग्रा बाजार पर ऐसे दस बहुराष्ट्रीय निगमों का वर्चस्व है जिनकी बागडोर अमरीका और दूसरे विकसित देशों के पूँजीपतियों के हाथों में है । मेस्वेस्ने इस प्रवृत्ति को पूँजीवाद से अलग करके नहीं देखते । उनका मानना है कि बीसवीं सदी के ज्यादातर समय में फिल्मों, टेलीविजन कार्यक्रमों, संगीत रिकार्डिग और किताबों के निर्यात बाजार पर पश्चिमी देशों का दबदबा था उनमें भी अमरीकी फर्में हावी थीं । लेकिन राष्ट्रीय मीडिया प्रणलियों के ढाँचे जैसे रेडियो, टेलीविजन और पत्र-पत्रिकाओं पर राष्ट्रीय स्वामित्व और नियंत्रण बना रहा है । लेकिन नब्बे के दशक के बाद से इसमें लगातार गिरावट आती जा रही है ।

भारत में भी हम इस प्रवृत्ति को देख सकते है जहाँ नब्बे के दशक से पहले तक रेडियो के प्रसारण पर ऑल इंडिया रेडियो का और टेलीविजन के प्रसारण पर दूरदर्शन का पूरी तरह से नियंत्रण कायम था । आज दूरदर्शन को अपनी जगह बनाने के लिए बड़े निगमों के साथ कड़ा संघर्ष करना पड़ रहा है । पिछले पाँच-छह सालों में उसने अपना एक-तिहाई से ज्यादा बाजार निजी चैनलों के हाथों खोया है और आगे आने वाले दिनों में इसमें और बढ़ोत्तरी होगी, इसकी ही संभावना अधिक नजर आती है । यही प्रवृत्ति हम संचार के दूसरे क्षेत्रों में भी देख सकते हैं । टेलीफोन के क्षेत्र में भी निजी कंपनियाँ तेजी से अपने पांव पसार रही है । विडंबना यह है कि उनके प्रसारण के मार्ग में जब भी कोई बाधा उत्पन्न होती है तो सरकारें निजी कंपनियों की मदद के लिए आगे आती हैं जबकि सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियाँ महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड और विदेश संचार निगम लिमिटेड को कड़ी प्रतिद्वंद्विता का सामना करना पड़ता है ।

जनसंचार के व्यापक प्रसार के कारण यह कहा जा रहा है कि विषमता पर आधाश्ति पूँजीवादी व्यवस्था का खात्मा हो जाएगा । औद्योगिक उत्पादन जिसके साथ केंद्रीकरण, विस्तार, मानकीकरण।! संक्रमण और शोषण जैसी बुराइयां मौजूद हैं उनसे भी छुटकारा मिल जाएगा । औद्योगिक उत्पादन के स्थान फू इजारेदारी से मुका और विविधताओं वाले बाजार में सेवाओं का आधिपत्य हो जाएगा । क्या वास्तव में ऐसे बदलाव होने की संभावना है? यही सही है कि संचार के क्षेत्र में कई नई खोजें हुई हैं और उसने ऊर्जा आधारित यांत्रिक पद्धति के स्थान पर डिजीटल आधारित इलेक्ट्रॉनिक पद्धति को लोकप्रिय बनाया है जो कम खर्चीली भी है और जिसमें मानव श्रम भी कम लगता है । लेकिन यह पद्धति हर तरह के उत्पादन के लिए उपयोगी नहीं है। यह उत्पादन की संपूर्ण प्रक्रिया की जगह उसके कुछ चरणों के लिए ही उपयोगी है । दूसरे, इसका अधिक उपयोग सेवाओं के क्षेत्र में ज्यादा है । इसकी वजह से सेवाओं का विस्तार भी हुआ है और महत्त्व भी बढ़ा है । लेकिन अधिकांश सेवा क्षेत्र अपने अस्तित्त्व के लिए औद्योगिक उत्पादन पर निर्भर हैं ।

यह कहना भी सही नहीं है कि जनसंचार की नई प्रौद्योगिकी के कारण एक समतावादी समाज बनाने में मदद मिलेगी और गरीबी और बेरोजगारी को मिटाया जा सकेगा । इसके

विपरीत इसने तीसरी दुनिया के देशों में असमानता को बढ़ाया है और गरीबी और बेरोजगारी में भी बढ़ोतरी की है । यहाँ तक कि विकसित देशों में भी इस सूचना क्राति के कारण आर्थिक स्थिति में कोई सकारात्मक परिवर्तन नहीं दिखाई दे रहे हैं सिवाय इसके कि बड़े निगम पहले से ज्यादा शक्तिशाली हो रहे हैं । हम इस सन्दर्भ में इंटरनेट का उदाहरण ले सकते हैं । इसे संपूर्ण जनमाध्यम माना जा सकता है । यह सस्ता है, आसानी से उपलब्ध है और इसका न सिर्फ कोई भी इस्तेमाल कर सकता है बल्कि बहुत मामूली-सी पूँजी से कोई भी इस पर अपनी वेबसाइट स्थापित कर दुनिया के किसी भी कोने में पहुँचा सकता है । लेकिन क्या ऐसा वास्तव में हो रहा है या होने वाला है? 1999 की यूएनडीपी की रिपोर्ट के अनुसार दुनिया की जनसंख्या के 2.4 फीसदी के पास इंटरनेट की सुविधा उपलब्ध है । भारत में 2070 लोगों के बीच सिर्फ एक व्यक्ति इस सुविधा का उपयोग करता है, यानी 1999 तक पूरे देश में लगभग पाँच लाख लोग ही इंटरनेट का उपयोग करते थे । एक दशक बाद इस संख्या में जबरदस्त वृद्धि अवश्य हुई है ।

हम हाल ही में यह देख चुके हैं कि भारत सहित कई देशों में अकूत लाभ की आशा में बनाई गई अधिकांश डॉट कॉम कंपनियाँ देखते-ही-देखते बाजार से बाहर हो गई क्योंकि वे जितने बड़े पैमाने पर व्यापार की आशा कर रही थीं उसका शतांश भी फलीभूत होता नजर नहीं आया । निष्कर्ष यही है कि जनसंचार के क्षेत्र में भी बहुराष्ट्रीय निगमों का वर्चस्व हावी है और आने वाले दिनों में यह और बढ़ने वाला है । लेकिन इससे जनसंचार के आर्थिक पहलुओं का संकट खत्म नहीं होगा । इनमें भी पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता और बाजार पर एकाधिकार कायम करने की कोशिशों से उत्पन्न तनावों से बचा नहीं जा सकेगा ।

बहुराष्ट्रीय निगमों के बढ़ते जाल के कारण सूचना प्रौद्योगिकी के व्यापक उपयोग का दबाव तीसरी दुनिया के देशों पर बढ़ रहा है जिसके कारण वे उन क्षेत्रों में भी इसका उपयोग करने के लिए विवश हुए हैं । जिसके कारण उनके अपने देश में बेरोजगारी में बढ़ोतरी ही हुई है। इस दबाव ने आर्थिक मामलों में देशों के स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमताओं को प्रभावित किया है । देशों को इस बात के लिए मजबूर किया जा रहा है कि वे बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हितों को पोषित करने वाली नीतियों को स्वीकार करे, चाहे वे नीतियाँ उन देशों के अपने हित में न हो (हरबर्ट आई, शिलर, दि मिथ ऑफ दि इनफोर्मेशन रिवोज्यूशन, पृ.23) । संचार के नए आयाम के आर्थिक पहलू पर विचार करते हुए उपर्युका बातों को जरूरत ध्यान में रखना चाहिए ।

15.4 संचार के राजनीतिक आयाम

संचार के सन्दर्भ में राजनीति सवाल को दो रूपों में देखा जा सकता है । एक तो, जनसंचार से संबंधित राजनीतिक अर्थव्यवस्था का सवाल । जनसंचार से संबंधित उत्पादों पर वर्चस्व को जानने और समझने में आमतौर पर मुश्किल नहीं होती । लेकिन इसके प्रति यह रवैया भी रहता है कि यह अन्ततः खतरनाक नहीं है । मसलन, भारत जैसे विकासशील देशों में हाल के वर्षों में सूचना प्रौद्योगिकी को, विशेषतः कंप्यूटरीकरण की प्रक्रिया को, विकास के साथ इस रूप में जोड़कर देखा जा रहा है कि यह हर तरह के समाजों में विकास के लिए अपरिहार्य माध्यम है और इसके वर्चस्व का संबंध विकास से है न कि राजनीति से । वे देश जिन्होंने

जनसंचार के क्षेत्र में तकनीकी श्रेष्ठता हासिल कर ली है वे उनकी तुलना में अपना वर्चस्व कायम करने में कामयाब होंगे जो इस क्षेत्र में पिछड़े हुए है । इसका वर्गीय और किसी तरह के वर्चस्व से किसी तरह का संबंध नहीं है । लेकिन यह सही । नहीं है । कंप्यूटरीकरण की इस व्यापक प्रक्रिया का संबंध वर्गीय वर्चस्व से बहुत गहरा है और वर्गीय वर्चस्व का सवाल राजनीतिक सवाल है । भारत कंप्यूटर प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में लगभग शून्य पर स्थित है 1 सॉफ्टवेयर के क्षेत्र में जरूर भारत ने उल्लेखनीय प्रगति की है । लेकिन सॉफ्टवेयर की इस प्रगति का कोई अर्थ नहीं है जब तक कि हार्डवेयर के क्षेत्र में भारत की निर्भरता पूरी तरह से उन विराट विकसित देशों की बबुर्राष्ट्रीय कंपनियों पर निर्भर है जिनकी दिलचस्पी भारत के संतुलित और सर्वागीण विकास में नहीं बल्कि अपने उत्पादों के लिए यहाँ के बाजारों का दोहन करने में है । यही कारण है कि वे चाहते हैं कि भारत अपनी प्राथमिकता को इस तरह तय करे कि वह हर उस क्षेत्र में कंप्यूटर और सूचना प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करे जिसमें विकसित देश भी कर रहे हैं । भले ही गाँवों में पीने का पानी और दूसरी बुनियादी जरूरतें पूरी न हों लेकिन वहाँ टेलीफोन, टेलीविजन और कंप्यूटर जरूर पहुँच जाएँ अपने माल को बेचने के लिए वे सूचना प्रौद्योगिकी से ऐसी क्रांति का सब्जबाग दिखा रहे हैं जिससे कि सारी भौतिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का समाधान हो जाएगा । सूचना क्रांति के प्रबल समर्थक मिकोलस एन. क्लिलागी के अनुसार, 'सूचना क्रांति स्वत: ही राजनीतिक व्यवस्था को बदल देगी । कंप्यूटर नेटवर्क का व्यवसायीकरण ऐसी स्थिति पैदा करेगा जब आज की तरह टेलीफोन के उपयोग से छुटकारा पाकर प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से जुड़ जाएगा । ऐसे माहौल में बिना किसी लागत के और प्रकाश की गति से भी तेज विचारों का आदान-प्रदान होगा । इस प्रक्रिया को न तो कोई सरकार रोक सकेगी और न ही कोई विशेष लाभ समूह । आज जिसे हम प्रतिनिधिक लोकतंत्र कहते हैं यह उसे धराशायी कर देगी । राजनीति पर पैसे का दबाव खत्म हो जाएगा और उसका स्थान स्वतंत्र सूचना व्यवस्था ले लेगी । यह सूचना व्यवस्था सभी सचेत नागरिकों के लिए व्यापक विविधता वाले राजनीतिक विकल्पों का प्रतिनिधित्व करेगा । इसमें भागीदारी सभी योग्य व्यक्तियों के लिए खुली होगी । इलेक्ट्रॉनिक सूचना व्यवस्था विचारों की अभिव्यक्ति के लिए मंच उपलब्ध कराएँगे । प्रतिद्वंद्वी मत बिना किसी रोकटोक के प्रचारित किए जा सकेंगे, उनकी आलोचना की जा सकेगी और उन पर बहस की जा सकेगी । भुगतान आधारित राजनीतिक विज्ञापन, वित्तीय प्रचार अनुदान और राजनीतिक कार्रवाई समितियों का खात्मा हो जाएगा । विचारों की मुक्त प्रतिद्वंद्विता में से राजनीतिज्ञों का चयन होगा । उनकी शक्ति सीमित और विकेंद्रित होगी । वे नागरिकों के प्रति जवाबदेह होंगे । समाज में सफलता और प्रतिष्ठा राजनीतिक ताकत पर निर्भर नहीं रहेगी । प्रातिनिधिक लोकतंत्र का खात्मा हो जाएगा और जल्दी ही इसका स्थान सूचना युग का लोकतंत्र ले लेगा जो हम सबके जिए बेहतर होगा ' (हाउ दू सेव अवर कंट्री १ नॉनपार्टिजन विजन फॉर चेंज, पलास प्रेस, टकसन, 1994; जियाउद्दीन सरदार की पुस्तक 'पोस्टमौर्डनिज्य एंड दि अदर दि न्यू इंपरियलिज्य ऑफ वेस्टर्न कल्वर, चूटो प्रेस, लंदन, संस्करण व 998, पृ. 62 से उद्धृत) ।

सूचना क्रांति द्वारा दिखाया गया सब्जबाग जिस तरह की भाषा में पेश किया गया है वह स्वयं अपनी असलियत बता देता है । प्रातिनिधिक लोकतंत्र का खात्मा यानी आज जो

सार्वभौम मताधिकार को लोकतंत्र की आधारभूत विशेषता माना जा रहा है, सूचना युग में उसको समाप्त करके एक ऐसे लोकतंत्र की स्थापना की जाएगी जिसमें योग्य व्यक्तियों को भागीदारी का अवसर मिलेगा । ये योग्य व्यक्ति कौन होंगे? जाहिर है वे जिनके पास इंटरनेट की सुविधा उपलब्ध होगी और जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर साम्राज्यवादी देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा नियंत्रित होगी । आज जो लाखों-लाख लोग जिनके पास भले ही खाने को रोटी और पीने को पानी न हो और जिन्हें रोजगार भी मुहैया न हो रहा हो, वे भी पाँच साल में एक वोट देकर अपनी पसंद की सरकार चुनने की प्रक्रिया में भागीदार होकर अपने नागरिक होने के अधिकार का उपयोग कर लेते हैं । वे लाखों-लाख लोग इस राजनीतिक प्रक्रिया से अलग कर दिए जाएँगे क्योंकि वे कंप्यूटर नेटवर्क के इस भूमंडलीकृत प्रक्रिया से बाहर ही रह जाएँगे । जाहिर है जिसे सूचना युग का लोकतंत्र कहा जा रहा है वह लोकतंत्र नहीं बल्कि साम्राज्यवाद का उपनिवेशीकरण होगी और आज जो बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ तीसरी दुनिया पर लोभ-लालच और डरा-धमकाकर अप्रत्यक्ष रूप से अपना वर्चस्व कायम किए हुए हैं, वे तब प्रत्यक्ष रूप से शासन करेंगी ।

ये भिन्न-भिन्न विरोधी स्वर ही इस बात के प्रमाण होते हैं कि वह समाज एक खुला समाज है और जहाँ लोगों को अपनी बात कहने का पूरा अधिकार है । लेकिन अत्यंत विकसित लोकतांत्रिक समाजों में भी ऐसा नहीं हो रहा है । आमतौर पर ऐसी समाजों में नियंत्रण का अर्थ सरकार का नियंत्रण और खुलेपन का अर्थ पूँजीपति वर्ग के लिए खुलेपन से होता है । दोनों ही मामले में वे बात तो राष्ट्र की करते हैं लेकिन वहाँ हकीकत में राष्ट्र कहीं नहीं होता । मकसद सिर्फ यह होता है कि राष्ट्र का नाम लेकर इस वर्ग के स्वार्थो को पूरा किया जा सके ।

और इस प्रक्रिया में राष्ट्रीय हितों के नाम पर उन सब चीजों के विरुद्ध मुहिम चलाई जाती है, जिनका संबंध समाज के निचले तबकों से होता है । नोम चोमस्की ने विकसित देशों के सन्दर्भ में इस बात का उल्लेख किया है । उनका कहना है कि इन देशों का अभिजात वर्ग उन हितों को विशेष हितों का नाम देता है जिनका संबंध किसानों, महिलाओं, मजदूरों, युवाओं और बुजुर्गो, विकलांगों, अल्पसंख्यकों आदि से होता है (नेसेसरी इल्युजन्स, पृ.. 3) । नोम चोमस्की की बात आज पूरी तरह से भारत पर लागू हो रही है । यहाँ भी निजी निगम क्षेत्र सरकार पर वहीं दबाव डाल रहा है कि वह राष्ट्रीय हितों के साथ समझौता न करे । समझौता करने से उनका तात्पर्य समाज के कमजोर तबकों को मिलने वाली मामूली सुविधाओं को भी समाप्त कर दिया जाए, जबकि अर्थव्यवस्था का सबसे अधिक दोहन इसी अभिजात वर्ग के हित में हो रहा है । उत्पादन और निर्यात को बढ़ावा देने के नाम पर वे जनता की कमाई का एक बड़ा हिस्सा हड़प लेते हैं । लेकिन वे ऐसा करते हुए भी जनता के एक बड़े हिस्से को यह भरमाने में कामयाब रहते हैं कि यह राष्ट्रीय हित में हैं कि जनता को मिलने वाली सुविधाओं के बड़े हिस्से को वह छीनने दे ताकि अर्थव्यवस्था को संकट से उबारा जा सके । इस प्रकार जनविरोधी नीतियां अपनाते हुए भी जनविरोधी सरकारें जनसंचार माध्यमों के जरिए अपना नियंत्रण बनाए रखती हैं ।

यह पहले कहा जा चुका है कि संचार का नया से नया माध्यम भी शासक वर्ग से तभी तक बचा रहता है जब वह उनके आर्थिक और राजनीतिक लाभ के लिए उपयोगी नहीं होता जैसे ही वह माध्यम उनके आर्थिक और राजनीतिक हितों के लिए मददगार होने की संभावनाएँ प्रकट

करने लगता है वे उसको जल्दी से जल्दी अपने नियंत्रण में ले लेते हैं । इंटरनेट नया माध्यम है यदि इसमें भी वे राजनीतिक-आर्थिक लाभ नजर आने लगेंगे जो आज टीवी और अखबारों में नजर आ रहे हैं तो बड़ी पूँजी उसको भी अपने वर्चस्व में ले लेगी । ऐसे में वह माध्यम अपने मालिक की सेवा करने लगता है । माध्यम पर अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए वे कई ऐसे तरीके अपनाते है, जिनके बारे में उनका दावा होता है कि इससे वे जनता के मत को अभिव्यक्ति देते है । लेकिन क्या वे माध्यम सचमुच जनता का मत पेश कर रहे होते हैं । पहली बात तो यह है कि भारत जैसे देश में जहाँ अभी भी लगभग तीस फीसद आबादी निरक्षर है, वहाँ अखबारों और टेलीविजन किस हद तक जनता की राय का प्रतिनिधित्व करते हैं, कहना मुश्किल नहीं है । सच तो यह है कि वे शिक्षित वर्ग का भी सही प्रतिनिधित्व नहीं करते ।

जनसंचार के व्यापक होते घेरे ने सूचनाओं के ऐसे दलदल में आम आदमी को फंसा दिया है कि वह सही-सही राजनीतिक निर्णय लेने की क्षमता खोता जा रहा है । जनता को भुलावे में रखने के लिए अभिजात वर्ग अपने हित में कई ऐसी विचारधाराओं का इस्तेमाल करता है, जो सतह से देखने पर निर्दोष नजर आती हैं, लेकिन जिसकी आड में वे अपने स्वार्थो को पूरा करते हैं । राष्ट्रवाद ऐसी ही विचारधारा है जिसके माध्यम से शासक अपने स्वार्थो को पूरा करता है । इस तरह की विचारधारा के द्वारा शासक वर्ग सिर्फ पाठकों और दर्शकों को ही भ्रमित नहीं करता बल्कि वह पत्रकारों को भी दिग्भ्रमित करते हैं । वे भी इस तरह की बातों को लगभग उसी रूप में ग्रहण करते हैं जिस रूप में अभिजात वर्ग चाहता है । सच्चाई यह है कि पत्रकारों का एक समूह अपने हितों को अभिजात वर्ग के साथ जोड़ लेता है ।

जनसंचार के माध्यमों से कोई भी संदेश बिना बुद्धिजीवी वर्ग के सहयोग के लोगों तक पहुँचना असंभव है । यद्यपि इंटरनेट और डिजीटल प्रौद्योगिकी के इस दौर में इस वर्ग की भूमिका काफी हद तक सीमित होती जा रही है । लेकिन इससे यह नतीजा गलत होगा कि उनकी भूमिका समाप्त हो गई है । कठिनाई यह है कि बुद्धिजीवी वर्ग जो जनसंचार माध्यमों के उपयोग के लिए सॉपटवेयर्स तैयार करने में मुख्य भूमिका निभाता है, इन माध्यमों के वर्गीय चरित्र को समझने में आमतौर पर नाकामयाब रहता है । यही कारण है कि वह प्रभु वर्गो के आर्थिक हितों को पूरा करने का माध्यम बन जाता है । वह यह समझने लगता है, जो उसके लिए वर्गीय दृष्टि से प्रतिकूल होते हैं । वह कई ऐसी अवधारणाओं में विश्वास करने लगता है, जो उसके लिए वर्गीय दृष्टि से प्रतिकूल होते हैं । मसलन, किसी क्षेत्र विशेष में उसकी योग्यता को वह अपनी निजी प्रतिभा का कमाल समझता है और अपने ही क्षेत्र के दूसरे लोगों और दूसरे वे लोग जिन्हें अपनी क्षमताओं को निर्मित करने के अवसर कम मिले या नहीं मिले उनसे वह अपने को उच्च समझने का भ्रम पालने लगता है । जबकि वह अपनी सारी प्रतिभा और ज्ञान के बावजूद अंततः ऐसे किसी मालिक के लिए काम कर रहा होता है जिसका मकसद सिर्फ और ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाना होता है । वह तभी तक प्रतिभावान है, जब तक इन मालिकों के मुनाफे के वे सहायक बने रहते हैं । इस तरह वे एक ऐसे काम को अंजाम देते रहते हैं, जिसके सामाजिक परिणामों के बारे में वे सोचते नहीं या सोचना नहीं चाहते । इस प्रकार, जनसंचार माध्यमों का विस्तार किसी ऐसे राजनीतिक माहौल की गांरटी प्रदान नहीं करता जो जनता के हित में हो बल्कि इसके विपरीत वह राजनीति में भी यथास्थिति को बनाए रखने में

ही अपनी भूमिका समझता है । इस स्थिति में बदलाव तभी संभव है जब जनसंचार पर वर्गीय वर्चस्व का स्वरूप बदले ।

15.5 संचार के सामाजिक आयाम

संचार और सूचना के समाज के साथ संबंधों को समझने के लिए पहले के समाजों से इनके अंतर को समझना होगा । कोई भी समाज ऐसा नहीं होता जहाँ सूचना और संचार का महत्त्व नहीं; होता । यहाँ तक कि आदिम समाज या कृषि समाज में भी उत्पादन के नए साधनों को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति और एक समुदाय से दूसरे समुदाय तक गतिशीलता सूचना के आदान-प्रदान के जरिए रही होगी और इसके लिए संचार के साधनों की जरूरत महसूस की गई होगी । नए औजार, उत्पादन की नई विधियों की जानकारी और उनका उपयोग विभिन्न समाजों में इसी प्रक्रिया में फैला होगा । यहाँ तक कि औद्योगिक समाज में भी सूचना की इस भूमिका से मना नहीं किया जा सकता । इसके विपरीत, हम यह भी कह सकते हैं कि विकास के साथ-साथ सूचना का महत्त्व भी उसी अनुपात में बढ़ता गया है, यहाँ तक कि अब हम ऐसे युग में रह रहे हैं जिसे उत्तर-औद्योगिक समाज या सूचना समाज कहा जा रहा है ।

संदेशों के आदान-प्रदान के लिए जिन साधनों या माध्यमों की जरूरत होती है, उनका विकास सामाजिक विकास के साथ होता रहा है । भाषा एक ऐसा ही माध्यम है और हम सभी जानते हैं कि न केवल सूचना वरन सामान्य से संवाद में भी भाषा की कितनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है । लेकिन क्या भाषा की उपलबता बिना किसी रोकटोक के रही है? किसी भाषा को बोलना और सुनकर समझना और भाषा को लिख सकने और पढ़ सकने में कितना फर्क है। पहला व्यक्ति निरक्षर कहलाता है और दूसरा साक्षर । व्यक्ति उन सूचनाओं से, उस ज्ञान से वंचित रह जाता है जो पुस्तकों में लिपिबद्ध है या जो लिखित रूप में उसके सामने आता है । हजारों साल से भाषाओं का अस्तित्त्व है लेकिन पढ़ना और लिखना-सीखना भी क्या सभी समाजों में सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध है? स्पष्ट है, नहीं । यही नहीं भारत में स्त्रियों और निम्न समझी जाने वाली जाति के लोगों को पढ़ना-लिखना सीखने से राज्य और धर्म द्वारा बलपूर्वक रोका जाता रहा । भाषा के उदाहरण से साफ है कि सूचना सभी समाजों में सभी के लिए उपलब्ध नहीं थी । कह सकते हैं कि समाज पर नियंत्रण रखने वाला प्रभु वर्ग शुरू से ही इसे अपने पक्ष में नियंत्रित और प्रभावित करता रहा है । आज भी इंजीनियरी, डॉक्टरी आदि की उच्च शिक्षा अंग्रेजी भाषा में ही उपलब्ध है और इन शिक्षाओं को प्राप्त करने के लिए जो मानक तैयार किए गये हैं वे अभिजात वर्ग के समर्थन में जाते हैं । भारत जैसे देशों में यह उच्च शिक्षा महँगी भी होती जा रही है । इन सबका नतीजा यह है कि जो लोग अंग्रेजी भाषा को नहीं जानते, जो अपने बच्चों को ऐसी शिक्षा दिलाने के लिए जरूरी तैयारी कराने के लिए आर्थिक रूप से सक्षम नहीं हैं उनके बच्चे चाहकर भी उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते ।

सूचना समाज की संकल्पना का संबंध सूचना प्रौद्योगिकी से है । माइक्रो इलेक्ट्रनिक्स पर आधारित कंप्यूटर के माध्यम से सारी दुनिया तक पहुँचने वाली इस प्रौद्योगिकी ने सारी दुनिया को आपस में जोड़ दिया है । अब कोई भी व्यक्ति अपने कंप्यूटर में समस्त दुनिया में व्याप्त संजाल (वर्ल्ड वाइड वेब) के माध्यम से दुनिया के किसी कोने की सूचना प्राप्त कर

सकता है और सूचना को पहुँचा भी सकता है । यह सूचना लिखित रूप में, आवाज के रूप में और दृश्य के रूप में हो सकती है । यह सूचना अपरिमित हो सकती है और कोई भी इन तीनों रूपों में सूचना को निर्मित भी कर सकता है । इसका सीधा-सा अर्थ यह है कि कंप्यूटर के माध्यम से व्यक्ति अपने निजी और व्यावसायिक जरूरतों को पूरा कर सकता है । सूचना समाज के समर्थक इसकी एक अत्यंत लुभावनी तस्वीर पेश कर रहे हैं । 'वर्तमान में लोगों की जरूरत अपने भविष्य को संवारने में है । व्यवसाय की जरूरत अधिक प्रतिस्पर्धात्मक और लाभप्रद होने में है, सीधे शब्दों में अपने अस्तित्व को बचाने में है । सरकारों की जरूरत अधिक सक्षम और प्रभावशाली ढंग से राज चलाने में है । डॉक्टरों और अस्पतालों की जरूरत बेहतर स्वास्थ्य सेवा प्रदान करने में है । स्कूलों की जरूरत बेहतर शिक्षा प्रदान करने में है । आज ये सभी कार्य सूचना व्यवसाय द्वारा संचालित हो रहे हैं और वे एक बहुत ही चुनौतीपूर्ण कल का निर्माण कर रहे हैं' (मेनकरेंटस इन मास कम्युनिकेशंस, संपादन : वारेन के, एजी, फिलिप एच. आल्ट और एडविन एमेरी, हार्पर एंड रो, पब्लिशर्स, न्यूयार्क से उद्धृत चार्ल्स मार्षल का कथन, पृ. 345) । चार्ल्स मार्शल का मानना है कि लोग यह चाहते हैं कि कंप्यूटर आपस में एक-दूसरे से बात करें, आपस में एक-दूसरे से जुड़े हों । लेकिन वे यह भी चाहते हैं कि वे इन कंप्यूटरों को और किसी भी सूजना उपकरण को खरीद सकें । उनमें वे सभी नवीनतम सूचनाएँ, आँकडे और जानकारियाँ उपलब्ध हों जिनकी कि जरूरत उन्हें एक व्यापारी, उद्योगपति, अध्यापक, राजनीतिज्ञ, डॉक्टर या और किसी रूप में महसूस हों । वे एक ऐसे नेटवर्क के हिस्से हों जहाँ दुनिया की जानकारी का भंडार 'ऑन लाइन' उपलब्ध हो ताकि वे चाहे जब अपनी जरूरतों को पूरा कर सकें (वही, पृ.345) । सूचना के पैरोकारों के अनुसार यह सपना अब सच में बदलने जा रहा है ।

सूचना समाज वह समाज है जहाँ सूचना वह उत्पादन है जिसके साधनों पर एक खास वर्ग का अधिकार है । क्या इस समाज में सूचना उत्पाद का रूप धारण कर चुकी है? यानी ऐसा उत्पाद जिसे खरीदा और बेचा जा सकता है, जिसे विनिमय के लिए भंडारित किया जा सकता है और जिसके उत्पादन और विनिमय पर एकाधिकार कायम किया जा सकता है । सूचना के उत्पादन और विनियम पर जिसका एकाधिकार हो जाता है, वह सिर्फ सूचना के प्रवाह पर ही नहीं समाज पर शासन करने की स्थिति में होता है । ऊपर जिसे सूचना श्रमिक कहा गया है वे सूचना के संसाधनों के मालिक नहीं हैं । फैक्टरी में काम करने वाले दूसरे मजदूरों की तरह उन्हें भी अपना श्रम बेचना पड़ता है चाहे उस श्रम में भौतिक श्रम का अंश कम हो और बौद्धिक श्रम का अंश अधिक । इसी तरह यदि किसी देश में सूचना श्रमिकों की संख्या ज्यादा होती है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वहाँ ऊर्जा आधारित औद्योगिक संस्थानों की जरूरत समाप्त हो गई है । इसके विपरीत सूचना आधारित उद्योग के पनपने के बावजूद हमारी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने वाले भौतिक श्रम की जरूरत वैसे ही बनी रहती है, यह बात हम पहले कह चुके हैं । हां, यह जरूर है कि इस सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग इस व्यवसाय का फैलाने और उपभोक्ताओं तक अपने उत्पादों की मार्केटिंग करने के लिए भी किया जा रहा है । सूचना के

क्षेत्र की व्यावसायिक संभावनाओं के कारण ही विकसित देशों ने सूचना प्रौद्योगिकी के जरिए गरीब और पिछड़े देशों को शोषित करने का एक और ताकतवर क्षेत्र प्राप्त कर लिया है ।

सूचना समाज के दूसरे पहलू पर भी यहाँ विचार कर लेना जरूरी है । जनसंचार के इन माध्यमों में कंप्यूटर के अलावा सबसे महत्वपूर्ण टेलीविजन है । भारत जैसे विकासशील देश में भी आज टेलीविजन देश के लगभग सभी हिस्से में पहुँच चुका है । यद्यपि आज भी दूरदर्शन का ही प्रसारण पर एकाधिकार है और लगभग दो-तिहाई दर्शक सिर्फ दूरदर्शन ही देखते हैं लेकिन केवल टीवी के माध्यम से लगभग एक-तिहाई हिस्सा चालीस से अधिक केबल चैनलों से भी जुड़ गया है । इस तरह जिसके पास भी टीवी है उसके लिए आज टीवी की सूचना और मनोरंजन का प्रमुख साधन है । टीवी की प्रकृति इस तरह की है कि लोगों को उसको देखने के लिए अपना काम-धाम छोड़ने के लिए उसके- सामने बैठना पड़ता है । टीवी पर सबसे लोकप्रिय कार्यक्रम तब आते 'हैं जब घर के सभी सदस्य एक साथ होते हैं और वे यदि टीवी न देख रहे हों तो किसी-न-किसी पारिवारिक और सामाजिक कार्यो में संलग्न रह सकते हैं लेकिन अब टीवी के कारण लोगों के सामाजिक जीवन और नजरिए पर गहरा नकारात्मक प्रभाव दिखाई देता है । वे टीवी के छोटे से पर्दे को जानकारी, शिक्षा और मनोरंजन सबका इकलौता और संपूर्ण साधन मान लेते हैं और ऐसे दूसरे माध्यम जिनसे भी यह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है उनको अपने जीवन से बाहर कर देते हैं ।

संचार के नए माध्यमों का बच्चों और किशोरों पर ज्यादा गहरा असर दिखाई देता है । टीवी के वैविध्यपूर्ण और रंगीन कार्यक्रम के गतिशील चित्र उनके मानस के लिए किसी फैंटेसी से कम नहीं होते । वे यदि छुटपने से ही उनके आदी हो जाते हैं तो वे उसके साथ कोई बौद्धिक और आलोचनात्मक रवैया विकसित नहीं कर पाते ।वे यह मान लेते हैं कि टीवी के छोटे से पर्दे पर जो भी दिखाया जा रहा है वही सत्य है, वही आनंद और जीवन का लक्ष्य है । कंप्यूटर और नेटवर्क ने उनके लिए दुनिया को और छोटा कर दिया है । इंटरनेट पर सर्फिग करते हुए वे राही मान लेते हैं कि जो यहाँ है वही ऐसा है जिसे जानने की जरूरत है और जो यहाँ नहीं है उसे जानने की जरूरत नहीं है । इस प्रकार अपने समाज और पूरे विश्व के बारे में वे एक खंडित सोच के साथ बड़े होते हैं । टीवी के छोटे पर्दे पर समाज के अभिजात वर्ग की विलासिता और उनकी ताकत का ऐसा खुला प्रदर्शन होता है कि उसे हासिल करने को वे अपने जीवन का भी लक्ष्य समझ लेते हैं । यह कोई आकस्मिक बात नहीं है कि अमरीका में उन बच्चों और किशोरों ने जिन्होंने अपने ही साथियों को आग्नेय अस्त्रों द्वारा मार डाला वे टीवी और इंटरनेट के गहरे प्रभाव में थे ।

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि सामाजिक विचलनों की सारी जिम्मेदारी इन जनसंचार माध्यमों पर डाल दी जाएँ जनसंचार माध्यमों पर तो वही आएगा जो समाज में हो रहा होगा । यदि इराक पर बमबारी करने वाले बमवर्षक विमानों को टीवी पर 'लाइव दिखाया जाता है और दुनिया का एक हिस्सा उसको देखकर 'आनंद' का अनुभव करता है तो वह इसीलिए नहीं कि वह ऐसा टीवी पर देख रहा है बल्कि इसलिए कि इराक में मरने वाले साधारण स्त्री, पुरुष और बच्चों के प्रति जो हमारे मन में मानवीय संवेदना होनी चाहिए उसे हम पहले ही गंवा चुके हैं । जिस तरह का समाज हम बना रहे हैं जिसमें कि प्रत्येक व्यक्ति इस

बात से जाना जाता है कि उसके पास कितना अकूत धन है और उस धन के बल पर उसने कितनी ताकत हासिल कर ली है वहाँ जाहिर है कि मानवीय मूल्यों और संवेदनाओं के लिए कितनी जगह रहेगी । यही बात स्त्रियों के प्रति नजरिए में देखने को मिलती है । जनसंचार माध्यम ऐसी स्त्रियों को ग्लोरिफाई करते हैं जो एक तरफ आधुनिकतम सौंदर्य प्रसाधनों का उपयोग करने में सक्षम बनकर विश्व सुंदरी बनने का स्वप्न देखती हो, दूसरी तरफ वह करवा चौथ का व्रत करने वाली पति परायणा भी हो जिसका संचार उसके घर और ससुराल की चारदीवारी से बाहर न हो । यदि वह इसे लांघने की कोशिश करे तो उसे वैसे ही संकटों का सामना करना पड़ेगा जैसा कि सीता को करना पड़ा था ।

संचार के सामाजिक सन्दर्भ पर विचार करते हुए स्वयं इन माध्यमों की सामाजिक हैसियत पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए । एक तरह की श्रेणीबद्धता हम इसमें देख सकते हैं । आपके पास कौन-कौन से संचार माध्यम है उससे आपकी सामाजिक स्थिति का पता चलता है । यदि आप एक रेडियो या ट्रांजिस्टर रखने की हैसियत नहीं रखते तो आप नागरिकता के लगभग सारे अधिकारों से वंचित ही रहेंगे और यदि आपके पास रेडियो ही नहीं टीवी, टेलीफोन, मोबाइल, मल्टीमीडिया और इससे भी आगे के संचार माध्यम हैं तो जाहिर है कि आप की हैसियत किसी भी दूसरे नागरिक के मुकाबले में कहीं ज्यादा होगी । यह और बात है कि आप अपने समाज के प्रति किसी तरह के दायित्वबोध से शून्य ही क्यों न हो । वैसे तो प्रत्येक युग में संचार का सामाजिक वर्चस्व से संबंध रहा है लेकिन आज जब संचार के माध्यम न केवल बहुत अधिक बढ़े हैं बल्कि उनका विस्तार होने के कारण उन्हें जनसंचार भी कहा जाने लगा है । फिर भी, हम देखते हैं कि संचार माध्यमों की उपलबदता समाज के सभी वर्गो और समुदायों के बीच समान रूप से नहीं है । यही नहीं एक हद तक वह समाज में व्याप्त गैरबराबरी और रूढ़िवादी विचारों को बदलने में भूमिका निभाने के बजाए उनको मजबूत करने में अधिक सक्रिय नजर आ सकते हैं । समाज का प्रभुत्वशाली वर्ग जिसका सत्ता पर भी नियंत्रण होता है वह कई तरीकों से संचार माध्यमों पर अपने नियंत्रण को बनाये रखने में कामयाब हो जाता है । हम इस पहलू पर राजनीतिक आयाम के सन्दर्भ में चर्चा कर चुके हैं ।

15.6 संचार के सांस्कृतिक आयाम

संचार के सांस्कृतिक प्रभावों को समझने के लिए इस बात को ध्यान में रखना जरूरी है कि संचार के द्वारा जो उत्पादन होता है वह वस्तुत: सांस्कृतिक उत्पाद है । वह किसी भौतिक वस्तु का उत्पाद नहीं है । वह एक तरह का संदेश है जो अमूर्त है और जिसके साथ हमारा संबंध मानसिक और भावात्मक होता हैं जब हम अखबार में समाचार पढ़ते है तो समाचार हमारी चेतना पर असर डालते हैं, हमारी भावनाओं को उद्वेलित करते हैं और हमारे विचारों से टकराते हैं । जब हम टीवी पर या सिनेमाघर में किसी धारावाहिक या फिल्म को देख रहे होते हैं तो यह जानते हुए कि वहाँ जो भी दिखाया जा रहा है वह गढ़ा हुआ है फिर भी हमारी भावनाएँ वैसे ही उद्वेलित होती हैं जैसे कि वे घटनाएँ सचमुच घटी हों और हम भी किसी न किसी रूप में उनमें शामिल हों । इसलिए संचार माध्यमों द्वारा संप्रेषित संदेशों का हमारे जीवन पर गहरा असर पड़ता है । यह प्रक्रिया कितने गहरे रूप में हमारे मानस पर असर डालती है इसका एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है-

कोका कोला के एक विज्ञापन में फिल्म अभिनेत्री, मॉडल और पूर्व मिस वर्ल्ड ऐश्वर्या राय टीवी का मैच देख रही है, मैच देखते हुए वह महसूस करती है कि जब भी वह कोका कोला की नई बोतल खोलती है तो भारतीय टीम चौका लगाने में कामयाब होती है । थोड़ी ही देर में उसे इस बात का एहसास हो जाता है कि बोतल खोलने पर चौका लगता है और वह ऐसा ही करने लगती है । कुछ ही देर में उसके सामने कोका कोला की खुली बोलतों का ढेर लग जाता है । कोका कोला के ही दूसरे विज्ञापन में आमिर खान जब बोतल खोलता है तो विरोधी देश की टीम के विकेट गिरते हैं । ये विज्ञापन किस विचार को प्रसारित कर रहे हैं? क्या भारतीय टीम का कोका कोला की बोतलों के साथ ऐसा कोई संबंध संभव है? जाहिर है नहीं ।

लेकिन यहाँ दर्शकों की पिछड़ी चेतना का इस्तेमाल किया जा रहा है जो ये मानते हैं कि जीवन में सफलता और असफलता महज भाग्य का खेल है । विज्ञापन में कोका कोला को उस सौभाग्य का प्रतीक बताया जा रहा है जो भारत को क्रिकेट में कामयाबी दिलाती है । तर्क को आगे बढ़ाया जाए तो यह कहने की कोशिश की जा रही है कि कोका कोला भारत की विजय का प्रतीक है । यदि आप कोका कोला पीते हैं तो आप भारत की विजय के साथ हैं । लेकिन क्या इसका यह भी संदेश नहीं है कि कोका कोला देशभक्ति का प्रतीक है । इस तरह इस उत्पाद का विज्ञापन दर्शकों को इस ठोस सच्चाई को भूलने के लिए उकसाता है कि यह एक विदेशी कम्पनी है और भारत से इसका सिर्फ एक ही हित जुड़ा है कि वह यही के बड़े बाजार पर अपना नियंत्रण कायम करे और यहाँ से ज्यादा-से-ज्यादा मुनाफा बटोर कर ले जाएँ अपने आर्थिक लाभ के लिए किस तरह लोगों की देशभक्ति का चतुराई पूर्ण इस्तेमाल किया गया है इसकी तरफ यदि हमारा ध्यान नहीं जाता है तो हम इन निगमों की आर्थिक भूमिका के बारे में आलोचनात्मक रवैया विकसित करने में कामयाब नहीं हो सकते ।

संचार माध्यमों के विस्तार के साथ सांस्कृतिक रूपों के प्रभाव की, विद्वानों ने कई तरह से व्याख्या की है । पीटर गोल्डिंग ने इस संबंध में उपलब्ध पाँच दृष्टियों का उल्लेख किया है । पहले सिद्धांत के अनुसार, सांस्कृतिक उत्पादों के प्रति लोगों का नजरिया निक्रिय नहीं होता । वे संदेश की व्याख्या करने की क्षमता रखते हैं और अपने हित और अहित का निर्णय लेने में सक्षम होते हैं । दूसरा सिद्धांत यह है कि तीसरी दुनिया के अनेक केंद्र फिल्म, टेलीविजन कार्यक्रमों या संगीत की प्रभावशाली तथा बड़े क्षेत्र में वितरित होने वाली सामग्री के महत्त्वपूर्ण स्रोत बन गये हैं । इस प्रकार वे स्थानीय लोगों की सांस्कृतिक जरूरतों के लिए विकसित देशों पर पूरी तरह निर्भर नहीं है । तीसरा सिद्धांत यह है कि क्षेत्रीय सहयोग की संभावनाएँ पहले की तुलना में कहीं ज्यादा बढ़ी हैं जिसकी कल्पना यूनेस्को की मेकब्राइड रिपोर्ट में की गई है । लेकिन गोल्डिंग का यह कहना सही प्रतीत होता है कि ऐसा सहयोग विकासशील देशों में प्रभु वर्ग के लाभ के लिए होता है । इन देशों में ऐसा प्रभुवर्ग सत्ता पर आसीन है जिसका हित बहुराष्ट्रीय निगमों और इजारेदारी हितों के साथ जुड़ा है । अंतिम सिद्धांत यह है कि इन माध्यमों का इस्तेमाल भिन्न ढंग से करना । यह काम ऐसे वर्गो, संगठनों और समुदायों द्वारा किया जा सकता है जो सामान्यजन के हितों को सर्वोपरि समझते हैं न कि आर्थिक हितों को । हालांकि यह काम अभी बहुत कम देखने में आ रहा है लेकिन यह ऐसा जरूरी काम है जिसे जनता के विभिन्न हिस्सों को अपने हाथ में लेना होगा ।

संचार माध्यमों के विस्तार के साथ यदि अपने देश के सांस्कृतिक परिदृश्य पर नजर डालें तो हम यह पाते हैं कि आधुनिक माब्लों का इस्तेमाल करने वाली ताकतें एक तरह के प्रतिगामी और एक आयामी सांस्कृतिक नजरिए की समर्थक हैं । यह आकस्मिक नहीं है कि सांप्रदायिक और तत्त्ववादी ताकतें अपने विचारों के प्रचार के लिए इंटरनेट सहित सभी आधुनिक माध्यमों का इस्तेमाल कर रही हैं । इसी तरह टीवी के विभिन्न चैनलों पर प्रसारित होने वाले ज्यादातर धारावाहिकों की कथावस्तु में निहित वैचारिक ढाँचा प्रतिगामी, स्त्री स्वतंत्रता का विरोधी और अभिजात समर्थक होता है । लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं है कि इन माध्यमों का यह स्वाभाविक चरित्र है कि वह सिर्फ ऐसे जीवन मूल्यों और सांस्कृतिक रूपों को प्रसारित करेंगे । जैसा कि हम कह चुके हैं इसका कारण इन माध्यमों पर नियंत्रण करने वाले वर्गो के अपने हित हैं । यदि इन; हितों का विरोध करने वाली ताकतों को भी अपनी बात कहने के पूरे अवसर उपलब्ध हों तो ये माध्यम भिन्न किस्म के सांस्कृतिक रूपों को व्यक्त करने में भी सक्षम हो सकते हैं । जनसंचार और संस्कृति के पारस्परिक संबन्धों का उल्लेख हम इसी पाठ्यक्रम की इकाई दस में विस्तार से कर चुके हैं ।

15.7 सारांश

आपने जनसंचार के विभिन्न आयाम नामक इस इकाई का अध्ययन कर लिया है । आपने यह समझ लिया होगा कि संचार के नए आयामों का संबंध संचार के क्षेत्र की नई प्रौद्योगिकी से है । यह प्रौद्योगिकी जनसंचार के तीनों महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों-दूरसंचार, कंप्यूटर और जनमाध्यम में इसका तेजी से विस्तार हुआ है और आज यह सबसे ताकतवर उभरता हुआ क्षेत्र है । इसने संचार को भूमंडलीय स्तर पर अधिक व्यापक, अधिक तीव्र और अधिक आसान बनाया है । इसने संचार के नए अनछुए क्षेत्रों में नई संभावनाओं को भी जन्म दिया है । लेकिन क्या इससे हम ऐसी दुनिया में प्रवेश करने में समर्थ हो रहे हैं जो उन समस्याओं से मुक्त हो जिससे अब तक दुनिया सामना करती रही है ।

संचार के नए आयाम का सबसे महत्वपूर्ण पहलू उसका आर्थिक पहलू है । यह दावा किया जा रहा है कि संचार के विस्तार और विकास से दुनिया पहले के किसी भी समय की तुलसा में ज्यादा समतावादी बन सकेगी । लेकिन अब तक जो प्रमाण मिले हैं वह इस दावे का समर्थन नहीं करते । संचार की यह प्रौद्योगिकी दुनिया के विभिन्न देशों के बीच असमान रूप में वितरित है और एक देश में भी वह', असमान रूप में उपलब्ध है । यही नहीं इसका लाभ या तो विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ उठा रही हैं या फिर उसी देश की एकाधिकारवादी कंपनियाँ । इसने भूमंडलीय के नाम पर विकासशील देशों को विक्रसित देशों और बहुराष्ट्रीय निगमों पर निर्भर बना दिया है । इस तरह एक नए तरह के उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया शुरू होती हुई दिखाई दे रही है ।

संचार के क्षेत्र में हुई नई खोजों में सिर्फ आर्थिक पहलू पर ही असर नहीं डाला है बल्कि उसने राजनीति पर भी असर डाला है । एक तरफ नई संचार प्रौद्योर्तोकी के समर्थक राजनीति के क्षेत्र में नए तरह के लोकतंत्र और अधिकारों से वंचित करने की भूमिका भी तैयार कर रहे हैं । वे विकास को जनता के अधिकारों के बराबर रखकर यह मांग कर रहे हैं कि विकास के लिए जनता को कल्याणकारी राज्य के नाम पर मिलने वाली अब तक की सुविधाओं

को छीन लिया जाए और वे सुविधाएँ उनको. प्रदान की जाएँ सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के विस्तार के साथ यह हो भी रहा है ।

संचार और सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार के कारण आज के समाजों को सूचना समाज कहा जाने लगा है । सूचना समाज का तात्पर्य यह है कि ऐसा समाज जिसमें सूचना केंद्रीय हो और जिस समाज में सूचना के उत्पादन, वितरण, विनिमय पुनरात्पादन, प्रसंस्करण, भंडारण आदि में लगे लोगों की जरूरत है कि संचार के नए माध्यमों ने एक महत्त्वपूर्ण स्थान हासिल कर लिया है । लेकिन अभी भी वह केंद्रीय स्थिति में पहुँचने में कामयाब नहीं हुआ है । संचार के सामाजिक आयाम को वस्तुत: इनके सामाजिक प्रभाव के रूप में देखना चाहिए । सांस्कृतिक रूपों का संप्रेषण करते हुए ये माध्यम समाज पर कई तरह के प्रभाव डाल रहे हैं । ये ज्यादातर प्रभाव नकारात्मक इसलिए है क्योंकि इन माध्यमों का वर्चस्व ऐसे वर्ग के हाथ में है जिसकी दिलचस्पी इस बात में नहीं है कि इन माध्यमों का उपयोग समाजों को समतावादी और लोकतांत्रिक बनाने में करे ।

संचार के द्वारा सांस्कृतिक संदेशों का प्रसारण किया जाता है । इन माध्यमों ओकी प्रकृति में ऐसा कुछ नहीं होता कि वे एक ही तरह के सांस्कृतिक संदेशों के ही संप्रेषण करने में सक्षम हो, बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि वे माध्यम किनके हाथों में है और सांस्कृतिक वर्चस्व की उनकी सांकल्पना क्या है । आमतौर पर भारत जैसे देश में जिसमें सांस्कृतिक विविधता बहुत सघन रूप में दिखाई देती है, इन माध्यमों का उपयोग इस विविधता को खंडित करने के लिए भी किया जा सकता हैं । दूसरी तरफ इसके माध्यम से सास्कृतिक और सर्जनात्मक के स्वाभाविक विकास को भी प्रभावित किया जा सकता है ।

दरअसल, संचार के नए आयाम का अध्ययन करते हुए हमें इस बात को ध्यान में रखना होगा कि हम इन माध्यमों को किस परिप्रेक्ष्य से देखते हैं और उसके स्वरूप को बदलने में विभिन्न वर्गो, समुदायों और लोगों की भूमिका को किस रूप में ग्रहण करते हैं ।

15.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. संचार की नयी प्रौद्योगिकी के विकास का उल्लेख करते हुए उसके प्रभावों की चर्चा कीजिए।
2. संचार माध्यमों के विकास ने आर्थिक रूप से विश्व को कैसे प्रभावित किया है? अपना मत प्रस्तुत कीजिए ।
3. जनसंचार माध्यम के सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं पर प्रकाश डालिए ।
4. भारतीय संदर्भ में संचार माध्यमों के राजनीतिक संदर्भ का विवेचन कीजिए ।
5. टेलीविजन विज्ञापनों के विश्लेषण द्वारा उसके सांस्कृतिक संदर्भ का विवेचन कीजिए ।

15.9 सन्दर्भ ग्रंथ

1. रेमंड विलियम्स; संचार माध्यमों का वर्ग चरित्र, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली- 110092
2. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिदृश्य, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली- 110092

3. सुभाष धूलिया; सूचना क्रांति की राजनीति और विचारधारा, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली- 110092
4. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार के सामाजिक संदर्भ, अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली- 110052
5. पूरनचंद जोशी; संस्कृति विकास और संचार क्रांति, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली- 110092
6. जॉन बी. थाम्पसन; आइडियोलोजी एंड मॉडर्न कल्व २-, पोलिटी प्रेस, कैम्बिज, यूके.
7. रॉबर्ट डज्यू मेस्वेस्ते और जॉन बेलामी फोस्टर (संपादक), केपिटलिज्य एंड दि इनफोर्मेशन एज; मंथली रिव्यू प्रेस, न्यूयार्क

इकाई 16 : जनसंचार और स्त्री विमर्श इकाई की रूपरेखा

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 स्त्री संबंधी अवधारणाएँ और जनसंचार माध्यम
16.3 साहित्य और पत्रकारिता में स्त्री-छवि
16.4 सिनेमा में स्त्री-छवि
16.5 टेलीविजन में स्त्री-छवि
16.6 इंटरनेट और स्त्री-छवि
16.7 सारांश
16.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
16.9 सन्दर्भ ग्रंथ

16.0 उद्देश्य

जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता नामक इस पाठ्यक्रम के तीसरे खंड में जनसंचार और समाज की पाँचवीं और पाठ्यक्रम की 16वीं इकाई है । इस इकाई में जनसंचार माध्यम में स्त्री छवि किस रूप में प्रस्तुत की जाती है, उस पर विचार किया गया है । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप- ।

- समाज में व्याप्त स्त्री संबंधी अवधारणाओं का परिचय प्राप्त करेंगे ।
- जनसंचार माध्यमों पर स्त्री संबंधी अवधारणाओं का उल्लेख कर सकेंगे ।.
- साहित्य और पत्र-पत्रिकाओं में प्रस्तुत स्त्री-छवि की जानकारी प्राप्त करेंगे), ।
- सिनेमा में प्रस्तुत स्त्री-छवि को समझ सकेंगे ।
- टेलीविजन में दिखाई जाने वाली स्त्री-छवि की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- इंटरनेट में स्त्री-छवि का परिचय प्राप्त करेंगे ।

16.1 प्रस्तावना

जनसंचार माध्यम और समाज के आपसी संबंधों को समझने के क्रम में कप कई मुद्दों के बारे में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं । इस इकाई में जनसंचार माध्यमों के संदर्भ में स्त्री-छवि पर विचार करेंगे । जनसंचार माध्यमों में आरंभ से ही स्त्री-छवि का प्रश्न महत्त्वपूर्ण बनकर उभरा है । जनसंचार माध्यक का मुख्य कार्य सूचना, शिक्षा और मनोरंजन प्रदान करना है । आमतौर पर स्त्री-छवि को मनोरंजन के माध्यमों के संदर्भ में ही समझा जाता है लेकिन यह सही नहीं है । इसे हम सूचना और शिक्षा से संबंधित प्रसारण के संदर्भ में भी समझ सकते हैं । जनसंचार माध्यमों के द्वारा स्त्री की जो भी छवि व्यक्त की जाती है उसे समझने गे पहले यह समझना जरूरी है कि स्त्री-छवि का संबंध स्त्री के संबंध में समाज की अपनी समझ से बहुत

गहरा है । इसलिए इस इकाई में सबसे पहले स्त्री संबंधी अवधारणा पर विचार किया गया है । स्त्री के संबंध में न सिर्फ वर्तमान अवधारणाओं को भी वरन् प्राक्-आधुनिक अवधारणाओं को भी समझना जरूरी है क्योंकि विभिन्न समाजों में स्त्री के संबंध में पुरुष के रवैये की जड़ें सामंती समाजों में देखी जा सकती है । स्त्री संबंधी अवधारणा को समझने के बाद इस इकाई में मुद्रण, श्रव्य, दृश्य और आधुनिकतम माध्यमों में व्यक्त हो रही स्त्री-छवि को समझने का प्रयास करेंगे। वैसे तो सभी तरह के साहित्य में स्त्री जीवन के विभिन्न रूपों को व्यक्त करने की परंपरा बहुत पुरानी है, लेकिन आधुनिक जनसंचार माध्यमों ने स्त्री यथार्थ के कई नये पक्ष उभरकर आये हैं । ये पक्ष इससे पहले के पक्षों से गुणात्मक रूप में भिन्न है । पुरुष की तरह स्त्री भी मानव है लेकिन पुरुष के लिए वह अन्य कई रूपों में अपने को व्यक्त करती है । ये विभिन्न रूप किस तरह जनसंचार माध्यमों में जगह पाते हैं, इस पर भी इस इकाई में विचार किया जाएगा । साहित्य में स्त्री शब्दों के माध्यम से अपने को व्यक्त करती है, रेडियो में भी शब्द ही प्रधान होते हैं लेकिन दृश्य माध्यमों में स्त्री दृश्य बिंबों के माध्यम से साक्षात रूप में अपने को व्यक्त करती है । लेकिन स्त्री की इस दृश्य छवि के पीछे किस तरह की समझ और मानसिकता काम कर रही है, इसे समझना जरूरी है । इस इकाई में इन सभी पक्षों पर विचार किया जाएगा ।

16.2 स्त्री संबंधी अवधारणाएँ और जनसंचार माध्यम

स्त्री संबंधी अवधारणा को यदि ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो हम पायेंगे कि सभ्यता के आरंभिक चरण में स्त्री और पुरुष के बीच उस तरह की असमानता व्याप्त नहीं थी जो बाद के युगों में देखी गयी । आरंभ में स्त्री और पुरुष मिलकर शिकार करते थे, भोजन और आवास की व्यवस्था करते थे और साथ-साथ जीवनयापन करते थे । लेकिन जब संपत्ति का आविर्भाव हुआ और समाज वर्गो में विभाजित होने लगा, तो रमी और पुरुष के बीच भी अंतर किये जाने की शुरुआत हुई । वे लोग जिनके पास दास, जमीन और धन था वही समाज का प्रभुवर्ग कहा जाने लगा । लेकिन जो गुलाम बनाये गये, जिनकी जमीन छीन ली गयी और जिन्हें किसी भी तरह की संपत्ति रखने के अधिकार से वंचित कर दिया गया वही कभी दास के रूप में, कभी गरीब किसान के रूप में और कभी श्रमिक के रूप में पहचाने जाने लगे । शारीरिक रूप से स्त्री कभी भी कमजोर नहीं रही । लेकिन प्रजनन क्षमता के कारण वह पुरुष से कुछ भिन्न और श्रेष्ठ समझी गयी । यही कारण है कि आदिम समाज मातृसत्तात्मक समाज था । यानी माता ही परिवार की धुरी थी और उसे ही सृष्टि का कारण समझा गया । लेकिन इसी संतानोत्पति ने उसे वर्गीय समाजों में दासता की स्थिति में पहुँचा दिया । संतानोत्पति के लिए उसे कुछ समय उन कार्यो से अलग रहना पड़ता था जिसमें वह पहले पुरुषों के साथ शामिल होती थी । पुरुषों ने इस स्थिति का लाभ उठाकर घर से बाहर के क्रियाकलापों पर अपना वर्चस्व स्थापित करना शुरू किया । इसी तरह वर्गीय समाजों में जब संपत्ति के उतराधिकार की व्यवस्था हुई, तो खून के रिश्ते का महत्त्व बढ़ गया । अपनी ही संतान को उत्तराधिकार में संपत्ति और सत्ता सौंप कर जाने के लिए यह जरूरी था कि रची द्वारा उत्पन्न होने वाले बच्चे उनके अपने हो । यहीं से विवाह नामक संस्था ने जन्म लिया और सतीत्व और पातिव्रत्य की अवधारणाएँ स्त्रियों पर

थोप दी गयीं । स्त्री से यह अपेक्षा की गयी कि वह अपने पति के प्रति निष्ठावान रहे और अपने को परिवार के प्रति समर्पित रखे । यह अपेक्षाएं धीरे-धीरे रूढ़ धारणाओं में बदलने लगीं । स्त्री को हर तरह की स्वतंत्रता और अधिकार से वंचित कर दिया गया । पुरुषों द्वारा रचे गये धर्मशास्त्रों में यह कहा गया कि स्त्री को विवाह से पूर्व पिता के अधीन, विवाह के बाद पति के अधीन और पति की मृत्यु के बाद पुत्र के अधीन रहना चाहिए । भारत जैसे देशों में तो पति के साथ ही जिंदा जल जाने वाली स्त्री को सती कहकर महिमामंडित किया गया । इसी तरह लगभग सभी समाजों में स्त्री को पराये पुरुषों की नजर से बचाने के लिए पर्दे में रखा जाने लगा । उनका विवाह बालपन में किया जाने लगा और यदि पति की मृत्यु हो जाये तो वैधव्य का कठोर जीवन जीने के लिए मजबूर किया गया ।

एक पारिवारिक स्त्री के लिए इन उत्पीड़नकारी मान्यताओं के साथ-साथ ही उस स्त्री को जो परिवार से बाहर कर दी गयी और जिनके जीवन का उद्देश्य अपनी शारीरिक सुंदरता और तरह-तरह की कलाओं से पुरुषों का मनबहलाव करना था, उन्हें गणिका और वैश्या कहकर संबोधित किया गया । इस तरह स्त्री घर-परिवार में माता, पत्नी, बेटी और बहन होकर भी वास्तविक अर्थों में पुरुषों की दासी ही बनी रही और घर के बाहर वह भोग्या बनकर ही जी सकी । इन दोनों रूपों में स्त्री को मनुष्य से कमतर समझा गया और उन्हें पशुओं से बदतर जीवन जीने के लिए विवश किया गया । घर में और घर के बाहर उसके द्वारा किये जाने वाले कामों को अनुत्पादकीय माना गया और उसके लिए उसे किसी तरह की मजदूरी या वेतन या संपत्ति में हिस्सा देना आवश्यक नहीं समझा गया । उसे उसका कर्तव्य माना गया । इस तरह स्त्री जीवन भर एक बंधुआ मजदूर की तरह घर की चक्की में पिसती रही, खेतों में काम करती रही और फिर भी वह कमजोर और कमतर मानी जाती रही । जिन पारिवारिक रिश्तों को आदर्श माना गया वे भी उसके लिए बंधन ही साबित हुए । यह कहा गया कि मातृत्व स्त्री जीवन की पराकाष्ठा है लेकिन यदि वह माता नहीं बन सकती तो उसके लिए उसे ही दोष दिया गया । इसी तरह पुत्र जन्म को मातृत्व की पराकाष्ठा माना गया लेकिन लड़की के जन्म के लिए उसे सजा दी गयी । यहाँ तक कि लड़की के जन्म को इतना बुरा माना गया कि उन्हें जनम से पहले या जनमते ही मार देने की प्रथाएं भी चल पड़ी । उसका न अपने शरीर पर अधिकार था और न ही अपने मन पर । उसे उसी व्यक्ति से विवाह करना पड़ता था जिससे विवाह करने की आज्ञा घर-परिवार के पुरूष मुखिया देते थे । उसके लिए शिक्षा को जरूरी नहीं माना गया और न ही संपत्ति का अधिकार उसे दिया गया । स्त्री विरोध इन सारी मान्यताओं का वर्चस्व इसलिए स्थापित हुआ क्योंकि उन्हें धर्म और धार्मिक ग्रंथों और कानूनों का समर्थन प्राप्त था । धर्मग्रंथों ने स्त्री को नरक का द्वार, पाप की गठरी, शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोर आदि कहकर अपमानित किया । इन धारणाओं ने इतनी गहरी जड़ें पकड़ ली हैं कि आधुनिक लोकतांत्रिक समाजों में भी इनका गहरा प्रभाव देखा जा सकता है । इसका उदाहरण राजस्थान और हरियाणा के गांवों में एक ही गोत्र में विवाह करने वाले युवाओं के साथ किया जाने वाला अमानुषिक व्यवहार है ।

स्त्री विरोधी रुख में बदलाव की शुरुआत आधुनिक दौर में हुई जब स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को मानवीय आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया गया । इन आदर्शों का अर्थ यह था कि

किसी भी मनुष्य के साथ धर्म, जाति, लिंग, नस्ल, क्षेत्र, भाषा आदि के आधार पर किसी भी तरह का भेदभाव न किया जाएँ सभी मनुष्यों को बराबर माना जाए और उन्हें अपने अनुसार जीवन यापन की स्वतंत्रता प्रदान की जाएँ राज्य का कर्तव्य यह माना गया कि उसकी स्वतंत्रता की रक्षा करे । यह भी कहा गया कि विभिन्न समुदायों के लोगों में भाईचारे को बढ़ावा दिया जाएँ वैसे तो ये मान्यताएं हर युग में किसी-न-किसी रूप में प्रस्तुत की जाती रही है लेकिन इसने आधुनिक युग में एक विश्वव्यापी आंदोलन का रूप ले लिया । इन्हीं मान्यताओं ने लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष और समता पर आधारित समाज बनाने के विचार को लोकप्रिय बनाया। मनुष्य द्वारा मनुष्य को गुलाम बनाने की अवधारणा को कानून द्वारा प्रतिबंधित किया जाने लगा । इसी प्रक्रिया में स्त्री पर घर और बाहर किसी भी तरह का उत्पीड़न और शोषण भी कानून के दायरे में आया । स्त्री की स्वतंत्रता का हनन और उस पर किये जाने वाले किसी भी तरह के अत्याचारों को न केवल अनैतिक और अमानवीय माना गया बल्कि कानून की नजरों में उसे अपराध भी माना गया । स्त्री को मिलने वाले इन अधिकारों का अर्थ यह नहीं है कि स्त्री को आधुनिक समाजों में पूरी स्वतंत्रता प्राप्त हो चुकी है । इसके विपरीत आज भी स्त्री को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में कई तरह के भेदभावपूर्ण दुर्व्यवहारों का सामना करना पड़ता है । विडंबना यह नहीं है कि स्त्री को पुरुषों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों को झेलना पड़ता है, विडंबना यह भी है कि स्वयं स्त्री ने अपनी दासता को अपनी नियति मान लिया है । इस संदर्भ में हिन्दी की कथाकार प्रभा खेतान का यह कथन महत्त्वपूर्ण है । उनके शब्दों में, "जिस भेदभाव का स्त्री को अनुभव होता है, वह केवल भाषागत संरचना नहीं है । स्त्री को उसकी अधीनस्थता को इस कदर आत्मसात करा दिया गया है कि सत्ता की दमनकारी गतिविधियों को वह स्वीकारने लगी है । परंपरा ने उसे स्वास्थ्य, शिक्षा, राजनीतिक स्वतंत्रता और राजनीतिक भागीदारी और यहाँ तक कि व्यक्तिबोध जैसे मूलाधिकारों से भी वंचित रखा है । ' स्त्री की स्वतंत्रता तभी संभव है जब वह सबसे पहले मानसिक गुलामी से मुक्त हो । वह इस बात को समझे कि उसके शरीर पर और मन पर किसी ओर का नहीं बल्कि उसका अपना अधिकार है । अपने जीवन के बारे में फैसला वह किसी दूसरे व्यक्ति पर नहीं छोड़ सकती । नारीवादी फ्रांसीसी चिंतक और रचनाकार सीमोन द बुआ का यह -कहना सही है कि स्त्री पैदा नहीं होती उसे बनाया जाता है । इस कथन का तात्पर्य यह है कि जनम के साथ लड़की में इस बात का बोध नहीं होता कि वह लडकी है और इसी वजह से लड़कों और पुरुषों से कमतर है लेकिन जैसे-जस वह बड़ी होती जाती है, उसके चारों ओर का माहौल उसे यह बताता रहता है कि वह लड़की है और लड़की होने की वजह से उसके लिए क्या करना उचित है और क्या करना अनुचित । इसे वह इतने सहज रूप में ग्रहण करती है कि उसे यह एहसास ही नहीं होता कि उसे धीरे-धीरे गुलामी की जंजीरों में जकड़ा जा रहा है ।

भारत में भी स्त्री का इतिहास यही रहा है । स्त्री की स्वतंत्रता का संघर्ष यहाँ भी आधुनिक युग में ही शुरू हुआ । लेकिन भारत में आधुनिकता की शुरुआत औपनिवेशिक काल में हुई इसलिए स्त्री की स्वतंत्रता का प्रश्न देश की स्वतंत्रता से भी सीधे तौर पर जुड़ गया । जिसे हम आज नवजागरण के नाम से जानते हैं उस दौर की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि स्त्री की स्वतंत्रता उसका एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य था । सती प्रथा, वैधव्य, बाल विवाह, अनमेल विवाह

जैसी कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाई गयी । सती प्रथा और बाल विवाह पर प्रतिबंध लगे । विधवा के विवाह को कानूनी मान्यता प्राप्त हुई । स्त्री शिक्षा के लिए ठोस कदम उठाये गये और घर से बाहर जाकर स्त्री के काम करने को प्रोत्साहित किया गया । इसी तरह संपत्ति में अधिकार, तलाक का अधिकार, बहु विवाह पर प्रतिबंध जैसे कानून बनाये गये । स्त्री स्वतंत्रता की यह प्रक्रिया अभी भी जारी है । इसके साथ ही यह भी सत्य है कि वास्तविक जीवन में स्त्री को वह स्वतंत्रता और अधिकार प्राप्त नहीं हुए हैं जो कानून में दिये गये हैं । आज भी स्त्री का जीवन काफी हद तक धार्मिक और सामाजिक परंपराओं के अनुसार ही चलता है और इसका उल्लंघन करने पर ग्रामीण और पिछड़े समाजों में इसके लिए स्त्री को दंडित भी किया जाता है । अपनी मर्जी से प्रेम विवाह करने पर ग्रामीण समाजों में लड़के-लड़की को जिंदा जला दिया जाता है यार फाँसी पर लटका दिया जाता है । अलग-अलग धर्मों में विवाह करने पर दंगे होने का ही डर नहीं है, कई राज्यों में तो पुलिस ही ऐसे जोड़ों के पीछे पड़ जाती है । शहरों और महानगरों तक में स्त्री अपनी मर्जी के कपड़े नहीं पहन सकती, अपने पुरुष मित्रों के साथ घूम नहीं सकती और यदि ऐसा करती है तो भारतीय संस्कृति के स्वयंभू रक्षक संगठन और उनके कथित कार्यकर्त्ता उनको किसी भी हद तक जाकर सजा देने के लिए तत्पर रहते हैं । इन सबके बावजूद यह भी सही है कि स्त्री निरंतर अपनी स्वतंत्रता को वरण करती हुई और अपने अधिकारों का उपयोग करती हुई आगे बढ़ रही है । इस बात का प्रमाण यह है कि शिक्षा और रोजगार दोनों में स्त्री भागीदारी का प्रतिशत निरंतर बढ़ रहा है । पुरुषों के नजरिये में भी परिवर्तन दिखायी देने लगा है और वह स्त्री की स्वतंत्रता और अधिकारों के संघर्ष में भागीदार भी बन रहा है ।

जनसंचार माध्यमों में स्त्री की मौजूदगी के कई संदर्भ हैं । जनसंचार माध्यमों के स्वामित्व, प्रबंधन, निष्पादन, रचयिता, तकनीशियन और सामान्य कर्मचारी और श्रमिक के रूप में स्त्री की भूमिका कितनी और कैसी है, ये सभी पक्ष जनसंचार माध्यमों में स्त्री विमर्श को समझने के लिए समझना जरूरी है । जनसंचार माध्यम स्त्री से संबंधित प्रश्नों और समस्याओं को किस हद तक प्रस्तुत करते हैं और इस प्रस्तुति पर किस तरह का दृष्टिकोण हावी रहता है? जनसंचार माध्यमों में एक ही तरह की स्त्री-छवि दिखाई देती है या उसके विविध रूप दिखाई देते हैं? इन स्त्री छवियों के पीछे माध्यम का इरादा और उद्देश्य क्या है? इसके साथ ही यह भी देखने और समझने की जरूरत है कि जनसंचार माध्यमों में स्त्री की मौजूदगी का ग्रहीताओं पर किरन तरह का प्रभाव पड़ता है? ग्रहीता के रूप में स्वयं स्त्री पर किस तरह का प्रभाव दिखाई देता है? वे किस तरह के संदेशों को पसंद और नापसंद करती हैं और क्यों? ऐसे बहुत सारे पक्ष हैं जो जनसंचार माध्यमों के संदर्भ में स्त्री विमर्श के हिस्से बनते हैं । आगे के भागों में हम इन सभी पक्षों पर विचार करेंगे ।

16.3 साहित्य और पत्रकारिता में स्त्री-छवि

साहित्य और पत्रकारिता में स्त्री-छवि पर विचार करने से पहले इस बात को समझने की आवश्यकता है कि साहित्य की लंबी परंपरा को समझा ही नहीं जा सकता यदि उसमें स्त्री जीवन की विभिन्न छवियों को समझने का प्रयास नहीं करते । यही बात पत्रकारिता पर भी

लागू होती है । दरअसल, कोई समाज कितना सभ्य और सुसंस्कृत है, इसका पता इस बात से लगता है कि उस समाज में स्त्री को कौन-सा स्थान हासिल है । क्या उसका अभी-भी उसी तरह शोषण और उत्पीड़न होता है जिस तरह मध्ययुग में होता था' या उसमें कोई परिवर्तन दिखाई देता है और यह परिवर्तन कितना है और उसकी प्रकृति क्या है, यह जानना भी उतना ही जरूरी है । इस भाग में हम साहित्य और पत्रकारिता में स्त्री-छवि पर अलग-अलग विचार करेंगे ।

साहित्य परंपरा में स्त्री-छवि

साहित्य में स्त्री का चित्रण उतना ही पुराना है जितना स्वयं साहित्य । मनुष्य जीवन के अनुभवों का आधा हिस्सा स्त्री अनुभवों से संबंधित है । इसलिए यह संभव ही नहीं था कि साहित्य में स्त्री जीवन और उसके अनुभवों की उपेक्षा हो । लेकिन यह भी सही है कि वर्गीय समाजों में जब पुरूष वर्चस्व एक स्वीकार्य सत्य बन गया तो स्त्री के प्रति दृष्टिकोण भी बदला और उसे पुरुष की अनुगामिनी, दासी और सेविका के रूप में देखा जाने लगा । साहित्य में यदि स्त्री जीवन का आदर्शीकरण हुआ, तो पुरुषों के जीवन के बहुत से संकटों और समस्याओं का कारण स्त्री को माना गया । यदि एक ओर यह कहा गया कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते तत्र रमते देवता' तो दूसरी ओर, यह भी कहा गया कि 'ढोर गंवार शुद्र पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी' । रामचरित मानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास की इन पंक्तियों में न केवल स्त्री को बल्कि 'शुद्र' कहे जाने वाले समाज के मेहनतकश दलित वर्ग को भी पशु के समतुल्य माना गया । इन्हीं तुलसीदास ने सीता को माता कहकर पूज्य बनाया तो, रामायण की कथा में सीता को अपने सतीत्व की अग्नि परीक्षा भी देनी पड़ी । सतीत्व और पतिव्रत्य धर्म में खरी उतरने वाली स्त्री को देवी कहकर संबोधित किया गया । यम के मुख से अपने पति सत्यवान. को बचाकर लाने वाली सावित्री को स्त्री का आदर्श साहित्य ने ही घोषित किया।

मध्ययुगीन साहित्य में यदि एक ओर पति का अनुगमन करने वाली और उसके लिए अपने जीवन का उत्सर्ग करने वाली स्त्री प्रस्तुत की जाती रही, तो दूसरी ओर, पुरुषों का मन बहलाने वाली सौंदर्य और काम की साक्षात मूर्ति के रूप में भी वह प्रस्तुत की जाती रही । स्त्री के दैहिक सौंदर्य का वर्णन साहित्य का एक प्रिय विषय रहा है । स्त्री के नख से लेकर शिखा तक शरीर के एक-एक अंग का तरह-तरह की उपमाओं के साथ वर्णन करने में कवियों ने अपनी रचनात्मकता की पराकाष्ठा समझी । पुरुषों का मनबहलाव करने वाली विभिन्न तरह की नारियों का चित्रण करने में वे अपनी काव्य प्रतिभा का प्रमाण समझते थे । नायिका भेद की यह परिपाटी किसी-न-किसी रूप में पूरे मध्ययुगीन साहित्य में विद्यमान रही । साहित्य ने न सिर्फ स्त्री के सौंदर्य और युवा स्त्री के विभिन्न प्रकारों का रस ले-लेकर वर्णन किया बल्कि स्त्री-पुरुष के प्रेम को भी विभिन्न ढंग से चित्रित किया । यहाँ भी स्त्री को भोग्या के रूप में और पुरुष को भोक्ता के रूप में ही अधिक चित्रित किया गया । इसका अर्थ यह नहीं है कि मध्ययुग में स्त्री की अपनी भावनाओं का चित्रण बिल्कुल नहीं हुआ । शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य दोनों में स्त्री की मनोभावनाओं, उनके जीवन के दुखों और अभावों का भी वर्णन हुआ है । अंडाल से लेकर मीरा तक ऐसी बहुत-सी स्त्री रचनाकार हुई हैं जिन्होंने कविता के माध्यम से स्त्री जीवन

के कष्टों और उसके मनोभावों को प्रभावशाली अभिव्यक्ति दी । स्त्री के पक्ष को रखने में लोक साहित्य का योगदान भी शिष्ट साहित्य से किसी भी रूप में कम नहीं है ।

स्त्री के प्रति दृष्टिकोण में मूलभूत परिवर्तन हमें आधुनिक युग में दिखाई देता है जब स्त्री को पुरुष की अनुगामिनी, दासी या देवी कहकर नहीं बल्कि उसकी सहचर, मित्र कहा गया और पुरुष की तरह उसे भी मनुष्य मानने पर बल दिया गया । जीवन के हर क्षेत्र में स्त्री को पुरुषों के बराबर अधिकार की पैरवी की गयी । इसका सीधा प्रभाव हमें साहित्य में भी दिखाई देता है । आधुनिक युग के साहित्य में स्त्री जीवन के दुखों और अभावों को गहरी सहानुभूति के साथ प्रस्तुत किया गया । दूसरी ओर, पहली बार साहित्य रचना की ओर स्त्रियाँ बड़ी संख्या में अग्रसर हुई । इसका एक कारण तो शिक्षा का प्रसार था तो दूसरा कारण स्त्रियों का घर की चारदीवारी से बाहर निकलना था । इन दोनों कारणों ने स्त्री को साहित्य रचना की ओर प्रेरित किया । हिन्दी का ही उदाहरण लें तो इस बात का प्रमाण हमें मिल जाएगा । हिन्दी में बंग महिला से जो परंपरा आरंभ होती है, वह बाद में महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान, सत्यवती मलिक, चंद्रकिरण सौनरिक्शा कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, से होती हुई मृणाल पांडे, शशिप्रभा शास्त्री, मेहरुन्निसा परवेज, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुदगल, प्रभा खेतान,कात्यायनी, अलका सरावगी, अनामिका आदि सैकड़ों नाम गिनाये जा सकते हैं जिन्होंने अपने लेखन द्वारा हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है । आधुनिक युग में स्त्री मुक्ति साहित्य का एक प्रमुख विषय है और इसको हम सिर्फ स्त्री रचनाकारों के साहित्य में ही नहीं पुरूष रचनाकारों के साहित्य में भी देख सकते हैं । प्रेमचंद, जैनेंद्र कुमार, यशपाल, फणीश्वर नाथ रेणु, नागार्जुन, भैरव प्रसाद गुप्त जैसे लेखकों के साहित्य में भी हम स्त्री-मुक्त का उद्घोष सुन सकते हैं। स्त्री मुक्त का अर्थ यह है कि स्त्री का अपने शरीर और अपने जीवन पर पुत अधिकार है, उसे अपने बारे में फैसले लेने का अधिकार है । स्त्री को काम करने, संपत्ति रखने, किसी पुरुष से संबंध रखने और न रखने तथा मां बनने और न बनने का भी पूरा अधिकार है । यही नहीं स्त्री को देवी कहकर आदर्शो के जिस जाल में फाँसे रखा गया स्त्री ने उसे अस्वीकार कर दिया । वह पुरुष की तरह मनुष्य होकर जीना चाहती है और इसी बात को उसने साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त भी किया है ।

पत्रकारिता और स्त्री-छवि

पत्रकारिता सामाजिक जागरण का एक महत्वपूर्ण माध्यम रहा है । भारत में नवजागरण के दौरान समाज सुधारकों ने जिन सामाजिक मुद्दों को उठाया उसके लिए उनके पास सबसे प्रभावशाली मंच पत्र-पत्रिकाएँ ही थीं । यह बात सिर्फ भारत के बारे में ही लागू नहीं होती बल्कि पूरी दुनिया के लिए सत्य है । सामाजिक जागरण का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष स्त्री 'मुक्ति का प्रश्न भी है । स्त्रियों के लिए शिक्षा, बाल विवाह का विरोध, विधवाओं का पुनर्विवाह और सती प्रथा जैसी कुप्रथाओं से छुटकारा दिलाना आदि मुद्दे तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा ही सामने आये थे । हिन्दी की भारतेंदु युगीन पत्रकारिता इस बात का उदाहरण है । स्वयं भारतेंदु और उनके सहयोगियों ने विभिन्न पत्रों के द्वारा स्त्री-जागरण से संबंधित प्रश्नों को उठाया था । यही नहीं स्वयं भारतेंदु ने स्त्रियों के लिए अलग से एक पत्रिका निकाली थी जिसका नाम 'बालाबोधिनी'

था । बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में तो कई लेखिकाओं ने पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कहानियाँ और कविताएं भी प्रकाशित कराई । बीसवीं सदी में स्त्री जागृति की कई पत्रिकाएँ स्त्रियों के संपादन में प्रकाशित हुई । इसी जागृति के परिणामस्वरूप हिन्दी में महादेवी वर्मा जैसी कवयित्री और स्त्रीवादी चिंतक सामने आई । पत्रकारिता के क्षेत्र में आज कई महत्वपूर्ण स्त्री पत्रकार सक्रिय हैं जिन्होंने यह साबित किया है कि स्त्री भी एक श्रेष्ठ पत्रकार हो सकती है ।

पत्रकारिता से जुड़ा दूसरा प्रश्न यह है कि क्या पत्रकारिता ने सदैव स्त्री जागृति के सवालों को नारी समर्थक परिप्रेक्ष्य के साथ उठाया है । इस प्रश्न का उत्तर हां या नहीं में नहीं दिया जा सकता । पत्र-पत्रिकाओं ने स्त्री-मुक्ति का समर्थन किया तो यह भी सत्य है कि पत्र-पत्रिकाओं ने स्त्री के दैहिक सौंदर्य का इस्तेमाल अपनी पत्रिकाओं की अधिक बिकी के लिए भी किया था । आज जब गृहशोभा, 'गृहलक्ष्मी', 'वनिता', 'सहेली' आदि कई नारी केंद्रित पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं और उनमें से अधिकांश की संपादक स्वयं स्त्रियाँ हैं लेकिन उनमें अधिकांशत: ऐसी सामग्री प्रकाशित होती है जो स्त्री की परंपरागत. छवि के अनुरूप हो । लेकिन इन पत्रिकाओं के स्वरूप में भी काफी अंतर आया है। यह जरूर है कि इन पत्रिकाओं में शहर में रहने वाली शिक्षित मध्यवर्ग की स्त्रियों की समस्याओं को ही केंद्र में रखा गया है लेकिन यह स्त्री अब घर की शोभा नहीं वरन एक कामकाजी महिला भी है। इसलिए इन पत्रिकाओं में स्त्रियों को सुंदर और स्वस्थ रहने के नुस्खे बताने, तरह-तरह के व्यंजन बताने के साथ-साथ उनके स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं और नौकरी के दौरान आने वाली समस्याओं पर भी निरंतर सामग्री प्रकाशित होती रहती है । कुछ पत्रिकाएँ ऐसी भी निकलने लगी हैं जिनमें स्त्रियों की प्रगतिशील छवि उभरकर आती है । लेकिन ऐसी पत्रिकाएँ बहुत कम हैं ।

16.4 सिनेमा में स्त्री-छवि

लोकप्रिय माध्यम होते हुए भी सिनेमा का यथार्थ से संबंध होता है इस बात को दोहराने की आवश्यकता नहीं है । यथार्थ के साथ संबंध के कारण स्वाभाविक है कि स्त्री जीवन का चित्रण फिल्मों में हो । लगभग सौ साल के इतिहास में लगातार ऐसी फिल्में बनती रही हैं जिनमें स्त्री जीवन के यथार्थ को कलात्मक उत्कर्षता के साथ प्रस्तुत किया गया है । हिन्दी फिल्में भी इसका अपवाद नहीं है । वैसे तो कथा फिल्मों के निर्माण के कुछ साल बाद ही स्त्रियाँ फिल्मी दुनिया से जुड़ना शुरू हो गई थी । आरंभिक वर्षो में सिनेमा में काम करने के लिए स्त्रियाँ आगे नहीं आई लेकिन एक दशक में ही सिनेमा के पर्दे पर स्त्री चरित्रों को अभिनेत्रियों ने ही पेश करना शुरू कर दिया था । तीसरे दशक तक आते-आते निर्देशन, निर्माण, लेखन, संगीत आदि । क्षेत्रों में भी स्त्रियों ने प्रवेश कर लिया था । इसके बावजूद आज जितनी बड़ी संख्या में फिल्म निर्माण, निर्देशन, लेखन के क्षेत्र में स्त्रियाँ सक्रिय हैं उतनी इससे पहले कभी नहीं रहीं । आज स्त्रियों के पर्दे पर आने को लेकर। दिखाई देने वाली आरंभिक हिचकिचाहट का नामोनिशां तक नहीं है । लेकिन इससे यह समझना भूल होगी कि सिनेमा के पर्दे पर स्त्री जीवन का चित्रण अधिक यथार्थपरक और स्त्री समर्थक हो गया है ।

लोकप्रिय सिनेमा अभी भी स्त्रियों को दो रूपों में ही चित्रित कर रहा है, या तो सौंदर्य के साधन के रूप में या देवी के रूप में । निश्चय ही ऐसे बहुत से फिल्मकार हैं जो स्त्रियों को

इन दोनों रूपों से भिन्न दिखा रहे हैं लेकिन ऐसे फिल्मकारों की संख्या बहुत कम हैं । सिनेमा का संसार भी पुरुष वर्चस्व वाला संसार है । यह वर्चस्व उनके संख्या बल के कारण नहीं बल्कि सिनेमा के संसार में जारी मूल्य व्यवस्था के कारण है जहाँ एक ही फिल्म में काम करने वाले नायक को नायिका की तुलना में अधिक पारिश्रमिक मिलता है । अधिकांश फिल्में नायक प्रधान होती हैं और नायकत्व उनकी शारीरिक शक्ति (पुरुष बल) में निहित होता है । यह पुरुष बल शत्रु का दमन करने और स्त्रियों की रक्षा करने के लिए है । पुरुषों द्वारा रक्षित होकर स्त्रियाँ उनका मन बहलाती हैं, उनकी यौन क्षुधा शांत करती हैं और उनके लिए वारिस उत्पन्न करती हैं। जाहिर है कि पुरूष समाज द्वारा निर्धारित इन भूमिकाओं के ही इर्दगिर्द फिल्मों में स्त्री जीवन का चित्रण होता है ।

लेकिन कम ही सही लगातार ऐसी फिल्में बनती रही हैं जो स्त्रियों को उनकी परंपरागत भूमिकाओं से परे जाकर देखने का प्रयास करती हैं । इस तरह का प्रयास करने वाली फिल्मों में भी वैचारिक अंतर्विरोध होते हैं । यदि किसी एक मसले में वे स्त्री अधिकारों का समर्थन कर रही होती हैं तो किसी दूसरे मसले में वे स्त्री पराधीनता के पक्ष में खड़ी नजर आ सकती हैं । लेकिन इसी वजह से उन फिल्मों का महत्त्व कम नहीं हो जाता । स्त्री स्वाधीनता और उसके अधिकारों को केंद्रीय मुद्दा बनाने वाली फिल्मों को भी कई श्रेणियों में बीटा जा सकता

1. एक तरह की फिल्में वे हैं जिनमें स्त्रियाँ पुरूष की अनुपस्थिति में पूरे परिवार का लालन-पालन अकेले करती है । मदर इंडिया इस तरह की फिल्मों का सर्वोत्तम उदाहरण हैं । भिन्न परिवेश और भिन्न ढंग से कही गई चांदनी बार को भी इसी श्रेणी में रखा जा सकता है ।
2. दूसरी तरह की फिल्में वे हैं जहाँ स्त्री घर की चारदीवारी में रहने से इंकार करती है और अपने जीवन को सार्थक बनाने का मार्ग स्वयं खोजती है । सुबह इस तरह की प्रातिनिधिक फिल्म है ।
3. तीसरी तरह की फिल्में वे हैं जहाँ स्त्रियाँ अपने पर होने वाले उत्पीड़न का मुकाबला खुद करती हैं । मिर्च मसाला और मृत्युदंड को इसके उदाहरण के रूप में पेश किया जा सकता है।
4. चौथी तरह की फिल्में वे हैं जिनमें स्त्रियाँ त्याग, पातिव्रत्य और सेवा जैसे ' मूल्यों को मानने से इन्कार करती हैं और यौन भावनाओं के प्रति अपराध बोध से ग्रस्त नहीं होती । फायर, अस्तित्व और सत्ता इस तरह की फिल्मों के उदाहरण हैं ।
5. पाँचवीं तरह की फिल्में उन्हें कहा जा सकता है जिनमें स्त्रियाँ अपने बलबुते वह मुकाम हासिल करती है जो पुरुषों के वर्चस्व वाली इस दुनिया में प्राप्त करना उनके लिए कभी आसान नहीं रहा । आँधी, गॉड मदर, सत्ता आदि इसी तरह की फिल्में हैं । लेकिन इसी श्रेणी की एक फिल्म स्वराज भी है जो किसी एक स्त्री के हाथ में सत्ता आने की उसकी निजी उपलब्धि को नहीं बल्कि ' स्त्री जाति की स्वतंत्र होती चेतना को दिखाती है ।

ऐसी फिल्मों पर बात करने से पहले उस व्यापक परिदृश्य को समझना जरूरी है जिसमें लोकप्रिय फिल्में आदर्श स्त्री प्रतिरूपों का प्रचार कर रही हैं । पिछले दो दशकों में लोकप्रिय

सिनेमा में यदि एक ओर हिंसा प्रधान फिल्मों ने कामयाबी प्राप्त की है तो दूसरी ओर घर-परिवार केंद्रित फिल्मों ने। हम आपके हैं कौन से शुरू हुई इस दूसरी प्रवृत्ति को हम संजय लीला भंसाली के निर्देशन में बनी देवदास तक में देख सकते हैं । कहानी हिंदुस्तान में चल रही हो या अमरीका में, आज की हो या आज से सौ साल पहले के औपनिवेशिक भारत की, संदेश यह है कि स्त्रियाँ घर की शोभा है और उन्हें घर की शोभा बनकर ही रहना चाहिए । अभिजात सुंदरता और वैभवपूर्ण जीवन के बीच पति और परिवार के प्रति निष्ठा के सामंती मूल्यों को अपनाते हुए आधुनिक बनने का ढोंग इन फिल्मों का केंद्रीय स्वर है । एकता कपूर के परिवार केंद्रित अपराध (फेमिली-क्राइम) धारावाहिकों के बीच इस तरह की फिल्में मध्यवर्ग में स्त्रियों के प्रति किस तरह का नजरिया लोकप्रिय बना रही है, इसे समझना बहुत मुश्किल नहीं है । यह गहरे समाजशास्त्रीय विश्लेषण की मांग करता है कि आज के लोकप्रिय धारावाहिकों, विशेष रूप से एकता कपूर के धारावाहिकों में जहाँ स्त्रियाँ काफी हद तक कथानकों के केंद्र में होती हैं, ऐसी खलनायिकाओं के इर्दगिर्द कहानियाँ क्यों चलती हैं जो भयावह रूप में लालची, हिंसक और षड्यंत्रकारी होती हैं । बौद्धिक रूप से स्वतंत्र, पर्याप्त रूप से शिक्षित और पुरुषों की अनुगामी बनने से इंकार करने वाली स्त्रियाँ क्यों इतने गहरे काले रूप में पेश की जा रही हैं?

स्त्री-मुक्ति के प्रश्न को लेकर हिन्दी में फिल्में बनने का सिलसिला आज भी जारी है । यह अवश्य है कि अधिकांश फिल्मों में स्त्री के दैहिक सौंदर्य को अतिरंजित महत्त्व दिया जाता है लेकिन 'लज्जा' 'दामिनी', 'चांदनी बार, स्वराज', 'फायर', वाटर', 'पेज-3', परोमा जैसी फिल्मों ने स्त्री यथार्थ को व्यापक परिप्रेक्ष्य में रखकर दिखाया है और स्त्री के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाया गया है ।

16.5 टेलीविजन में स्त्री-छवि

भारत में टेलीविजन का इतिहास बहुत पुराना नहीं है । 1959 में पहली बार दिल्ली में टेलीविजन प्रसारण की शुरुआत हुई थी और इसके बाद लगभग बीस साल तक टेलीविजन प्रसारण महानगरों तक ही सीमित रहा । लेकिन 1980 के बाद टेलीविजन प्रसारण का विस्तार तेजी से हुआ और आज तो भारत के कोने-कोने में टेलीविजन पहुँच चुका है । आज टेलीविजन पर दो सौ से अधिक देशी-विदेशी चैनलों का प्रसारण हो रहा है । इन चैनलों पर हर तरह के कार्यक्रम देखे जा सकते हैं । समाचार, खेलकूद, मनोरंजन, सिनेमा, आर्थिक समाचार, शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न विषयों से संबंधित, विभिन्न भाषाओं में कई-कई चैनल उपलब्ध हैं । इन चैनलों पर प्रस्तुत होने वाले कार्यक्रमों के साथ-साथ विज्ञापन भी प्रसारित होते हैं । टेलीविजन आज स्त्री-छवि प्रस्तुत करने का एक सशक्त माध्यम है । टेलीविजन प्रसारण के विभिन्न क्षेत्रों से स्त्रियाँ भी जुड़ी हुई हैं । कार्यक्रम के प्रस्तोता से लेकर एंकरिंग और अभिनय से लेकर तकनीशियन तक हर तरह के कार्यक्रमों में स्त्रियों को देखा जा सकता है । शिक्षित, युवा कामकाजी महिलाओं के लिए टेलीविजन उनका एक प्रमुख कार्यक्षेत्र बन गया है ।

टेलीविजन एक ऐसा माध्यम है जिसे अकेले में नहीं देखा जा सकता । दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि यह एक पारिवारिक माध्यम है जिसे परिवार के प्राय: सभी सदस्य एक

साथ देख सकते हैं । इसलिए टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों को बनाते हुए इस बात को ध्यान में रखना पड़ता है कि वह परिवार द्वारा सामूहिक रूप से देखा जा सके। यही कारण है कि टेलीविजन पर मनोरंजन के कार्यक्रम आमतौर पर परिवार केंद्रित होते हैं । इनमें सर्वाधिक लोकप्रिय हैं: कथात्मक धारावाहिक जिनमें परिवार केंद्रित कहानियाँ होती हैं । इन धारावाहिकों के दर्शकों में घरेलू स्त्रियों की संख्या ज्यादा होती है इसलिए इनकी कहानियाँ भी स्त्रियों को केंद्र में रखकर लिखी जाती हैं । आरंभ में प्रसारित होने वाले धारावाहिकों में मध्यवर्ग और निम्नमध्यवर्गीय परिवारों और पात्रों की कहानियों को कथानक का आधार बनाया गया था। हमलोग, बुनियाद, नुक्कड़ इसी तरह के धारावाहिक थे लेकिन बाद में इनका स्थान अभिजात और अमीर परिवारों की कहानियों ने ले लिया था । अमेरिकी धारावाहिक 'बोल्ड एंड ब्यूटीफुल' से प्रेरित ऐसे धारावाहिकों में पूँजीपति परिवारों में संपत्ति और अधिकार के लिए चलने वाले पारिवारिक संघर्षों को कहानियों का आधार बनाया गया था । यही धारावाहिक बाद में. सास-बहू के संघर्ष के रूप में सामने आये । इस तरह का लोकप्रिय धारावाहिक 'क्योंकि सास भी कभी बहू थी' के कारण इन धारावाहिकों को सास-बहू मार्का धारावाहिक कहा जाने लगा । इन धारावाहिकों में ऐसे औद्योगिक घरानों की कहानियाँ होती हैं जिन्हें अपने 'खानदान' की परंपरा पर गर्व होता है । खानदान की परंपराओं का संबंध औरतों के रहन-सहन और उनकी पारिवारिक स्थिति से है। सीधे पल्ले की साड़ी, मांग का सिंदूर, गले में मंगलसूत्र, सिर पर पल्ला, हाथों में चूड़ियां और पैरों में बिछुए इन खानदानी स्त्रियों की पहचान हैं । ये स्त्रियाँ दो तरह की हैं या तो बहुत अच्छी या बहुत बुरी । प्रत्येक धारावाहिक में एक या दो स्त्रियाँ पूरे घर की शांति और सद्भाव में विघ्न पैदा करती रहती हैं । परिवार के ही लोगों के विरुद्ध आपराधिक साजिशें करती हुई ये खलनायिकाएं कहानी को आगे बढ़ाती रहती हैं । इन परिवारों में एक साथ चार-पाँच पीढ़ियां रहती हैं । इन धारावाहिकों से यह बिल्कुल पता नहीं चलता कि ये किस देश और किस समय की कहानियाँ हैं । स्त्री के दोनों रूप इन धारावाहिकों में यथार्थवादी नहीं होते । लेकिन घटनाओं को जिन नाटकीय ढ़ंग से आगे बढ़ाया जाता है और नाटकीयता के पीछे जिस तरह की भावनाएं काम कर रही होती हैं कि दर्शकों विशेष रूप से स्त्री दर्शकों को यह अपनी भावनाओं की ही अभिव्यक्ति नजर आती है । घरेलू स्त्रियाँ खास, तौर पर इन धारावाहिकों की खलनायिकाओं को अपनी बहू सास, ननद या देवरानी और जेठानी में ढूंढती हैं और अपने को उन उत्पीड़ित स्त्री के रूप में देखती हैं जो इन खलनायिकाओं के साजिशों की शिकार बनती हैं और कष्ट पाती हैं ।

धीरे-धीरे इन धारावाहिकों की लोकप्रियता में कमी आने लगी और इनका स्थान रियल्टी शो और 'बालिका वधु' और उतरन' जैसे धारावाहिकों ने ले लिया । 'बालिका वधु', 'उतरन', 'लाडो', राधा की बेटियां कुछ कर दिखायेंगी', 'अगले जनम मोहे बिटिया ही कीजो', 'ज्योति' 'लेडिज स्पेशल' आदि इन सभी धारावाहिकों की कहानियाँ भी स्त्री केंद्रित हैं लेकिन पहले के धारावाहिकों से इनका मुख्य अंतर यह है कि इनमें गरीब और निम्न मध्यवर्ग, कस्बे और गाँव की कहानियाँ कही गयी हैं । 'बालिका वधु', 'लाडो', 'अगले जनम मोहे बिटिया ही कीजो' में स्त्रियों से संबंधित कुप्रथाओं की तीखी आलोचना भी पेश की गयी है । मसलन, 'बालिका वधु' में बाल विवाह, अनमेल विवाह, अशिक्षा और वैधव्य को मुद्दा बनाया गया है, तो 'लाडो' में

जनमते ही लड़की को मार देने की कुप्रथा की आलोचना को मुद्दा बनाया गया है । इसी तरह 'अगले जनम...'में लड़कियों को बेच देने की प्रथा को कहानी का आधार बनाया गया है । सामाजिक मुद्दों को उठाते हुए भी इन धारावाहिक में नाटकीयता पर अतिरंजित बल दिया गया है जिससे ये धारावाहिक दर्शकों के बीच लोकप्रिय तो हो रहे हैं लेकिन इनका कोई सकारात्मक प्रभाव समाज पर पड़ेगा, इसकी संभावना कम ही है ।

टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले विज्ञापनों में भी स्त्री की विशेष तरह की छवि पर बल दिया जाता है । सौंदर्य प्रसाधनों का इस्तेमाल कर गोरा और सुंदर दिखने से संबंधित विज्ञापनों की भर मार यह बताती है कि किस तरह ये विज्ञापन स्त्रियों को ये विचार बेचते हैं कि जीवन में सफलता स्त्री की कार्य कुशलता और कर्मठता पर नहीं बल्कि उसके दैहिक सौंदर्य से तय होती है । ये प्रसाधन यह दावा करते हैं कि कुछ दिनों या सप्ताहों में किस तरह काला रंग गोरे रंग में बदल सकता है और किस तरह रुखी त्वचा कोमल त्वचा में बदल सकती है । स्त्री छवि का इस्तेमाल ऐसे विज्ञापन में भी किया जाता है जो उनकी घरेलू छवि के अनुरूप हो । खाने-पीने के समान, घर की सफाई और सजावट से संबंधित समान, कपड़े धोने की मशीन, रेफ्रीजरेटर, एसी, माइक्रोवेव आदि घरेलू सामानों से संबंधित विज्ञापन भी स्त्रियों को संबोधित होते हैं । कुल मिलाकर स्त्री की परंपरागत भूमिका को ही ज्यादातर इन विज्ञापनों में प्रचारित किया जाता है ।

इसका अर्थ यह नहीं है कि टेलीविजन स्त्री की बदलती भूमिका को बिल्कुल महत्त्व नहीं देते । ऐसा करना उनके लिए संभव भी नहीं है । स्त्री अब न केवल शिक्षित हो रही है बल्कि वह घर ,' से बाहर की दुनिया में भी उसकी भूमिका बढ़ती जा रही है । यही कारण है कि अब कई ऐसे धारावाहिक भी बुनने लगे हैं जो उनकी घरेलू छवि की बजाय उनकी कामकाजी छवि को केंद्र में रखते हैं । 'ज्योति', 'लेडिज स्पेशल', 'राधा की बेटियां, कुछ कर दिखायेंगी', 'भारती भास्कर' जैसे धारावाहिक इन्हीं कामकाजी स्त्रियों को ध्यान में रखकर बनाये गये हैं । ये सभी स्त्रियाँ निम्नमध्य वर्ग या मध्य वर्ग से संबंधित हैं ।

टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले न्यूज चैनलों पर स्त्री से संबंधित मुद्दों को भी स्थान मिलता है लेकिन जितना महत्त्व उनको दिया जाना चाहिए उतना महत्त्व उनको प्राप्त नहीं होता । आमतौर पर न्यूज चैनलों पर पुरुष दृष्टि हावी दिखाई देती है । स्त्री की मुक्ति और उसके अधिकारों से संबंधित प्रश्नों को न्यूज चैनल अधिक महत्त्व नहीं देते लेकिन फैशन शो, या कुछ सेलेब्रिटिज मान ली गयी स्त्रियों के प्रेम प्रसंगों से संबंधित समाचारों को विशेष महत्त्व के साथ प्रसारित किया जाता है । कई बार तो टेलीविजन चैनल इतने गैर जिम्मेदारी पूर्ण ढंग से काम करते हैं कि इससे न सिर्फ स्त्रियों का अपमान होता है बल्कि उनके परिवार वालों को भी भयावह परेशानियों से गुजरना पड़ता है । आरुषी हत्याकांड ऐसा ही मामला है जिसमें टेलीविजन चैनलों ने पहले तो एक मासूम लड़की के बारे में बहुत अपमानजनक बातें फैलाई और बाद में उनके पिता को ही अपनी बेटी की हत्या के लिए जिम्मेदार ठहराते हुए कठघरे में खड़ा कर दिया । खेलकूद के मामले में भी देखा जा सकता है कि किस तरह क्रिकेट की छोटी से छोटी खबर को भी विस्तार से और महत्व के साथ प्रसारित किया जाता है लेकिन साइना नेहवाल जैसी बेडमिंटन की खिलाड़ी को न पर्याप्त जगह मिल पाती है और न ही उसकी

उपलब्धि को महत्व दिया जाता है जबकि साइना पहली भारतीय महिला खिलाड़ी है जिसने एक अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता जीती है । भारत में गरीबी, अशिक्षा, कुपोषण और उत्पीड़न की शिकार सबसे ज्यादा स्त्रियाँ हैं । यहाँ तक कि जो अपेक्षाकृत संपन्न परिवारों से हैं उनको भी अपने घर और परिवार में बराबरी का हक आसानी से नहीं मिल पाता । लेकिन टेलीविजन के चैनल इन मसलों को कभी महत्त्व नहीं देते । वे स्त्रियों से संबंधित रूढ़िवादी और अंधविश्वास ग्रस्त रीति-रिवाजों को तो विशेष महत्त्व के साथ प्रसारित करते हैं लेकिन उनकी स्वतंत्रता और समानता के अधिकारों को प्राय: हाशिए पर भी जगह नहीं मिल पाती । टेलीविजन आज एक प्रभावशाली माध्यम है । दृश्य माध्यम होने के कारण इसने सबसे अधिक लोकप्रियता हासिल करली है । लेकिन इस लोकप्रियता का इस्तेमाल स्त्रियों को पिछड़ा और पराधीन बनाये रखने के लिए किया जाना त्रासद है । टेलीविजन अब भी काफी हद तक यही करता दिखाई देता है ।

16.6 इंटरनेट और स्त्री-छवि

इंटरनेट एक नया माध्यम है जिसमें अंतर्वैयक्तिक सामूहिक और जनसंचार के सभी माध्यमों का समावेश है । इंटरनेट का अर्थ है अंतरराष्ट्रीय नेटवर्क । यह माध्यमों का ऐसा विश्वव्यापी संजाल है जिसके द्वारा आप दुनिया के किसी भी हिस्से के साथ संपर्क कर सकते हैं, संवाद कर सकते हैं और शब्द, ध्वनि और चित्रों का आदान-प्रदान कर सकते हैं । यही नहीं इन सब माध्यमों का निर्माण करने और उनमें आवश्यक संशोधन और संपादन करने, उनका भंडारण करने और उनकी प्रतिलिपि बनाने की क्षमता भी निहित है । इसके लिए कंप्यूटर का इस्तेमाल किया जाता है जिसमें लगे विभिन्न तरह के हार्डवेयर और सोफ़्टवेयर कार्यक्रमों द्वारा उपर्युक्त सभी कार्यो को संपन्न किया जाता है । इसके लिए आमतौर पर टेलीफोन (लेंडलाइन और मोबाइल) कनेक्शन का इस्तेमाल किया जाता है । इंटरनेट सूचनाओं, ज्ञान -विज्ञान, शिक्षा और मनोरंजन का खजाना है । इसने दुनिया को वास्तव में विश्वग्राम में बदल दिया है । निश्चय ही यह माध्यम अन्य माध्यमों की तुलना में ज्यादा लोकतांत्रिक है । इसकी पहुँच भी ज्यादा व्यापक हो सकती है यदि सभी लोग शिक्षित हों, इनके लिए इस्तेमाल होने वाले कंप्यूटर, टेलीफोन कनेक्शन, आवश्यक हार्डवेयर और सोफ़्टवेयर आसानी से और सस्ते दाम पर उपलब्ध हो क्योंकि सामान्य रूप से शिक्षित व्यक्ति के लिए भी इंटरनेट का इस्तेमाल करना मुश्किल नहीं है । अभी यह कार्य कम से कम भारत में संभव नहीं हो पाया है । इसके बावजूद इंटरनेट की उपलब्धता निरंतर बढ़ रही है और महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि इस प्रौद्योगिकी के निर्माण, रखरखाव और उपयोग से शिक्षित युवतियां काफी बड़ी संख्या में जुड़ी हैं और जुड़ रही हैं । युवतियों के लिए सूचना और संचार प्रौद्योगिकी रोजगार और आय का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र बन गया है । कंप्यूटर और इंटरनेट ने बहुत से कामों को घर बैठकर कर सकने की सुविधा भी उपलब्ध कराई है । खासतौर पर स्त्रियों के लिए यह वरदान साबित हो रहा है जो शिशुओं के पालन-पोषण के दौरान घर पर काम कर सकती हैं और अपने बच्चों की ठीक से देखभाल भी कर सकती हैं । इंटरनेट ने यह संभव बना दिया है कि वे घर को ही अस्थायी ऑफिस में बदल दे । हालांकि भारत जैसे देशों में यह सुविधा उपलब्ध कराने में कंपनियाँ अभी भी उतनी उत्सुक नजर नहीं आती । यदि यह सुविधा उपलब्ध कराती हैं तो उनकी कोशिश होती है कि वे

कर्मचारी को कम वेतन देकर ये काम कराये । मजबूरी में स्त्री-कर्मचारी इस तरह के भेदभाव को स्वीकारने को बाध्य हो जाती हैं । लेकिन यदि कानून द्वारा ऐसे मामलों में स्त्रियों के हितों की रक्षा की जाए तो स्त्रियों के लिए यह माध्यम वरदान साबित हो सकता है ।

इंटरनेट एक ऐसा माध्यम है जिसे कोई भी आसानी से उपलब्ध कर सकता है और उपयोग कर सकता है । लेकिन इसकी यह उपलब्धता और उपयोगिता ही इसके गलत इस्तेमाल की संभावना को पैदा करती है । इंटरनेट का उपयोग ज्ञान-विज्ञान और मनोरंजन के प्रचार-प्रसार के लिए व्यापक पैमाने पर किया जा रहा है । लेकिन इसके माध्यम से अज्ञान और अंधविश्वास भी फैलाया जा रहा है । जाति, धर्म, राष्ट्र, भाषा और नस्ल के आधार पर नफरत और घृणा भी फैलायी जा रही है । ऐसी बहुत सी वेबसाइटें हैं जिनमें स्त्रियों की अश्लील और विकृत छवि प्रस्तुत की जाती है । इन वेबसाइटों का मकसद लोगों की विकृत मनोभावनाओं को तुष्ट करना है । इंटरनेट पर अंकुश लगाना आसान नहीं है । यदि सरकारें इंटरनेट के व्यापक उपयोग और उपलब्धता पर अंकुश लगाती है, तो आमतौर पर इस तरह के नियंत्रण का सबसे ज्यादा शिकार वे लोग होते हैं जो सरकार की जनविरोधी नीतियों का विरोध करते हैं या जो इसके लिए लोगों को एकजुट होने का आह्वान करते हैं ।

इंटरनेट का उपयोग शिक्षा के लिए भी किया जाता है । इसे ऑन लाइन शिक्षा कहा जाता है । इसके लिए जिस तरह के संसाधनों की आवश्यकता है वह गरीब और दूर-दराज के लोगों को आसानी से उपलब्ध नहीं हो सकते । इसके लिए जरूरी सरकारी पहल की । यदि सरकार वंचित तबकों तक शिक्षा और ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए इंटरनेट और कंप्यूटर का उपयोग करे तो यह उन स्त्रियों के लिए बहुत उपयोगी साबित हो सकता है जो वंचित वर्ग की हैं और दूरदराज के इलाकों में रहती हैं । जो या तो कोई रोजगार नहीं करतीं या कोई काम करती भी हैं तो इसके लिए मिलने वाला पारिश्रमिक बहुत कम होता है । लेकिन इंटरनेट के द्वारा ऐसी स्त्रियों को आवश्यक कौशल, ज्ञान और प्रशिक्षण प्रदान किया जा सकता है और वे इनका उपयोग स्वयं अपनी और अपने परिवार की आर्थिक स्थिति सुधारने, बच्चों को बेहतर ढंग से शिक्षा देने, अपने और अपने परिवार को रूढ़ियों और अंधविश्वासों से मुक्त करने तथा अपने आप को शोषण और उत्पीड़न से बचाने के लिए कर सकती हैं । इस तरह इंटरनेट नारी सशक्तीकरण का एक सशक्त माध्यम बन सकता है ।

16.7 सारांश

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' पाठ्यक्रम के तीसरे खण्ड की इस इकाई मे आपने जनसंचार माध्यम और स्त्री विमर्श के बारे में अध्ययन किया है । इस इकाई में आपने सबसे पहले स्त्री समधी विभिन्न अवधारणाओं का परिचय प्राप्त किया है । किस तरह स्त्री की सामाजिक भूमिका में बदलाव आता गया है, इसका ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आपने परिचय प्राप्त किया है । साहित्य में स्त्री की छवि को प्रस्तुत करने की एक लंबी परंपरा रही है । इस परंपरा का संक्षिप्त लेखा जोखा प्रस्तुत करते हुए स्वयं स्त्री रचनाकारों द्वारा साहित्यिक लेखन की विशिष्टता को भी रेखांकित किया है ।

आधुनिक युग में जनसंचार के नये-नये माध्यमों का प्रादुर्भाव हुआ । मुद्रण प्रौद्योगिकी ने समाचारपत्रों और पत्रिकाओं के प्रकाशन को संभव बनाया । इसने न केवल समाचारों को तत्काल और व्यापक जनसमुदाय तक पहुँचाया बल्कि इसने स्त्री के लोकतांत्रिक अधिकारों के पक्ष में आवाज उठाने का भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया । भारत में नवजागरण दौर में समाज सुधार के आंदोलनों को पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही 'चलाया गया था । समाज सुधार के इन आंदोलनों का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष स्त्री के अधिकारों के लिए संघर्ष भी था । इसके परिणाम स्वरूप उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में और बीसवीं सदी में बहुत बड़ी संख्या में स्त्री रचनाकार और पत्रकार सामने आयीं । सिनेमा हालांकि मनोरंजन का माध्यम है लेकिन इसने भी स्त्री मुक्ति के पक्ष में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । फिल्मों में काम करते हुए स्त्रियों ने कई परंपरागत रूढ़ियों को तोड़ा है । साहित्य की तरह सिनेमा ने भी स्त्री मुक्ति। के प्रश्नों को फिल्मों के माध्यम से प्रस्तुत किया है । हिन्दी में ऐसी बहुत सी फिल्में बनी हैं । हालांकि सिनेमा ने स्त्री के दैहिक सौंदर्य का पुरुषों के मनबहलाव के लिए भी इस्तेमाल किया है । यही बात टेलीविजन पर भी लागू होती है जो स्त्री मुक्ति और स्त्री के जिस के रूप में इस्तेमाल दोनों कार्य साथ-साथ करता रहा है । इंटरनेट एक लोकतांत्रिक माध्यम है। इसने शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान और विभिन्न तरह के कौशलों को उपलब्ध कराने और रचने का महत्वपूर्ण काम किया है। यह एक ऐसा माध्यम है जिनमें अब तक उपलब्ध सभी संचार प्रौद्योगिकियों की विशेषताएं समाहित हैं । इस माध्यम का उपयोग स्त्रियों को शिक्षित करने, रोजगार प्रदान करने और सशक्तीकरण में किया जा रहा है तथा इसमें इसकी और अधिक संभावना भी निहित है । लेकिन अन्य माध्यमों की तरह यह माध्यम भी स्त्री विरोधी विकृत मनोवृत्तियों को प्रसारित करने का काम भी कर रहा है ।

16.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. स्त्री संबंधी विभिन्न अवधारणाओं का उल्लेख करते हुए जनसंचार पर उनके प्रभाव की समीक्षा कीजिए ।
2. हिन्दी सिनेमा में स्त्री-छवि की प्रस्तुति के लिए किन्हीं दो फिल्मों का उदाहरण लेते हुए विवेचना कीजिए ।
3. इंटरनेट स्त्री-मुक्ति और सबलीकरण में किस तरह उपयोगी हो सकता है, सोदाहरण उल्लेख कीजिए ।
4. टेलीविजन माध्यम स्त्री की जिन छवियों को प्रसारित करता है, उनके समाज पर पड़ने वाले प्रभाव का मूल्यांकन कीजिए ।
5. स्त्री-मुक्ति और सबलीकरण में साहित्य और पत्रकारिता के योगदान को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कीजिए ।

16.9 सन्दर्भ ग्रंथ

1. रॉबर्ट डब्ल्यू. मेक्चेस्नि, इलेन मिक्सिन्स वुड और जॉन बेलेमी फोस्टर; पूँजीवाद और सूचना का युग, 2006; ग्रंथशिल्पी, दिल्ली
2. प्रभा खेतान; उपनिवेश में स्त्री, 2003; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.; नयी दिल्ली

3. जसबीर जैन और सुधा राय; फिल्म एंड फेमिनिज्म: एसेज इन इंडियन सिनेमा: संपादन, 2002 रावत पब्लिकेशस, जयपुर एवं दिल्ली
4. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, 2000; ग्रंथशिल्पी, दिल्ली
5. जवरीमल्ल पारख; हिन्दी सिनेमा का समाजशास्त्र: 2006, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली

इकाई- 17 जनसंचार और शिक्षा

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 शिक्षा और जनसंचार के विभिन्न माध्यम
17.3 शिक्षा और शिक्षण प्रौद्योगिकी ।
17.3.1 शिक्षण के प्रारंभिक रूप
17.3.2 औपचारिक शिक्षण
17.3.3 अनौपचारिक शिक्षण
17.4 दूर शिक्षण
17.5 शिक्षा के प्रचार-प्रसार में जनसंचार माध्यमों का योगदान
17.6 सारांश
17.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
17.8 सन्दर्भ ग्रंथ

17.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम शिक्षा और जनसंचार के अन्त:संबंधों और शिक्षा के क्षेत्र में ' की भूमिका पर विचार करने जा रहे हैं जिसे पढ़कर आप:-

- बदलती शिक्षा और शिक्षण प्रविधि को समझ सकेंगे ।।
- विभिन्न प्रकार की शिक्षण पद्धतियों और प्रविधियों का खाका खींच सकेंगे ।
- जनसंचार माध्यमों और शिक्षण प्रौद्योगिकियों में आ रहे बदलाव की व्याख्या कर सकेंगे।
- शिक्षा के क्षेत्र में इसके प्रभाव का मूल्यांकन कर सकेंगे ।

17.1 प्रस्तावना

सूचना, शिक्षा, मनोरंजन और जनमत निर्माण जनसंचार के बुनियादी उद्देश्य माने जाते हैं । शिक्षा का क्षेत्र बहुत व्यापक है जिसमें प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्चस्तरीय शिक्षा तक और औपचारिक शिक्षा से लेकर अनौपचारिक शिक्षा तक शामिल हैं । इसमें सूचना और ज्ञान के साथ-साथ मनोरंजन और जनमत निर्माण का पक्ष भी शामिल हैं । निस्संदेह शिक्षा के प्रचार-प्रसार में जनसंचार माध्यमों की अहम भूमिका है ।

शिक्षण प्रविधियाँ और पद्धतियाँ परिवर्तित होती रही हैं । एक जमाना था जब कक्षा आधारित शिक्षण प्रविधि ही को प्रमुखता प्राप्त थी । इस प्रविधि में शिक्षक विद्यार्थियों के सम्मुख उपस्थित रहकर, अपना ज्ञान विद्यार्थियों को देता था । आज दूर शिक्षा का युग है जहाँ आधुनिक प्रौद्योगिकियाँ की मदद से 'विद्यार्थी घर बैठे शिक्षा प्राप्त कर सकता है । सूचना

प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आए अभूतपूर्व बदलाव से शिक्षण प्रविधि मे भी आमूलचूल परिवर्तन आया है और दूर शिक्षा के रूप में कक्षा आधारित रूबरू शिक्षण पद्धति से भिन्न नयी पद्धति का विकास भी हुआ है । मुद्रण, रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर जैसी प्रौद्योगिकियों के विकास और शिक्षण में इनके इस्तेमाल ने शिक्षा के क्षेत्र में क्रांति ला दी है । इस इकाई में इन्हीं पक्षों पर विस्तार से विचार किया गया है ।

17.2 शिक्षा और जनसंचार के विभिन्न माध्यम

शिक्षा का अर्थ है सिखना और सीखाना । यूँ कहें तो शिक्षा का आरंभ तो व्यक्ति के संसार में पदार्पण के साथ ही शुरू हो जाता है । बच्चा आपने आगमन की सूचना रोने की आवाज के साथ देता है और यही उसके सम्प्रेषण की पहली दस्तक होती है । सबसे पहले वह प्रकृति प्रदत्त गुणों के बल पर सीख ग्रहण करता है । बच्चे और माँ का पहला संवाद ही बच्चे की पहली शिक्षा होती है । ध्वनि शब्दों में बदलती है, शब्द वाक्य में और बच्चा भाषा सीखने लगता है । इसके अलावा आसपास का परिवेश, आचरण और व्यवहार यानी अपने आसपास के व्यवहार से भी बच्चा काफी कुछ सीखता है और फिर उसकी औपचारिक शिक्षा आरंभ होती है । वह स्कूल जाने लगता है, वहाँ पर उसे पढ़ने के लिए पुस्तक दी जाती है, खेलने के लिए खिलौने दिए जाते हैं और वहाँ शिक्षक या शिक्षिका होती है जो बच्चों को शिक्षा प्रदान करते हैं। स्कूल से बच्चा कॉलेज में जाता है और शिक्षक पर उसकी निर्भरता लगातार उसी प्रकार कम होती जाती है जिस प्रकार वह अपने माता-पिता से स्वतंत्र होता जाता है । इसके बावजूद शिक्षक ही अध्ययन-अध्यापन के केंद्र में रहता है । बहुत से बच्चे ऐसे भी हैं जो स्कूल और - कॉलेज का मुँह नहीं देख पाते । नई विकसित शैक्षणिक प्रौद्योगिकियाँ और प्रविधियाँ इस दृष्टि से वरदान सिद्ध हुई हैं । दूर शिक्षण पद्धति वंचितों के लिए शिक्षा का एक नया विकल्प लेकर आया है । नए जनसंचार माध्यमों जैसे रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर, ऑडियो-वीडियो उपग्रह जैसी प्रौद्योगिकियों के विकास ने शिक्षण के क्षेत्र में अपार संभावनाओं के द्वार खोल दिए हैं । शिक्षण प्रौद्योगिकी के कारण ही यह संभव हो पाया है कि अब विद्यार्थी शिक्षक और शिक्षण संस्थाओं की चारदीवारी से दूर रहकर भी शिक्षा प्राप्त कर सकता है ।

जैसा कि हमने ऊपर बताया है कि बच्चे की अनौपचारिक शिक्षा तो माँ के साथ उसके सम्पर्क से ही शुरू हो जाती है । परंतु एक निश्चित उस में उसकी औपचारिक शिक्षा शुरू होती है । प्राचीन काल में शिक्षा के द्वार सबके लिए नहीं खुले थे और ऋषि-मुनियों के शिक्षकत्व में आश्रमों में शिक्षा प्रदान की जाती थी । यह शिक्षा पद्धति मौखिक सम्प्रेषण पर आधारित थी और पूर्णत: अध्यापक केंद्रित थी । गुरू को गोविंद से बड़ा माना जाता था । शिक्षा के क्षेत्र में गुरू की केंद्रीयता और उसके महत्त्व को प्रकट करता था । महाभारत और अन्य पौराणिक ग्रंथों में आश्रम में दी जानेवाली शिक्षा के अनेक उदाहरण मिलते हैं और इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि आश्रम में औपचारिक और अनौपचारिक दोनों प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी ताकि विद्यार्थी मुक्कम्मल ज्ञान लेकर कार्यक्षेत्र में प्रवेश करे । कुशल शब्द का निर्माण इसी व्यावहारिक शिक्षा का ही प्रमाण है । पूजन कार्य के लिए जो विद्यार्थी कुश का अग्र भाग बिना

उंगली को घायल' किए ले आता था उसे कुशल कहते थे । कृष्ण और सुदामा को लकड़ियाँ बटोरने के लिए भेजना भी जीवन से शिक्षा को जोड़ने की एक प्रक्रिया थी ।

तात्पर्य यह कि शिक्षा के क्षेत्र में भाषा के बाद पुस्तक के रूप में लेखन आगे बढ़ी हुई प्रौद्योगिकी थी। जब तक लेखनकला, मुद्रण, कागज और स्याही का आरंभ नहीं हुआ था तब तक विद्या सीमित थी । इन पर अभिजात वर्ग का एकाधिकार था और वे मनमाने ढंग से अपने वर्गीय हितों के लिए धार्मिक सिद्धांतों, नैतिक आचरणों और सामाजिक मूल्यों की व्याख्या करते थे । इसी तरह कथावाचन सामाजिक शिक्षा का एक प्रमुख उपकरण था और इसके केंद्र में भी मुख्य रूप से धार्मिक शिक्षा ही होती थी ।

लेखनकला और बाद में मुद्रण कला के विकास से इस विद्या का विस्तार हुआ और लोगों के लिए धर्मग्रंथों और अन्य पुस्तकों को पढ़ना सुलभ हो सका । आधुनिक विकास ने शिक्षा की भूमिका और उपयोगिता में काफी बदलाव ला दिया है । अब धर्म केंद्रित शिक्षा की बजाय ऐसी शिक्षा पर बल दिया जाने लगा जिससे मनुष्य को न सिर्फ जीवन और जगत की वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त हो बल्कि वह ऐसे ज्ञान-विज्ञान को भी हासिल कर सके जिससे उसका जीवन बेहतर बन सकता है । मनुष्य के नैतिक उत्कर्ष और सौंदर्याभिरुचि को भी शिक्षा का हिस्सा बनाया गया । इस तरह शिक्षा स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के माध्यम से अधिकाधिक लोगों तक पहुँचने का माध्यम बनी । लेकिन अभी भी शिक्षा अध्यापक केंद्रित थी और मौखिक तथा लिखित सम्प्रेषण प्रमुख प्रौद्योगिकियां थीं ।

सूचना प्रौद्योगिकियों के विकास ने शिक्षण पद्धति में कई नये बदलाव ला दिए, हैं । अब शिक्षण की कक्षा पद्धति में भी नई प्रौद्योगिकियों का इस्तेमाल किया जाने लगा है । ऑडियो-वीडियो, रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर शिक्षण के कारगर माध्यम बनने लगे हैं । इन प्रौद्योगिकियों के आगमन से सबसे बड़ा परिवर्तन यह हुआ है कि शिक्षा शिक्षक केंद्रित न होकर विद्यार्थी केंद्रित हो गई है । शिक्षा के क्षेत्र में यह एक मौलिक और मूलभूत परिवर्तन है । इसने शिक्षा के पूरे परिदृश्य को बदल दिया है।

अगले भाग में हम विभिन्न प्रकार की शिक्षण पद्धतियों और प्रविधियों की चर्चा करेंगे जिससे यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि किस प्रकार शैक्षणिक प्रौद्योगिकी के विकास ने शिक्षण प्रविधि और पद्धति को बिलकुल बदल दिया है ।

17.3 शिक्षा और शिक्षण प्रौद्योगिकी

हम पहले भी जिक्र कर चुके हैं कि शिक्षा का संबंध सम्प्रेषण से है । इसमें शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच संवाद स्थापित होता है । इस संवाद में भाषा की प्रमुख भूमिका होती है । लिखित सम्प्रेषण मौखिक सम्प्रेषण की अपेक्षा अधिक टिकाऊ और स्थिर होता है । लेखन कला के उदय के पूर्व शिक्षा मौखिक सम्प्रेषण तक सीमित थी । लेखन और फिर मुद्रण का आविष्कार होने से विद्या का प्रचार-प्रसार बढ़ा और विद्या अर्जन में शिक्षक की प्रत्यक्ष उपस्थिति कम होने लगी । लेकिन निश्चित रूप से शिक्षा के केंद्र में शिक्षक का कोई विकल्प नहीं है । जैसे-जैसे विभिन्न तकनीकों का विकास होने लगा वैसे-वैसे शिक्षक और छात्र का रूबरू रहना

आवश्यक नहीं रह गया । इससे विद्यार्थी की अध्यापक पर निर्भरता कुछ हद तक कम हुई । हम इस भाग में इन्हीं पक्षों पर विचार करने जा रहे हैं।

17.3.1 शिक्षण के प्रारंभिक रूप

मनुष्य ने भाषा का आविष्कार किया और इसमें मनुष्य को अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक विकसित, समझदार और बुद्धिमान बनने में मदद की । भाषा का उपयोग कालांतर में कविता और कहानी रचने में किया गया । कहानी कहना शिक्षा देने का सशक्त माध्यम बना । पंचतंत्र शिक्षा में प्रयुक्त आरंभिक प्रविधियों का एक ज्वलंत उदाहरण है । इसमें कथा को शिक्षा का माध्यम बनाया गया है । कथावाचन में वाणी और स्वरों के आरोह और अवरोह का विशेष महत्त्व होता है । कहानी में कथावाचन और श्रोता के बीच सीधा संबंध स्थापित होता है । मौखिक सम्प्रेषण आदिकाल से आज तक शिक्षण का एक प्रमुख उपकरण माना गया है । यदि हम भाषा को एक प्रौद्योगिकी मानें तो यह शिक्षण की सफलतम प्रौद्योगिकी है । इसलिए शैक्षिक प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कई उपलब्धियों के बावजूद आज भी मौखिक संबोधन को शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ साधन माना गया है ।

17.3.2 औपचारिक शिक्षण

शिक्षक और छात्र के बीच शिक्षा का आदान-प्रदान औपचारिक शिक्षण कहलाता है । इसमें एक निर्धारित स्थान पर शिक्षक और छात्र मिलते हैं जिसे स्कूल-कॉलेज आदि कहा जाता है, और शिक्षक एक निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार विद्यार्थियों को पढ़ाता है और उसकी परीक्षा लेता है । औपचारिक शिक्षा में पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या और ग्रेड या अंक प्राय: पहले से निर्धारित होते हैं जिसके तहत विद्यार्थियों का विधिवत् मूल्यांकन किया जाता इसके आधार पर उपाधि या प्रमाण-पत्र प्रदान किए जाते हैं । प्रौद्योगिकी के विकास से औपचारिक शिक्षण पद्धति में भी परिवर्तन आया । परम्परागत रूप में कक्षा में केवल विद्यार्थी और शिक्षक ही हुआ करते थे पर अब धीरे-धीरे प्रोद्योगिकी का प्रवेश भी कक्षा में होने लगा है । अब शिक्षक कम्प्यूटर (लैपटॉप), ओवरहेड प्रोजेक्टर आदि की सहायता से विद्यार्थियों को दृश्य-श्रव्य सामग्री के माध्यम से भी पढ़ाते हैं । वैसे आज भी चॉक और डस्टर कक्षा में इस्तेमाल होने वाली प्रमुख प्रौद्योगिकी है । औपचारिक शिक्षा अभी भी शिक्षक केंद्रित है । बात कम शिक्षक अभी नई प्रौद्योगिकियों का इस्तेमाल अपनी कक्षा में कर रहे हैं । वैसे औपचारिक शिक्षा के लिय इन प्रविधियाँ का सार्थक इस्तेमाल किया जा सकता है । विशेषत: साहित्य, भाषा, कला आदि के अध्यापन में ।

औपचारिक शिक्षा को रुचिकर बनाने के लिए रेडियो, टेलीविजन और फिल्मों का इस्तेमाल किया जा सकता है । भाषा, संस्कृति, समाज विज्ञान, विज्ञान, इंजीनियरिंग, मेडिकल आदि विषयों को पड़ाने के लिए ऑडियो-वीडियो सामग्री बहुत ही कारगर सिद्ध हो सकती है । कई संस्थान इसका प्रयोग कर रहे हैं और इसका विद्यार्थियों पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है ।

17.3.3 अनौपचारिक शिक्षण

किसी पाठ्यक्रम और परीक्षा से अलग हटकर जब शिक्षा दी जाती है तो उसे हम अनौपचारिक शिक्षण पद्धति कहते हैं । खासतौर पर रोजगारमूलक निपुणता विकसित करने के लिए इस प्रकार की शिक्षण पद्धति का प्रयोग किया जाता है । इसमें शिक्षा को पाठ्यचर्या और परीक्षा के बने बनाए चौखटे से मुक्त रखा जाता है और सीधे काम का प्रशिक्षण दिया जाता है जैसे कपड़े सीना, घड़ा बनाना, जूता बनाना, मुर्गी पालन, अच्छी फसल पैदा करने के गुर आदि-आदि । इस प्रकार की शिक्षण पद्धति में भी नई प्रौद्योगिकियों का इस्तेमाल कारगर साबित हो सकता है । मसलन बहुत से ऐसी नयी तकनीकें विकसित की गई हैं जिनकी जानकारी और प्रशिक्षण उस विशेष क्षेत्र से जुड़े लोगों के लिए लाभप्रद हो सकता है । ऐसी नयी तकनीक का वर्णन करने से या उसके बारे में व्याख्यान देने से कोई फायदा नहीं हो सकता है । इसके लिए पूरी जानकारी के साथ-साथ उसका व्यावहारिक प्रयोग करके दिखाना आवश्यक है । इसके लिए अनौपचारिक शिक्षण पद्धति ही कारगर सिद्ध हो सकती है ।

17.4 दूर शिक्षण

दूर शिक्षण पद्धति एक ऐसी पद्धति है जिसमें शिक्षक और विद्यार्थी भौतिक और भौगोलिक दृष्टि से एक ही स्थान पर और एक ही समय एक साथ उपस्थित नहीं होते और उनमें इतनी दूरी होती है कि वे बिना किसी माध्यम के एक-दूसरे को देख सकते हैं और न ही सुन सकते हैं । अध्यापक और विद्यार्थी के बीच की इस दूरी के कारण ही इसे दूर शिक्षा कहा गया है और अध्यापन की प्रविधि को दूर शिक्षण प्रविधि कहा गया है ।

दूर शिक्षा पद्धति में विभिन्न प्रौद्योगिकियाँ की सहायता से विद्यार्थियों को पढ़ाया जाता है और उन तक शिक्षा पहुँचाई जाती है । विद्यार्थियों को बहुसंचार पाठ्यसामग्री उपलब्ध कराई जाती है जिसमें मुद्रित ऑडियो-वीडियो पाठ महत्त्वपूर्ण होते हैं । इसमें आमतौर पर मुद्रित पाठ केंद्र में होता है और विद्यार्थियों की मदद के लिए विभिन्न विषयों से संबंधित दृश्य-श्रव्य पाठ सामग्रियाँ भी प्रदान की जाती हैं । कक्षा में रू ब रू अध्यापन की अपेक्षा दूर शिक्षण पद्धति में प्रौद्योगिकी की ज्यादा जरूरत पड़ती है या कहें कि बिना प्रौद्योगिकी की मदद के दूर शिक्षण पद्धति की कल्पना ही नहीं की जा सकती तो यह अतिश्योक्ति नहीं होगी । विद्यार्थियों के लिए पाठ्य पुस्तकें तैयार करने के लिए मुद्रण तकनीक की जरूरत है । छपी हुई सामग्री को विद्यार्थियों तक भेजने के लिए एक सुव्यवस्थित डाक व्यवस्था की जरूरत होती है । दृश्य-श्रव्य कार्यक्रमों के निर्माण के लिए ऑडियो-वीडियो कैसेट, सी.डी और इससे जुड़े तमाम तकनीकी उपकरणों की जरूरत पड़ती है ।

जनसंचार माध्यमों के तीव्र विकास और सूचना क्रांति के फलस्वरूप दूर शिक्षण पद्धति मजबूत हुई है और इसमें कई आयाम जुड़े है । सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के कारण अब कई ऐसे क्षेत्रों का अध्यापन भी इस माध्यम से संभव हो रहा है जो पहले संभव न था । जैसे अब इंजीनियरिंग, मेडिकल और विज्ञान की उन शाखाओं में जहाँ प्रयोगशालाओं और अभ्यासों की जरूरत होती है, भी विद्यार्थियों तक दूर शिक्षा के माध्यम से पहुँच रहे हैं । दूर शिक्षा विभिन्न जनसंचार माध्यमों की मदद से वहाँ भी पहुँच रही है जहाँ रू ब रू शिक्षण पद्धति नहीं

पहुँच सकती । दूर शिक्षा को सीमाहीन और अनन्त बनाने में और इसके जरिए शिक्षा को जन-जन तक पहुँचाने में रेडियो, टेलीविजन जैसे इलेक्ट्रोनिक माध्यमों और अब कम्प्यूटर, इंटरनेट, उपग्रह संचार प्रणाली का विशेष योगदान है । इस प्रकार प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुए परिवर्तन ने शिक्षा के क्षेत्र में एक ऐसी पद्धति को जन्म दिया है जिसमें विद्यार्थी अपनी सुविधा और समय के अनुसार विद्या अर्जन कर सकता है । प्रौद्योगिकी ने शिक्षा की धुरी ही बदल दी है और अब यह अध्यापक केंद्रित न रहकर विद्यार्थी केंद्रित हो गई है ।

17.5 शिक्षा के प्रचार-प्रसार में जनसंचार माध्यमों का योगदान

भारत जस विकासशील देश में जहाँ 50 प्रतिशत से भी ज्यादा लोगों के पास शिक्षा नहीं पहुँच पाई, जहाँ बिजली और सड़क जैसी बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं वहाँ जनसंचार माध्यम शिक्षा के क्षेत्र में आमूलचूल परिवर्तन कर सकते हैं । जैसा कि पहले बताया जा चुका है सम्प्रेषण की विधियों में सुधार और परिष्कार के साथ-साथ सूचना, जानकारी और विद्या का लोकतांत्रीकरण भी हुआ । शिक्षा केवल वही नहीं है जो स्कूलों और कॉलेजों की दीवारों के भीतर दी जाती है । शिक्षा का मतलब है सीखना, ज्ञान ' में वृद्धि करना । ताकि सोचने-समझने की शक्ति बढ़े और मनुष्य में विवेक का विस्तार हो सके । जब मुद्रण ।का आविष्कार हुआ और इसके बाद समाचारपत्र, पत्रिकाएँ और पुस्तकें छपने लगीं तो एक ही सूचना एक साथ अलग-अलग स्थानों में बैठकर लोग साझा करने लगे । लोगों में भौगोलिक दूरी बनी रही लेकिन जहाँ-जहाँ समाचारपत्र पहुँचा वही-वही ज्ञान की नयी रोशनी भी पहुँची । तार और टेलीफोन की सुविधाओं ने समाचारों और संदेशों की गति तेज की । अब सूचनाओं और शान पर किसी एक विशेषाधिकार वर्ग का वर्चस्व या एकाधिकार नहीं रहा । इससे जानकारी प्राप्त करनेवालों का दायरा बढ़ा और ऐसे समाज का निर्माण हुआ जहाँ लोग खास ढंग से सोचने लगे । इस तरह ज्ञान का समूहीकरण भी हुआ और यहीं से सूचना और शिक्षा प्रदान करने के साथ-साथ जनसंचार लोगों के बीच एक विचार और मत का भी संचालन करने लगी ।

आपको पहले यह बताया जा चुका है कि शिक्षा का आरंभ मौखिक सम्प्रेषण से शुरू हुआ और आज भी कक्षाओं में विद्यार्थियों को पढ़ाने का यही प्रमुख माध्यम है । लेकिन शिक्षा का यह तरीका एक सीमित क्षेत्र में ही संपादित किया जा सकता है । जनसंचार माध्यमों और सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने शिक्षा को कमरे से बाहर निकाला और लोगों तक बात पहुँची । रेडियो इसका सबसे उत्तम उदाहरण है । रेडियो एक श्रव्य माध्यम है, ध्वनि का माध्यम है और इसके माध्यम से प्रचारित वाणी केवल एक दायरे तक सीमित नहीं रहती बल्कि जिसके पास रेडियो सेट होता है वह स्टूडियो में बोली हुई ध्वनि को सुन सकता है । रेडियो के आगमन ने शिक्षक को शिक्षार्थी के पास तो पहुँचाया ही ऐसे विद्यार्थियों के पास भी पहुँचाया जो अपनी दृष्टिहीनता के कारण सामान्य तौर पर पढ़ लिख नहीं सकते । रेडियो ऐसे विद्यार्थियों के शिक्षा में भी कारगर और मददगार साबित होता है । रेडियो के माध्यम से कई पाठ्यक्रम आधारित कार्यक्रम भी चलाए जाते रहे हैं । रेडियो के माध्यम से औपचारिक और अनौपचारिक दोनों ही प्रकार की शिक्षा विद्यार्थियों तक पहुँचाई जा सकती है और पहुँचाई भी गई है । इसी उद्देश्य से इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय ने ज्ञानवाणी नाम से रेडियो स्टेशन की स्थापना की

है जिसके जरिए न केवल विद्यार्थियों को औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा दी जाती है बल्कि इंटरेक्टिव काउंसलिंग भी की जाती है । इसमें शिक्षक या विशेषज्ञ स्टूडियो में बैठा होता है और घर बैठा विद्यार्थी अपने सवालों का जवाब टेलीफोन से पूछ सकता है और रेडियो से उसका जवाब सुन सकता है । शिक्षा के क्षेत्र में इस प्रकार का प्रौद्योगिकी विकास एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है । शिक्षा के प्रचार-प्रसार में रेडियो की अपार संभावनाएँ हैं और अभी इन संभावनाओं की तलाश जारी है ।

टेलीविजन ने जनसंचार को एक नया रुख प्रदान किया । टेलीविजन के साथ सुविधा यह है कि इसके द्वारा हम वे दृश्य विद्यार्थियों को दिखा सकते हैं जो विषय को समझने में सहायक होते हैं। इसके लिए विद्यार्थियों की जरूरतों को ध्यान में रखकर वीडियो पाठ बनाने पड़ते हैं और इनके जरिए विद्यार्थियों तक ये कार्यक्रम पहुँचाए जाते हैं । इस प्रविधि के इस्तेमाल से अब शिक्षा का कोई भी ऐसा क्षेत्र या अंग नहीं है जो दूर शिक्षा के हद से बाहर हो । मानविकी से लेकर मेडिकल तक की पढ़ाई इस प्रौद्योगिकी विकास के कारण दूर शिक्षा से संभव है । लेकिन रेडियो के मुकाबले टेलीविजन की यह एक सीमा है कि इसका वहीं उपयोग ही सकता है जहाँ बिजली उपलब्ध हो । इसलिए भारत जैसे देश के लिए जहाँ अभी भी गांवों और छोटे शहरों में बिजली की किल्लत है या बिजली नहीं है वहाँ टेलीविजन कारगर नहीं हो सकता।

कम्प्यूटर के आगमन ने भी शिक्षा का क्षेत्र बहुत ही व्यापक बना दिया है । कम्प्यूटर से खासतौर पर इंटरनेट के विकास ने दुनिया बहुत छोटी कर दी है और आप इसके माध्यम से शिक्षा के किसी भी क्षेत्र से जुड़ा ज्ञान हासिल कर सकते हैं । अब तो कम्प्यूटर को कक्षाओं और अध्यापकों के विकल्प के रूप में भी प्रस्तुत किया जा रहा है और इसे वर्चुअल क्लास रूम का नाम दिया जा रहा है । यानी यह समझा जा रहा है कि शिक्षा के लिए शिक्षक की उपस्थिती अनिवार्य नहीं है ।

परम्परागत तरीके से यानी कक्षा में शिक्षक और विद्यार्थी के बीच होनेवाला संवाद शिक्षक और विद्यार्थी दोनों को सर्जनात्मक ऊर्जा से संचालित रखता है । प्रौद्योगिकी के विकास से शिक्षक और विद्यार्थी की दूरी तो बढ़ी है और संवाद में कमी आई है परंतु जिस प्रकार डिजिटल क्रांति के बाद माध्यम कम्प्यूटर में सिमटते जा रहे हैं उससे ऐसा लगता है कि यह कम्प्यूटर शिक्षक और विद्यार्थी की दूरी को भी बांट सकेगा । यह चुनौती है इस संवाद को सकारात्मक और सर्जनात्मक रखने की । शिक्षा मात्र समकालीनता की व्याख्या नहीं है । मात्र सूचना प्रदान कर देना भी शिक्षा नहीं है । शिक्षा हमें परम्परा से जोड़ती है और यह सांस्कृतिक मूल्यों की संरक्षक भी है । शिक्षा मनुष्य से मनुष्य को जोड़ती है । इसलिए जनसंचार माध्यमों से शिक्षा देने के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि परम्परा का अनादर न हो और शिक्षा हमारी सांस्कृतिक विरासत से लोगों को जोड सके ।

प्रौद्योगिकी के विकास और जनसंचार माध्यमों के शिक्षा के प्रचार-प्रसार में योगदान को लेकर विद्वानों के बीच चिंता है कि शिक्षा कॉरपोरेट जगत की बंदिनी न बन जाए और व्यक्ति एक ऐसा रोबोट या मशीन बन जाए जो केवल कम्पनी के मुनाफे के बारे में सोचे । प्रौद्योगिकी ने जहाँ शिक्षा को जन-जन तक फैलाया है वही यह भी सवाल उठाया जा रहा है कि क्या इस पूरी प्रक्रिया में शिक्षा का गला नहीं घोंटा जा रहा है? प्रौद्योगिकी का विकास जनहित के लिए

होना चाहिए क्योंकि प्रौद्योगिकी उपलब्धता इस बात की गारंटी नहीं होती कि शिक्षा घर-घर तक पहुँच ही जाएगी । जनसंचार माध्यम हमेशा अपने मालिक यानी कॉरपोरेट जगत का मुँह जोहता है और शिक्षा भी उनके लिए मुनाफा का एक साधन मात्र रह जाता है । शिक्षा के क्षेत्र में जब प्रौद्योगिकी के प्रयोग की बात की जाती है तो इस पहलू को भी ध्यान में रखना चाहिए ।

17.6 सारांश

इसमें कोई संदेह नहीं कि जनसंचार माध्यमों, सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने शिक्षा की पहुँच को व्यापक बनाया है । मुद्रण तकनीक, रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर जैसी प्रौद्योगिकियों के विकास से शिक्षा का स्वरूप भी बदला है और इसके तकनीक में भी परिवर्तन आया है । अब जनसंचार माध्यमों के जरिए दूर बैठे शिक्षक और विद्यार्थी संवाद स्थापित कर सकते हैं, सवाल-जवाब कर सकते हैं यानी पूरी दुनिया अब एक क्लास रूम में परिवर्तित हो गई है । जनसंचार माध्यमों के द्वारा जो परस्पर संवाद विकसित हो रहा है उसमें शिक्षकों की भौतिक उपस्थिति की जरूरत भी अब नहीं रह गई है । अब आभासी शिक्षा का दौर आ गया है जिसमें विद्यार्थी के पास एक कम्प्यूटर होना चाहिए और इंटरनेट की सुविधा होनी चाहिए ताकि वह 'ऑनलाइन' पढ़ाई कर सके, परीक्षा दे सके और डिग्री हासिल कर सके । इसके लिए उसे न किसी विश्वविद्यालय में जाना होगा, न शिक्षक से मुलाकात करनी होगी, न परीक्षा केंद्रों का रूख करना होगा और न डिग्री लेने के लिए किसी दीक्षांत समारोह में जाना होगा । नामांकन से लेकर डिग्री पाने तक की सारी प्रक्रिया कम्प्यूटर और इंटरनेट के माध्यम से ही संचालित होगी। भुगतान क्रेडिट कार्ड के माध्यम से हो जाएगा ।

रेडियो और टेलीविजन भी शिक्षा के कारगर माध्यम हो सकते हैं । जैसा कि हमने बताया कि टेलीविजन के माध्यम से प्रयोग भी किया जा सकते हैं और प्रयोग दिखाए भी जा सकते हैं लेकिन इसकी भी कुछ सीमाएं हैं । विद्यार्थी टेलीविजन पर प्रयोगों को देख तो सकता है, कर नहीं सकता । इसके लिए उसे प्रयोगशाला में जाना होगा । इसी प्रकार तीव्रता और पहुँच की अपनी सारी विशेषताओं के बावजूद रेडियो पूरी तरह शिक्षक का विकल्प नहीं बन सकता हालांकि इसके इंटरेक्टिव कार्यक्रम बहुत ही उपयोगी साबित हो सकते हैं । शिक्षा के प्रचार-प्रसार में जनसंचार माध्यमों और सूचना प्रौद्योगिकी का हावी होना शिक्षा के लिए घातक भी सिद्ध हो सकता है । जनसंचार माध्यमों का निजी स्वामित्व शिक्षा के क्षेत्र में उन विषयों को और वे ही प्रोत्साहित करता है, जिससे उनके व्यावसायिक हित पूरे होते हों । वे इसका उपयोग समाज पर अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए करते हैं तथा मुनाफा कमाना उनका मुख्य उद्देश्य है । इसलिए इन माध्यमों का शिक्षा के लिए प्रयोग करते समय विशेष तौर पर सजग रहने की जरूरत है ।

17.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. शिक्षा के प्रचार-प्रसार में जनसंचार की भूमिका पर एक निबंध लिखिए ।
2. जनसंचार की प्रौद्योगिकी ने शिक्षा पद्धति पर किस तरह का प्रभाव डाला है? उच्च शिक्षा के संदर्भ में उल्लेख कीजिए ।
3. दूर शिक्षा पद्धति और शिक्षण प्रौद्योगिकी के पारस्परिक संबंधों पर प्रकाश ।

4. अनौपचारिक शिक्षा के प्रसार में जनसंचार माध्यम किरन तरह योगदान करते हैं? सोदाहरण बताइए ।
5. जनसंचार की प्रौद्योगिकी ने शिक्षा के व्यवसायीकरण को संभव बनाया है? आप इस मत से सहमत हैं? अपनी राय दीजिए ।

17.8 सन्दर्भ ग्रंथ

1. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, ग्रंथशिल्पी, नई
2. भूमंडलीय जनमाध्यम : निगम पूंजीवाद के नए प्रचारक, एडवर्ड एस हरमन, लेखक :रॉबर्ट डब्ल्यू मैकचेस्नी, अनुवादक चंद्रभूषण, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
3. रॉबिन जेफ्री, अनुवादक प्रो. सत्यकाम; भारत की समाचारपत्र क्रांति, भारतीय जन संचार संस्थान नई दिल्ली'
4. डॉ. कृष्ण कुमार रत्तू विश्व मीडिया बाजार, लेखक. नेशनल पब्लिशिंग, नई दिल्ली
5. सुभाष धूलिया, संचार क्रांति की राजनीति और विचारधारा, ग्रंथ शिल्पी, नई
6. संपादक मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, अनुवादक ओमप्रकाश मालवीय; संचार माध्यम और पूँजीवादी समाज, ग्रंथशिल्पी, नई दिल्ली
7. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यम और सांस्कृतिक विमर्श: 2009, 56ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली- 110092.

इकाई- 18 पत्रकारिता का अर्थ और स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 पत्रकारिता का अर्थ और स्वरूप
18.3 पत्रकारिता : विचाराभिव्यक्ति की स्वतंत्रता
18.4 पत्रकारिता में लेखन
18.5 पत्रकार. एक समर्पित लेखकीय व्यक्तित्व
18.6 परिवर्तनशील पत्रकारिता
18.7 सारांश
18.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
18.9 सन्दर्भ ग्रंथ

18.0 उद्देश्य

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' पाठ्यक्रम के चौथे खंड 'पत्रकारिता का अर्थ और स्वरूप' की यह पहली इकाई और पाठ्यक्रम की 18वीं इकाई है । इस इकाई में पत्रकारिता के अर्थ और स्वरूप के बारे में विचार किया गया है । पत्रकारिता का फलक बहुत व्यापक है । पत्रकारिता लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ माना जाता है । इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

- पत्रकारिता का अर्थ व उसका स्वरूप समझ सकेंगे ।
- पत्रकारिता की वर्तमान स्थिति से अवगत हो सकेंगे ।
- प्रेस की स्वतंत्रता और पत्रकारिता के विविध रूपों को समझ सकेंगे ।
- पत्रकारिता के विविध आयामों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

18.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम में अब तक जनसंचार माध्यम के विभिन्न पक्षों का अध्ययन कर चुके हैं । इस खंड में आपको जनसंचार के महत्त्वपूर्ण अंग पत्रकारिता के बारे में बताया जाएगा । पत्रकारिता का उद्देश्य समाचारों का संकलन और संपादन, ,कर उन्हें पाठकों तक पहुँचाना है । पाठक या आम जनता को सूचना देना, शिक्षित करना और उन्हें मनोरंजन प्रदान , करना है । इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि पत्रकारिता लोक शिक्षण और लोक जागरण की ऐसी महत्त्वपूर्ण शक्ति है जो सामाजिक विकृतियों को दूर करके समस्त लोक में रचनात्मक मूल्य प्रतिष्ठित कराने में सर्वाधिक उपयोगी है ।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनसंचार माध्यम के रूप में लोकमत या जनमत निर्माण के क्षेत्र में पत्रकारिता का स्थान अपनी महत्ता रखता है । वास्तव में पत्रकारिता राष्ट्र, समाज और पाठकों के मध्य एक रचनात्मक संवाद स्थापित करती है तथा अपने विविध रूपों से माद जीवन को स्पर्श ही नहीं करती, प्रभावित भी करती है । यही नहीं, पत्रकारिता विश्व नागरिकता एवं बंधुत्व का पाठ भी पढ़ाती है तथा मानव मात्र की रूचियों को परिष्कृत करती है और विचारों को भी परिपक्व बनाती है

18.2 पत्रकारिता: अर्थ और स्वरूप

कार्ल जी. मूलर के अनुसार पत्रकारिता का अर्थ है - 'तात्कालिक घटनाओं के सूक्ष्म विश्लेषण पर आधारित ज्ञान और कार्य । जिसमें आवश्यक तथ्यों को प्राप्त करके उसकी महत्ता के अनुसार ही उसे तैयार करने या प्रदत्त स्थिति के अनुसार तात्कालिक घटनाओं को विवेकशील ढंग से जनजीवन के सम्मुख रखा जाता है । ' अमेरिकन एनसाइक्लोपीडिया में पत्रकारिता का अर्थ किया गया है - 'पत्रकारिता दैनिक जीवन की घटनाओं और उनके आधार पर प्रकाशित पत्रों की संवाहिका होती है । इसमें घटनाओं, तथ्यों, व्यवस्थापरकता के साथ राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक और कलात्मक सन्दर्भ की प्रस्तुति होती है । पत्रकारिता पत्र-पत्रिकाओं के लिए सूचनाएँ एकत्र करना उन्हें पाठकों की दृष्टि से संपादित करना, पाठकों के लिए और उपयोगी अन्य रोचक, मनोरंजक, शिक्षाप्रद और ज्ञानवान सामग्री उपलब्ध कराना है । इस कार्य की संपन्न करने के लिए आवश्यक योग्यता हासिल करना पत्रकार का दायित्व है । एक अन्य परिभाषा के अनुसार। 'पत्रकारिता चतुर्दिशाओं की सूचनाएँ एकत्र करके जनता या पाठकों के सामने रखने का माध्यम है ।

पत्रकारिता समाज का दर्पण

पत्रकारिता सामाजिक गतिविधियों का दर्पण है क्योंकि मानव समाज का अंग है और समाज से अलग रह नहीं सकता है । अत: उस समाज के विषय में तथा समाज की प्रत्येक गतिविधि के । विषय में मनुष्य की चिर जिज्ञासा उसे निरंतर जानने और अधिकाधिक जानने की रहती है कि कब, कहां, क्या, कैसे और क्यों हो रहा है? इस जिज्ञासा की पूर्ति का एक महत्वपूर्ण साधन पत्रकारिता है। अत: यह कहना अधिक सार्थक प्रतीत होता है कि पत्रकारिता एक ऐसा दर्पण है, जिसके माध्यम से मानव अपने आस-पास के समाज में हो रही प्रत्येक गतिविधि यानी सामाजिक जीवन के सत्य-तथ्य, दृष्ट-अदृष्ट, अशुभ के साथ दृष्ट और, शुभ को भी यथारूप में देखा जाता है ।

यह कहना अन्यथा नहीं होगा कि समाचारपत्र माध्यम जनसंचार के अन्य से अधिक स्थायी और सहज सुलभ है जो समाज में फैली कुरीतियों, अंधविश्वासों, रुढ़ियों, विविध लोमहर्षक घटनाओं, समाज को श्रेयस दिलाने वाले कार्यो के अतिरिक्त देश, राजनीतिक, साहित्य, संस्कृति, उद्योग एवं अर्थतन्त्र विषयक विविध पक्षों का यथार्थ और विश्लेषित स्वरूप समाज के सामने रखता है तथा समय-समय पर सामाजिक मूल्यों और परिवर्तित मूल्यों के

संरक्षण को भी महत्त्व देता है । अत: यह कहा जा सकता है कि पत्रकारिता' सामाजिक और मानवीय मूल्यों की नियामिका, संरक्षिका और पोषिका भी है ।

विदेशी विद्वान जैफर्सन ने पत्रकारिता की महत्ता का संकेत करते हुए कहा कि "यदि उनको एक समाचार विहीन शासन व्यवस्था और शासनविहीन समाचार वाले समाज में से चुनने को जाए तो वे निस्संदेह शासनविहीन समाचारपत्र वाली व्यवस्था को अंगीकार करेंगे ।" इसी प्रकार वर्क ने उसे 'चौथी सत्ता' जिसकी शक्ति लोकमत पर आश्रित है - स्वीकार किया था तो आस्कर वाइल्ड ने उसे राज्य का "चौथा स्तम्भ' कहा था ।

18.3 पत्रकारिता: विचाराभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

पत्रकारिता को सत्ता का चौथा अंग या स्तम्भ कहा है । उसका स्पष्ट आशय है कि किसी भी राज्य की सुचारू व्यवस्था के लिये चार प्रमुखताएँ स्वीकार की जाती है :-

पत्रकारिता या समाचारपत्र ऐसा चतुर्थ स्तम्भ है जो राष्ट्र-राज्य का सजग प्रहरी है । यह प्रहरी भर ही नहीं, अपितु जनमत निर्धारण की विशेष भूमिका का निर्वाह भी करता है । वह जनमत निर्धारक और जनमत को जागरूक बनाने का साधन भी है । इस संबंध में आप इकाई 12 में अध्ययन कर चुके हैं । भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की सफलता तथा उसके लिए सुदृढ़ जनमत निर्धारण में पत्रकारिता की भूमिका निर्णायक सिद्ध हुई है । आज भी लोकतंत्र को सही दिशा देने वाले कारक के रूप में समाचारपत्र या पत्रकारिता की भूमिका अस्वीकार नहीं की जा सकती । यही कारण है कि स्वस्थ जनमत निर्धारण और सत्ता के विरुद्ध जन आंदोलन की परिपक्व और सघन योजना के संचालन में पत्रकारिता आज भी पीछे नहीं है ।

विचाराभिव्यक्ति की स्वतंत्रता यानी पत्रकारिता

भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में विचारों की अभिव्यक्ति की जिस स्वतंत्रता का उपयोग संवैधानिक अधिकार के रूप में पत्रकारिता करती है, वैसी स्वतंत्रता अन्य राष्ट्रों के दूसरे तंत्रों में नहीं है । यद्यपि विदेशों में पत्रकारिता की स्वतंत्रता अन्य रूपों में उपलब्ध है । जहाँ पत्रकारिता को 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' संवैधानिक देन है, वहीं उसका दायित्व और अधिक व्यापक हो जाता है क्योंकि पत्रकारिता जनता और सत्ता के बीच अपनी विश्वसनीयता की स्थापना इसी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से ग्रहण करती है । इसीलिए पत्रकारिता के इस दायित्व के प्रति उदासीनता को वृत्ति देखकर ही जवाहरलाल नेहरू ने कहा था - 'समाचारपत्र यदि गैर-जिम्मेदार बन जाएँ, समाज की मान्यताओं और स्थापनाओं को तोड़ने या सरकार को लोकतंत्र विरोधी तरीकों से उलटने वाले तत्व गैर-जिम्मेदारी से काम करते है तो समाज और राष्ट्र के व्यापक हितों और लोकतंत्रीय संविधान की रक्षा के लिए शपथ बद्ध जन प्रतिनिधि सरकार का दायित्व हो जाता है कि उन्हें संयत करे । '

इसमें संदेह नहीं है कि भारतीय संविधान ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दी है तो साथ ही नेहरू के शब्दों में पत्रकारिता की उस स्वतंत्रता का एक मूलभूत सिद्धांत भी प्रतिपादित किया गया है कि समाचारपत्रों की स्वतंत्रता के साथ लोकतंत्रीय दायित्व भी उन पर है कि सरकार चाहे वह किसी भी पक्ष की क्यों न हो, बातें जनता के समझ सही रूप में रखे और जनता को समझाने एवं जगाने का प्रयास करे । इसका एक स्पष्ट भाव यह है कि पत्रकारिता लोकतंत्रीय व्यवस्था पर एक अलिखित आचार संहिता अपनाये जाने की व्यवस्था के प्रति सतर्कता बनाये रखती है । यह अनेक उदाहरणों से विदित हो जाता है कि भारतीय लोकतंत्र और संविधान की व्यवस्थाओं ने न्यायपालिका, व्यवस्थापिका और कार्यपालिका को दिये गये दायित्वों के साथ इन सभी के दायित्वों पर सतर्क दृष्टि और दिशा-निर्देश के लिए एक महान दायित्व का यह चौथा स्तम्भ पत्रकारिता ने स्वीकार किया है ।

पत्रकारिता की भूमिका

पत्रकारिता की भूमिका स्पष्ट करते हुए महात्मा गाँधी ने कभी कहा था कि - 'समाचारपत्र का पहला उद्देश्य जनता की इच्छाओं, विचारों को समझना और उन्हें व्यक्त करना है, दूसरा उद्देश्य जनता में वांछनीय भावनाओं को जागृत करना है । तीसरा उद्देश्य सार्वजनिक दोषों को निर्भयतापूर्वक प्रकट करना है ।' आज यह कहा जा सकता है कि भारत में पत्रकारिता ने अधिकांश क्षेत्रों में सभ्यता, संस्कृति, शक्ति के प्रतीक के साथ जन आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व भी किया है । इसी दृष्टि से पत्रकारिता ने अपनी भूमिका दो रूपों में निर्वाह की है-

1. नवीन मूल्य संस्थापना
2. समस्या का समाधान

1. **नवीन मूल्य संस्थापना :** लोकतंत्र प्रणाली में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जहाँ सभी को संवैधानिक स्तर पर मिली है, वहीं पत्रकारिता या समाचारपत्रों को भी यह स्वतंत्रता मिली हुई है जिसके अंतर्गत समाचारपत्र तटस्थ और निरपेक्ष, रूप में शासन की आलोचना करते हैं, तो प्रजातांत्रिक शक्तियों को सशक्त करते हैं । समाचारपत्रों की स्वतंत्रता बनाये रखने का दायित्व एक स्तर पर जनता का है और यदि जनता जागरूक है, तो जनता समाचार को निष्पक्ष स्तर पर अपने पाठकों के समक्ष सारी सच्चाई रखते हैं । इस तरह राष्ट्र निर्माण और प्रगति में भी समाचारपत्रों ने अपने दायित्व का पूरी तरह निर्वाह किया है । रूढ़ परम्पराओं के उन्मूलन, जाति एवं लिंग संबंधी भेदभाव को मिटाने तथा नवीन मूल्यों की स्थापना करने में भी समाचारपत्रों का पर्याप्त महत्त्व है समाचारपत्र यदि स्वतंत्रता का सही उपयोग करते हैं, तो उसके समाचार भी निष्पक्ष होंगे तथा पाठकों की उत्तम धारणाओं को पुष्ट करेंगे । लेकिन आजकल ऐसा बहुत कम हो रहा है, क्योंकि असत्य, अपुष्ट और तोड़-मरोड़कर छापे गये समाचारों के कारण सामाजिक तनाव, हिंसा। उपद्रव एवं आपत्तिजनक गतिविधियों को प्रोत्साहन मिल रहा है । इसलिए आज आवश्यक यह है कि समाचारपत्र अपनी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करते हुए पत्रकारिता के नवीन मूल्यों की' संस्थापना के प्रति सक्रिय बनकर,

संयम, संतुलन, दूरदृष्टि और निष्पक्षता से सामाजिक चेतना और उन्नत जीवन पद्धति के निर्माण की प्रेरणा जनता को दे ।

2. **समस्या का समाधान :** लोकतंत्र में समाचारपत्रों की भूमिका आम आदमी को उसके कर्तव्य-बोध से परिचित कराते हुए शासक वर्ग को जहाँ सतर्क व्यवहार के लिए सचेत करना है, वहीं अपनी समाचार-दृष्टि और संपादकीय आदि के माध्यम से राष्ट्र-जीवन में उत्पन्न; छोटी-बड़ी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने में भी अपनी भूमिका विस्मृत नहीं करते हैं । समाचारपत्र लोकतंत्र को पुष्ट करने और स्वस्थ जनमत निर्माण की दिशा में अपनी भूमिका निर्वाह करते हुए समस्याओं का समाधान सशक्त एवं प्रभावशील रूप में करते हैं । तभी जॉन मिल्टन ने कहा था- 'मुझे सच्चाई जानने की स्वतंत्रता दो.... फिर कोई भी किसी प्रकार से परतंत्र नहीं कर सकता है ।'

समाचारपत्र अपने संपादकीय, लेखन और समाचारों के विश्लेषण से राष्ट्र मे उत्पन्न विविध समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त करते हैं तथा इस संबंध में जनमत भी करते हैं। इस प्रकार समाचारपत्र अपनी तटस्थ ओर निष्पक्षता के आधार पर स्वस्थ राष्ट्र-हित जागरूक जनमत निर्माण करने में सफल होते हैं ।

18.4 पत्रकारिता में लेखन

पत्रकारिता सिद्धांत से अधिक व्यवहार और व्यवहार से अधिक प्रयोगशील है। । इसलिए इस क्षेत्र में यदि कोई कदम बढ़ाता है तो उसे निरन्तर लेखन करना अपरिहार्य होता है । उसके बिना वह पत्रकारिता जगत में न जी सकता है, न रह सकता है, न पहचान बना सकता है । इसलिए पत्रकार, उप-, संवाददाता से लेकर संपादक तक सभी को लेखन की प्रवृत्ति अपनानी होती है । यह लेखन प्रवृत्ति प्राय: रूप में देखी जा सकती है -_

1. सूचनापरक लेखन
2. खोजी लेखन
3. समाचारकथा

1. **सूचनापरक लेखन :** पत्रकारिता क्षेत्र का लेखन अधिकतम सूचनापरक है । सूचनापरकता का अर्थ होता है कि पाठकों को नवीनतम जानकारी, तथ्य और सत्य के आधार देना । यही कारण है कि पत्रकार या संवाददाता को 'समाचार गंध रोगी' कहा जाता है क्योंकि आँख और कान यानी देखे-जाने या सुने-जाने से नहीं, उसे नाक से भी काम लेना पड़ता है । इसका स्पष्ट अर्थ है कि जो कुछ हो रहा है या होने वाला है, उसकी गंध प्राय: उसे मिल ही जाती है या गंध पाने निरन्तरता उसकी प्रवृत्ति हो जाती है । तभी वह अपने पाठकों को यथारूप नवीन समाचार और समाचार के पीछे समाचार तक की खोजकर सूचनाएँ देता है।

2. **खोजी लेखन :** पत्रकारिता जब व्यवसाय के रूप में स्वीकार की जाती है तो पत्रकार को एक अच्छा लेखक या संवाददाता या स्तम्भ लेखक बनने के लिए यह भी आवश्यक हो जाता है कि वह खोजी प्रवृत्ति से परिपूर्ण हो । यदि वह ऐसा नहीं है तो उसका पाठक

उसे नापसंद कर सकता है और न पहचान सकता है । अत: खोज दृष्टि से समर्थित लेखन में लेखक, स्तम्भकार या संवाददाता को श्रम करना तो अपरिहार्य हो ही जाता है, लेकिन वह जो कुछ भी अपने स्तम्भ के लिए प्रस्तुत करता है, वह मात्र स्रोत-सामग्री भर नहीं होता है, उसमें उसकी खोज पूर्ण दृष्टि का नवीनतम परिणाम होता है, जो पाठक को चकित भी करता है और ज्ञान-वृद्धि भी करता है । इस दृष्टि से एम.वी.कामथ का विचार बहुत ही उपयुक्त है कि (आलेख) - आयासहीन इस अध्ययन में स्वतंत्रता से ग्राहय और सूचनात्मक होने के साथ बिना अश्लील हुए मनोरंजनकारी तथा अति समाचार रहित ज्ञानवर्द्धन करने वाला होना चाहिये ।'

3. **समाचार कथा :** पत्रकारिता क्षेत्र में समाचार कथा का बहुत ही सृर्जनात्मक होना आवश्यक है । किसी समाचारपत्र या पत्रिका में ऐसी सामग्री जो उसमें प्रकाशित होती है उसे एक पत्रकार या संवाददाता अपनी खोजपूर्ण प्रवृत्ति का उपयोग करते हुए, सभी उपलब्ध स्रोतों से और नये स्रोतों से जो सूचनाएँ प्राप्त करता है, उन सूचनाओं को पाठकों को ध्यान में रखते हुए रोचक शैली और सरल-सहज भाषा में प्रस्तुत करता है । इस प्रस्तुति को ही समाचार-कथा की संज्ञा दी जाती है । समाचार- कथा में पत्रकार की दृष्टि और सोच का भी प्रतिबिंब होता है । बिना इसके समाचार-कथा प्रभावशाली नहीं होती ।

18.5 पत्रकार : एक समर्पित लेखकीय व्यक्तितत्व

पत्रकार आज के जनसंचार माध्यम का ऐसा व्यक्ति है जिसके पास विचार शक्ति है और जो अपनी कलम से सूचना को समाचार में, जनता की समस्याओं, इच्छाओं और जरूरतों को शब्दों में व्यक्त करने की क्षमता रखता है । उसे पूर्वाग्रह और अहंकार से मुक्त होना चाहिए। इसीलिए वह जहाँ भी कोई उपयोगी सूचना-स्रोत पाता है तो नये विचारों से भर उठकर अपनी समाचार कथाएँ तैयार करने के लिए तत्पर हो उठता है तथा इन विचारों से ही वह अपनी समाचार कथाएँ बुनता है । कई बार लेखक या पत्रकार की गहन शोधात्मक दृष्टि की परिणति समग्रत: या 'विशेष कथा' के रूप में प्रस्तुत होती है । ऐसी समग्रत: विशेष कथाओं के लिए पत्रकार को निश्चित ही सूचना प्राप्ति के लिए सदैव तत्पर रहकर विश्लेषण करते रहने के लिए बाध्य रहता है । यही कारण है कि एक आदर्श पत्रकार इसी प्रकार के विचारों के लिए ही प्रतीक्षारत रहता है तथा समाचार-गंध पाते ही सूचना-सोत संकलन के लिए तत्पर हो उठता है । इस दृष्टि से यह कहना अधिक उपादेय प्रतीत होता है कि आदर्श पत्रकार में समाचार बोध का नव संस्कार जन्म लेता है । वह जनता के सभी वर्गो के संपर्क मैं रहता है । अपने लेखन को प्रभावी और उपयोगी बनाने के लिए वह नवीन खोजों और गहन विश्लेषण के लिए तत्पर रहता है ।

अभिव्यक्ति का कॉपीराइट

एक ऐसा व्यक्ति पत्रकार होता है जो हमेशा अपने कर्म के लिए समर्पित रहता है । इस संबंध में यह कहना सही है, 'एक सीमा तक, देश के व्यापक तथा आधारभूत उद्देश्यों और

आदर्शों के प्रति प्रत्येक पत्रकार का सदा जागृत समर्पण भाव होना चाहिए.... पत्रकारिता को कर्तव्य कहा जा सकता है - स्वयं अपने प्रति कर्तव्य और जिस जनता के लिए लिखा जाता है, उसके प्रति कर्तव्य । ' यह कर्त्तव्यनिष्ठा ही पत्रकार के व्यक्तितत्त्व को बनाती है । पत्रकार का यह कर्तव्य है कि समाचार संकलन, लेखन में वह अपने वैचारिक पूर्वाग्रहों से मुक्ता होकर ही व्यापक उद्देश्य को ही लक्षित करके लिखता है तथा अपने लेखन को विश्वसनीय बना पाता है ।

मार्ग-निर्धारक पत्रकार

पत्रकार अनुसरण नहीं करता, मार्ग-निर्धारक होता है और यह तभी हो पाता है जब वह पत्रकारिता को कर्तव्य के रूप में ग्रहण करता है । यह बात भिन्न है कि आज पत्रकार और पत्रकारिता दोनों ही अपने उद्देश्यों से भटकी नजर आती है । पत्रकारिता को व्यवसाय के रूप में स्वीकार करते हुए भी यह तो पत्रकार के समक्ष स्पष्ट होना चाहिए कि पत्रकारिता सामान्य किस्म का व्यवसाय नहीं है । वास्तव में पत्रकारिता एक सामाजिक दायित्व है, जो आज पैसा और नाम कमाने का पर्याय हो चला है । इस प्रकार की दृष्टि पर विचार करते हुए राजेन्द्र शंकर भट्ट का मत रहा है कि -यह पत्रकारिता के ऊँचे सिद्धांतों के अनुरूप नहीं है । इसी दृष्टिकोण ने पत्रकारों के मन से उचित-अनुचित का भेद लोपित किया है और ऐसी परम्परा प्रारंभ की है कि एक ओर समाचारपत्रों की ओर उनके पाठकों की संख्या बढ़ती जा रही है, दूसरी ओर पत्रकारों का प्रभाव कम होता जा रहा है । '

मान-सम्मान का चिन्तन

उक्त चिन्ता का कारण भी है कि आज पत्रकारिता अर्थोपार्जन का साधन, मिशन (सेवाभावना) नहीं है । अत: उनका अस्तित्व ही जब अर्थ आधारित होता चला जा रहा है तो पत्रकार का व्यक्तितत्त्व अपनी मान्यता तो रख पाता है, पर सम्मान नहीं पाता है । अत: पत्रकार को 'मान' से अधिक 'सम्मान' का आग्रहशील होकर अपने व्यक्तितत्त्व का निर्माण करना होता है । इसीलिए पत्रकार के बारे में कहा गया है, ' जिसे। अपने सम्मान के लिए स्वयं चेष्टा करनी पडती है, उसका सम्मान दूसरे कर ही नहीं सकते । मान वह है, जो दूसरे अपने मन से करें । इसके लिए पत्रकारों को अपना मान अपने में बढ़ाना होता है... सचमुच सम्मान के योग्य या कृत्य होना चाहिए । .. लेकिन इसे पाने का रास्ता न आसान है, न छोटा । ' अत: पत्रकार अपने व्यक्तितत्त्व ' पहचान के लिए क्या करें और क्या नहीं, स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है ।

18.6 परिवर्तनशील पत्रकारिता

पत्रकारिता अब मिशन नहीं, व्यवसाय है और जब व्यवसाय कहा जा रहा है, तो उसमें 'व्यवसायपन' भी देखना अनिवार्य है । अर्थोपार्जन और अर्थ आधार ही उसके लिए जीवनसार है दिखाई देते हैं, पर अन्य व्यवसायों के समान इस क्षेत्र में आचार संहिता पर संचरण करना आवश्यक होता है । अत: पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्यरत पत्रकारों के लिए आत्म-निरीक्षण, आत्म-नियंत्रण और आत्मानुशासन की स्थिति ही उसकी आधार संहिता की व्यवस्था करती है । चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने सन 1951 में संसद में समाचारपत्र संशोधन विधेयक, 1951 के

संशोधन प्रस्ताव के अवसर पर कहा था - 'भविष्य में ऐसा समय ' आयेगा कि संगठित समाचारपत्र समूह स्वयं अपनी व्यावसायिक आचार एवं अनुशासन संहिता निर्मित करेगा ओर स्वयं अपनी अनुशासन समिति नियुक्त करेगा ।

निश्चय ही परिवर्तनशील पत्रकारिता के सन्दर्भ में उक्त उल्लेख अपना आत्मसंयम निर्धारण करने की दिशा दिखाता है तो विशिष्ट जनसंचार माध्यमों के रूप में पत्रकारिता के परिवर्तनशील स्वरूप की महत्ता भी घोषित करता है । आज देखा जाए तो पत्रकारिता में विकासोन्मुखता के स्तर पर परिवर्तनशीलता के तत्व का महत्त्व कम नहीं है क्योंकि नाना रूपों और स्थितियों में पत्रकारिता की परिवर्तनशीलता- का यह तत्त्व अपने मूल रूप और उद्देश्य में अपरिवर्तनकारी ही रहता है । निश्चय ही वर्तमान समय में जैसी सामग्री समाचारपत्रों में प्रकाशित हो रही है, उसकी तटस्थ आलोचना दृष्टि से विचार करने की आवश्यक है ताकि परिस्थितिजन्य आकलन के साथ-साथ तथ्य, तर्क और विचार का संतुलन पत्रकारिता के बहुआयामी स्वरुप को बनाए रख सके ।

अत: परिवर्तनशीलता पत्रकारिता का गुण तो होता है, व्यवहारगत नीतियों के ही उसकी उपदेयता भी हो सकती है तथा होती है । राजेन्द्रशंकर भट्ट के मतानुसार - 'पत्रकारिता' में संपूर्ण, किसी और को प्रभावित नहीं करने वाला व्यवसाय या उद्योग नहीं है । इसे पूरी तरह व्यवसाय या मानने का ही मन नहीं करता, चाहे जितनी श्रमजीवी तथा स्वामीपरक वृत्तियाँ इसमें आ गई हों । यह दृष्टि पूरी तरह से सही नहीं है । इस बात को स्वीकार करते हुए कि पत्रकारिता अब व्यवसाय बन चुका है, हमें इस बात पर भी बल देना चाहिए कि पत्रकारिता को कभी अपने सामाजिक दायित्व से अलग नहीं किया जा । पत्रकार इस सामाजिक दायित्व को जानने और उसे जनता तक ले जाने का वाहक होता है ।

मुद्रित शब्द और मुद्रित माध्यम

समाचारपत्र जनसंचार का मुद्रित माध्यम है और उसका महत्त्वपूर्ण अंग मुद्रित शब्द है। समाचार जगत या पत्रकारिता से ही नहीं, मुद्रित शब्द का मूल्य मौखिक शब्द से अधिक होता है । जो खित है, वह शब्दरूप में मुद्रित होकर पाठकों के समक्ष आता है । फिर उसे पढ़ा जाता है और कई बार पढ़ा जा सकता है तथा पढ़ने वाले पर प्रभाव डाल सकता है, प्रतिक्रिया के लिए आंदोलित कर सकता है । यह मुद्रित शब्द की व्यापक भूमिका है । अब मुद्रित माध्यम के साथ-साथ इलेक्ट्रॉनिक माध्यम की भूमिका भी विस्तृत होती जा रही है । लेकिन इससे मुद्रित माध्यमों का महत्त्व कम नहीं होगा, यह स्पष्ट है । शहरों में इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों का विस्तार हुआ है । लेकिन शिक्षा का विस्तार होने के साथ, मुद्रित माध्यम नगरों से शहरों और कस्बों ही नहीं गांवों की ओर भी उन्मुख हो रहे हैं, समाचारपत्रों के विस्तार का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि क्षेत्रीय समाचारपत्रों का विस्तार तेजी से हुआ है । लेकिन यह देखा गया है कि क्षेत्रीय समाचारपत्र अपने पत्रकारों को सरकार द्वारा निर्धारित वेतन और अन्य भत्ते नहीं देते । उनके लिए निर्धारित सेवा शर्तो का भी अनुपालन नहीं होता । इससे इस क्षेत्र में योग्य और प्रतिभाशाली युवाओं का प्रवेश कम हो रहा है । इस स्थिति में बदलाव की आवश्यकता है । भारतीय भाषाओं में निकलने वाले समाचारपत्रों का मूल्य राष्ट्रीय स्तर पर निकलने वाले अंग्रेजी

अखबारों की तुलना में ज्यादा होता है । इसकी वजह यह है कि अंग्रेजी के समाचारपत्रों को ज्यादा विज्ञान मिलते हैं, जबकि क्षेत्रीय भाषाई अखबारों को कम । अंग्रेजी के अखबारों में कुल पृष्ठों की संख्या ज्यादा होती है, जबकि क्षेत्रीय और भाषाई अखबारों की पृष्ठ संख्या कम होती है । क्षेत्रीय अखबारों पर क्षेत्रीय राजनीति का दबाव भी रहता है जिससे वे अपने सामाजिक दायित्व को पूरा करने में कई बार सक्षम नहीं हो पाते । लेकिन ग्राम्यांचल से विस्तार से क्षेत्रीय अखबारों की जरूरत बढ़ती जा रही है ।

भविष्य में भारतीय ग्रामीण अंचलों में मुद्रित माध्यम की मांग तथा पाठक निरंतर बढ़ते रहेंगे । इसकी अपेक्षाओं के सन्दर्भ में प्रभाकर माचवे का कथन अधिक उपयुक्त हैं कि 'पाठक अब ग्रामाचंल में अधिक बढ़ रहे हैं । दैनिक पत्र-पत्रिकाओं से सामान्य पाठकों की अपेक्षाएँ बढ़ती जा रही है..... वे ज्ञान-विज्ञान की अपनी बढ़ती प्यास एवं जिज्ञासा को भी शांत करना चाहते हैं।

मुद्रित माध्यम की विश्वसनीयता

शब्द को ब्रह्म की संज्ञा दी गई है । मुद्रित माध्यम में भी शब्द की ही महिमा है । लिखित शब्द जनमानस या पाठक में अपना मान बनाये हुए हैं । यद्यपि तथाकथित पीत-पत्रकारिता के प्रार्दुभाव ने मुद्रित शब्द का बहुत ही अहित किया है और उसकी विश्वसनीयता पर प्रहार किया है । आज भारत देश में जनसंचार के अन्य माध्यमों पर बहुराष्ट्रीय निगमों और देशी पूँजीपतियों का अधिकार है । अत: अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का कितना और कैसा निर्वाह हो पाता है, उसका अनुभव उन सभी लोगों को है, जो पत्रकारिता से जुड़े हुए हैं । फिर भी मुद्रित माध्यम ही ऐसा माध्यम है जो सर्वाधिक स्तर पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उपयोग कर जनता के मध्य अपनी विश्वसनीयता बनाये हुए है ।

समाचारपत्र और पत्रिकाओं में कार्यरत संपादकों और पत्रकारों का यह दायित्व है कि वे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करें । वे ही अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उपयोग उत्तम ढंग से करके पाठकों के मध्य विश्वसनीय पैठ भी बना सकते हैं । यही यह भी स्वीकार कर लेने में आपत्ति नहीं है कि यदि समाचारपत्र का स्वामी ही अपने आपको पत्रकार और संपादक घोषित करके पत्र संचालन करता है तो विश्वसनीयता कभी न कभी किसी दबाव के कारण आहत भी हो सकती है । राजेन्द्र शंकर भट्ट की यह मान्यता है कि - 'हमारे यहाँ की विशेषता यह है कि बहुपठित पत्र-पत्रिकाएँ प्राय: ऐसे स्वामित्व समूहों के हाथों में है, जिनका ज्यादा हाथ अन्य प्रकार के उद्योग-व्यापार में है । अपनी आय के अन्य साधनों की ओर उनका अधिक ध्यान है, क्योंकि उनसे वास्तव में उनकी अधिक आय होती है । ये हित व्यापारिक के अतिरिक्त राजनीतिक भी होते हैं क्योंकि ये पत्र स्वामी-घराने के ही है जो संसद सदस्यों तथा विधायकों को भी अपने प्रभाव में रखने का प्रयत्न करते रहते हैं । ' ऐसी स्थिति में मुद्रित माध्यम की विश्वसनीयता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है ।

संपादक जब पत्र समूह घरानों से अलग और उसके स्वामी नहीं होते तो मुद्रित माध्यम की विश्वसनीयता सुदृढ़ हाथों में रहने की ज्यादा संभावना होती है, क्योंकि वे विश्वास जमाने की प्रवृत्ति को महत्त्व देते हैं । हमारे संविधान की उद्देशिका में और 'मूलाधिकार', 'राज्य की

नीति के निर्देशक तत्त्व' तथा 'मूल कर्तव्य' के मार्ग में कुछ राष्ट्रीय विश्वास प्रतिपादित हैं, कुछ विश्वास हमारे ऐतिहासिक अनुभव के विकसित रूप है - 'राष्ट्रीय एकता, समभाव और सद्भाव, इन सबका व्यावहारिक उपयोग मुद्रित माध्यम में किया जाता है, यह अपेक्षित भी है और एक संपादक या पत्रकार के लिए महत्त्वपूर्ण दायित्व भी है । '

इलेक्ट्रॉनिक माध्यम की पत्रकारिता

नयी संचार प्रौद्योगिकी ने संचार माध्यमों की गुणात्मक अभिवृद्धि की है तथा ' अपेक्षाएँ भी मुद्रित माध्यम से भिन्न हैं । अत: लेखन में भी तकनीक संबंधी भिन्नता अपेक्षित है । पत्रकारिता मुद्रण संवाहक नहीं है, उसमें खोज खबर होती है और पत्रकारिता विषयक प्रत्येक लेखन में यह तत्त्व विद्यमान रहता है । लेकिन इसका ज्ञापन करना लेखक का अभिष्ट नहीं होता । पत्रकार या संवाददाता को स्रोत-सामग्री चयन के लिए विभिन्न लोगों से भेंट करनी होती है, यात्राएँ करनी होती हैं और फिर माध्यम के अनुरूप सामग्री लेखन करना होता है ।

इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के दो रूप विशेष है - रेडियो और टेलीविजन । रेडियो में शब्द की महिमा अवश्य है, पर वह उच्चरित शब्द की होती है । शब्द उच्चारण के बाद विद्युतीय उपकरणों के माध्यम से ध्वनि तरंग के रूप में परिवर्तित होकर प्रसारित होता है और अपने विशेष मीटर बैंड के रिसीवर पर उस ध्वनि तरंग रूप को ग्रहण किया जाता है । जैसे ही रेडियो का मीटर विशेष खोला जाता है वैसे ही वे ध्वनि तरंगें शब्द रूप में परिवर्तित होकर श्रोता के पास पहुँचती है । अत: लेखक को यहाँ शब्द के उच्चरित रूप और ध्वनि! का महत्त्व समझकर दूरस्थ बैठे श्रोता तक अपना मंतव्य पहुँचाने के लिए अपनी विशेष शैली अपनाने की आवश्यकता अनिवार्यत: स्वीकार करनी होती है । अत: श्रव्य माध्यम हेतु लेखन में भिन्नता होती है । इलेक्ट्रॉनिक माध्यम का दूसरा रूप विशेष है टेलीविजन । इस माध्यम में दृश्य में परिवर्तित होते शब्द की महिमा का महत्त्व है । शब्द स्वयं ही परिवर्तित होकर दृश्य नहीं होता और न हो सकता है, परंतु शब्द मात्र उच्चरित अथवा लिखित तप में अपना अस्तित्व घोषित नहीं करता अपितु अपने साथ अपनी महत्ता प्रदर्शन के लिए उपयुक्त दृश्य की उपस्थिति दिखाकर दर्शकों और श्रोताओं के समक्ष अपनी शत-प्रतिशत विश्वसनीयता सिद्ध करता है ।

टेलीविजन से पूर्व फिल्म दृश्य माध्यम के रूप में काफी लोकप्रियता हासिल कर चुका है। लेकिन फिल्मों का उपयोग मनोरंजन के लिए ही अधिक होता है । टेलीविजन कार्यक्रम की तकनीकी में लेखन-संपादन का प्रकट रूप 'छोटे पर्दे' के लिए स्वीकार किया जाता है और फिल्म के रूप में 'बड़े पर्दे' उल्लेख किया जाता है।

भारत जैसे विकासशील देश में फिल्म निर्माण का इतिहास गत एक सदी पुराना, तो टेलीविजन अभी अपनी अर्द्धशती भी पूरी नहीं कर पाया है, परंतु हमारे पत्रकारों, लेखकों को विधागत महत्ता परिचित करा दिया है । अत: नवीन प्रविधि से इन क्षेत्रों के लिए समाचार लेखन के साथ-साथ रिपोर्ताज, यात्रावृत, आँखों देखा हाल, फीचर, समाचार कथा, नाटक, वृत्त चित्र आदि के लिए लेखन किया जा रहा है ।

18.7 सारांश

पत्रकारिता से संबंधित इस इकाई का आपने अध्ययन कर लिया है । इस इकाई में आपने पत्रकारिता के विभिन्न पक्षों की जानकारी प्राप्त की है । पत्रकारिता हेतु लेखन विशेष प्रकार का होता! है, उसे सर्जनात्मक लेखन-कथा, काव्य आदि की भाँति नहीं लिखा जाता । उसमें सूचना और शिक्षा दोनों का ऐसा समन्वय होता है जो विचाराभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की घोषणा करता है, पर अपने आप में मर्यादित रहकर । इसीलिए पत्रकारिता के लिए लेखन करते हुए नवीन मूल्य संस्थापन और समस्या समाधान की प्रवृत्ति विकसित होती है तभी सूचनापरक, खोजी समाचार कथा जैसे लेखन का परिणाम सामने आता है । इरा दिशा में पत्रकार के समर्पित व्यक्तितत्व के लेखक के रूप में छवि निर्माण होना बहुत महत्व रखता है । विज्ञान के विकास के कारण अब पत्रकार या संवाददाता मुद्रित माध्यम के लिए ही नहीं अपितु इलेक्ट्रॉनिक माध्यम (रेडियो, टेलीविजन,, फिल्म) के लिए भी लिखता है । इस खंड की अगली इकाईयों से आप पत्रकारिता क्षेत्र के अन्य प्रकारों से भी परिचित होंगे ।

18.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पत्रकारिता का अर्थ स्पष्ट करते हुए पत्रकार की सामाजिक भूमिका पर प्रकाश डालिए ।
2. पत्रकारिता के सामाजिक-सांस्कृतिक आयामों का उल्लेख करते हुए बताइए कि क्या आज की पत्रकारिता अपने सामाजिक लक्ष्यों को पूरा करने में सक्षम है?
3. कोई भी पत्रकार पत्रकारिता की भूमिका का निर्वाह करते हुए किन बिंदुओं पर ध्यान केंद्रित करता है और क्यों?
4. विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का आशय स्पष्ट करते हुए पत्रकारिता में उसके महत्त्व का उल्लेख कीजिए ।
5. टेलीविजन और समाचारपत्र में पत्रकारों की भूमिका में क्या समानता और विभिन्नता है? सोदाहरण बताइए ।

18.9 सन्दर्भ ग्रंथ

1. डॉ. जगदीश शर्मा; पत्रकारिता प्रशिक्षण, हरीश प्रकाशन मंदिर, आगरा
2. राधेश्याम शर्मा; विकास पत्रकारिता, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला
3. आलोक मेहता; भारत में पत्रकारिता, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली
4. डॉ. सुशीला जोशी; हिन्दी पत्रकारिता, विकास और विविध आयाम, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
5. डॉ. सुधीर सोनी; पत्रकारिता और जनसंचार, विश्वविद्यालय प्रकाशन, जयपुर

इकाई 19 : पत्रकारिता के विभिन्न रूप-(1) समाचार पत्र (2) पत्रिकाएँ

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य
19.1 प्रस्तावना
19.2 पत्रकारिता का महत्त्व और प्रासंगिकता!
19.3 पत्रकारिता के विभिन्न रूप ।
19.4 पत्रकारिता के विभिन्न रूपों हेतु लेखन
19.5 समाचार लेखन
19.6 फीचर लेखन
19.7 सारांश
19.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
19.9 सन्दर्भ ग्रंथ

19.0 उद्देश्य

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' नामक इस - के चौथे खंड. का स्वरूप और विकास' की इस दूसरी इकाई और पाठ्यक्रम की 19वीं इकाई में आप पत्रकारिता के ' विभिन्न रूपों, विशेष रूप से समाचारपत्र और पत्रिकाओं के बारे में जानेंगे । इस इकाई में पत्रकारिता के महत्त्व प्रासंगिकता पर भी प्रकाश डाला जाएगा । पत्रकारिता के विभिन्न रूपों का परिचय दिया जाएगा और पत्र- पत्रकारिता के लिए लेखन के विभिन्न पक्षों की जानकारी दी जाएगी । इस अध्ययन के बाद आप

- पत्रकारिता के महत्व और प्रासंगिकता को समझ सकेंगे ।
- पत्रकारिता के विभिन्न रूपों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
- पत्र-पत्रिकाओं के लेखन के विभिन्न पक्षों की जानकारी प्राप्त करेंगे और पत्रकारिता के लिए लेखन की प्रविधियों से भी परिचित हो सकेंगे । ।
- समाचार लेखन और फीचर लेखन सीख सकेंगे ।।

19.1 प्रस्तावना

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' नामक इस पाठ्यक्रम की इस 19वीं इकाई आप पत्रकारिता के विभिन्न रूपों का अध्ययन करने जा रहे हैं । इस इकाई से पूर्व की इकाई में आप पत्रकारिता के अर्थ और स्वरूप का अध्ययन कर चुके हैं । पत्रकारिता का अर्थ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले समाचार, रिपोर्टों और तत्संबंधी लेखों के लेखन और प्रकाशन से है । समाचारपत्र वह माध्यम है जिनमें यह पठनीय सामग्री प्रकाशित होती है । अंग्रेजी में इसे फ्लू पेपर और उर्दू में अखबार कहा जाता है । इन तीनों नामों से स्पष्ट है कि समाचारपत्र में

समाचार मुख्य वस्तु है । समाचारों के लिए सूचनाओं को एकत्र करने का काम जिन " द्वारा किया जाता है उन्हें पत्रकार या संवाददाता कहा जाता है । इन समाचारों को एकत्र करने के बाद इन्हें छापने योग्य बनाने के लिए उसमें जो लोग आवश्यक परिवर्तन और संशोधन करते हैं उन्हें संपादक कहा जाता है । समाचारपत्र एक खास अवधि में प्रकाशित होते हैं । रोजाना प्रकाशित पत्रों को दैनिक समाचारपत्र, सप्ताह में एक दिन प्रकाशित होने वाले समाचारपत्र को साप्ताहिक समाचारपत्र और इसी तरह 15 दिन या एक माह में प्रकाशित होने वाले समाचारपत्र को पाक्षिक या मासिक समाचारपत्र कहेंगे । आमतौर पर समाचारपत्र या तो दैनिक रूप में प्रकाशित होते है या साप्ताहिक रूप में । क्योंकि बहुत लंबे अंतराल के बाद प्रकाशित होने वाले समाचारों के प्रति आज के समय में पाठकों की रुचि नहीं होती । ही, वे रोजाना प्रकाशित होने वाले समाचारों के बारे में विश्लेषणात्मक और आलोचनात्मक सामग्री अवश्य पढ़ना चाहते हैं और ऐसी सामग्री यदि एक सप्ताह, पंद्रह दिन या एक महीने बाद भी मिलती है, तो भी उनकी इनमें दिलचस्पी बनी रहती है । जिनमें इस तरह की सामग्री प्रकाशित होती है, उन्हें समाचारपत्र नहीं बल्कि पत्रिका कहा जाता है । पत्रिका में केवल समाचारपत्रों का विश्लेषण ही नहीं होता बल्कि अन्य कई तरह की विचार केंद्रित सामग्री प्रकाशित होती है । इसी तरह समाचारपत्रों में भी समाचारों के अलावा भी बहुत कुछ प्रकाशित होता हैं । इस इकाई में आप इन सब के बारे में भी जानकारी प्राप्त करेंगे ।

पत्रकारिता आज एक महत्वपूर्ण व्यवसाय बन गया है । यह सिर्फ छपे हुए समाचारपत्रों और पत्रिकाओं के द्वारा ही नहीं बल्कि दृश्य-श्रव्य माध्यमों के द्वारा भी व्यक्त होती है । हम सभी जानते हैं कि रेडियो और टेलीविजन के द्वारा भी समाचार प्रसारित होते है । अब तो टेलीविजन पर विभिन्न भाषाओं में कई फ्लू चैनल प्रसारित हो रहे हैं जो चौबीसों घण्टे विभिन्न तरह के समाचार या उनसे संबंधित सामग्री प्रसारित करते हैं । इसलिए अब किसी नवीनतम समाचार के लिए पाठक को सुबह प्राप्त होने वाले समाचारपत्र का इन्तजार नहीं करना पड़ता उसे रेडियो और टेलीविजन से कुछ मिनटों पहले घटी घटना की जानकारी भी मिल जाती है । यहाँ तक कि जो घटनाएँ पूर्व निर्धारित होती है मसलन, खेलकूद, विभिन्न तरह के आयोजन या कोई ऐसी प्राकृतिक घटना जिसका होना पहले से निश्चित हो जैसे सूर्य ग्रहण आदि । टेलीविजन और रेडियो पर इनका साथ-साथ प्रसारण होने लगा है । इन्हें लाइव प्रसारण कहते हैं । इस तरह पत्रकारिता की भूमिका काफी बदल गई है । पत्रकारिता आज एक महत्वपूर्ण उद्योग भी बन चुका है । पहले की तरह आज पत्रकारिता देश और समाज की सेवा के लिए नहीं की जाती बल्कि मुनाफा कमाने के लिए, जनता पर अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए या अपना कैरियर बनाने के लिए की जाती है । पत्र-पत्रिकाओं के विभिन्न रूपों का वर्णन करते हुए इस इकाई में पत्रकारिता के लिए लेखन करने वाले पत्रकारों की बदलती भूमिका पर भी प्रकाश डाला गया है । इस तरह आप पत्र-पत्रिकाओं के बारे में ओर अधिक विस्तृत जानकारी इस इकाई में प्राप्त करेंगे।

19.2 पत्रकारिता का महत्त्व और प्रासंगिकता

पत्रकारिता महज एक पेशा नहीं है बल्कि वह एक जागरूक समाज और व्यक्ति की पहचान है । पत्रकार का दायित्व बहुत विस्तृत है । समाज के लिए कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका जिस तरह आधारभूत स्तम्भ हैं उसी तरह पत्रकारिता भी वह स्तंभ है जिससे समाज की हर घटना का आकलन कर उसे सम्भावित नुकसान से बचाया जा सकता है । भारत जैसे देश के लिए तो पत्रकारिता का महत्त्व और भी ज्यादा है क्योंकि भारत को अभी कई क्षेत्रों में और आगे बढ़ना है । यह पत्रकारिता ही है जिसने भारत की आजादी के संघर्ष में जन चेतना को जगाने का मार्ग प्रशस्त किया था । उस दौर के विविध समाचारपत्रों और पत्रिकाओं नें ही व्यक्ति और समाज को स्वाभिमान से जीने की राह दिखाई थी ।

वर्तमान दौर के किसी भी क्षेत्र को देखें तो हमें प्रतीत होगा कि जीवन का बड़े से बड़ा और छोटे से छोटा हिस्सा भी पत्रकारिता से अछूता नहीं है । अध्ययन से लेकर व्यवसाय तक, अर्थ से लेकर साहित्य तक, खेल से लेकर कला-संस्कृति तक और धरती से आकाश के बीच का संपूर्ण दृश्य जगत कही न कहीं समाचारपत्रों व पत्रिकाओं में अभिव्यक्ति पाता है । समाज के किसी भी क्षेत्र की इनके बिना कल्पना नहीं की जा सकती है । लोकतंत्र का प्रमुख आधार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है इसलिए लोकतंत्र की आशाओं व अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए पूरा दायित्व समाचारपत्र और पत्रिकाओं पर ही आ जाता है ।

किसी भी विकासशील देश में समाज के सम्मुख अनेकानेक समस्याएँ आती है और स्वस्थ समाज की दिशा में अग्रसर रहने के लिए उन समस्याओं का उचित निवारण करना आवश्यक है । ऐसे में आवश्यकता इस बात की है कि पत्रकारिता उस 'मिशन' को सफल बनाए। भारत वर्तमान में भी कई समस्याओं से जूझ रहा है । ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि पत्रकार जनता के सामने इन परिस्थितियों से मुक्ति पाने का सही रास्ता बताए ।

पत्रकारिता शब्द अंग्रेजी के 'जर्नलिज्म' शब्द के अर्थ में प्रयुक्त होता है । यह 'जर्नल' शब्द से बना है। 'जर्नल' (श्रवनतदंस) शब्द का अर्थ है. 'दैनिक-विवरण' । पत्रकारिता के विकास के साथ-साथ इसमें दैनिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, वार्षिक आदि समय अंतराल में प्रकाशित होने वाले पत्रों के साथ रेडियो और टेलीविजन जैसे माध्यम भी जुड़ते गए । जीवन की हर गतिविधि और घटनाओं का समावेश इनमें होने लगा है ।

आज पत्रकारिता के कार्य का विस्तार हो चला है । लोकतंत्र के हर एक पक्ष पर, यह हावी है और समाज व व्यक्ति का कोई भी क्षेत्र इससे अछूता नहीं है । पत्रकारिता एक व्यवसाय है और उद्योग भी । इस पक्ष की विस्तार से चर्चा इकाई 8 में कर चुके हैं । फिर भी, पत्रकारिता सिर्फ व्यवसाय नहीं हो सकता ' । जनसंचार माध्यमों द्वारा जो संदेश उत्पादित और प्रसारित होते हैं, वे भौतिक उत्पाद नहीं बल्कि सांस्कृतिक उत्पाद हैं और इसीलिए उनके उत्पादन और आपूर्ति पर विचार भौतिक वस्तुओं के उत्पादन और आपूर्ति की तरफ नहीं किया जा सकता। सांस्कृतिक उत्पाद होने के कारण इनके राजनीतिक-सामाजिक पक्षों पर भी विचार करना आवश्यक हो जाता है । क्योंकि ये उत्पाद मनुष्य के विचारों और कार्यो को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं और यह प्रभाव ज्यादा गहन, स्थायी और व्यापक होता है । इसलिए

पत्रकारिता पर विचार करते हुए पत्रकार की भूमिका पर भी गहनता से विचार करने की जरूरत है ।

किसी भी समाचारपत्र और पत्रिका के लिए समाचार एकत्र करने, लेखन और सम्पादन करने से जुड़ा व्यक्ति पत्रकार कहलाता है । पत्रकारों में लेखक, समाचार-संपादक, समाचार-संग्राहक जिसे संवाददाता कहते हैं, आदि सभी शामिल होते हैं । पत्रकार का समाज की प्रगति और विकास में बड़ा ही। महत्त्वपूर्ण स्थान होता है । समाज के सामने ऐसी समस्याएँ और स्थितियाँ निरन्तर ही आती रहती हैं जिनके बारे से लोगों को सही जानकारी देना और समस्याओं के निवारण के लिए विवेक-सम्मत तर्कों और उपायों को जनता के सम्मुख विचार हेतु प्रस्तुत करना आवश्यक होता है । पत्रकार का यह दायित्व होता है कि वह उन उचित व सार्थक विकल्पों से समाज को अवगत कराए जिससे जन-जीवन व आम जनता की सोच पर सकारात्मक प्रभाव पड़े ।

हिन्दी पत्रकारिता की शुरुआत ही राष्ट्रीय चेतना, लोक कल्याण और समाज-सुधार के उद्देश्य को लेकर हुई थी । इसमें प्राय: सम्पादक-प्रकाशक की व्यक्तिगत लाभ-हानि, स्वार्थ आदि की बजाय राष्ट्रीय व सामाजिक दायित्वों की पूर्ति ही एक महान उद्देश्य था । पत्रकारिता से वैसे भी तीन उद्देश्य की पूर्ति मानी जाती है - सूचना, शिक्षा और मनोरंजन ।

पत्रकार को इन उद्देश्यों की पूर्ति से जुड़े किसी क्षेत्र को काम के लिए चुनना पडता है । पत्रकार के लिए पत्रकारिता निरन्तर एक चुनौती है । उसे लोगों की अभिरुचियों और सांस्कृतिक आवश्यकताओं पर निरंतर निगाह रखनी होती है । कई मुद्दों पर उसे स्वस्थ उद्देश्यों के लिए जूझना होता है । यह काम आसान नहीं होता इसके लिए उसे तात्कालिक स्वार्थों और बाहरी दबावों से संघर्ष करना पड़ता है । अभिव्यक्ति के लिए जो संदेश उसके सामने उपस्थित होते हैं, उनमें से किन-किन संदेशों को लोगों तक पहुँचाना है और किन्हें नहीं, यह भी तय करना होता है । इन संदेशों को प्रसारित करने योग्य बनाने के लिए उसे किस तरह अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करना है, यह भी समझना जरूरी है । पत्रकार के कर्तव्य को पूरा करने के लिए उसमें सत्यनिष्ठा, जनता के दूरगामी और तात्कालिक हितों की सही समझ, अभिव्यक्ति के लोकतांत्रिक अधिकारों के, साथ जनता के जानने के अधिकार के प्रति सम्मान का भाव का होना भी जरूरी है । इन कर्त्तव्यों का पालन ' करते हुए उसे समाज और राष्ट्र की एकता और विकास के लक्ष्यों को आँखों से ओझल नहीं होने देना चाहिये ।

19.3 पत्रकारिता के विभिन्न रूप

पत्रकारिता में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समाचारपत्र ही है । लेकिन इसके अलावा विभिन्न तरह की पत्रिकाओं का भी पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान हैं । इस भाग में हम समाचारपत्र और पत्रिकाओं पर विचार करेंगे और उसके स्वरूप को समझने का प्रयास करेंगे ।

समाचारपत्र

समाचारपत्र जिसे अंग्रेजी में न्यूजपेपर और उर्दू में अखबार कहते हैं, उसका मुख्य काम समाचारों का प्रसारण करना है । समाचार उन सूचनाओं को कहते है जिसमें समाचारपत्र पढ़ने वाले पाठकों की रुचि होती है । ये सूचनाएँ विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित हो सकती है- राजनीति,

अर्थनीति, विज्ञान, भूगोल, कृषि, विभिन्न तरह के राजनीतिक-सामाजिक घटनाक्रम, सांस्कृतिक गतिविधियाँ और ज्ञान-विज्ञान के ऐसे सभी क्षेत्र जो किसी न किसी रूप में मनुष्य जीवन को प्रभावित करते हैं । यदि आप समाचारपत्रों पर गौर करें तो आप पायेंगे कि रोजाना समाचारपत्रों में छपने वाले समाचारों को विभिन्न क्षेत्रों में बाँट कर देखा जा सकता है । मसलन, अखबार में राजनीतिक घटनाओं की प्रमुखता होती है । लेकिन इसके साथ ही व्यापार से संबंधित घटनाओं के लिए अखबार में अलग से जगह दी जाती हे । इसी तरह खेल-कूद से संबंधित समाचारों को प्रमुखता प्राप्त होती है । लेकिन कई बार ऐसी घटनाएँ भी जो रोजाना छपने वाली सूचनाओं से अलग होती है उनको भी प्रमुखता प्राप्त हो जाती है । उदाहरण के लिए, 22 जुलाई, 2009 को भारत में और कुछ अन्य देशों में सूर्य ग्रहण दिखाई दिया था । यह सूर्य ग्रहण कुछ मिनटों के लिए पूर्ण सूर्य ग्रहण भी था । पूर्ण सूर्य ग्रहण लम्बे-लम्बे अंतराल के बाद घटित होने वाली घटना है । पूर्ण सूर्य ग्रहण के दौरान सूर्य से निकलने वाली किरणें जो सीधे पृथ्वी तक पहुँचती है उनके मार्ग को चंद्रमा रोक लेता है । जितने हिस्से में यह कार्य संपन्न होता है उतने हिस्से में दिन के समय भी सूर्य दिखाई नहीं देता, इसे ही सूर्य ग्रहण कहते है और चंद्रमा से पूरा ढक जाने पर इसे ही पूर्ण सूर्य ग्रहण कहते हैं । वैज्ञानिक दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक घटना है और वैज्ञानिक इस दौरान तरह-तरह के प्रशिक्षण कर प्रकृति की गतिविधियों की जानकारी प्राप्त करते हैं । ऐसे महत्वपूर्ण घटनाक्रम को भी समाचारपत्र प्रमुखता के साथ प्रकाशित करते है । 23 जुलाई, 2009 को भारत में छपने वाले लगभग सभी समाचारपत्रों ने अपने मुखपृष्ठ पर सूर्य ग्रहण की कम से कम एक तस्वीर अवश्य छापी थी । यह उदाहरण इसलिए प्रस्तुत किया गया है कि ताकि इस बात को समझा जा सके कि समाचारपत्रों में सूचनाओं को उनके विषय के अनुसार ही नहीं बल्कि उनके प्रभाव और जनता में गहरी रूचि के कारण भी प्रमुखता प्राप्त होती है । 26 नवंबर, 2008 को मुंबई पर हुए आतंकवादी हमले या ट्वेंटी-ट्वेंटी ओवरों के क्रिकेट के विश्व कप में भारत की जीत भी ऐसी ही घटनाएँ थीं जिनको समाचारपत्रों में प्रमुखता से प्रकाशित किया गया ।

समाचारपत्रों में प्रकाशित होने वाले समाचार अपनी प्रमुखता के आधार पर मुखपृष्ठ या अंदर के पृष्ठों पर प्रकाशित होते हैं । लेकिन पूरे समाचारपत्र में विषयानुसार जो पृष्ठ निर्धारित होते हैं उन पृष्ठों पर उन विषयों से संबंधित समाचार एक साथ प्रकाशित होते है । मसलन, खेल-कूद के सारे समाचार खेल-कूद के पृष्ठ पर प्रकाशित होंगे लेकिन खेल-कूद में कोई भी ऐसी उपलब्धि या घटना जिसका महत्व सार्वजनीन हो तो उसे मुखपृष्ठ पर भी जगह मिल जाती है । यही बात अन्य क्षेत्रों के समाचार पर भी लागू होती है ।

समाचारपत्र आमतौर पर रोजाना प्रकाशित होते हैं लेकिन साप्ताहिक या सप्ताह में दो या तीन दिन प्रकाशित होने वाले समाचारपत्र भी हैं । इसी तरह आमतौर पर समाचारपत्र सुबह के समय प्रकाशित होते हैं लेकिन शाम के समय प्रकाशित होने वाले समाचारपत्रों की संख्या भी निरंतर बढ़ी हैं । सुबह के समय प्रकाशित होने वाले समाचार आमतौर पर लोगों के काम धंधों के लिए निकलने से पहले पढ़ने के लिए होते हैं जबकि शाम के समय के समाचार काम-धंधे से लौटते हुए लोग-बाग पढ़ना पसंद करते हैं । निश्चय ही सुबह के समाचारपत्रों की अपेक्षा शाम के

समाचारपत्रों का आकार छोटा और प्रसार संख्या कम होती है । विषयवस्तु के आधार पर भी समाचारपत्रों का वर्गीकरण किया जा सकता है । आमतौर पर समाचारपत्रों में हर तरह की सामग्री छपती है लेकिन अब आर्थिक गतिविधियों का महत्त्व बढ़ने के कारण ऐसे समाचारपत्र निकलने हैं जिनमें मुख्य रूप से आर्थिक जगत से संबंधित समाचार और उससे जुड़ी सामग्री ही प्रकाशित होती है । मसलन, अंग्रेजी में 'दि इकॉनोमिक टाइम्स', 'फाइनेंसियल एक्सप्रेस' इसी तरह के समाचारपत्र हैं ।

समाचारपत्र में विषयगत विविधता

समाचारपत्रों में समाचारों के प्रकाशन के अलावा भी विविध प्रकार की सामग्री प्रकाशित होती है । इसके लिए अलग से एक पृष्ठ नियत रहता है । इसे संपादकीय पृष्ठ कहते हैं । इस पृष्ठ पर समाचार पत्र की नीति के अनुसार तात्कालिक महत्वपूर्ण मुद्दों पर संपादक या संपादक मंडल के सदस्यों द्वारा ' लिखा जाता है । इसके अलावा उसी पृष्ठ पर ऐसे मुद्दों पर कुछ लेख प्रकाशित होते हैं जो महत्त्व के होते हैं और जिनको पाठक जानना-समझना चाहता है । इसी पृष्ठ पर पाठकों की प्रतिक्रिया का भी एक स्तंभ होता है । इस स्तंभ के अंतर्गत पाठक समाचारपत्र में प्रकाशित सामग्री पर अपनी प्रतिक्रिया है और उनमें से कुछ प्रतिक्रियाओं को समाचारपत्र प्रकाशित करते हैं । कभी-कभी सामाजिक महत्त्व के मुद्दे पाठक उठाते हैं और समाचारपत्र उनके महत्व को समझ कर उन्हें प्रकाशित करते हैं । आमतौर पर प्रत्येक समाचारपत्र सप्ताह में कम-से-कम एक दिन कुछ ऐसी सामग्री भी प्रकाशित करते हैं जो पाठकों साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिरुचियों के अनुरूप हो । आमतौर पर इस तरह की सामग्री रविवार के दिन होती है जो सार्वजनिक अवकाश का दिन होता है । इस दिन कविता, कहानी आदि रचनात्मक सामग्री आयु वर्ग को ध्यान में रखकर प्रकाशित की जाती है । ।

जब टेलीविजन का आगमन हुआ तो यह समझा गया था कि इससे ' का महत्व कम हो जाएगा । लेकिन ऐसा नहीं हुआ । इसके विपरीत समाचारपत्रों की प्रसार संख्या में पहले से कई गुना ज्यादा वृद्धि हुई है । यही नहीं पाठकों की विविधतापूर्ण अभिरुचियों को ध्यान में रखते हुए अब के प्रत्येक दिन कुछ ऐसी सामग्री प्रकाशित होती है जो अलग-अलग विषयों से संबंधित होती है । मसलन, एक दिन सिनेमा और टेलीविजन के बारे में, तो एक दिन सांस्कृतिक गतिविधियों के बारे में, तो एक दिन महिलाओं के बारे में, तो एक दिन युवाओं की जरूरतों के अनुरूप विशेष सामग्री प्रकाशित की जाती है । इस तरह विभिन्न अभिरुचियों वाले पाठकों के अनुसार विभिन्न तरह की सामग्री का प्रकाशन कर समाचारपत्र पाठकों के अपनी पहुँच को बढ़ाते हैं । पहुँच को बढ़ाने के लिए समाचारपत्र अलग-अलग शहरों से अपने स्वतंत्र ' प्रकाशित करते हैं। इसी तरह अलग-अलग शहरों के लिए भी कुछ पेज निर्धारित होते हैं जो उन शहरों में ही किये जाते हैं जिनसे संबंधित वे पृष्ठ होते हैं । इस प्रकार समाचार पत्र राष्ट्रीय और स्थानीय दोनों तरह की ' जरूरतों को एक साथ पूरा करने का प्रयत्न करते हैं ।

पत्रकार और संपादक

समाचारपत्र में समाचारों का चयन, लेखन और संपादन करने वाले कर्मियों पत्रकार के रूप में जाना जाता है । प्रत्येक समाचार की एक नीति होती है । इस नीति का निर्धारण

आमतौर समाचारपत्र के मालिक और प्रबंधक करते हैं लेकिन जिन्हें लागू करने का दायित्व संपादक मंडल का होता है । संपादक मंडल समाचारपत्र में प्रकाशित होने वाली प्रत्येक सामग्री के लिए उत्तरदायी होता है । पत्रकारी और संपादकों के अलावा समाचारपत्र से प्रबंधक, तकनीशियन और अन्य कई तरह के काम करने वाले कर्मचारी भी जुड़े होते हैं । इनमें वे हॉकर भी शामिल हैं जो घर-घर जाकर अखबार को उनके पाठकों तक पहुँचाते । हैं । समाचारपत्र से जुड़े ये सभी लोग अलग-अलग शर्तो और नियमों के तहत काम करते हैं । कुछ स्थायी होते हैं, कुछ अस्थायी । कुछ काम के अनुसार पारिश्रमिक पाते हैं तो कुछ कमीशन के आधार पर । समाचारपत्रों मी स्वरूप अब काफी कुछ बदल गया है । समाचारपत्रों के विक्रय से कई गुना ज्यादा आमदनी इनमें छपने वाले। विज्ञापनों से होती हैं । यही कारण है कि समाचारपत्र अपने पाठकों के प्रति जवाबदेह होने की बजाय उन कम्पनियों के प्रति जबावदेह ज्यादा दिखते हैं जो उन्हे विज्ञापन देकर करोड़ो रुपये कमाने का प्रदान करते हैं ।

पत्रिकाएँ

समाचार पत्रों की अपेक्षा पत्रिकाएँ संख्या में ज्यादा निकलती हैं और उनमें विविधता भी ज्यादा होती है । हालांकि अधिकांश बड़ी पत्रिकाएँ व्यावसायिक संस्थानों द्वारा प्रकाशित होती हैं। लेकिन इस क्षेत्र में ऐसे लेखक, प्रकाशक और अन्य तरह के संगठन भी सक्रिय हैं जो सीमित संसाधनों के बावजूद अच्छी पत्रिकाएँ निकाल रहे हैं । पत्रिकाएँ प्राय: साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रमा।३२क, अर्द्धवार्षिक और वार्षिक आधार पर निकलती हैं । पत्रिकाएँ प्राय: अखबारों की तरह सामान्य प्रकार की नहीं होती । यानी कि ऐसी पत्रिकाएँ बहुत कम होती है ।जिसमें सब तरह की सामग्री प्रकाशित होती हों । इंडिया टुडे, ऑउट लुक इस तरह की पत्रिकाएँ कही जा सकती है । लेकिन अधिकांश पत्रिकाएँ खास अभिरुचि वाले पाठकों के लिए खास विषय पर केंद्रित होती हैं । जैसे- महिलाओं के लिए निकलने वाली गृहशोभा, गृहलक्ष्मी, वनिता, सहेली आदि पत्रिकाएँ । इसी तरह समाचारों का और विचारों का गहन रूप से निबन्धात्मक प्रस्तुति करने वाली अंग्रेजी पत्रिका फ्रंट लाइन । हिन्दी में साहित्य, संस्कृति, सिनेमा, शिक्षा आदि कई विषयों पर स्वतंत्र रूप से भी कई पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं । अखबारों की तरह बहुत कम पत्रिकाओं के पाठक लाखों की संख्या में होते हैं । ज्यादातर पत्रिकाओं के पाठक कुछ हजार होते हैं । लेकिन उनमें प्रकाशित होने वाली सामग्री गहन और स्थायी प्रभाव वाली होती है इसलिए उनका महत्त्व अखबारों से कम नहीं होता ।

19.4 पत्रकारिता के विभिन्न रूपों हेतु लेखन

पत्रकारिता आजकल दो प्रकार की हैं-एक तो पत्र-पत्रिकाओं के लिए जो मुद्रित रूप में अपने पाठकों तक पहुँचती हैं और दूसरा टेलीविजन के लिए जिनके समाचार टेलीविजन चैनलों पर प्रसारित होते हैं । टेलीविजन पर समाचार और उनका विश्लेषण तथा अन्य सामग्री लिखित रूप में नहीं बल्कि दृश्य-श्रव्य रूप में प्रस्तुत की जाती है । लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि टेलीविजन के लिए लेखन क्षमता की जरूरत नहीं होती । टेलीविजन पर समाचारों की प्रस्तुति से पूर्व समाचारों को लिखना होता है । इसी तरह कोई भी कार्यक्रम जिसमें किसी विषय के बारे में सामग्री दी जानी है । उसके लिए पटकथा का निर्माण करना होता है और इस पटकथा का

निर्माण भी लेखन के द्वारा होता है । दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि टेलीविजन पर कार्यक्रम की प्रस्तुति करने वाले पत्रकार में अभिव्यक्ति की भाषिक क्षमता पर्याप्त होनी चाहिए यानी कि वह तत्काल सही शब्दों का चयन करते हुए उपयुका वाक्यों का निर्माण कर सके. । उसकी भाषा प्रभावशाली, उच्चारण शुद्ध और साफ होना चाहिए । वह बोलते हुए इस बात का ध्यान रखे कि कोई ऐसा शब्द या ऐसी बात उसके मुख से न निकले जो किसी व्यक्ति या समुदाय को आघात पहुँचाने वाली हों और आचार संहिता के विरुद्ध हो । क्योंकि एक बार प्रसारित हो जाने के बाद उसको मिटाया नहीं जा सकता । यदि कार्यक्रम 'लाइव' प्रसारित हो रहा है तो इस तरह की सावधानी और भी जरूरी है । इसी तरह टेलीविजन के पत्रकार की जानकारी बहुत विस्तृत होनी चाहिए । उसका दृष्टिकोण और उसकी समझ प्रगतिशील और लोकतांत्रिक होनी चाहिए । साथ ही वह तीव्र बुद्धि वाला होना चाहिए ताकि ऐसे अवसरों पर जब उसके सामने पहले से तैयार सामग्री नहीं है तो वह स्वयं अपनी बात को प्रभावशाली भाषा में प्रस्तुत कर सके या किसी का साक्षात्कार ले रहा है तो जरूरी और प्रासंगिक प्रश्न पूछ सके ।

टेलीविजन के लिए पत्रकार में जिस तरह की योग्यता जरूरी है, समाचारपत्र के लिए भी वही योग्यता कुछ भिन्न रूप में जरूरी है । समाचारपत्र के लिए टेलीविजन की तुलना में पत्रकार को ज्यादा समय मिल पाता है लेकिन पत्रिकाओं की तुलना में बहुत-बहुत कम । प्रत्येक दिन प्रकाशित होनेवाले समाचारपत्र के कई पृष्ठों की सामग्री को पत्रकारों को मिलकर तैयार करना होता है । इसकी जिम्मेदारी अलग-अलग पत्रकारों को उनकी विशेषज्ञता के अनुसार दी जाती है । यानी कि खेलकूद के समाचारों और उससे जुड़ी अन्य सामग्री का लेखन और संपादन वही पत्रकार करता है जिसे खेलकूद के लेखन के लिए जरूरी तकनीकी ज्ञान हो और उनसे संबद्ध पारिभाषिक शब्दों की भी जानकारी हो । यह नहीं समझना चाहिए कि कोई भी पत्रकार किसी भी विषय पर लिख सकता है । पत्रकारिता भी विशेषज्ञता का क्षेत्र है और प्रत्येक पत्रकार को यह तय करना होता है कि उसे किस क्षेत्र में विशेषज्ञता हासिल करनी है । दूसरी विशेषता पत्रकार में यह होनी चाहिए कि उसका भाषा ज्ञान अपने पाठकों की तुलना में ज्यादा होना चाहिए लेकिन उसे अपने पाठकों के भाषा ज्ञान की भी जानकारी होनी चाहिए । समाचारपत्र के लिए लिखते हुए किस तरह की भाषा का प्रयोग किया जाना है और उसे कैसे सुबोधगम्य और संप्रेषणीय बनाना है, इसकी क्षमता भी उन्हें हासिल करनी होती है।

समाचारपत्रों की तुलना में पत्रिकाओं के लिए लिखना अलग तरह का होता है । यह लेखन पेशेवर पत्रकार ही करें यह जरूरी नहीं है । लेकिन समाचारपत्रों से भी अधिक पत्रिकाओं के लिए लेखन करने वाले लेखक आमतौर पर उस विषय के विशेषज्ञ होते हैं जो अपनी विस्तृत जानकारी के आधार पर अपना लेखन करते है । पत्रिकाओं के पाठक स्वयं भी क्षेत्र विशेष से जुड़े होते हैं । इसलिए उनका भाषा ज्ञान सामान्य पाठकों की तुलना में ज्यादा गहरा होता है । इसलिए पत्रिकाओं में समाचारपत्रों से अलग तरह की लेकिन ज्यादा गंभीर और अधिक तकनीकी भाषा का भी इस्तेमाल किया जाता है। फिर भी, लेखकों को चाहिए कि वह अपने पाठकों के अनुसार सहज, संप्रेषणीय और रचनात्मक भाषा का इस्तेमाल करे ।

19.5 समाचार लेखन

पत्रकारिता के क्षेत्र में समाचार संकलन के महत्त्व के बाद समाचार लेखन का महत्त्व उजागर होता है । लेखन की प्रमुख विशेषता यही है कि यदि उसे एक सिरे से पढ़ना शुरू किया जाए तो फिर पाठक की यह मजबूरी हो जानी चाहिए कि उसे अन्त तक न छोड़े । यूँ तो समाचार कई तरह के होते हैं । उनमें कहीं मानवीय भावनाएँ होती हैं तो कहीं विश्लेषण, कहीं सूचना होती है तो कहीं कोई ऐसी घटना या प्रसंग जौ पाठकों को असामान्य प्रतीत होता है । फिर पाठक भी विभिन्न तरह के होते है किसी की खेल में रूचि है तो, किसी की साहित्य में । कोई फिल्मों के बारे में जानना चाहता है, तो कोई राजनीति के बारे में । किसी को अपराध की जानकारी का चस्का होता है तो कोई सामाजिक गतिविधियों से जुड़ना चाहता है । मूलत: समाचार के आकर्षण को बढ़ाने वाले तत्व हैं : सामयिकता, मानवीय. रूचि, आत्मीयता और समीपता ।

इसी के साथ लेखन की गुणवता को बढ़ाने वाले तत्व हैं सत्यता, स्पष्टता, सुरुचि और संक्षिप्तता ।

समाज के निरन्तर विकास और मानवीय अभिरूचि के विषयों में परिवर्तन के कारण वर्तमान में समाचार लेखन की तकनीक समाचारपत्रों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रखती है। समाचारपत्र पूर्व की भाँति केवल सुबह ही नहीं मिलते बल्कि शाम को मिलने वाले समाचार-पत्रों की संख्या में भी तेजी से वृद्धि हुई है । समाचारपत्र हेतु समाचार लेखन में सिद्धान्त रूप में निम्नलिखित तत्वों का प्रभाव प्रमुख है:

(1) **सामयिकता :** समाचार पुराना पड़ते ही उपयोगी नहीं रह जाता । यह जनरुचि से भी दूर हो जाता है । समाचार जितना नवीन होगा, पाठकों की रूचि भी उसमें उतनी ही अधिक होगी । प्रत्येक पाठक नवीन घटनाक्रमों के बारे में अधिक से अधिक जानना चाहता है । यही कारण है कि तत्कालिकता व सामयिकता समाचार का महत्त्वपूर्ण गुण है । वैसे भी सामान्य प्रवृति है कि व्यक्ति कब, क्यों कहाँ, कैसे आदि प्रश्नों के जबाव एक साथ चाहता है । राजनीतिक-सामाजिक घटनाएँ, स्थितियाँ, परिदृश्य आदि की जानकारी पाठक की मांग है अत: समाचार लेखन की तकनीक में सामयिकता का महत्वपूर्ण स्थान

(2) **घटना स्थल :** वे समाचार उन पाठकों के लिए अधिक ग्राह्य और दिलचस्पी वाले होते हैं जिनसे उनका प्रत्यक्ष या परोक्ष संबंध हो । यही कारण है कि हर अखबार मुखपृष्ठ पर महत्वपूर्ण समाचार छापने के बाद अन्दर के पृष्ठों पर पाठकों की व्यापक अभिरुचि के अनुरूप समाचार छापते हैं । जो घटनाएँ पाठक के आस-पास और उससे सम्बन्धित होती है, उसमें उनकी गहरी रुचि होती है ।

(3) **मानवीय सुरुचि :** प्रत्येक मनुष्य के मन में कहीं न कहीं सकारात्मक संवेदनाऐ स्थान रखती हैं। वह सामाजिक और मानवीय सरोकारों से जुड़ना चाहता है । ऐसा करने से उसे आत्मिक संतुष्टि मिलती है । मानवीय संवदेनाओं और जीवन के अनछुए पहलुओं को प्रकाश में लाने वाले समाचार मानवीय-रूचि के विषयों में आते हैं । इन समाचारों

को लिखने के तरीके और संवेदनाओं को जोड़कर रोचक प्रस्तुति दी जा सकती है । ये समाचार पाठक वर्ग के सर्वाधिक सदस्यों द्वारा पढ़े और सराहे जाते हैं । रूठते मानसून के बीच सिर पर घड़ा रखे कुएँ पर नंगे पाँव, दरारों वाली धरती पर होकर जाती किशोर बालिका का फोटो और समाचार में पानी की व्यथा-कथा पाठकों का हृदय-उद्वेलित कर देती है ।

(4) **आत्मीयता :** आत्मीयता निजता का आधार है । समाचार से जुड़ी घटनाओं में पाठक जितनी आत्मीयता पाएगा वह उससे उतना ही अधिक प्रभावित होगा । ग्रामीण विकास योजनाओं में बेरोजगारों को रोजगार दिलाने वाली योजनाओं के समाचार में ग्रामीण युवाओं की आत्मीयता होगी जबकि शहरी युवाओं और सामान्य लोगों को शायद उतनी आत्मीयता न हो । वे अपने जीवन से सीधे जुड़े विषयों में ज्यादा आत्मीयता पायेंगे ।

(5) **सत्यता :** समाचार का सत्य तथ्यों पर आधारित होना उसकी बुनियादी शर्त है । खबरों की सत्यता समाचार को प्रभावी बनाती है । समाचार किसी पूर्वाग्रह को लेकर न हों साथ ही उनमें पक्षपात भी न हो तो खबर सर्वग्राह्य हो जाती है । किसी भी कीमत पर सत्यता को बनाए रखना ही समाचार लेखन का प्रभावी सिद्धांत है । सत्यता को संकीर्ण अर्थ में नहीं ग्रहण करना चाहिए । किसी भी तथ्य को उसके सभी पक्षों और वस्तुपरक परिप्रेक्ष्य के साथ जनहित में प्रस्तुत करना ही 'सत्यता है ।

(6) **स्पष्टता:** समाचार लेखन में यह सिद्धांत मायने रखता है कि आप खबर को कैसे प्रस्तुत कर रहे हैं? समाचार को समझने में पाठक सहज महसूस करे ओर उसके मर्म तक पहुँच पाए तो खबर की सार्थकता है।

(7) सुरुचि प्राय: प्रत्येक व्यक्ति की रूचियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं । लेकिन कुछ अभिरूचियाँ ऐसी भी होती हैं जो बड़े समुदाय में समान रूप से पायी जाती हैं इसलिए यह बहुत जरूरी है कि विविधता का ध्यान रखते हुए भी व्यापक और सामान्यगत अभिरूचियों के अनुरूप सामग्री का चयन किया जाना चाहिए ।

(8) **संक्षिप्तता :** समाचारपत्रों में स्थानाभाव और पाठक की पठन- सीमाओं के कारण लम्बी खबरें प्रभावी नहीं होती । अत: समाचार-लेखन में यह कोशिश हो कि थोड़े शब्दों में ज्यादा से ज्यादा बात कही जा सके ।

19.6 फीचर लेखन

समकालीन घटना तथा किसी भी क्षेत्र विशेष की विशिष्ट जानकारी के सचित्र तथा मोहक विवरण को फीचर कहा जाता है । समाचारों की बजाय फीचर मनोरंजक ढंग से तथ्यों को प्रस्तुत करता है । तथ्यों के लिए वह विभिन्न स्रोतों से सूचनाएं और आकड़े प्राप्त करता है, विभिन्न लोगों से मिलता है, उनका साक्षात्कार लेता है और उनसे अपने लेखन को समृद्ध करता है । इसमें पाठकों को मिलने वाली जानकारी रोचक ढंग से प्रस्तुत की जाती है ।

फीचर में विस्तार की अपेक्षा होती है । फीचर की अपनी एक अलग शैली होती है । समाचार के तथ्यों में परिवर्तन नहीं हो सकता है अत: उनमें एकरूपता होती है लेकिन एक ही विषय पर लिखा गया फीचर अपनी प्रस्तुति के कारण अलग-अलग पत्रिकाओं में अलग अंदाज

प्रस्तुत करता है । फीचर में भूत , वर्तमान, भविष्य सभी का समावेश हो सकता है । उसमें तथ्यों और कल्पना का भी मणिकांचन संयोग होता है । उदाहरण के लिए क्रिकेट के वर्ल्ड कप के लिए विभिन्न टीमों पर दिये गये फीचर में लेखक टीमों की संभावित हार-जीत, खेलों में प्रदर्शन, उतार-चढ़ाव आदि को रेखांकित कर सकता है । फीचर में आकड़े, फोटो, रंगीन पारदर्शियां कार्टून, चार्ट, नमो आदि का उपयोग उसे रोचक बना देता है । समाचारों की तर्ज कब, क्यों. कहां, कैसे को छोड़कर फीचर तथ्य व कल्पना का सटीक मिश्रण होता है ।

किसी भी पत्रिका में किसी विषय पर जानकारियों से भरी रोचक शैली में आलेख प्रकाशित होता है तो वह -फीचर कहलाता है । जहाँ समाचार में संक्षिप्तता है तो वहीं फीचर में विस्तार ही उसकी स्थिति को प्रबल बनाता है । समाचार और फीचर लेख में जो भिन्नता दिखाई देती है उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:

(1) समाचार साधारण बोलचाल की भाषा में प्रस्तुत होता है जबकि फीचर की विशिष्ट शैली होती है, वह एक विशेष वर्ग पर केन्द्रित होता है ।

(2) समाचार तथ्यों पर आधारित होते हैं लेकिन पत्रकार और पत्र की नीति और दृष्टिकोण के अनुसार प्रस्तुति में अंतर आ सकता है जबकि फीचर में यह अंतर भाषा और शैली के स्तर ।पर भी दिखाई देता है ।

(3) (3) फीचर के साथ लेखक का नाम प्रकाशित किया जाता है । समाचार के साथ प्राय: नहीं ।

(4) फीचर में आकड़े, साक्षात्कार, उद्धरण आदि के साथ मूल सामग्री को प्रस्तुत किया जाता है जबकि समाचार में तथ्यों का ही खास महत्त्व होता है ।

(5) घटना के परिवेश, विविध प्रतिक्रियाएँ व उनके दूरगामी परिणाम फीचर में समाविष्ट होते हैं । समाचारों - के लिए यह अनिवार्य नहीं है ।

(6) उद्देश्यपरक रूप में फीचर तथ्यों की गवेषणा के साथ लक्ष्य, मार्गदर्शन व मनोरंजन का संसार प्रस्तुत करता है ।

फीचर के मुख्य रूप से निम्न प्रकार होते हैं:

1. घटनापरक फीचर

इस प्रकार के फीचर में घटनाओं और उनसे जुड़े तथ्यों को आधार बनाकर के सूत्र जुटाए जाते है । दिनोदिन जीवन की ऐसी घटनाएँ जो मनुष्य के जीवन पर तात्कालिक या प्रभाव डालती हैं वे घटनापरक फीचर का स्वरूप ले लेती हैं ।

2. व्यक्तिपरक फीचर

इस प्रकार के फीचर में मुख्य आधार किसी प्रसिद्ध व्यक्ति के कार्य व सम्बंधित पक्षों को बनाया जाता है । इस प्रकार के फीचर में उस प्रसिद्ध व्यक्ति के बारे में पूरी लेकिन तथ्यपूर्ण जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है । लेकिन ऐसे फीचर में इस बात का भी ध्यान रखना होता है कि पाठक : उस प्रसिद्ध व्यक्ति के बारे में क्या जानना और पढ़ना चाहता है और क्या नहीं । इस बात की सावधानी न रखने पर ऐसे फीचर विपरीत प्रभाव भी पैदा कर देते हैं ।

3. लोकाभिरूचि फीचर

इस प्रकार के फीचर में उन तथ्यों का समावेश किया जाता है जिससे व्यक्ति अनायास ही प्रमुदित होकर रूचि ले । हल्के-फुल्के जन अभिरूचि के मनोरंजक विषय इसमें समाहित किए जाते है । इससे व्यक्ति रंजन के साथ फीचर सामग्री से जुड़ता है । त्योहारों, पर्वो, यात्राओं, साहसपूर्ण और रोमांचकारी घटनाओं, सिनेमा, टेलीविजन और खेलकूद से जुड़ी हस्तियों के बारे में लिखे गये फीचर लोकाभीरुचि फीचर कहे जा सकते हैं ।

4. सांस्कृतिक फीचर

देश की कला-संस्कृति परम्पराओं से जुड़े मुद्दों पर लिखे गए फीचर सांस्कृतिक फीचर होते है । ये पाठकों को कला-संस्कृति के जाने-अनजाने परिदृश्यों व महत्त्व से परिचित कराते है । किसी भी देश की परम्परा व विरासत वहाँ की संस्कृति होती है ।

5. साहित्यिक फीचर

साहित्य और उससे जुड़े मुद्दों पर प्रस्तुत किए गए फीचर साहित्यिक फीचर की श्रेणी मे आते हैं । इनके माध्यम से जहाँ एक ओर साहित्यिक अभिरुचि के पाठकों को बौद्धिक व साहित्यिक मुद्दों पर नवीन जानकारियाँ मिलती हैं वहीं वह साहित्यिक हस्तियों, साहित्यिक कृतियों से परिचय प्राप्त कर उनका महत्त्व समझ पाता है ।

6. फोटो फीचर

फोटो फीचर किसी घटना विशेष पर केन्द्रित होता है । घटना का परिदृश्य व क्षेत्र, समाचार विश्लेषण, किसी महत्त्वपूर्ण हस्ती आदि से सम्बन्धित किसी भी विषय पर फोटो फीचर हो सकता है । महत्वपूर्ण यह है कि उसमें प्रस्तुत किये गए तथ्यों व विवरणों के साथ अधिकृत चित्र प्रकाशित किए जाते हैं । एक चित्र हजार शब्दों के बराबर प्रभावी होने से फीचर के मर्म का बढ़ा कर सामान्य पाठक के लिए एक प्रभावी प्रस्तुति बनाता है । फोटो फीचर के लिए फोटोग्राफर में रचनात्मकता का होना आवश्यक है ।

7. विज्ञान फीचर

विज्ञान की नवीन उपलब्धियों, वैज्ञानिक सोच और विकास व इससे जुड़े विषयों पर केन्द्रित करके बनाए गए फीचर विज्ञान-फीचर के अन्तर्गत आते है । लोगों को इस बात के प्रति जागरूकता पैदा करना कि पर्यावरण को प्रदूषण से बचाना क्यों जरूरी है, विज्ञान फीचर के अंतर्गत ही आता है ।

फीचर को प्राय: लेख या निबंध भी समझ लिया जाता है । गंभीर अध्ययन पर आधारित प्रमाणिक रचना लेख होती है । जबकि पाठकों को रोचक और सरस ढंग से सूचना, ज्ञान और शिक्षा प्रदान करने वाला लेख फीचर की श्रेणी में आता है । एक का सम्बन्ध दिमाग से है और दूसरी का दिल से । किताबों का उदाहरण लेकर, आंकडे, जमा करके लेख लिखे जा सकते हैं, लेकिन फीचर लिखने के लिए अनुभूतियों, आवेगों और अन्वेषण का सहारा लेना पड़ता है । लेख लम्बा और गंभीर का हो सकता है, लेकिन फीचर मनोरम और दिलचस्प होता है । लेख में प्रामाणिक जानकारी, सरल-सुबोध भाषा में होनी चाहिए जबकि फीचर में इन गुणों के

अलावा रोचक शैली और प्रांजल भाषा का होना भी जरूरी है । अच्छी शुरुआत और आनन्ददायक अन्त यही फीचर की मुख्य सफलता है ।

19.7 सारांश

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' नामक पाठ्यक्रम की इस इकाई में आपने समाचारपत्र और पत्रिकाओं के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की है । टेलीविजन और इंटरनेट के इस युग में भी समाचारपत्रों और पत्रिकाओं की लोकप्रियता में कमी नहीं आई है । शिक्षा के विस्तार के साथ-साथ समाचारपत्र और पत्रिकाओं की संख्या और प्रसार संख्या में भी बढ़ोतरी होती जाती है ।

प्रस्तुत अध्ययन के द्वारा आप पत्रकारिता के विभिन्न रूपों व प्रक्रियाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं । आप जान चुके हैं कि समाचार पत्र व पत्रिकाओं का स्वरूप किस प्रकार विकसित होता है । समाचारपत्र और पत्रिकाओं के लेखन करते हुए किन बातों का ध्यान रखना होता है, किस तरह की भाषा-शैली का उपयोग करना होता है । इस इकाई में फीचर की विशेषताओं और उसके विभिन्न प्रकारों के बारे में भी आप जानकारी प्राप्त कर चुके हैं ।

19.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पत्रकारिता का आशय स्पष्ट करते हुए समाचारपत्र के महत्त्व और प्रासंगिकता का उल्लेख कीजिए ।
2. पत्रकारिता के विभिन्न रूपों का परिचय देते हुए यह बताइए कि टेलीविजन और इंटरनेट के युग में भी इनकी लोकप्रियता के क्या कारण है?
3. फीचर लेखन की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उसके प्रकारों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कीजिए ।
4. समाचारपत्र के लिए लेखन और टेलीविजन के लिए लेखन में मुख्य अंतर क्या है? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए ।
5. मनुष्य समाचारों के बारे में क्यों जानना चाहता है? क्या आज के समाचारपत्र (उसकी जरूरतों को पूरा करने में सक्षम है? अपना मत प्रस्तुत कीजिए । ।

19.9 सन्दर्भ ग्रंथ

1. डी. जगदीश शर्मा' पत्रकारिता प्रशिक्षण, हरीश प्रकाशन मंदिर, आगरा
2. राधेश्याम शर्मा विकास पत्रकारिता, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला
3. आलोक मेहता भारत में पत्रकारिता, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली
4. डॉ. सुशीला जोशी हिन्दी पत्रकारिता, विकास और विविध आयाम, - हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
5. डॉ. सुधीर सोनी पत्रकारिता और जनसंचार, विश्वविद्यालय प्रकाशन, जयपुर

इकाई-20 पत्रकारिता के विभिन्न क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 पत्रकारिता के विविध प्रकार
20.3 खोजी पत्रकारिता
20.4 इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के लिए पत्रकारिता
20.5 ग्रामीण पत्रकारिता
20.6 बाल पत्रकारिता
20.7 विज्ञान पत्रकारिता
20.8 आर्थिक पत्रकारिता
20.9 शैक्षिक पत्रकारिता
20.10 खेल पत्रकारिता
20.11 फिल्म पत्रकारिता
20.12 साहित्यिक सांस्कृतिक पत्रकारिता
20.13 संदर्भ पत्रकारिता
20.14 सारांश
20.15 अभ्यासार्थ प्रश्न
20.16 सन्दर्भ ग्रंथ

20.0 उद्देश्य

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' पाठ्यक्रम के अंतिम खण्ड की यह तीसरी इकाई और पाठ्यक्रम की 20वी इकाई है । इस इकाई को पढ़ने के बाद आशा करते है कि आप

- पत्रकारिता के विविध रूपों की व्याख्या कर सकेंगे ।
- खोजी, ग्रामीण, बाल, विज्ञान, आर्थिक आदि पत्रकारिता का वर्गीकरण कर सकेंगे ।
- शैक्षिक, खेल, फिल्म, साहित्यिक, सांस्कृतिक पत्रकारिता आदि की मूल अवधारणा को समझ सकेंगे ।

बदलते परिप्रेक्ष्यों के साथ देखा जाए तो पत्रकारिता ने अपने कलेवर को समाचार पत्र और पत्रिकाओं तक ही सीमित नहीं रखा है बल्कि संचार के विविध क्षेत्रों यथा दृश्य-श्रव्य माध्यमों से लेकर वर्तमान की समस्त नवीन प्रविधियों तक इन्होंने अपना विस्तार कर लिया है। पूर्व में जहाँ देशप्रेम और राष्ट्रीय चेतना की बात को ही पत्रकारिता की परिधि में समाविष्ट किया जाता था वहीं अब देश में आ रहे विविध परिवर्तनों, सरोकारों, कार्य-व्यापार, जनजीवन से जुड़े विविध मुद्दे और देश की खुशहाली के लिए किए जाने वाले विविध प्रयत्न भी इस परिधि में

सम्मिलित हो गए हैं । भूमंडलीकरण और विविध देशों के मध्य बढ़ते अन्योन्याश्रित संबंधों के साथ-साथ ही राजनीतिक गतिविधियाँ, साझा बाजार, नीतिगत मसलों आदि ने भी पत्रकारिता के दायरे को विस्तार दिया है । भारत के परिप्रेक्ष्य में आम आदमी की भूमिका को देखा जाए तो वह अपने दैनिक जीवन में रोजी-रोटी की समस्याओं से ही जूझता रहता था पर अब पत्रकारिता के विविध क्षेत्रों के माध्यम से उसने अपने आप को समाज की मुख्यधारा के साथ न केवल जोड़ा है बल्कि अपने वैचारिक और क्रियात्मक योगदान से देश को अग्रसर करने में अपनी भूमिका को विस्तार भी दिया है । इस इकाई में हम पत्रकारिता के विविध क्षेत्रों के पक्षों को जानकर उसकी भूमिका की विस्तार से समीक्षा तो कर ही सकेंगे साथ ही पत्रकारिता के उन पक्षों को भी जान पाएँगे जिससे उसकी भूमिका की पहचान सार्थक रूप में हो सकती है ।

20.1 प्रस्तावना

इस खण्ड में आपने अब तक पत्रकारिता का अर्थ और स्वरूप तथा पत्रकारिता के विभिन्न रूपों के बारे में अध्ययन किया है ।

पत्रकारिता महज एक पेशा नहीं है बल्कि वह एक जागरूक समाज और व्यक्ति की पहचान है । पत्रकार का दायित्व बहुत विस्तृत है । समाज के लिए कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका जिस तरह आधारभूत स्तम्भ है उसी तरह पत्रकारिता भी एक जरूरी स्तंभ है जिसके माध्यम से समाज की हर घटना का आकलन कर उसे सम्भावित नुकसान से बचाया जा सकता है । भारत जैसे देश के लिए तो पत्रकारिता का स्तर और भी व्यापक हो उठता है । यह पत्रकारिता ही है जिसने भारत की आजादी में जनचेतना का मार्ग प्रशस्त किया था ।

विकासशील देश में समाज के समक्ष अनेकानेक समस्याएँ आती हैं और स्वस्थ समाज की दिशा में अग्रसर रहने के लिए उन समस्याओं का उचित निवारण करना आवश्यक होता है । ऐसे में आवश्यकता इस बात की है कि पत्रकारिता उस 'मिशन' को सफल बनाए जो समाज की उन्नति के लिए जरूरी है । भारतीय-पत्रकारिता का महत्व इसी तथ्य से उजागर हो जाता है कि हमारे पत्रकारों ने किसी भी आपदा के समय पूरे समाज को देशहित में सदैव संगठित किया है व उसके मनोबल को ऊँचा बनाए रखा है । हालांकि पत्रकारिता अब एक ऐसे पेशे में बदल गयी है जिसमें संपूर्ण समाज का हित हाशिए पर डाल दिया गया है ।

पत्रकारिता निर्भीक पत्रकार के लिए एक चुनौती है । उसे राष्ट्र की नब्ज पर लगातार अँगुली रखनी होती है । उसे समाज के लिए शान्ति से लेकर संघर्ष तक की अवधारणा को अपनाना पड़ता है । देश-विदेश की घटनाएँ उसके लिए उत्पेरक का कार्य करती हैं ।

20.2 पत्रकारिता के विविध प्रकार

आज पत्रकारिता सिर्फ समाचार-पत्रों तक ही सीमित नहीं है, बदलते समय के साथ इसका विस्तार जन-संचार के नए-नए और आधुनिक क्षेत्रों तक होता चला गया है । आज देश की भिन्न-भिन्न समस्याओं, समाज और मनुष्य की प्रगति, विकास योजनाओं, खुशहाली लाने वाली योजनाओं की जानकारी के लिए पत्रकारिता प्रभावी हो रही है । उसी के अनुरूप पत्रकारिता के रूझान और प्रकारों में भी बदलाव आया है । अब दैनिक जीवन का प्रत्येक पहलू पत्रकारिता का विषय बन रहा है । एक ओर जहाँ कला-संस्कृति को मान्यता मिल रही है वहीं दूसरी ओर

विकास पत्रकारिता जैस आयामों को भी लिया जाने लगा है । अनुसंधान परक पत्रकारिता को भी अब मुख्य धारा में शामिल किया जाने लगा है । इसमें अपने निजी प्रयासों से इच्छित क्षेत्र में अपने शोध प्रयत्नों से घटना को अन्वेषित करने का प्रयास किया जाता है । दूसरी ओर बदलते संचार माध्यमों के साथ पत्रकारिता ने अपने कलेवर का विकास किया है । हालांकि उसकी चुनौतियों और अवधारणा में कोई फर्क नहीं आया है । टेलीविजन, रेडियो, वृत्तचित्रों आदि ने पाठक, श्रोता, दर्शक को बदलती परिस्थितियों के अनुरूप परिभाषित किया है ।

अब पत्रकारिता से कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं है । खेल हो या मनोरंजन, बालकों के लिए ज्ञानवर्धक और मनोरंजक सामग्री हों या युवाओं के अथवा बुजुर्गों से लेकर महिलाओं तक के लिए उपयोगी सामग्री, इन सभी पहलुओं पर पत्रकारिता की नजर है । समाज का कोई भी कोना- इससे अछूता नहीं रहा है । आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक मुद्दे तो हैं ही उनसे भी अलग संस्कृति, आम आदमी की सोच और उसके सरोकार आदि को भी पत्रकारिता में स्थान मिलने लगा है । साहित्यिक कला संबंधी परिप्रेक्ष्य भी अब विविध कलेवर में स्थान पाने लगे हैं । साथ ही, पत्रकारिता के नवीन स्रोतों जैसे संदर्भ पत्रकारिता व अनुसंधान पक्षों को भी मान्यता मिलने लगी है ।

20.3 खोजी पत्रकारिता

'खोजी पत्रकारिता' पत्रकारिता का एक महत्वपूर्ण प्रकार है । इस प्रकार की पत्रकारिता के स्वरूप में किसी ऐसी घटना या वस्तुस्थिति की शोधपरक तथ्यों के आधार पर पड़ताल की जाती है, जिससे सटीक निष्कर्ष निकल सकें । इस तरह की पत्रकारिता के निष्कर्ष जहाँ हमारे राष्ट्रीय-सामाजिक जीवन को प्रभावित करते हैं वहीं जनता में पत्रकारिता के प्रति विश्वास उत्पन्न करते हैं ।

वर्तमान दौर में इसके ज्वलंत कई उदाहरण मिलते हैं । राजनीति हो या सार्वजनिक जीवन, सरकारी योजनाओं की क्रियान्विति हो या समाज का ठोस यथार्थ सभी में खोजी पत्रकारिता की भूमिका के देखा जा सकता है । इस पत्रकारिता में जहाँ निष्ठा, निस्वार्थता, घटना का वैज्ञानिक अध्ययन और अनुसंधान तथा तथ्यों की प्रमाणिक प्रस्तुति होने पर यह एक वरदान की तरह साबित होती है, वहीं यदि इसमें निहित स्वार्थ दुरुपयोग यार सनसनी फैलाने की भावना का समावेश हो तो इसे 'पीत-पत्रकारिता' बनने में देर नहीं लगती ।

इस खोजी पत्रकारिता का उपयोग जनहितकारी मसलों के पक्ष में जनता को जागरूक बनाने के लिए किया जाता है । इसके लिए पत्रकारों को कई तरह के खतरे भी उठाने पड़ते हैं । अमेरिका मे वाटरगेट काण्ड के कारण दो साहसी पत्रकार बुकवर्ड और बर्नस्टेन, जब इस घोटाले को -सामने लाये तो अमेरिका के राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन को अपनी गद्दी छोड़नी पड़ी थी । खोजपूर्ण पत्रकारिता का विकास उन्नीसवीं सदी से हुआ । इसका उद्देश्य जल्दी व सही ऐसी खबर देना होता था जो कि बहुत से व्यक्तियों को एक साथ प्रभावित कर सकती हो ।

अभी हाल ही में 'तहलका डॉट काम' के पत्रकारों द्वारा देश के रक्षा सौदों में दलाली का जो तथ्यपूर्ण समाचार प्रस्तुत किया गया उससे सम्पूर्ण देश राजनीतिक स्तर पर हिल उठा था । इसने तत्कालीन रक्षामंत्री जार्ज फर्नाडीज को अपने पद से त्यागपत्र देने के लिए मजबूर कर

दिया था । एक संवाददाता अश्विनी सरीन धौलपुर के देह व्यापार को उजागर करने के उद्देश्य से खुद ही भेष बदलकर कमला नामक एक औरत को खरीद लाए और देश भर में चर्चा का विषय बने ।

खोजी पत्रकारिता का अर्थ ऐसी जानकारी देना होता है जो गोपनीयता की परतें उघाड़ कर लायी गई हों । खोजी पत्रकार अपनी पैनी नजर से नवीन समाचारों की खोज में लगा रहता है । खोजी पत्रकार का सबसे कठिन कार्य गोपनीयता की दीवार को भेदना होता है क्योंकि खबर तो वह होती है जिसके बारे में किसी को पता नहीं हो व अचानक एक नग्न सच्चाई पाकर पाठक अभिभूत हो जाएँ । इस प्रकार के समाचारों को 'स्कूप' कहते हैं । पत्रकारिता ऐसे ही कंधे पाकर नई जमीन कुरेदती व नए क्षितिज छूती है ।

प्रशासनिक भ्रष्टाचार, राजनीतिक अनाचार और सामाजिक दुष्प्रवृतियों का पर्दाफाश करना पत्रकारों का कर्तव्य माना जाता है । जो पत्रकार अन्याय के खिलाफ कलम चलाता है उसकी ताकत उसके द्वारा खोजे गये नवीन और जनहितकारी तथ्य होते हैं । यही उसकी शक्ति होती है । खोजी पत्रकारिता का एक महत्त्वपूर्ण भूमिका कानूनी मान्यताओं और पहलुओं की है। वर्तमान समय में कानून की प्रक्रिया में इतनी पेचीदगियाँ हैं कि पत्रकार को हर समय सजग रहना होता है । उसे आए दिन पुलिस और न्यायालय से टकराना पड़ता है । भारत में चल रही कानून-व्यवस्था का प्रभाव खोजी पत्रकारों व समाचार पत्रों पर उसी तरह पडता है जैसा अन्य व्यक्तियों या मानव क्रियाकलाप के अन्य क्षेत्रों पर । यही वजह है कि ' 'पत्रकारिता और कानून का सम्बन्ध एक आधार की तरह है । " भारत का संविधान प्रेस और पत्रकार की स्वतंत्रता की ही बात नहीं करता बल्कि वह इस माध्यम से पत्रकार के दायित्व को महत्वपूर्ण बनाता है । भारतीय संविधान की प्रस्तावना लोकतंत्र के मूल्यों को इस प्रकार अभिव्यक्ति देती है

हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं ।"

अपने कार्य में खोजी पत्रकार को अपनी कहानी में कहीं न कहीं कानूनी पेचीदगियों का सामना करना पड़ता है । इस संदर्भ में आवश्यक कानूनों की पर्याप्त जानकारी उसके लिए आवश्यक है ।

20.4 इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के लिए पत्रकारिता

इन माध्यमों के लिए पत्रकार को सजग व चौकस निगाहों के साथ बुद्धि कौशल की आवश्यकता होती है । किसी भी घटना के दृश्यों को पकड़ना और उन्हें प्रस्तुत करना, इसी में इन माध्यमों का कौशल परिलक्षित होता है । रेडियो में तो समाचार को मात्र शब्दों के रूप में श्रोता तक पहुँचाना होता है । इसलिए सजग होकर घटना के विवरण को इसके केंद्र में रखा

जाता है । लेकिन टेलीविजन जैसे दृश्य माध्यम. में 'दृश्य' का महत्त्वपूर्ण पक्ष होता है । किसी भी घटना के कवरेज (संकलन) में कैमरा दर्शक को क्या दिखा रहा है यह अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है । इसके लिए पत्रकार में तथ्यों की पहचान, उनका विवेकपूर्ण ढंग से समझने और समाज पर पड़ने वाले प्रभावों का आकलन करने की क्षमता होना जरूरी है ।

मुंबई में 26 नवंबर, 2008 को हुए आतंकवादी हमले की तस्वीरों को टेलीविजन के समाचार चैनलों ने जिस ढंग से प्रस्तुत किया, उसके पीछे एक खास तरह की राजनीति काम कर रही थी । इसी तरह वर्तमान लोकसभा चुनावों के समय पूरे देश में राजनीतिक चेतना जगाने और लोकतंत्र में वोट देने के अधिकार का उपयोग करने का प्रचार करने का महत्त्वपूर्ण काम इलेक्ट्रॉनिक-मीडिया ने किया । टेलीविजन में यह ' तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि इसमे दृश्य-श्रव्य पक्ष दोनों ही उपलब्ध होने के कारण यह आम दर्शक के लिए भी उतना ही प्रभावी है जितना कि खास दर्शक के लिए । ऐसे में इसकी भूमिका, प्रभाविता और उपादेयता निश्चय ही बढ़ जाती है । भारत जैसे देश में इस पक्ष की अहमियत इसलिए और भी व्यापक हो जाती है क्योंकि अभी भी भारत की एक-तिहाई आबादी निरक्षर है । ऐसे में टेलीविजन और रेडियो जैसे माध्यम यही अधिक प्रभावी सिद्ध हो रहे हैं क्योंकि इन्होंने उस व्यक्ति को भी अपने दायरे में लिया है जो कि साक्षर नहीं है । इन माध्यमों की व्यापकता और प्रभाविता का अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि 'पल्स पोलियो' और 'सर्व शिक्षा अभियान' जैसे मुद्दों को इन्होंने समाज में सार्थकता के साथ प्रस्तुत कर सामाजिक जागृति लाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । यही कारण है कि इलेक्ट्रॉनिक माध्यम पत्रकारिता के सर्वाधिक महत्वपूर्ण बन गये हैं ।

20.5 ग्रामीण पत्रकारिता

ग्रामीण पत्रकारिता का उद्देश्य ग्रामीण जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करना है। परिवार और जन-कल्याण, साक्षरता, कृषि की उन्नत विधियाँ, महिला और बाल विकास की स्थितियों का आकलन, नवीन योजनाओं की जानकारी और गाँवों को विकास की मुख्यधारा से जोड़ना इनमें शामिल है । महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है । आज भी देश का 70 प्रतिशत हिस्सा गाँव है और पूरे देश को खाद्यान्न की आपूर्ति गाँवों से ही होती है । अत: ग्रामीण पत्रकारिता न केवल गाँवों के सत्य को उजागर करती है बल्कि गाँव और शहरों के पारस्परिक सम्बन्ध को सुदृढ़ करने का कार्य करती है । ग्रामीण जीवन में साक्षरता के महत्त्व को बढ़ाने, खेती के उन्नत तरीकों के प्रचार-प्रसार के साथ ही ऐसी सरकारी योजनाओं का प्रचार-प्रसार भी इस पत्रकारिता के माध्यम से होता है जिससे ग्रामीण जीवन को समृद्धि के नव आयाम मिल सकें । चौपालों से आज उठती स्वाभिमान और अपने हक की बात, महिला सशक्तिकरण की बात, पढ़ने-लिखकर आगे बढ़ने की बात, राजनीतिक चेतना और अपने हक की बात आदि अनेकानेक मुद्दे हैं जो इन माध्यमों और पत्रकारिता की प्रभाविता को सिद्ध करते हैं । इन बातों के बावजूद सच्चाई यह है कि भारतीय पत्रकारिता में ग्रामीण जीवन को बहुत कम जगह मिल पाती है । ग्रामीण जीवन की खबरें तभी जगह प्राप्त कर पाती हैं जब या तो किसान आत्महत्या करने को मजबूर होता है या कोई भयावह प्राकृतिक हादसा होता है ।

20.6 बाल पत्रकारिता

कहा गया है कि बालक ही देश के भविष्य हैं । बच्चों का जीवन जितना सशक्त और प्रभावी होगा देश का भविष्य उतना ही निश्चिन्त और शक्तिशाली होगा । बच्चे खेल में बहुत कुछ सीखने की क्षमता रखते हैं अत: पत्रकारिता में इस प्रकार के मूल्यों को शामिल किया जाता है जिनमें बालकों के लिए उपयुक्त तत्वों का उचित समावेश हो । शिक्षा व संस्कार बालक की नींव हैं । पत्रकारिता इन्हें दूर-दराज के बच्चों तक पहुँचाती है । साथ ही बाल जीवन के दुखद पहलुओं जैसे अशिक्षा, कुपोषण, बालश्रम, धूम्रपान, बालकों के साथ अनैतिक व्यवहार आदि की ओर एक बड़े वर्ग का ध्यान आकृष्ट करती है । बच्चों को वह उन पहलुओं से परिचित भी कराती है जिससे उनमें कौतूहल और जिज्ञासा का भाव हो विकसित हो सके । वह उन्हें भटकाव से निकालकर, अंधविश्वासों व रूढ़ियों से दूर, सृजन और ज्ञान के उजाले में ले जाती है । मुद्रण कला और बेहतर चित्रों के माध्यम से सम्पादक जन-चेतना विकसित कर बच्चों की समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट कर सकते हैं । 'क्राई फ्राउण्डेशन' ने बेहतर चित्रों व शब्दों का इस्तेमाल कर गरीब, बेसहारा, निचले वर्गों के बच्चों के लिए जो सराहनीय प्रयास किए हैं वे बच्चों की पत्रकारिता का बेहतर उदाहरण हैं । यही कारण है कि प्राय: सभी समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं में नियतकालिक बच्चों के पृष्ठ होते हैं और बच्चों की खबरों को वहाँ प्रमुखता दी जाती है । इसके अलावा बाल पत्रकारिता में बालजीवन का प्रतिनिधित्व करती कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि विविध साहित्यिक विधाओं का समावेश होता है । बच्चों की विविध शारीरिक और मानसिक समस्याओं, पढ़ाई-लिखाई का बोझ, महेगी शिक्षा, विविध सरोकार आदि के साथ जनमानस को बच्चों के स्वस्थ विकास के लिए बेहतर पक्षों और वातावरण के निर्माण के लिए पत्रकारिता अमृत तुल्य है । बाल पाठकों के लिए इन सभी पक्षों के नियोजन में यह पक्ष महत्त्वपूर्ण है कि उनकी स्वाभाविक जिज्ञासाओं, मानसिक स्तर, कौतूहल, रचनात्मकता आदि का समावेश करते हुए बालपन के अनुरूप हम बच्चे को शब्दों, चित्रों व वाणी का बेहतर संसार दे सकें ।

20.7 विज्ञान पत्रकारिता

विज्ञान के बिना आज समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है । आज छोटे से छोटे संसाधन से लेकर बड़ी से बड़ी उपलब्धि तक में विज्ञान का हाथ है । विज्ञान ही वह धुरी है जिस पर सामाजिक जीवन का चक्र घूमता है । यही कारण है कि प्रत्येक पत्र समाचारों में ' विज्ञान समाचार' को प्रमुखता देते हैं । नवीन शोधों, औषधियों, यंत्रों, नये आविष्कारों और मशीनरी पर नवीनतम सामग्री देखने को मिलती है । विज्ञान-प्रगति, आविष्कार और साइंस टुडे जैसी पत्र-पत्रिकाएँ आज के युग में विज्ञान की उपयोगिता को रेखांकित करती है । विज्ञान-पत्रकारिता यह माँग करती है कि उसमें तकनीकी शब्दों की दुरूहता से बचते हुए सरल प्रस्तुति दी जाए ताकि जनमानस में वह रोचकता के साथ प्रस्तुत हो सके । साथ ही विज्ञान पत्रकारिता से यह अपेक्षा भी है कि वह जनमानस और समाज को अंधविश्वासों, रूढ़ियों, बीमारियों और रुग्ण मानसिकता से निजात दिलाकर स्वस्थ दृष्टिकोण के साथ सन्मार्ग की ओर अग्रसर कर

सके । दूसरे शब्दों में विज्ञान पत्रकारिता का उद्देश्य वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करना भी है। यूँ भी आज का युग विज्ञान का युग कहलाता है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान का समावेश हो चुका है । नित नए उपकरणों और वैज्ञानिक युक्तियों ने संपूर्ण जीवन की दिशा को विज्ञान के सार्थक पक्षों और सरोकारों की ओर मोड़ दिया है, ऐसे में आवश्यकता इस बात की है हम विज्ञान के उन्नत पक्षों और वैज्ञानिक खोजों का पत्रकारिता के माध्यम से सार्थक प्रयोग कर मनुष्य और समाज को श्रेष्ठ आयामों की ओर मोड़ सकें ।

20.8 आर्थिक पत्रकारिता

'पैसा फेंक, तमाशा देख'' की उक्ति भले ही रोचक संवाद का रूप ले चुकी है पर तथ्यात्मक रूप से यह सच है कि आज का युग अर्थप्रधान है । आज के बदलते समय व सरोकारों ने अर्थ को जनजीवन के काफी निकट ला दिया है । आर्थिक समाचार अब समाचार पत्रों की सुर्खियाँ बनने लगे हैं । शेयर बाजार, मण्डी-भाव, सट्टा बाजार, तेल-तिलहन बाजार, तेजडिए-मंदडिए आर्थिक जगत की पहचान हैं । आर्थिक विश्लेषण का एक नियमित पृष्ठ समाचार पृष्ठों में जुड़ने लगा है । इकॉनामिक टाइम्स, द इन्वेस्टर जैसे पत्र अपनी बढ़ती प्रसार संख्या से अपने महत्त्व को रेखांकित कर रहे हैं । आर्थिक समाचारों का विश्लेषण, बाजार के उथल-पुथल का पूर्वानुमान, विदेशी और भारतीय मुद्रा की स्थिति, ग्रामीण और कुटीर उद्योग-धन्धों का रूख, सोना-चाँदी के बाजार की दरें आज प्रमुखता के -साथ पाठकों द्वारा स्वीकारें जाने वाली सामग्री है । आज शेयर सूचकाँक के साथ ही समाज के एक प्रभावी हिस्से की धड़कने ऊपर-नीचे होने लगती हैं । विशेष रूप से वर्तमान में जब से मंदी पाँव पसार रही है ऐसे में आर्थिक पत्रकारिता ने अपने दायरे को और व्यापक कर लिया है । आज सरकार की आर्थिक नीतियाँ, पंचवर्षीय योजनाएँ और अर्थ से सरोकार रखते पक्ष विविध समाचारपत्रों की सुर्खियाँ होते हैं । लगभग सभी समाचारपत्रों, रेडियो समाचार और टेलीविजन समाचार बुलेटिनों में इसीलिए आर्थिक गतिविधियों और खबरों को प्राथमिकता दी जाती है ।

20.9 शैक्षिक पत्रकारिता

शिक्षा मनुष्य की बुनियादी जरूरत है । बिना शिक्षा के मनुष्य और पशु में बहुत फर्क नहीं है । शिक्षा का क्षेत्र विस्तृत है और ऐसे में यह क्षेत्र अपनी विस्तृत परिधि में बहुत-कुछ को समेट लेता है । शैक्षिक जगत की हलचल, परीक्षा परिणाम, विभिन्न रोजगारपरक क्षेत्रों के लिए शैक्षिक-संस्थानों का लेखा-जोखा, रोजगार और शिक्षा के अवसरों की सूचना, वर्तमान दौर के उपयोगी और आवश्यक शैक्षिक क्षेत्र, विभिन्न उच्च अध्ययन संस्थान और विश्वविद्यालय जैसे क्षेत्रों की सूचनाएँ शैक्षिक पत्रकारिता में संकलित की जाती है । शिक्षकों की समस्याएँ विद्यार्थियों की परेशानी, परीक्षा पद्धति के प्रारूप की खामियाँ जैसे मुद्दे भी इसमें समाहित होते हैं । यदि शैक्षिक पत्रकारिता का सही और सार्थक उपयोग निरंतर किया जाता रहे तो इससे न केवल व्यक्ति की जागरूकता का विकास होता है बल्कि इससे समाज की सार्थकता को भी रेखांकित किया जा सकता है । उच्च शिक्षा संस्थानों की अध्ययन पद्धति, छात्रों और युवा वर्ग की बेरोजगारी और शिक्षा से जुड़ी समस्याएँ, शोध और उच्च शिक्षा के सरोकार, महँगी होती

शिक्षा, बेहतर शिक्षा का औचित्य आदि के पक्ष शैक्षिक पत्रकारिता की जरूरत हैं । कहा जाता है कि पत्रकारिता समाज परिवर्तन का हथियार है तो शिक्षा भी आने वाले कल को निर्मित करने का यंत्र - है । वह मानव को अपने समाज में उचित स्थान तो दिलाती ही है साथ ही मानव को समाज में उचित परिष्कार के साथ प्रस्तुत करने में भी उसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है । पत्रकारिता इन्हीं भूमिकाओं को व्यवहारिक धरातल पर नवीन आयाम देती है ।

20.10 खेल पत्रकारिता

खेल मानव जीवन का अभिन्न हिस्सा है । कबड्डी से क्रिकेट तक की यात्रा का हर खेल मनुष्य की क्रियात्मकता का पहलू है । क्रिकेट मैच के समय रेडियो-टीवी पर लोगों की दीवानगी देखते ही बनती है । दीवानगी के इसी आलम के चलते प्रमुख समाचारपत्रों में एक पृष्ठ नियमित रूप से खेल पर केन्द्रित होता है । खेल-जगत के बड़े-बड़े आयोजनों जैसे ओलम्पिक, क्रिकेट विश्व कप, फुटबाल विश्वकप, विम्बलडन फार्मूला- 1 की रेस आदि ने खेलों को लोकप्रिय बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है । खिलाड़ी और खेलों के बारे में पूरी जानकारी आँकडे, हार-जीत के विवरण, हार-जीत की संभावनाएँ आदि के माध्यम से खेल-पृष्ठ को रूचिकर और सम्पन्न बनाया जाता है । सभी समाचार पत्रों और समाचार बुलेटिनों में इसी वजह से खेल सामग्री को स्थायी रूप से समाविष्ट किया जाता है । युवा वर्ग का रूझान भी खेलों की ओर तेजी से बढ़ा है क्योंकि आज खेल नाम, पैसा, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि सभी कुछ मुहैया करा रहा है । क्रिकेट, टेनिस, हॉकी,शूटिंग, पोलो आदि का ग्लैमर पूरे समाज पर छा रहा है । विशेष रूप से हाल ही में जबसे भारत ने ओलंपिक खेलों में पहली बार एक साथ तीन पदक जीते हैं तब से खेलों और उसके पत्रकारिता पक्षों को गंभीरता से लिया जाने लगा है । लेकिन खेल पत्रकारिता की विडंबना यह है कि खेलों में सबसे अधिक महत्त्व क्रिकेट को दिया ' जाता है । इसके बाद उन अभिजात खेलों को जो आम आदमी की पहुँच से बाहर है । खेलों की दुनिया का व्यवसायीकरण और खिलाड़ियों द्वारा खेलों से अधिक महत्त्व विज्ञापनों को देना, इसी खेल पत्रकारिता ने संभव बनाया है । आज खेलों पर व्यावसायिक निगमों और औद्योगिक घरानों का वर्चस्व हो गया है और खेल पत्रकारिता उनकी अनुषंगी बन गयी है ।

20.11 फिल्म पत्रकारिता

सिनेमा एक लोकप्रिय जन माध्यम है । भारत विश्व का सबसे अधिक फिल्म उत्पादक देश है । प्रतिवर्ष लगभग 800- 1000 फिल्में यहाँ बनती हैं । बदलती तकनीक, विषय-वस्तु और एवं प्रस्तुतीकरण ने फिल्मों को मनोरंजन का सबसे लोकप्रिय माध्यम बना दिया है । इसके जादू से शायद ही कोई बचा हो । फिल्मों के नमो-कदम पर चलकर ही टेलीविजन पर आने वाले धारावाहिक भी उतने ही लोकप्रिय हे रहे हैं । फिल्मों के माध्यम से हमारे समय का यथार्थ, उससे जुड़ी भविष्य कल्पना और सामान्यजन के सपने व्यक्त होते हैं । लोक फिल्मों के बारे में, फिल्मों से जुड़े कलाकारों के बारे में ज्यादा से ज्यादा जानना चाहते हैं ।

फिल्म-समीक्षाएँ, फिल्मी हीरो-हीरोइनों के निजी जिन्दगी, बॉक्स ऑफिस रिपोर्ट, शूटिंग रिपोर्ट, फिल्मी गपशप, गीतों दृश्यों, स्थितियों के विवेचन ने इन्हें आज सबसे ज्यादा बिकने

वाला सब्जेक्ट बना दिया है । सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाएँ इन पर नियत कालिक सामग्री छापते हैं। केवल फिल्मी विषयों पर केन्द्रित सैकड़ों पत्रिकाएँ बाजार में उपलब्ध हैं । फिल्मी-पत्रकार भी ग्लैमर चकाचौंध, रोचक मसालों भरी रिपोर्टिंग और सिने नायक व तारिकाओं की अंतरंग जिन्दगी की सामग्री जन-सामान्य को परोसते हैं । आकर्षक मुद्राओं के चित्रों और नायिकाओं की भड़कीली तस्वीरों का जाल भी फिल्म पत्रकारिता पर छाया रहता है । हल्के-फुल्के मनोरंजन और रोचक चटपटी खबरों के रूप में फिल्म पत्रकारिता विकसित हुई है । यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि फिल्मों पर गंभीर सामग्री देने वाली फिल्मी पत्रिकाएँ बहुत कम हैं ।

20.12 साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता

पत्रकारिता केवल सूचना और तथ्यपरक सामग्री ही प्रदान नहीं करती बल्कि वह व्यक्ति को आदमी के सरोकारों और रचनात्मकता से भी जोड़ती है । जड़ों से जुड़ाव न होने पर किसी भी समाज का फलना-फूलना संदिग्ध है इसलिए साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता का महत्त्व बढ़ जाता है । पुस्तक-समीक्षा, साहित्य-सृजन साहित्यिक संगोष्ठियों की रपट, कवि-सम्मेलन, नृत्य समारोहों, जयन्तियों, सम्मेलनों आदि के ब्यौरे और विश्लेषण से जुड़ी पत्रकारिता को इसमें स्थान मिलता है। किसी भी अखबार और पत्रिका की मूल आत्मा एवं सोच की झलक उसकी साहित्यिक, सांस्कृतिक पत्रकारिता से मिलती है । साथ ही उसके पाठक वर्ग के जुड़ाव की अभिरूचियों का पता भी चलता है।

वर्तमान में साहित्यिक सांस्कृतिक पत्रकारिता को मुखर करती अनेक पत्रिकाएँ हैं । हँस, कथन, बहुवचन कथादेश, कसौटी, आजकल, मधुमति, नया ज्ञानोदय आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं । साथ ही प्रत्येक समाचारपत्र अपने रविवारीय संस्करण में साहित्य-संस्कृति से संबंधित सामग्री जरूर देते हैं ।

20.13 संदर्भ पत्रकारिता

संदर्भ पत्रकारिता पुस्तकालय विज्ञान की उपलब्धि है । इसका आरम्भ 20वी सदी की शुरुआत में हुआ । शाब्दिक रूप में इसका अर्थ बांधने वाली, जोड़ने-मिलाने वाली सेवा से है । पुस्तकालय संगठन के अनुसार. "यह लाइब्रेरी कार्य का वह पक्ष है जिसका सीधा सम्बन्ध किसी प्रकार के अध्ययन अथवा शोध में लगे पाठकों के लिए सूचना खोजने और प्रदान करने से है ।" सार रूप में देखे तो सूचना-सेवा का प्रमुख कार्य है जो अन्य सभी सन्दर्भों और कार्यो से जुड़ा है। साथ ही उन्हें प्रभावशाली बनाता है ।

यह तथ्य पत्रकारिता में भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है । किसी भी व्यक्ति, विषय, क्षेत्र के बारे में अद्यतन सूचना-पत्रकारों के लिए अत्यन्त आवश्यक है । यह सूचना सन्दर्भ सेवा के माध्यम से ही ली जा सकती है । सभी समाचारपत्रों में एक सन्दर्भ पुस्तकालय की स्थापना की जाती है ताकि पत्रकार समाचार और समाचारपत्र हेतु उसका समुचित उपयोग कर सके । पत्रकारिता के कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए प्राय: एकाधिक विषयों का सहारा लेना पड़ता है । ये विषय और सामग्री जब सुव्यवस्थित और सटीक स्वरूप में आवश्यकता के अनुसार उपलब्ध हो जाती हैं, तो न केवल पत्रकार को बल्कि पाठकों तक भी समाचार के साथ

जो अतिरिक्त ब्यौरा पहुँचता है वह उसे उपयोगी एवं रोचक लगता है । उदाहरण क लिए 'सती-काण्ड' एक समाचार के रूप में मीडिया जगत में सनसनी फैला देता है । इस प्रकरण में सन्दर्भ-सेवा इसके कानूनी प्रावधान, रोक के उपाय, राजा राममोहन राय के प्रयास और पूर्व में सती हुई महिलाओं की पूरी खोजबीन दे सकती है । ऐसे में जहाँ पत्रकार को अपनी खबर प्रामाणिक बनाने में मदद मिलती है । वहीं इसके सम्पूर्ण प्रावधानों से भी वह पाठक को अवगत करा सकते है । शिक्षा, चिकित्सा, बालश्रम अपराध, सूखा, बाढ, दुर्घटना आदि के समाचारों में आए दिन जरूरी 'संदर्भों' की आवश्यकता महसूस होती है । इसीलिए समाचारपत्रों ने अपने प्रतिष्ठानों में सन्दर्भ-सेवा की उपयोगिता को मान्यता प्रदान कर इसे प्रभावी बनाया है । यह सेवा सूचना प्रसारण सेवा के समकक्ष मानी गई है । श्रमजीवी पत्रकार वेतन मंडल ने समाचारपत्र प्रतिष्ठानों के सन्दर्भ पुस्तकालयों में सेवारत पुस्तकालयाध्यक्ष को पत्रकार वर्ग में शामिल कर उन्हें श्रमजीवी पत्रकार के समान वेतन प्रदान किया है ।

इस प्रकार की पत्रकारिता के लिए संदर्भ विभाग का गठन किया जाता है । यह विभाग जहाँ पत्रकारों को तुरन्त किसी विषय पर सामग्री 'प्रदान करता है वहीं यह विज्ञापन, प्रसारण और प्रशासकीय विभागों की जरूरतों के लिए भी महत्वपूर्ण है । इस विभाग का गठन सुनियोजित और दृढ़ होना चाहिए । इस विभाग के संगठन के मुख्य घटक इस प्रकार हैं :-

- संदर्भ सामग्री को व्यवस्थित करना
- पुस्तकालयाध्यक्ष या संदर्भ अधिकारी
- उपकरण ।

वह सामग्री जिसका उपयोग आवश्यतानुसार किसी विषय पर सूचना प्राप्त करने हेतु किया जाए सन्दर्भ-सामग्री कहलाती है । इसके विषय धर्म, कला, संस्कृति, इतिहास, अर्थशास्त्र राजनीति, विज्ञान, वाणिज्य आदि होते हैं । इसके अतिरिक्त विभिन्न स्रोतों से आवश्यक सामग्री संकलित कर जानकारी हेतु संयोजित की गई पुस्तकें भी यहाँ होती हैं ।

विभिन्न प्रकार के शब्द-कोश (Dictionary) होते हैं । ये एकभाषी, द्विभाषी या बहुभाषी हो सकते है। इससे किसी शब्द का अर्थ, उत्पत्ति, अक्षर विन्यास, उच्चारण आदि की जानकारी मिलती है । यहाँ कुछ विश्वकोष (Encyclopedia) भी होते हैं।आकारादि क्रम से इनमें विविध विषयों पर आलेख होते है । ये सूचनाओं का पूरा सागर होते हैं । साथ ही ये विभिन्न आयु, वर्ग विषयों आदि से सम्बन्ध रखते है ।

किसी गणमान्य व्यक्ति, संस्था, सरकारी संस्थान आदि की सूचना के लिए यह उपयोगी ग्रन्थ भी संदर्भ सेवा में संकलित होता है । व्यक्ति विशेष के जीवन-चरित्र की जानकारी देने वाली पुस्तक, जीवन-चरित्र का संकलन प्रमुख व्यक्तियों के जीवन और कार्यो की जानकारी देने के लिए किया जाता है । इसके अलावा हैण्ड बुक और मैनुअल, भौगोलिक सन्दर्भ स्रोत, ग्रंथ सूचियां, संयुक्त सूचियाँ आदि भी आवश्यकतानुसार यही होते हैं ।

20.14 सारांश

आपने इस इकाई में पत्रकारिता के विभिन्न क्षेत्रों की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त की है । इसके अध्ययन के पश्चात यह कहा जा सकता है कि पत्रकारिता के क्षेत्रों में क्या विविधता होती है और प्रत्येक क्षेत्र के अनुरूप किस प्रकार हम पत्रकारिता के मापदण्डों को स्थापित करते हुए उन्हें समाज और व्यक्ति के लिए उपयोगी आयाम दे सकते हैं । वर्तमान दौर के किसी भी क्षेत्र को देखें तो हमें प्रतीत होगा कि जीवन क्रा बड़े से बड़ा और छोटे से छोटा हिस्सा भी पत्रकारिता से अछूता नहीं है । व्यवसाय से लेकर अध्ययन, अर्थ से लेकर साहित्य, खेल से लेकर कला, संस्कृति और धरती से आकाश के बीच का दृश्य जगत कहीं न कहीं संचार माध्यमों और पत्रकारिता में प्रस्तुत होता है । समाज के किसी भी क्षेत्र की इनके बिना कल्पना नहीं की जा सकती है ।

लोकतंत्र में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एक प्रमुख स्तम्भ होती है इसलिए व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि लोकतंत्र की आशाओं व अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए अपना योगदान निरंतर देता रहे । साथ ही समाज व व्यक्ति को उसके दायित्व की याद दिलाने और. प्रकिया को पूरा करने का दायित्व पत्रकारिता पर आता है ।

विकासशील देश में समाज के सम्मुख अनेकानेक समस्याएँ आती हैं और स्वस्थ समाज की दिशा में अग्रसर रहने के लिए उन समस्याओं का उचित निवारण करना आवश्यक होता है । ऐसे में आवश्यकता इस बात की है कि पत्रकारिता उस 'मिशन' को सफल बनाए ।

पत्रकारिता निर्भीक पत्रकार के लिए एक चुनौती है । उसे राष्ट्र और समाज की नब्ज पर लगातार अंगुली रखनी होती है । उसे समाज के लिए शान्ति से लेकर संघर्ष तक की स्थितियों को जानना-समझना पड़ता है । देश-विदेश की घटनाएँ उसके लिए उत्पेरक का कार्य करती हैं ।

20.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पत्रकारिता के विविध रूपों का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।
2. इलेक्ट्रानिक पत्रकारिता का परिचय देते हुए उसके महत्त्व पर प्रकाश डालिए ।
3. राजनीतिक और आर्थिक पत्रकारिता के महत्त्व और प्रासंगिकता का उल्लेख कीजिए ।
4. सांस्कृतिक क्षेत्र की पत्रकारिता का उल्लेख करते हुए बताइए कि इस पत्रकारिता के लिए पत्रकार में कौन से गुण होने चाहिए ।
5. ग्रामीण और कृषि संबंधी समस्याओं को समाचारपत्रों और समाचार चैनलों पर महत्त्व के साथ प्रस्तुत करने के लिए किस तरह के पत्रकारिता की आवश्यकता है' सोदाहरण बताइए।

20.16 सन्दर्भ ग्रंथ

1. डॉ. जगदीश शर्मा; पत्रकारिता प्रशिक्षण, हरीश प्रकाशन मंदिर, आगरा
2. राधेश्याम शर्मा; विकास पत्रकारिता, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला
3. आलोक मेहता; भारत में पत्रकारिता, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली

4. डॉ. सुशीला जोशी,; हिन्दी पत्रकारिता, विकास और विविध आयाम, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
5. डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र; हिन्दी पत्रकारिता
6. डॉ. सुधीर सोनी; पत्रकारिता और जनसंचार, विश्वविद्यालय प्रकाशन, जयपुर

इकाई - 21 विश्व पत्रकारिता का परिचय

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य
21.1 प्रस्तावना
21.2 अन्तर्राष्ट्रीय समाचार जगत: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि,
213 अन्तर्राष्ट्रीय समाचार समितियाँ
214 प्रसारण माध्यम के रूप में रेडियो और टेलीविजन
275 अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सूचना-राजनीति
216 संयुक्त राष्ट्र संघ एवं अन्य एजेंसियों के प्रयास
217 यूनेस्को के प्रयास
218 गुटनिरपेक्ष आंदोलन के विकास पर बल
219 सारांश
21.10 अभ्यासार्थ प्रश्न
21.11 सन्दर्भ ग्रंथ

21.0 उद्देश्य

पाठ्यक्रम छह 'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' की यह 21वी इकाई है और खंड-4 की चौथी इकाई । प्रस्तुत इकाई विश्व पत्रकारिता का परिचय' में अन्तर्राष्ट्रीय समाचार जगत, समाचार, समितियाँ, रेडियो और टेलीविजन, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सूचना-राजनीति, संयुक्ता राष्ट्र द्वारा सूचना प्रसारण को क्षेत्र में किये गये प्रयास आदि का विवरण प्रस्तुत किया गया है । इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप समझ सकेंगे कि-

- अन्तर्राष्ट्रीय प्रेस जगत के प्रसार और विभिन्न देशों के समाचारपत्रों के बारे ने ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।
- समाचारपत्रों के स्वामित्व और नियंत्रण के बारे में भी समझ सकेंगे ।,
- रेडियो, टेलीविजन आदि इलेक्ट्रोनिक माध्यमों के परिदृश्य से भी परिचित हो ।। सकेंगे।
- आप यह भी जान सकेंगे कि विश्व में सूचना-तंत्र की दशा-दिशा की रूपरेखा क्या है ।
- यूनेस्को की विश्व समाचारपत्रों और विभिन्न माध्यमों के संदर्भ में भूमिका को स्पष्ट कर सकेंगे ।

21.1 प्रस्तावना

इस खंड में आप अब तक पत्रकारिता के अर्थ और स्वरूप, पत्रकारिता के विभिन्न रूप और क्षेत्र की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं । इस इकाई में विश्व समाचार जगत का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, अन्तर्राष्ट्रीय समाचारपत्रों और माध्यमों का विकास, यूनेस्को की भूमिका, विश्व में प्रेस का नियंत्रण, प्रेस परिषदों की भूमिका, प्रेस-कानूनों आदि की विवेचना की गई है । प्रस्तुत इकाई

के अध्ययन के पश्चात आप भारतीय समाचार जगत के संदर्भ में भी एक तुलनात्मक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे । समाचार जगत के बारे में विभिन्न देशों के विचारों र कार्य पद्धति का अध्ययन करके आप आज के बदले हुए सूचना टेक्नोलॉजी के विकास के कारण करीब आए दुनिया के अन्य देशों की प्रेस की खूबियों को पहचान सकेंगे । साथ ही आप इसकी भूमिका को बेहतर ढंग से प्रतिपादित कर सकेंगे ।

21.2 अन्तर्राष्ट्रीय समाचार जगत : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

समाचार जगत या प्रेस को राज्य का चौथा-स्तम्भ माना गया है । लेकिन विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की तुलना में यह सबसे नया और आयु में छोटा-स्तम्भ है । इसका तात्पर्य यह है कि समाचार जगत को राज्य के विभिन्न स्तम्भों की तुलना में बहुत देरी से एक प्रमुख स्तम्भ के रूप में पहचाना गया । यूरोप में सबसे पहले समाचारपत्रों का प्रादुर्भाव जर्मनी में हुआ । जर्मनी का पहला समाचारपत्र "Avisa Relation Oder Zeitung " यूरोप में दैनिक समाचारपत्रों का प्रचलन तो 20 सदी के आरंभिक सालों में ही संभव हुआ । समाचारपत्रों के विकास क्रम में सबसे बड़ा योग दिया मुद्रण-कला और संचार टेक्नोलॉजी के विकास ने । इसके अलावा, यातायात के तीव्र साधन, समाचार या संवाद समितियों की स्थापना और साक्षरता प्रसार ने भी दैनिक और अन्य समाचारपत्रों को गति दी और उनके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया ।

प्रथम विश्व युद्ध के तत्काल बाद का समय विश्व प्रेस के लिए स्वर्णिम काल माना जाता है । एशिया और अफ्रीका के नव-स्वतंत्रता प्राप्त देशों में समाचारपत्रों का तेजी से विकास हुआ । समाचारपत्र जगत में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विकास की गति धीमी पड़ गई क्योंकि समाचारपत्रों के प्रकाशन की अर्थव्यवस्था बदलने लगी थी और आर्थिक दृष्टि से कमजोर समाचारपत्र बंद होने लगे थे । इसके बाद विश्व-प्रेस या अन्तर्राष्ट्रीय प्रेस जगत को एक और झटका उस समय लगा जबकि इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के आगमन से पत्रों के पाठकों और इस वजह से उनकी आय भी कम हो गयी । यह 1950 और 1960 के दशकों का समय था । यद्यपि इसके बाद 1970 के दशक में समाचारपत्रों की गिरती दशा को एक विराम मिला । कंप्यूटर टेक्नोलॉजी और ऑफसेट मुद्रण प्रणाली के आगमन, दुनिया के कई देशों को स्वतंत्रता मिल जाने, साक्षरता में वृद्धि होने तथा इलेक्ट्रॉनिक या श्रव्य-दृश्य संचार माध्यमों की तुलना में मुद्रित समाचारपत्रों की अपनी अलग विशेषताओं के कारण प्रतिस्पर्धा के बावजूद दुनिया के समाचारपत्रों के आकार और प्रसार में वृद्धि अंकित की गई । यह वृद्धि का दौर 1980 के बाद शुरू हुआ और प्रतिस्पर्धा का सामना करते हुए विश्व प्रेस फिर दृढ़ता से अपने अस्तित्व को कायम रखने में सफल हुआ ।

दैनिक समाचारपत्र और उनका प्रसार

यूनेस्को के आकड़ों के अनुसार सन 1969 में दुनिया के 146 देशों में 7680 दैनिक समाचारपत्रों का प्रकाशन होता था जो बढ़कर 1978 में 8210हो गया । यह संख्या 156 देशों में प्रकाशित होने वाले दैनिकों की है । इस प्रकार दस वर्ष की अवधि में मात्र 530समाचारपत्रों की वृद्धि हुई । दैनिक समाचारपत्रों की बढ़ने की गति की तरफ ही प्रसार-संख्या में बढ़ोतरी के

आकड़े भी उत्साहजनक रहे । इन समाचारपत्रों की प्रसार-संख्या 1978 में सर्वाधिक ऊँचाई पर पहुँची और 44 करोड़ से ज्यादा हो गई । लेकिन इस समय तक दुनिया में ऐसे 28 देश थे, जिनमें एक भी समाचारपत्र नहीं छपता था । हालांकि हर देश में किसी न किसी प्रकार के समाचारपत्र निकलने लगे थे । दैनिक समाचारपत्रों में सबसे अधिक प्रसार-संख्या वाले समाचारपत्र दस बड़े देशों में छपते थे । इन दस देशों के समाचारपत्रों के प्रसार का हिस्सा, दुनिया के पत्रों की कुल प्रसार-संख्या का 63 प्रतिशत था । इनमें सबसे अधिक समाचारपत्रों का प्रकाशन संयुक्त राज्य अमेरिका से होता था । इस प्रकार अमेरिका दैनिक समाचारपत्रों के प्रकाशन के लिहाज से 1978 में दुनिया में पहले नंबर का देश था ।

भारत साक्षरता और शिक्षा के क्षेत्र में पीछे होते हुए भी दैनिक समाचारपत्रों के प्रकाशन की दृष्टि से दुनिया का दूसरे नंबर का देश था । 1978 में भारत में दैनिक पत्रों की संख्या 835 थी । सोवियत संघ में 691 दैनिक थे और उसका स्थान इस लिहाज से तीसरा था चौथे स्थान पर 434 दैनिकों वाले तुर्की का था । समाचारपत्रों के प्रकाश की यात्रा में पहला कदम उठाने वाले जर्मनी का पाँचवां स्थान था और वहाँ 334 दैनिक पत्र प्रकाशित होते थे । ब्राजील में 280 मैक्सिको में 256, जापान में 180 इण्डोनेशिया में 172 तथा अर्जेन्टीना में 164 दैनिकों का प्रकाशन होता था । दैनिक पत्रों की प्रसार संख्या के संदर्भ में सोवियत रूस का पहला स्थान तथा सर्वाधिक समाचारपत्रों का प्रकाशन करने वाले अमेरिका का दूसरा स्थान था । उस समय रूस जे 691 अखबारों का प्रसार 10करोड़ 92 लाख 8 हजार था जबकि अमेरिका के 1815 समाचारपत्रों का प्रसार 6 करोड़ 12 लाख 22 हजार था । जापान तीसरे स्थान पर था । वहाँ के दैनिकों की प्रसार संख्या 5 करोड़ 78 लाख 20 हजार थी । दैनिक पत्रों की संख्या के स्तर पर दूसरे नंबर के देश- भारत के समाचारपत्रों की प्रसार संख्या कम थी और 93 लाख, 83 हजार की प्रसार संख्या के साथ इस संदर्भ में भारत सातवें स्थान पर था । इसके बाद पोलैंड, इटली और दक्षिण कोरिया के समाचारपत्र, आठवें, नवें और दसवें स्थान पर थे । दुनिया में तीस देश ऐसे थे जहाँ समाचारपत्रों का प्रसार प्रति एक हजार लोगों के बीच मात्र 10था । समाचार पत्रों की संख्या और उनकी प्रसार संख्या का सीधा संबंध उस देश की आर्थिक स्थिति और शैक्षिक स्थिति से जुड़ा था । पिछले तीन दशकों में इस स्थिति में पर्याप्त सुधार आया है। 2008 के आकड़ों के अनुसार 53.20 करोड़ लोग रोजाना कम-से-कम एक अखबार खरीदते हैं । 2003 में यह संख्या 48.6 करोड़ थी । समाचार पत्रों के पाठकों की संख्या 1.7 अरब के आस-पास आंकी जाती है । दुनिया के 100 सबसे अधिक बिकने वाले समाचार पत्रों में से 62 एशिया के देश : चीन, जापान और भारत से प्रकाशित होते हैं । एशिया से 74 ऐसे अखबार प्रकाशित होते हैं । समाचार पत्रों का सबसे बड़ा बाजार में चीन में 107 करोड़ भारत में 9 .9 करोड़ बिकती हैं । एशिया में 2008 में पिछले साल की में 4 .7 प्रतिशत की वृद्धि हुई है । भारत में यह वृद्धि दर 11 .22 प्रतिशत है और पिछले पाँच सालों में 35.51 है ।

इस तुलनात्मक विश्लेषण से यह नतीजा भी सामने आया है कि दुनिया के आर्थिक दृष्टि से विकासशील या पिछड़े देशों की तुलना में विकसित देशों के समाचारपत्रों का प्रसार

अधिक रहा है। । इसका तात्पर्य यह भी है कि आर्थिक पिछड़ापन, असाक्षरता, गरीबी आदि के कारण विभिन्न माध्यम भी विकसित या कम विकसित रहते हैं । एक स्वस्थ सूचनात्मक या विभिन्न माध्यमों का विकास भी एक स्वस्थ आर्थिक व्यवस्था वाले देश में संभव है ।

विभिन्न सूचना माध्यमों के विकास की जरूरी शर्तें

दैनिक समाचारपत्रों, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों आदि के विकास के लिए यह आवश्यक है कि आवश्यक ढाँचागत सुविधाएँ भी विकसित हों या पर्याप्त रूप से उपलब्ध हों । साथ ही साक्षरता (की दर कम से कम 25 प्रतिशत हो, मुद्रण उपकरणों, मुद्रण के लिए कागज, संचार की उपयुका सुविधाएँ, पत्रकारो के लिए विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षण व्यवस्था तथा समाचारपत्रों के वितरण हेतु उपयुक्त वितरण प्रणाली की विकास, नेटवर्क आदि का एक उपयुक्त। ढाँचा तैयार करना एक भारी काम है । इसमें काफी पूँजी निवेश करने के अलावा विकास की राह पर चलने वाले देशों को अपनी परिस्थितियों के अनुसार प्राथमिकताओं का प्रश्न भी। अहम है । दुनिया के 25 प्रतिशत से भी अधिक दैनिक समाचारपत्र अंग्रेजी में छपते हैं । दूसरे स्थान पर चीनी भाषा है । इसके बाद जर्मन और स्पेनिश का स्थान है । अधिकांश देशों में दैनिक पत्रों की पृष्ठ संख्या के हिसाब से छोटे आकार में है जिनमें 4 से 6 पृष्ठ प्रति अंक में मिलते हैं । केवल दुनिया के 25 देश ही ऐसे हैं जहाँ दैनिक-पत्रों की प्रति अंक पृष्ठ संख्या 12 या इससे अधिक होती है ।

21.3 अन्तर्राष्ट्रीय समाचार समितियाँ

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आंकडे हर स्तर पर बदलते रहते हैं । चाहे वे दैनिक अन्य समाचारपत्रों की संख्या, प्रसार संख्या या समाचार-समितियों की संस्था से संबंधित हो किसी अन्य पक्ष संदर्भ हो लेकिन एक विशेष बिंदु पर विश्व-पत्रकारिता या विभिन्न समाचार- माध्यमों की स्थिति, दशा और का संकेत देते हैं । कुछ मौलिक अवधारणाओं से आपको परिचय कराते हैं।

अत: बीसवीं सदी के -अहम दैनिक समाचारपत्रों के विकासक्रम में उन की संख्या और प्रसार संख्या से संबंधित विभिन्न पक्षो की चर्चा के बाद समाचारपत्रों के स्रोत या सूचनायों के आदान-प्रदान के बारे में विश्व व्यवस्था की जानकारी प्राप्त करना भी आवश्यक है ।

समाचारों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया दोतरफा होती है और इस का त्वरित-प्रवाह, ही समाचारपत्रों के लिए आवश्यक है । समाचार-समितियाँ, समाचारों के प्रवाह को नियमित करती हैं। सन 1980 में दुनिया के 93 देशों में 174 समाचार समितियाँ या न्यूज एजेंसियाँ कार्यरत थीं । 80 देश ऐसे थे जिनके यहाँ समाचार-समितियाँ नहीं थीं । संचार-समितियाँ केवल समाचारपत्रों को ही समाचार नहीं भेजती बल्कि इनकी समाचार-सेवा, फीचर सेवा, छाया सेवा, टीवी. या रेडियो के लिए समाचार या सामग्री उपलब्ध कराने के लिए सेवाएँ भी उपलब्ध कराती है।

विश्व के 50 देशों की संवाद समितियों का सीधा नियंत्रण और संचालन उन देशों की सरकार के अधीन है जबकि बाकी के देशों में समाचार-समितियों का नियंत्रण और संचालन

विभिन्न माध्यमों, सहकारी संस्थाओं, स्वशासी संस्थाओं या निगमों के द्वारा किया जाता है । सरकारी नियंत्रण की तुलना में समाचार समितियों का सरकार से मुक्त रहना बेहतर है क्योंकि समाचार-समितियों के सरकार के नियंत्रण में रहने से वे मात्र सूचनाएँ देने का स्रोत बनकर रह जाती हैं और अपने दायित्वों का निर्वाह पूरी तरह नहीं कर पातीं । एक जनतांत्रिक शासन प्रणाली की सफलता का आधार समाचारपत्र संवाद समितियाँ और समाचार बन सकते हैं । समाचारों की स्वतंत्रता को मौलिक अधिकार के रूप में माना गया है और समाचारपत्र और विभिन्न माध्यमों को आजादी का प्रहरी माना गया है । राज्य का यह एक स्वतंत्र स्तम्भ है जिस पर उसका ढाँचा खड़ा होता है ।

समाचारों के अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एकत्रित करने तथा प्रसारण करने के स्तर पर तथा क्षमता के आधार पर लगभग 20 समाचार एजेन्सियाँ बड़ी मानी जाती हैं । टेक्नोलॉजी विकास और प्रसारण-क्षमता के कारण ए. पी., यूपी.आई, रॉयटर, ए.एफ.पी. और तास, में पाँच बहुत बड़ी एजेंसियाँ मानी जाती हैं । इन समितियों का दुनिया के अधिकांश देशों में अपना कार्यालय है । इसके अलावा, विभिन्न देशों में इनके पूर्णकालिक, संवाददाताओं या रिपोर्टरों का एक नेटवर्क है । ये समितियाँ दिन के 24 घण्टे दुनिया की विभिन्न भाषाओं में समाचार भेजने का कार्य करती हैं । विभिन्न राष्ट्रों की राष्ट्रीय संवाद समितियों के साथ खबरों के आदान-प्रदान हेतु इनके अनुबंध हैं ।

यूनेस्को के प्रयास

यूनेस्को के प्रयास के बावजूद, अपने आर्थिक साधनों और इलेक्ट्रॉनिक टेक्नोलॉजी की वजह से इनका एकाधिकार पूरी तरह समाप्त करना संभव नहीं हो पाया है ।

सूचना टेक्नोलॉजी की क्रांति से 20वी सदी के अंतिम दशक में समाचार-संकलन और प्रसारण की दुनिया में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं । कंप्यूटर, सेटेलाइट, टेलीफोन, एस.टी.डी. आदि कई ऐसे साधनों का उपयोग करके ये समितियाँ और कई राष्ट्रीय संचार समितियाँ सुदृढ़ बनी हैं । भारत में पी.टी.आई. और यू.एन.आई. जैसी प्रमुख समाचार समितियाँ हैं जिनकी दुनिया की अन्य समितियों से अनुबंध हैं । लेकिन राष्ट्रीय संवाद समितियाँ बड़ी समितियों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पातीं । इसका कारण आर्थिक अधिक है । एपी. जैसी संवाद समिति की क्षमता का अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि इस एजेंसी को औसतन किसी अन्य देश में पूर्णकालिक संवाददाता पर लागत का खर्चा तीन लाख डीलर आता है । इस प्रकार दुनिया में निष्पक्ष समाचार एकत्र करने तथा उनका प्रसारण करने की दिशा में यूनेस्को का 'नया अन्तर्राष्ट्रीय सूचना तंत्र' विकसित करने का उद्देश्य आर्थिक रूकावटों के कारण पूरा करना संभव नहीं हुआ । दरअसल, कई बड़ी एजेन्सियों का समाचारों के संकलन, लेखन और प्रसारण का संपूर्ण कार्य राजनीति से प्रेरित होता है या पूर्वाग्रहों या दुराग्रहों के रंगों में रंगा होता

21.4 प्रसारण माध्यम के रूप में रेडियो और टेलीविजन

प्रसारण माध्यम के रूप में रेडियो और टेलीविजन का भी महत्वपूर्ण स्थान है । इन्हें 'इलेक्ट्रॉनिक माध्यम' कहा जाता है । दुनिया में सर्वाधिक विस्तार से फैलने और अरबों लोगों तक अपनी पहुँच बनाने की दृष्टि से रेडियो की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है ।

रेडियो प्रसारण की अपनी तकनीक के कारण राष्ट्रों की सीमाओं के आर-पार संदेश पहुँचाने या समाचारों का प्रसार करने की अद्भुत क्षमता लिए हुए है । यह सीमाओं के बंधन से मुक्त है । यह तुलनात्मक दृष्टि से सर्वाधिक सस्ता माध्यम है । समाचारों को पढ़ने या टेलीविजन को देखने में जिस प्रकार सब काम छोड़कर ध्यान देने की जरूरत होती है उसकी रेडियो प्रसार सुनने के संदर्भ में उतनी आवश्यकता नहीं रहती । तात्पर्य यह है कि चलते-फिरते या काम करते समय भी रेडियो पर समाचार आदि सुनना सरल है । यद्यपि टेलीविजन एक दृश्य एक माध्यम है । यह अपना तुरंत असर छोड़ने की क्षमता रखता है । इसका यह गुण, मुद्रण माध्यमों या रेडियो प्रसारणों में नहीं होता है । मुद्रण माध्यम जहाँ पढ़े-लिखे या साक्षर लोगों को आकर्षित कर सकता है वहाँ रेडियो और टेलीविजन की पहुँच अर्ध-शिक्षित या निरक्षर लोगों तक होती है । रेडियो और टेलीविजन ऐसे उपकरण हैं जो समाज के आधुनिकीकरण में अति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । लगभग सभी देशों में रेडियो और टेलीविजन प्रसारण कार्य राज्य की नीति-नियमों की हद में कार्य करते हैं । प्रारंभ में सरकार का नियंत्रण टेक्नीकल दृष्टि से 'फ्रीक्विन्सीज' के निर्धारण के लिए आवश्यक था । बाद में प्रसारण के प्रभाव को ठीक से समझा गया और सरकार की प्रत्यक्ष नियंत्रण की जरूरत महसूस नहीं की गई लेकिन राजनीतिक स्वार्थों के चलते सरकारों ने इस माध्यम को पूरी तरह मुक्त नहीं होने दिया । राज्य से स्वतंत्र होने पर भी इन माध्यमों पर शक्तिशाली निगमों का नियंत्रण बना ही रहता है ।

कई देशों में सरकारें, रेडियो और टेलीविजन सेवाओं पर सीधा नियंत्रण रखते हैं तथा वे इसकी वित्तीय व्यवस्था सरकारी खजाने से करते हैं । लेकिन ऐसे भी बहुत से देश है जहाँ स्वशासी संस्थाएँ या निजी कंपनियाँ, टेलीविजन या रेडियो सेवाओं का स्वतंत्र रूप से संचालन करती है । कहीं-कहीं एक मिश्रित व्यवस्था भी है जहाँ निजी संस्थान, सरकार, स्वशासी संस्थाएँ आदि के बीच इनके बेहतर संचालन करने की प्रतिस्पर्धा भी है ।

बहुत कम ऐसे देश हैं, जहाँ पूरी तरह व्यावसायिक स्तर पर विभिन्न कंपनियाँ इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों का संचालन करती हों । अमेरिका ऐसे देशों में प्रमुख है जहाँ व्यावसायिक स्तर पर व्यावसायिक-संस्थान ही इन सेवाओं की वित्तीय व्यवस्था को विज्ञापनों की आय से चलाते हैं और स्वतंत्र संचालन करते हैं । लेकिन अमेरिका में भी विदेशी शार्ट-वेब प्रसारण सेवा का, 'वाइस ऑफ अमेरिका' के द्वारा वहाँ की सरकार संचालन करती है । टेलीविजन का प्रचार-प्रसार 1970 के दशक में तेजी से बढ़ा लेकिन आज भी कई विकासशील या पिछड़े देशों में टेलीविजन सेवाएँ बहुत पीछे हैं । इसमें आर्थिक दृष्टि से अफ्रीका के कुछ देश और अन्य देश शामिल है । नियंत्रण और स्वामित्व के तौर-तरीके

विभिन्न समाचार और सूचना माध्यम के नियंत्रण और स्वामित्व के तौर-तरीके अलग-अलग देशों के राजनीतिक स्वरूप और आर्थिक अवस्था और नीतियों के अनुसार अलग-अलग हैं। पश्चिमी देशों के स्वतंत्र राष्ट्रों के माध्यमों पर निजी नियंत्रण और स्वामित्व धीरे-धीरे कम होने की ओर है । राजनीतिक और आर्थिक दबावों के कारण कई देशों में विभिन्न माध्यमों के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न होने लगा है तथा स्वामित्व के नए रूप उभरकर सामने आने लगे हैं। कई देशों में निजी रूप से समाचारपत्रों के संचालनकर्त्ताओं को सरकार या राजनीतिक दलों

का सहयोग होता है । समाचारपत्रों के स्वामित्व के संदर्भ में एक अनुमान के अनुसार 80 के दशक के मुद्रण माध्यम 51 देशों में स्वतंत्र थे और 38 देशों में आशिक रूप से स्वतंत्र थे । अर्थात 33 प्रतिशत समाचारपत्र पूरी तरह स्वतंत्र थे और 25 प्रतिशत आशिक रूप से स्वतंत्र थे। शेष 42 प्रतिशत को कोई स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी । प्रसारण माध्यम 36 देशों में स्वतंत्र थे और इनका प्रतिशत 23 था । आशिक रूप से 22 प्रतिशत स्वतंत्र थे तथा 55 प्रतिशत प्रसारण माध्यमों को प्रसारण स्वतंत्रता उपलब्ध नहीं थी । इस प्रकार कुछ सालों पूर्व मुद्रण एवं प्रसारण माध्यमों में मात्र 23 प्रतिशत को ही स्वतंत्रता प्राप्त की।

21.5 अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सूचना-राजनीति

विश्व परिदृश्य में घटित घटनाओं, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर होने वाली गोष्ठियों, सम्मेलनों आदि की विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसियों और समाचारपत्रों से निष्पक्ष कवरेज या खबरें देने की अपेक्षा की जाती है । लेकिन विकसित देशों या पश्चिमी देशों, विशेषकर अमेरिका और अविकसित एवं पिछड़े देशों के बीच इस बात पर मतभेद उभरा है कि पश्चिमी माध्यमों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय-घटनाओं की खबरें राजनीतिक रंगों के रंग में रंगी होती है तथा उनका राजनीतिकरण किया जाता है । इसे पिछले एक दशक की घटनाओं से आसानी से समझा जा सकता है । इराक और अफगानिस्तान पर अमेरिका के नेतृत्व में नाटो के हमले को जिस तरह अमेरिकी और यूरोपीय मीडिया ने प्रस्तुत किया है, उससे इस बात का ठोस प्रमाण मिलता है । अमेरिका का पूरा मीडिया तंत्र अपने देश के राजनीतिक प्रभुओं के हितों के अनुसार खबरों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करता है । मसलन इराक के पूर्व राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन के बारे में यह झूठ फैलाया गया कि उनके पास व्यापक नरसंहार के हथियार हैं या उनका आतंकवादी संगठन अल-कायदा से संबंध है । लेकिन ये दोनों बातें बाद में असत्य साबित हुई । लेकिन इन्हीं झूठों का बहाना लेकर संयुक्त राज्य अमेरिका ने इराक पर हमला किया और वही काबिज हो गये ।

कहने का तात्पर्य यह है कि विभिन्न घटनाओं और उनके बारे में दी गई खबरों को लेकर विभिन्न देशों में मतभेद बने रहते है । 1970-60 के दशकों में दुनिया में 'सूचनाओं के मुक्त प्रवाह' को लेकर विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर एक बहस छिड़ी । संयुक्त राष्ट्र संघ, यूनेस्को एवं गुटनिरपेक्षों राष्ट्रों के आंदोलन में सूचनाओं के मुक्त प्रवाह के संबंध में तथा इस बारे में विविध अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से पैदा हुए विवादों एवं अन्य मुद्दों की निष्पक्षता के संदर्भ में विचार उत्पन्न होने की जड़ें पश्चिमी देशों और तीसरी दुनिया के नाम से संबोधित किए जाने वाले अविकसित या पिछले देशों में समाचार माध्यमों की अलग-अलग प्रकार की भूमिका रही है। इस संदर्भ में महत्वपूर्ण यह है कि पिछले दो दशकों में विश्व मीडिया पर पश्चिम के विकसित देशों का प्रभुत्व हावी है, जो उनके राजनीतिक वर्चस्व की ही अभिव्यक्ति है ।

माध्यमों की भूमिका का परिदृश्य

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद दुनिया के लगभग एक सौ गरीब राष्ट्र, जिनकी आबादी दुनिया में दो-तिहाई थी, उभर कर सामने आए । इन देशों की सबसे पहली प्राथमिकता आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास करना थी । इस नए परिदृश्य में विकसित राष्ट्र अल्पमत में आ गए । इनकी प्राथमिकताएँ गरीब देशों में भिन्न थी अर्थात व्यक्तिगत स्वतंत्रता और निजी

व्यवसाय की धारणा पर इनका बल था । अचानक यों अल्पमत में आ जाने तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के मंच पर संख्या की दृष्टि से कमजोर पड़ जाने से कई नई परिस्थितियाँ पैदा हुई । इन देशों ने संयुक्त राष्ट्र में वीटो के अधिकार के बल पर और अपनी आर्थिक और सैन्य क्षमता के बल पर तीसरी दुनिया को घेरने का प्रयास किया ।

1950 के दशक में गुटनिरपेक्ष आंदोलन शुरू हुआ । इसमें धीरे-धीरे 85 राष्ट्र शामिल हो गए । इस समूह ने पूर्व या पश्चिम के संघर्ष में पड़ने के बजाय एक तीसरा रास्ता निकाला और इसी के द्वारा अपनी सरकारों और विकास के मार्ग का अनुसरण करने का फैसला किया । इस संपूर्ण परिदृश्य ने सूचना या समाचार माध्यमों के कामकाज के तौर-तरीकों का भी विश्लेषण करना प्रारंभ किया और उसका परिणाम यह हुआ कि विभिन्न देशों के समाचार माध्यमों की भूमिका के संदर्भ में चिन्तन होने लगा । इस स्थिति में परिवर्तन शीतयुद्ध के बाद के दौर में हुआ जब सोवियत संघ का विघटन हुआ । गुटनिरपेक्ष आंदोलन कमजोर पड़ गया और तीसरी दुनिया के देशों की एकता कमजोर पड़ गयी ।

संचार और विकास

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की दुनिया की राजनीतिक उथल-पुथल के कारण कई देश स्वतंत्र हुए और उन्होंने अपने देशों के विकास की अवधारणा को लेकर विभिन्न प्रयत्न शुरू किए। ऐसे में संचार माध्यम विकास के महत्त्वपूर्ण उपकरण बन गए । संचार माध्यमों की टेक्नोलॉजी में आए परिवर्तनों, द्विपक्षीय समझौतों के अंतर्गत सहायता कार्यक्रमों और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के सहयोग से संचार माध्यमों का ढाँचागत विकास हुआ और इनका प्रचार तेजी से फैला । रेडियो और ट्रांजिस्टर क्रांति ने अविकसित और ग्रामीण क्षेत्रों तक गरीब देशों में भी अपनी पहुँच तेजी से बढ़ाई । टीवी. के विकास ने भी गति पकड़ी । 1980 में कृत्रिम सेटेलाइट के कारण रेडियो और टीवी. के विकास को एक नया आयाम मिला ।

जनसंचार के माध्यमों की निरन्तर प्रगति ने विकासशील और अविकसित देशों में विकास कार्यो के संदर्भ में इनकी उपादेयता को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान देना शुरू कर दिया है । इससे यह आशय बलवती होने लगी है कि राजनीतिक विध्वंस या राजनीति के रंगों से मुआ होकर, जनसंचार माध्यम विकास की प्राथमिकताओं से जुडने की प्रक्रिया में है ।

संचार माध्यम कई प्रकार से विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं । इनमें बनी-बनाई धारणाओं और प्रवृतियों को बदलने, ज्ञान वृद्धि और शिक्षण देने की क्षमता होती है । भारत में 'सेटेलाइट इन्सट्रक्शनल टेलीविजन एक्सपेरिमेंट (साइट)' अर्थात दूरदर्शन के माध्यम से सेटेलाइट द्वारा शिक्षण का प्रयोग ' संचार माध्यमों को नई दिशा प्रदान करने वाला महत्त्वपूर्ण कदम सिद्ध हुआ है । यह आबादी नियंत्रण, स्वास्थ्य, कृषि एवं शिक्षा कार्यक्रमों के प्रचार-प्रसार में टीवी. की उपयोगिता का एक बड़ा उदाहरण है । इसी प्रकार तंजानिया ने अपनी स्थानीय स्वास्थ्य संबंधी योजना के क्रियान्वयन में रेडियो कार्यक्रमों के अभियान द्वारा एक अनुपम सफलता प्राप्त की । इस प्रकार 'विकास पत्रकारिता' की एक नई धारणा विश्व में फैली है । इस धारणा को और सुदृढ़ आधार देने में प्रेस फाउण्डेशन ऑफ एशिया ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई

है । 'विकास ' के विचार को जनसहभागिता के द्वारा प्रेरित करके राष्ट्रीय सेवा भावना को बढ़ावा देने का मुख्य लक्ष्य लेकर यह अभियान चलाया गया ।

लेकिन उक्त विचारधारा के प्रति जागृति के प्रयासों के बावजूद ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ किसी उत्पाद या जीवन शैली को लोकप्रिय बनाने या चीजों को मनोरंजनात्मक कार्यक्रमों की आड में बेचने के लिए संदेश तैयार किए जाते हैं । इस प्रकार संचार माध्यमों का निहित हितों के लिए इस्तेमाल करने वाले विकसित देशों में अमेरिका सबसे आगे है । विज्ञापनों, टीवी. कार्यक्रमों और फिल्मों के माध्यम से इस प्रकार संचार माध्यमों का उपयोग करने की प्रवृत्ति भी है । इस प्रकार मीडिया के द्वारा लोगों की अपेक्षाओं और कुण्ठाओं को । बढ़ावा मिलता है । जहाँ अविकसित और पिछड़े देशों ने विभिन्न माध्यमों का उपयोग विकास के लिए करने जो दिशा में अलग-अलग स्तरों पर कम या अधिक सफलता प्राप्त की है वहाँ इन्हें यह भी डर है कि माध्यमों का उपयोग विकास में सहभागिता को उत्प्रेरित करने की बजाय विकसित देशों के निज हितों से प्रेरित उनके स्वतंत्र विकास के मार्ग में बाधक है ।

इस संदर्भ में अमेरिका में मुद्रण और प्रसारण माध्यमों का निजी हाथों में होने के कारण उनके लक्ष्य अफ्रीका या एशिया के विकासशील देशों के लक्ष्यों से भिन्न हैं । क्योंकि विकासशील देशों में संचार माध्यमों का संचालन सार्वजनिक धन या सरकारों द्वारा किया जाता है । इस कारण सरकारों का यह दायित्व हो जाता है कि वे राष्ट्रीय विकास के लक्ष्यों को सामने रखकर उनका उपयोग करें ।

अमेरिका में जनसंचार माध्यमों की विशिष्ट प्रणाली

अमेरिकी माध्यमों के कार्यकलापों और नीतियों के संबंध में तीसरी दुनिया के देशों की प्रतिक्रिया के संदर्भ में अमेरिका के जनसंचार माध्यमों की विशिष्ट प्रवृत्तियों और प्रणाली को समझना आवश्यक है । अमेरिका में जनसंचार माध्यमों की स्वतंत्रता का आधार वहाँ के संविधान में हुआ प्रथम संशोधन है । इस संशोधन में कहा गया है कि अमेरिकी कांग्रेस कोई ऐसा कानून पारित नहीं करेगी जिससे अभिव्यक्ति या प्रेस की स्वतंत्रता में कोई कमी या कटौती हो । यह नीति ब्रिटेन के संविधान की उस परम्परा से पैदा हुई जिसके अंतर्गत प्रेस एक चौकीदार या 'वॉच डीग का काम करती है तथा सरकार पर निगाह रखती है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, में अमेरिका में कानूनन यह माना गया है कि संचार कार्य गैर-सरकारी होना चाहिए । बहुत कम देश ऐसे हैं जो ब्रिटेन और अमेरिका की इस धारणा से सहमत नहीं हैं कि प्रेस को सरकार का 'मॉनिटर' होना चाहिए । अमेरिका के पश्चिमी साथी देशों में अधिकांशत: संचार उद्योग निजी हाथों में है ।

इस नीति का नतीजा यह हुआ है कि अमेरिका जैसे देशों की जनसंचार " के संदर्भ में स्थिति के बारे में विचारकों का मत हैं कि किस संदेश का संप्रेषण करना है या क्या समाचार है तथा किस बात को उसमें से छोड़ना है, किस तरह से संदेश प्रसारित करना या देना है आदि प्रश्नों निर्णय करने का आधार व्यावसायिक होता है । इस प्रकार अमेरिका के जनसंचार माध्यमों के अनुसार. और निजी हितों को साथ लेकर चलना ही, सूचना का स्वतंत्र प्रवाह है जबकि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर 'सूचना के मुक्त प्रवाह' की धारणा के अनुसार अमेरिका के माध्यमों की विशेषता या उनकी सोच ठीक नहीं बैठती । वहाँ के माध्यम निजी हितों के पोषण को बुरा नहीं

मानते । अमेरिकी राजसत्ता इन निजी हितों के पक्ष में कार्य करती हैं । निजी हित का तात्पर्य वे शक्तिशाली बहुराष्ट्रीय निगम हैं जिनके हित तीसरी दुनिया के देशों के हितों से टकराते हैं । इसलिए अमेरिका में मीडिया को मिली स्वतंत्रता का इस्तेमाल अमेरिकी जनता के हित में नहीं बल्कि अमेरिकी सत्ता के हित में किया जाता है । निगमीय हितों को जनता का हित बताने और सिद्ध करने का काम मीडिया करता है । इन मीडिया निगमों पर भी बहुराष्ट्रीय निगमों का स्वामित्व है । यही कारण है कि प्रसिद्ध अमेरिकी विद्वान नोम चोमस्की ने अमेरिकी मीडिया को स्वतंत्रता का वाहक नहीं माना है । अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं को देखने तथा उनका कवरेज करने के संदर्भ में भाषा, इरादा और संपूर्ण सोच में अमेरिका के माध्यम अपनी स्वहितों की भावना को मध्य में रखते है । इस कारण से निष्पक्ष, मुक्त सूचना या समाचार-प्रवाह की अन्तर्राष्ट्रीय मान्यताओं और धारणाओं से पश्चिमी और खासकर अमेरिकी माध्यमों की प्रवृत्ति से विकासशील या अविकसित देशों की टकराहट का सिलसिला चलने लगा है और वे सूचना तंत्र की शक्तिशाली किंतु चालाकी भरी 'सूचना के स्वतंत्र' प्रवाह की नीति को पहचानने लगे हैं ।

21.6 संयुक्त राष्ट्र संघ और अन्य एजेन्सियों के प्रयास

संयुक्त राष्ट्र संघ के 1945 में मात्र 50 देश सदस्य थे । यह वह समय था जबकि पश्चिमी देशों के साम्राज्य टूटने लगे थे । 1980 के आसपास आते-आते इसके सदस्यों की संख्या 149 हो गई । दुनिया साम्यवाद और पूँजीवाद के दो धड़ों के बीच बंटी हुई थी । संयुक्त राष्ट्र में पश्चिमी देशों का वर्चस्व था और समाचारों और सूचना के प्रसंग में सारी बहस और घोषणाएँ पश्चिमी देशों के प्रभाव में होती थी ।

सूचना के संबंध में संयुक्त राष्ट्र की भूमिका

'संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभा (जनरल एसेम्बली) ने सबसे पहले एक प्रस्ताव 59 (1) के अंतर्गत यू.एन. डिक्लेरेशन ऑफ फ्रीडम एंड फ्री लो ऑफ इन्फ़ोमेशन सन् 1946 में जारी किया । अर्थात सूचना की स्वतंत्रता के बारे में अपनी धारणा स्पष्ट की । घोषणापत्र में कहा गया कि "सभी राज्यों को अपने देशों और सीमाओं के पार 'सूचना के स्वतंत्र प्रवाह के संरक्षण की नीति की घोषणा करनी चाहिए । सूचना प्राप्त करने और प्रसारित करने के अधिकार का जनता को पुख्ता रूप से विश्वास दिलाने के लिए प्रयास करना चाहिए ।"

इसके दो साल बाद संयुक्त राष्ट्र संघ ने जिनेवा में 'सूचना की स्वतंत्रता' विषय पर एक सम्मेलन का आयोजन किया । इस सम्मेलन में अमेरिका ने 'स्वतंत्र तथा निर्बाध सूचना प्रवाह' की मांग की लेकिन सोवियत रूस का मत था कि जब तक संचार माध्यमों पर पश्चिम में धनिक वर्ग का नियंत्रण रहेगा, तब तक सम्प्रेषण या सूचना-प्रवाह की स्वतंत्रता के अस्तित्व की कल्पना करना व्यर्थ है । बहरहाल जिनेवा सम्मेलन से चली बहस और उसके बाद के प्रयत्नों के बावजूद सूचना की स्वतंत्रता पर एक सहमति कायम नहीं हो पाई । लेकिन समय-समय पर संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस संबंध में कानूनी स्तर पर इस प्रकार के मौलिक सिद्धांतों को लागू करने पर बल दिया ।

21.7 यूनेस्को के प्रयास

संयुक्त राष्ट्र संघ के शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति संगठन (दि यूनाइटेड नेशन्स एजूकेशनल, साइन्टिफिक एंड कल्चरल ऑर्गेनाईजेशन) अपने प्रारंभ से ही संचार माध्यमों संबंधी मुद्दों के प्रति अपना विशेष सरोकार रखता आया है । इस संगठन के संविधान में यह स्पष्ट रूप से रेखांकित किया गया है कि ' 'यह संगठन जनसंचार माध्यमों के द्वारा लोगों के परस्पर ज्ञान एवं समझ को बढ़ाने का काम करेगा तथा यह सुझाव देगा कि शब्द या आकृति (इमेज) के द्वारा विचारों के स्वतंत्र-प्रवाह को बढ़ावा देने के लिए किस प्रकार के आवश्यक समझौतों की जरूरत है । "संयुक्त राष्ट्र संघ के इस संगठन ने अपने प्रारंभिक वर्षो में महत्वपूर्ण कार्य किया वर्ष 1954 तक अन्तर्राष्ट्रीय-मंचों पर पश्चिमी देशों का भारी प्रभाव होने के कारण सोवियत रूस ऐसे मंचों पर अनुपस्थित रहता था । दुनिया के विभिन्न मत-मतान्तरों वाले देशों के बीच सूचना के स्वतंत्र प्रवाह और आपसी समझ का वातावरण तैयार करने में इस संगठन ने महत्त्वपूर्ण प्रयास किए तथा गहरा योगदान दिया । इसके बाद 1969 में मांट्रियल में विशेषज्ञों की बैठक में 'शब्दों के दो-तरफा प्रसार, 'समाचारों का संतुलित प्रसार' आदि पर विचार हुआ तथा भाग ले रहे विशेषज्ञों ने तीसरी दुनिया से समाचारों के पश्चिमी देशों की ओर प्रवाह संबंधी सुझाव प्रस्तुत किए ।

इस प्रकार निरंतर आंदोलनों और बैठकों के द्वारा यूनेस्को ने समाचार-जगत के विश्व परिदृश्य को बेहतर बनाने की दिशा में अनेक प्रयास किए । 1976 में यूनेस्को की नैरोबी में हुई 1 9वीं कान्फ्रेंस में 'विश्व में सूचना प्रणाली' (वर्ल्ड इन्फ़ॉर्मेशन ऑर्डर) विषय पर गरमा-गरम बहस हुई । संचार समस्याओं के अध्ययन के लिए इस कान्फ्रेंस में अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन बनाया गया । आयरलैंड के लेनिन एवं नोबल पुरस्कार विजेता मेक्ब्रहड़ को इस कमीशन का अध्यक्ष चुना गया ।

यूनेस्को की 20वीं कॉन्फ़्रेंस 1978 में पेरिस में हुई । इसमें अमेरिका, फ्रांस, श्रीलंका, ट्यूनिशिया और वेनेजुला ने कमीशन से मांग की कि वह एक न्यायपूर्ण, स्वतंत्र, निष्पक्ष और प्रभावपूर्ण विश्व सूचना-तंत्र की स्थापना के लिए व्यावहारिक तरीके सामने लाए । 1980 में उक्त कमीशन ने 'मेनी वॉयसेज, वन वर्ल्ड' शीर्षक से अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की । 1980 की यूनेस्को की साधारण सभा में इस रिपोर्ट के निष्कर्षों पर विचार हुआ । 1981 की बैठक में 'पत्रकारों की सुरक्षा' विषय पर विचार विनिमय किया गया ।

21.8 गुटनिरपेक्ष आंदोलन का विकास पर बल

गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों के सम्मेलन में 1973 में 75 राष्ट्रों ने भाग लिया । 24 देशों के प्रतिनिधि भी सम्मेलन की कार्यवाही के प्रत्यक्षदर्शी थे । आस्ट्रिया, फिनलैंड और स्वीडन अतिथि देश थे । इस सम्मेलन में दुनिया की आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्थिति की समीक्षा की गई । इस आयोजन में 'कोलोनियल परा के दुष्प्रभावों' को दूर करने के उपायों पर विचार करते हुए, निम्नलिखित बिंदुओं के क्रियान्वयन की एक योजना तैयार की गई-

1. विकासशील देशों को 'जनसंचार के क्षेत्र में परस्पर विचारों के अधिक आदान-प्रदान के लिए यह पहचान करनी चाहिए कि विदेशियों के शासनकाल की देन के रूप में विभिन्न जनसंचार माध्यमों की भूमिका क्या है? इस भूमिका ने इन विकासशील देशों के बीच स्वतंत्र, सीधे और त्वरित सूचना आदान-प्रदान की दिशा में क्या रूकावटें पैदा की है?
2. इस स्थिति की समीक्षा करके एक संयुक्त कार्य योजना बनाई जाए जो परस्पर संचार को बढ़ाए ।
3. सेटेलाइट्स की मिली-जुली स्वामित्व वाली एक प्रणाली बनाई जाएँ
4. विकासशील देशों के समाचार जगत या जनसंचार माध्यमों के बीच सम्पर्कों को प्रोत्साहित किया जाए ताकि विश्वविद्यालयों, पुस्तकालयों, योजना, शोध आदि संस्थाओं से संबंधित अनुभवों और विशेषज्ञता का आदान-प्रदान करके अनुभवों को परस्पर बांटा जा सके ।
5. समाचारपत्र-पत्रिकाओं, रेडियो, टीवी, आदि समाचार माध्यमों के द्वारा अपने-अपने देशों में कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, चिकित्सा आदि विविध क्षेत्रों की विभिन्न देशों की उपलब्धियों की जानकारी एक दूसरे को मिल सके ।

गुटनिरपेक्ष देशों की समाचार-समितियों के 'पूल' का निर्माण

अलजियर्स सम्मेलन के प्रस्तावों के अनुरूप 'तांजुग' नामक यूगोस्लाविया की समाचार-समिति की पहल पर गुटनिरपेक्ष देशों की समाचार-समितियों का एक 'पूल' बनाया गया । 20 जनवरी, 1075 को यह काम शुरू हुआ । एक साल में इस 'पूल' की 26 समितियाँ सदस्य बनीं और 3500 समाचारों को जारी किया गया । परस्पर समाचारों के आदान-प्रदान के इस कार्य से तीन साल की अवधि में, 40 राष्ट्रीय समाचार समितियाँ जुड़ गई । संयुक्त राष्ट्र संघ, यूनेस्को, विश्व बैंक, एसोसिएटेड प्रेस (एपी.), यूनाइटेड प्रेस इन्टरनेशनल (यूपी.आई.) ने इस कार्य को प्रोत्साहित किया ।

इसके बाद के प्रयासों ने समाचार तंत्र के स्तर पर राष्ट्रों, विशेषकर विकासशील देशों के बीच सहयोग का एक बेहतर और प्रभावी काम किया । इस 'पूल' का संविधान तैयार करने के लिए समाचार एजेंसियों और सरकारों के प्रतिनिधियों की एक बैठक ट्यूनेशिया के सहयोग से 26-30 मार्च, 1976 को भारत में हुई । इस 'ट्यूनिश सिम्पोजियम' की रिपोर्ट में जनमाध्यमों की आत्मनिर्भरता के बारे में विभिन्न गुटनिरपेक्ष देशों में संभावना के उपयोग के बारे में सुझाव दिये गए थे। भावी जन माध्यम-ढाँचा तैयार करके समाचारपत्रों और विभिन्न माध्यमों की क्षमता बढ़ाने के लिए भी सुझाव प्रस्तुत. किए गए । इस आयोजन में विशेषकर ढाँचागत और संचालन संबंधी विभिन्न माध्यमों की समस्याओं और इनके विकास के लिए संभव उपायों की भी गुटनिरपेक्ष देशों के संदर्भ में चर्चा की गई ।

दिल्ली सम्मेलन

गुटनिरपेक्ष देश की समाचारपत्रों और विभिन्न माध्यमों के बारे में नीति के गहन अध्ययन के लक्ष्य को लेकर दिल्ली में जुलाई 1976 में मंत्री स्तर की कॉन्फ्रेस हुई । इसमें 60 देशों और संयुक्त राष्ट्र सहित कई संस्थानों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया । 31 समाचार

समितियों के प्रबंधक, 33 देशों के सूचना और प्रसारण मंत्रियों ने इसमें हिस्सा लिया । गुटनिरपेक्ष देशों की समाचार-समितियों के 'पूल' को प्रगति-विवरण 'तान्जुग' से प्राप्त हो चुका था । 'ट्यूनिस सिम्पोजियम' की सिफारिशों में 'समाचार-पुल' के लिए 'सहयोग समिति' (कॉआर्डिनेशन कमेटी) की स्थापना करने की सिफारिश भी मिल चुकी थी । इस बैठक में भारत को 'कॉआर्डिनेशन कमेटी' का प्रमुख बनाया गया । 'नई दिल्ली घोषणा पत्र' तैयार हुआ और उस बैठक में स्वीकार कर लिया गया । इस घोषणा पत्र में विश्व भर में 'सूचना-असंतुलन'- के संदर्भ में गुट निरपेक्ष आंदोलन की इस स्थिति को बदलने की प्रतिबद्धता दोहराई गई । सूचना के अधिकार, संप्रेक्षण करने तथा सेटेलाइट संचालन आदि के बारे में एक-सी धारणा के विकास के सवाल की भी चर्चा की गई । यह निर्णय लिया गया कि विशेषज्ञों की एक समिति बनाई जाये। यह समिति संचार-संविधाओं, सेटेलाइट संचार, रेडियो प्रसारणों के क्षेत्र में गुटनिरपेक्ष देशों के बीच सहयोग की संभावनाओं का अध्ययन करे ।

इस साल कोलम्बो में हुए गुटनिरपेक्ष देशों के सम्मेलन में दिल्ली सम्मेलन की सिफारिशों, मंत्रियों की बैठक में स्वीकृत करने आदि पर विचार हुआ । दिल्ली घोषणा पत्र को स्वीकृति दी गई । गुट निरपेक्ष देशों के समाचार समितियों के संविधान को स्वीकृति दी गई ।

इस प्रकार दुनिया में निष्पक्ष सूचनाओं का विभिन्न देशों का आदान-प्रदान कराने तथा सामाजिक, आर्थिक. राजनीतिक और सांस्कृतिक विकास को गति देने में माध्यमों की भूमिका का एक सिलसिला चला । 1979 में हवाना में हुए सम्मेलन में पश्चिमी और पूर्वी देशों के बीच तटस्थ भाव के साथ सहयोग के विकास की चर्चा की गई ।

इस प्रकार 'सूचना प्रवाह' के संबंध में संयुक्त राष्ट्र संघ, यूनेस्को और गुटनिरपेक्ष देशों के आंदोलन के बीच हुए विवादों, सम्मेलनों और बैठकों में इस मुद्दों पर विशेष चर्चा की गई -

1. 'समाचार' के बारे में विरोधी-विचार ।
2. समाचार को तोड़-मरोड़ कर और असंतुलित रूप से प्रस्तुत करने संबंधी आरोप तथा
3. पश्चिमी माध्यम-संस्थाओं पर निर्भरता ।

इस प्रकार समाचारों को निष्पक्ष, स्वतंत्र, संतुलित, बिना तोड़े-मरोड़े, तथ्यात्मक और सत्यात्मक रूप से प्रसारित करने और दुनिया में एक स्वस्थ समाचार-तंत्र के ढाँचे की यह लड़ाई लंबे दौर से गुजरी है और विश्व स्तर पर यह 'संकट' एक आदर्श विश्व व्यवस्था के द्वारा ही पूरी तरह टल सकता है । इसके पूर्ण समाधान की संभावना का रास्ता बहुत लंबा है । गुटनिरपेक्ष आंदोलन के कमजोर होने से यह और भी लंबा हो गया है ।

21.9 सारांश

विश्व पत्रकारिता का परिचय' नाम इस इकाई में आपने व्यापक राजनीतिक परिदृश्य के संदर्भ में जनसंचार माध्यमों की अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका का अध्ययन किया है । साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और समाजवादी देशों के अपने-अपने हितों और विचारधाराओं के अलावा अविकसित तथा विकसित, विकास की ओर अग्रसर और पिछड़े देशों की चिन्ताओं और हितों के बीच 'सूचना के स्वतंत्र प्रवाह' या तटस्थ और निष्पक्ष पत्रकारिता का संघर्ष एक लम्बे ऐतिहासिक

परिप्रेक्ष्य से गुजरा है । पूर्वाग्रहों, दुराग्रहों, टेक्नोलॉजी क्षमता, स्वहितों, समाचारों को तोड़- मरोड़ कर असंतुलित ढंग से प्रसारित करने की प्रवृत्तियों और समय के साथ आजादी की नई रोशनी में आए देशों, गुट निरपेक्ष देशों आदि के साथ यू.एन.ओ., यूनेस्को तथा अनेक गुटनिरपेक्ष देशों के प्रयासों ने विश्व समाचारपत्रों और माध्यमों को एक नई सोच और नई दिशा देने में गहरी सफलता प्राप्त की है लेकिन विश्व मंचों पर हुए निर्णयों और विचार-विमर्श के दौर में सूचना टेक्नोलॉजी की क्रांति के बाद के परिदृश्य में परोक्ष,-रूप से विभिन्न देशों और पश्चिम के कुछेक शक्तिशाली देशों की अपनी 'समाचार' की परिभाषाएँ, समाचार-मूल्य समाचार प्रणाली और साधन तंत्र हैं जो आज भी तटस्थ, निष्पक्ष, पूर्णतया स्वतंत्र विश्व समाचार जगत के निर्माण के आदर्श की स्थापना के मार्ग में रुकावटें डालता है ।

विकसित देशों की तुलना में विकास की ओर बढ़ रहे देशों तथा पिछड़ेपन से, ग्रस्त राष्ट्रों के आपसी सहयोग और अनुभवों से विश्व समाचार जगत में धीरे-धीरे परिवर्तनों की प्रक्रिया जारी । ले दन इसमें बाहय और आंतरिक अवरोध भी हैं । कहा जा रहा है कि 21 वीं सदी की दुनिया में वे ही देश सम्पन्न होंगे जो कि एक निष्पक्ष, स्वतंत्र और बलशाली सूचना तंत्र और सूचना टेक्नोलॉजी से युक्त होंगे । हथियारों की होड़, धन सम्पत्ति और वैभव के आधार पर शक्तिशाली बनने का समय 20वीं सदी का अंत आते-आते धूमिल होने लग जाएगा । 21 वीं सदी ज्ञान एवं सूचना तंत्र की शक्ति की सदी है जो एक नए सूचना या समाचार के स्वतंत्र प्रवाह के लिए आशा का उजाला लेकर आने वाली सदी के रूप में जानी जाएगी । लेकिन यह तभी होगा जब मीडिया तंत्रों पर बहुराष्ट्रीय और राष्ट्रीय निगमों का नहीं बल्कि जनोन्मुखी लोकतांत्रिक शक्तियां का अधिकार होगा ।

21.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विश्व -पत्रकारिता से क्या तात्पर्य है? क्या पत्रकारिता के क्षेत्र में विभिन्न देशों के बीच सहयोग से शांति और सद्भावना के प्रसार में मदद मिल सकती है? अपना मत प्रस्तुत कीजिए ।
2. अन्तर्राष्ट्रीय सूचना प्रवाह में बाधक तत्वों का उल्लेख कीजिए और यह भी बताइए कि इन पर नियंत्रण के लिए किन उपायों की आवश्यकता है ।
3. विश्व में सूचनाओं के निर्बाध प्रवाह में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका की समीक्षा कीजिए ।
4. मेक्ब्राइड आयोग के प्रतिवेदन में व्यक्त विचारों का उल्लेख करते हुए इसके पर प्रकाश डालिए ।
5. नयी संचार क्रांति से क्या तात्पर्य है? इंटरनेट के संदर्भ में स्पष्ट कीजिए ।

21.11 सन्दर्भ ग्रंथ

1. Sheltcon A Gunaratne, Hand Book of the Media in Asia.
2. James Jonson, World Press Encyclopedia-Marjorie B.Bank.

3. David French & Michael Richards, Television in Contemporary Asia.
4. Arvind singhal, Everett Mrogers, India"s Communication Revolution.
5. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, अनुवादक, ओमप्रकाश मालवीय; संचार माध्यम और पूँजीवादी समाज, संपादक, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
6. संपादक सीन मेकब्राइड मेनी वाइसेज, वन वर्ल्ड, यूनेस्को का प्रतिवेदन, कोगन पेज लि, लंदन, संस्करण, 1998
7. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यम और सांस्कृतिक विमर्श, 2009, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली- 110092.
8. जवरीमल्ल पारख; जनसंचार माध्यमों का राजनीतिक चरित्र. 2006, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली- 110002.
9. भूमंडलीय जनमाध्यम : निगम पूंजीवाद के नए प्रचारक : एडवर्ड एस हरमन, रॉबर्ट डज्यू मैकचेस्नी,अनुवादक चंद्रभूषण, ग्रंथ शिल्पी

इकाई-22 हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य
22.1 प्रस्तावना
22.2 हिन्दी पत्रकारिता का प्रारंभ
22.3 प्रारंभिक प्रमुख पत्र-पत्रिकाएँ
22.4 स्वतंत्रता पूर्व राजस्थान की पत्रकारिता
22.5 पत्रकारिता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ'
22.6 हिन्दी पत्रकारिता का वर्तमान पक्ष
22.7 प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं का विवरण
22.8 सारांश,
22.9 अभ्यासार्थ प्रश्न
22.10 सन्दर्भ ग्रंथ

22.0 उद्देश्य

'जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता' नामक पाठ्यक्रम के चौथे खंड की इस इकाई में हिन्दी पत्रकारिता का परिचय प्राप्त करेंगे । इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य यह है कि हम हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास के माध्यम से पूरी परंपरा और परिप्रेक्ष्य को जान सकें । साथ ही इस पूरी विरासत के माध्यम से हमें स्पष्ट हो सकेगा कि हिन्दी पत्रकारिता ने अपने आरंभिक सूत्र कहाँ से और किन परिस्थितियों से प्राप्त किए हैं । इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- हिन्दी पत्रकारिता के उद्भव और विकास के आधार बिंदु की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- पत्रकारिता की शुरुआती पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे ।
- पत्रकारिता की बुनियादी शर्तो और संपादकों से उनके निर्वहन की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- हिन्दी पत्रकारिता के सामने व्याप्त चुनौतियों और संभावनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- इसके अतिरिक्त आप हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास के विविध पहलुओं से भली-भाँति परिचित हो सकेंगे ।

22.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हिन्दी पत्रकारिता की परंपरा और इतिहास का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है । हिन्दी पत्रकारिता का भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में विशेष स्थान प्राप्त है । हिन्दी पत्रकारिता के सूत्र बिंदु भी इसी अवधारणा में छिपे हैं कि लोग अपने देश और समाज के बारे में जानना चाहते हैं और यही वजह रही कि ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में मुद्रण कला व पत्रकारिता के मार्ग में अनेक प्रकार के अवरोध उत्पन्न करने के बावजूद भारत में पत्रकारिता की

नींव पड़ी । यह और भी रोचक तथ्य है कि भारत में अंग्रेजों ने ही पत्रकारिता की शुरूआत की। हालांकि प्रकाशनों के आरंभ के बावजूद अंग्रेज सरकार की दमनकारी नीति जारी रही । प्रारंभिक समय में जो पत्र भारत से छपे वे अंग्रेजी भाषा में ही छपते थे । इनकी सामग्री व कलेवर में सूचना का तथ्य ही प्रमुख था । ये पत्र तत्कालीन राजसत्ता का प्रत्यक्ष या परोक्ष समर्थन करते थे । 1818 से पूर्व भारतीय भाषाओं में कोई पत्र प्रकाशित नहीं हुआ । पहला भारतीय समाचार पत्र 'दिग्दर्शन' बंगाली भाषा में 1818 में प्रकाशित हुआ । इसके बाद 1822 में समाचार चंद्रिका' का प्रकाशन हुआ । हिन्दी पत्रकारिता का शुभारंभ देखें तो ज्ञात होगा कि उसका पहला पत्र 1826 में 'उदन्त मार्तण्ड' छपा । 1331 के पार्लियामेंट्री दस्तावेजों में भी जो विवरण मिलता है उसके अनुसार प्रथम स्वरूप में दो पत्रों का उल्लेख मिलता है और वे हैं- 'उदन्त मार्तण्ड' व 'बंगदूत ।

22.2 हिन्दी पत्रकारिता का प्रारंभ

संचार के माध्यमों में अखबार अपना अलग ही स्थान रखता है । वर्तमान में समाचारपत्र का जो स्वरूप है उससे अलग हटकर प्रारम्भिक दौर का स्वरूप रहा था । अखबारों के आने से पहले चौपालों, पनघटों, मण्डियों आदि सार्वजनिक जगहों पर जहाँ व्यक्ति एकत्रित होते थे वहीं नगाड़ा या डुगडुगी बजाकर, 'मुनादी' (घोषणा) सुनाने की प्रथा थी । राजा की और से प्रजा के लिए भी हाथी घोडों पर बैठकर इसी तरह सार्वजनिक सूचनाएँ और आदेश प्रसारित किए जाते थे । मनुष्य ने जब लेखन और भाषा का विकास कर लिया तो उसकी अभिव्यक्ति का स्वरूप बदला । मौर्यकाल में उल्लेख मिलता है कि जनसाधारण को उनके योग्य सूचनाओं से अवगत कराया जाता था । चाणक्य उस काल में महान कूटनीतिज्ञ थे । राज्य में घट रही घटनाओं के विवरण के लिए उन्होंने आधुनिक संवाददाताओं की तरह कार्यकुशल गुप्तचर रखने की सलाह दी थी । अशोक ने भी इसी प्रणाली में शिलालेखों को अपनाया । आखिरी मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर के काल में हाथ से लिखा हुआ 'सिराज उल अखबार निकलता था । अवध के नवाबों के यहाँ भी अखबारनवीस हुआ करते थे ।

छत्रपति शिवाजी, नाना फड़नवीस, राजपूत, सिख तथा मराठा दरबार में भी समाचार लेखक थे । परन्तु आज जिस अर्थ में अखबार को लिया जाता है उस अर्थ में ये खरे नहीं उतरते । न तो इनमें जनजागरण का स्वर था और न ही लोक मंगल की भावना । आम आदमी से भी इनका कोई सरोकार नहीं था । जीवन के विविध क्षेत्रों के प्रति भी ये उदासीन थे।

भारत में सन् 1766 में अंग्रेजी पत्रकारिता के बीज दिखाई देते हैं । भारतीय पत्रकारिता के आदि पुरूष विलियम बोल्टस ने पत्रकारिता की नींव रखने का प्रयास किया । ईस्ट इंडिया कम्पनी ने उनकी इन कोशिशों को ठीक नहीं समझा और उन्हें जबरन ब्रिटेन भेज दिया गया ।

भारत में 29 जनवरी, 1780 को कोलकाता (पूर्व में कलकत्ता) में ' बंगाल गजट' नामक अखबार का प्रारम्भ किया गया । लेकिन हिन्दी का पहला अखबार जुगल किशोर शुक्ल के सम्पादन में 'उदन्त मार्तण्ड' नाम से 30 मई, 1826 को कलकता से प्रकाशित हुआ । 11 जून, 1846 को कलकत्ता से ही 'मार्तण्ड' नामक साप्ताहिक पाँच भाषाओं में प्रकाशित हुआ । 1848 में इंदौर से पंडित प्रेमनारायण ने 'मालवा' अखबार निकाला । 1857 तक निरन्तर कुछ

प्रमुख पत्र निकलते रहे इनमें सर्वहितकारी धर्मप्रकाश, तत्वबोधिनी, सत्य-दीपक आदि पत्रों ने पत्रकारिता के क्षेत्र में विस्तार कर लिया । इन अखबारों के प्रकाशन में जो शहर प्रमुख रहे, वे थे ग्वालियर, बरेली, अहमदाबाद, लाहौर, जम्मु-कश्मीर आदि । कोलकाता से ही प्रथम दैनिक 'सुधावर्षन निकला जिसने अंग्रेजी हुकूमत की आलोचना की ।

15 अगस्त, 1867 से काशी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा 'कवि वचन सुधा' का प्रकाशन हुआ । 1875 में यह पत्र साप्ताहिक रूप में 'सुधा' हो गया ।

आधुनिक होने के लिए अंग्रेजी का ज्ञान और उसकी प्रयुक्ति ही जब एकमात्र आधार मानी जाती थी ऐसे समय में कोलकाता ने सर्वप्रथम हिन्दी पत्रकारिता को आगे बढ़ाने में अहम भूमिका निभाई । नवजागरण के प्रवर्तक राजा राममोहन राय ने इसकी शुरुआत की । इसी परंपरा को स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण परमहंस, रवींद्रनाथ टैगोर और अरविंद घोष ने आगे बढ़ाया । 29 जनवरी, 1780 को एक अंग्रेज संपादक के नेतृत्व में प्रथम भारतीय पत्र का प्रकाशन हुआ । इसका नाम था ' हिकीज बंगाल गजट' ' । बस फिर क्या था । एक लौ समाज के प्रकाश स्तंभ के रूप में जली थी वह निरंतर प्रज्वलित होती रही और कुछ ही वर्षा के अंतराल में भारत में 'इंडिया गजट', 'कैलकटा गजट', 'बंगाल गजट' जैसे पत्र प्रकाशित होने लगे। बाद के वर्षो में 1785 में मैगजीन, 1791 में इंडियन वर्ल्ड, 1795 में इण्डियन हैरल्ड और 1818 में 'कलकत्ता जनरल' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ । इन अखबारों के प्रकाशन में तो निरंतर वृद्धि होती रही पर अंग्रेज सरकार के दमनकारी पक्षों में कमी नहीं आई । उनका दृष्टिकोण तो भारत से निकलने वाले समाचार पत्रों के प्रति शंकालु ही रहा । इसी तहत समाचारपत्रों की स्वतंत्रता पर अनेक प्रकार से हमले होते रहे । लेकिन जिन समाचारपत्रों को क्रिश्चियन मिशनरी संचालित किया करती थीं उन्हें सरकार प्रोत्साहन भी देती रही । इसी मुद्दे के बल पर हिन्दी के केंद्रों से ईसाई पत्र प्रकाशित व प्रसारित होने लगे । किंतु इन पत्रों के माध्यम से भारत के सांस्कृतिक को ठेस पहुँचाने की प्रक्रिया भी शुरू की गई जो राजा राममोहन राय जैसे देशभक्तों को पसंद नहीं आई । अपने लेखन और विचारों से सदैव ही इन प्रवृतियों का विरोध किया और सदैव यही कोशिश बनाए कि उनकी लेखनी जनचेतना को विस्तृत आयाम दे सके ।

प्रारंभ में जिन समाचारपत्रों का प्रकाशन हुआ उन पत्रों को अंग्रेजों ने अंग्रेजी में, ही छपवाया । 1818 से पहले भारतीय भाषाओं में समाचारपत्रों को प्रकाशित नहीं किया गया । पहला भारतीय समाचार पत्र 'दिग्दर्शन' बंगाली भाषा में 1818 में छपा । इसके बाद 1826 में हिन्दी पत्रकारिता का श्रीगणेश 'उदन्त मार्तण्ड' के प्रकाशन के साथ शुरू हुआ । हिन्दी पत्रकारिता की शुरूआत करने वाले उदन्त मार्तण्ड के 79 अंक पर आम भारतीय जनता की ओर से इसके संपादकों को कोई उत्साहवर्धक परिणाम न मिलने के कारण 4 दिसम्बर ' 1927 को इसका प्रकाशन बंद हो गया । अपने अंतिम अंक में संपादक ने एक पद के माध्यम से बहुत ही।। हृदय विदारक टिप्पणी की थी -

"आज दिवस लौं उग चुक्यो मार्तण्ड उदन्त
अस्ताचल कों जात है, दिनकर दिन अब अन्त ।"

स्वतंत्रता आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो विदित होगा कि जनमत को जागरूक करने और पत्रकारिता के दायित्व को बनाए रखने में हिन्दी समाचारपत्रों का योगदान अतिविशिष्ट है । उस समय के पत्रों के कथ्य को देखा जाए तो विदित होगा कि उन्होंने अपने नैतिक प्रतिमानों के साथ अपने साहस को भी कभी नहीं डिगने दिया । उस समय के कुछ प्रमुख पत्रों का उल्लेख करें तो ये नाम अवश्य ही चाखने आएँगे - समाचार सुधावर्षण, बनारस अखबार, मार्तण्ड, ज्ञानदीप, मालवा अखबार, जगद्दीपक भास्कर, सुधाकर, बुद्धिप्रकाश, प्रजा हितैषी, कविवचन सुधा । 'कवि वचन सुधा' का संपादन तो स्वयं भारतेंदु हरिशचंद्र ने किया । 1900 में प्रकाशित सरस्वती ने तो 20 वीं शताब्दी की पत्रकारिता का प्रतिनिधित्व किया और इसका संपादन प महावीर प्रसाद द्विवेद्वी ने किया ।

उत्तरप्रदेश में काला-कांकर से 1885 में 'दैनिक हिन्दोस्तान' निकला जो रामपाल सिंह द्वारा निकाला गया था । इसी दौर में 'केसरी' और 'मराठा' जैसे पत्र भी निकले जिन्होंने देशभक्ति, सामाजिक चेतना और जन-जागरण के कार्यो को बखूबी निभाया । 1900 में 'सरस्वती' का प्रकाशन आरंभ हुआ। पूना से प्रकाशित 'केसरी' के वर्ष 1890 में लोकमान्य तिलक सम्पादक बने। इसी कालखंड में इलाहाबाद ।से पंडित मदन मोहन मालवीय द्वारा प्रकाशित 'अभ्युदय' तथा 1909 में पंडित सुन्दरलाल ने कर्मयोगी 'साप्ताहिक' का शुभारम्भ किया ।

महावीर प्रसाद द्विवेदी की यह परम्परा गणेश शंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' तथा विश्मामित्र तक चली । इन जुझारू राजनैतिक प्रखर पत्रों के अलावा भी हिन्दी साहित्य के 'छायावादी' आन्दोलन को गति देने वाली पत्रिका 'इन्दु' प्रारम्भ हुई । गाँधी के स्वतंत्रता आन्दोलन के आस-पास मोतीलाल नेहरू ने " की स्थापना की तो महात्मा गांधी ने 'यंग इण्डिया', 'हरिजन' एवं 'नवजीवन' आदि का मार्ग प्रशस्त किया । से शिव प्रसाद गुप्ता ने 'आज' का प्रकाशन शुरू किया । इसी समय में माखन लाल चतुर्वेदी ने 'कर्मवीर' ।के रूप में साहित्यिक राजनीतिक मंच की स्थापना की । इसी दौर में नवभारत, नवीन राजस्थान, संघर्ष नवशक्ति। बाम्बे क्रॉनिकल जैसे पत्र भी निकले । गाँधीजी ने प्रखर पत्रकारिता को स्वतंत्रता आन्दोलन का एक आधार स्तम्भ माना और पत्रकारिता को उन्होंने एक 'मिशन' के रूप में इस्तेमाल किया । यही कारण रहा है कि तत्कालीन समय में पत्रकारों ने अपनी आचार-संहिता स्वयं ही निर्धारित कर ली । पत्रकारिता के उद्देश्यपूर्ण पक्ष के कुशल उदाहरण इस दौर के अनेक अखबार बने जिन्होंने समाज को एक सूत्र में तो बांधा ही जीवन में चेतना और स्वावलम्बन के स्वर भी पनपाए ।

22.3 प्रारंभिक प्रमुख पत्र - पत्रिकाएँ

स्वतंत्रता से पहले हिन्दी पत्रकारिता ने लेजिस्लेटिव काउंसिल में भारतीय प्रतिनिधित्व, प्रान्तीय लेजिस्लेटिव की माँग, ब्रिटिश संसद में भारतीय प्रतिनिधित्व की माँग, आर्थिक शोषण का विरोध, स्वदेशी आंदोलन, सामाजिक सुधार आदि पर स्वयं को केन्द्रित किया था । 'ब्रिटिश शासन' ने पत्रकारिता को नियंत्रित करने के उद्देश्य से प्रेस अधिनियम 1857, रेग्यूलेशन ऑफ

प्रिंटिग प्रेस एण्ड न्यूज पेपर्स एक्ट 1867 , प्रेस अधिनियम, 1878, ऑफिशियल सिक्रेट्स अधिनियम, 1889 तथा राजद्रोह अधिनियम, 1898 आदि वैधानिक अवरोध पैदा किए । लेकिन देश की स्वतंत्रता के लिए प्रतिबद्ध पत्रकारों ने हर सम्भव प्रयास को अपनाया और आजादी की अलख जगाए रखी । यह युग साहित्य और पत्रकारिता दोनों ही दृष्टियों से उल्लेखनीय है । इस दौर की महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाएँ तमाम अवरोधों के बाद भी निरंतर आकार लेती रहीं । 30 मई, 1826 को पं. युगल किशोर शुक्ल ने देवनागरी में हिन्दी का पहला पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' प्रारंभ किया वहीं 'बंगदूत ठीक उसके बाद 10 मई, 1829 को प्रकाशित हुआ। 1854 में कलकत्ता से 'समाचार सुधावर्षण' दैनिक प्रारंभ हुआ । इसी बीच 'बनारस अखबार', 'मार्तण्ड', 'ज्ञानदीप', 'मालवा अखबार', 'जगद्दीपक भास्कर', 'सुधाकर' 'बुद्धिप्रकाश', 'प्रजा हितैशी', 'कविवचन सुधा', 'सरस्वती' आदि महत्त्वपूर्ण पत्र प्रकाशित हुए । 1849 में भरतपुर से 'मजहरूल सरूर', 1855 में राजा रामपाल सिंह का दैनिक 'हिन्दोस्तान', व कानपुर रो बाबू सीताराम का 'भाग्योदय' थे ।

इस काल के पश्चात पत्रकारिता में निरंतर अभिवृद्धि होती रही और पत्र-पत्रिकाओं ने केवल अपने कलेवर को विस्तृत किया बल्कि सामाजिक, सरोकार, लोकमंगल, देशहित जैसे पक्षों को भी अपने आयामों में आधार दिया । कुछ ऐसी पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेख अपरिहार्य है जिन्होंने अपने अस्तित्व से वैचारिक जागरूकता को जन-जन तक पहुँचाया ।

इस प्रकार हम जान सकते हैं कि हिन्दी पत्रकारिता के विकास में प्रमुख पत्रों ने न केवल अपना योगदान दिया बल्कि समाज को भी नयी पीठिका प्रदान की ।

प्रारंभिक पत्रकारिता के प्रमुख व्यक्तित्व के रूप में हम पं जुगलकिशोर शुक्ल को पुरोधा मान सकते हैं । उनके द्वारा निकाले गए 'उदन्त मार्तण्ड' ने ही हिन्दी पत्रकारिता के विकास का मार्ग प्रशस्त किया । राजा रामपाल सिंह, महावीर प्रसाद द्विवेद्वी, पं. प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, मदनमोहन मालवीय, भारतेंदु हरिशचंद्र, बालमुकुंद गुप्त, अमृतलाल चक्रवर्ती, दुर्गाप्रसाद मिश्र, अंबिका प्रसाद वाजपेयी, बनारसीदास चतुर्वेदी, पंडित सुंदरलाल, गणेशशंकर विद्यार्थी, शिवप्रसाद गुप्त, कृष्णदत्त पालीवाल, इंद्र विद्या वाचस्पति, देशबंधु गुप्त जैसे कुछ प्रमुख पत्रकारों ने पत्रकारिता की परंपरा को नए आयाम दिए । ऐसे समय में जब भारत परतंत्र था और आम जनता को मार्ग दिखलाने वाला कोई प्रकाश स्तंभ नहीं था ऐसे में प्रारंभिक पत्रकारिता के व्यक्तित्वों ने न केवल अपने पत्रों से जनजागरण का कार्य किया बल्कि देशप्रेम, स्वाभिमान और आजादी की ऐसी अलख जगाई कि देश की जनता को अपनी वास्तविक क्षमता का आभास तो हुआ ही साथ ही वे अपने और राष्ट्रीय स्वाभिमान के विषय में सचेत भी होने लगे ।

22.4 स्वतंत्रता पूर्व राजस्थान की पत्रकारिता

राजस्थान का सर्वप्रथम पत्र 'मजहरूल सरूर' माना जाता है । यह द्विभाषा (उर्दू व हिन्दी) में 1649 में भरतपुर से प्रकाशित होता था । फ्रेंच लेखक 'गासी-द-तासी' ने इसका उल्लेख किया है । 1856 में जयपुर से हैडमास्टर कन्हैयालाल के सम्पादन में एक द्विभाषी पत्र राजपूताना अखबार' छपा इसकी सामग्री हिन्दी व उर्दू में प्रकाशित होती थी । 1861 में अजमेर

से 'जगलाभ-चिन्तक तथा 1663 में जनहित कारक का प्रकाशन हुआ ।1868 में जयपुर-गजट' और 1869 में 'उदयपुर-गजट' का प्रकाशन हुआ । 1879 में उदयपुर से महाराणा सज्जन ,' सिंह के संरक्षण में 'सज्जन कीर्ति सुधाकर' साप्ताहिक का प्रकाशन हुआ । 1882 में अजमेर से देश हितैषी और? 1885 में जयपुर से 'सदाचार मार्तण्ड' मासिक का प्रकाशन शुरू हुआ । 1885 में मनीषी सप्तर्थदान द्वारा राजस्थान समाचार' का प्रकाशन हुआ । आगे आने वाले वर्षो में भी यह सिलसिला अनवरत चलता रहा

पत्रकारिता की पृष्ठभूमि

राजस्थान में पत्रकारिता के जो प्रारम्भिक प्रयत्न हुए वे अन्य राज्यों की तुलना में अधिक प्रभावी नहीं थे । लेकिन इनका अपना महत्त्व है । राजस्थान पर सामंती ताकतों का प्रभाव अन्य राज्यों की तुलना में ज्यादा रहा है । जन-सामान्य में अपने सामंती राजाओं की गौरव गाथाएँ और स्मृतियां जीवित हैं । के सामंती वीर चरित्रों को आधार बनाकर अनेकानेक ग्रन्थों का सृजन किया गया । काव्य, नाटक, गाथायो आदि में इसके अनेकानेक रूप सामने आए ।

देश के विभिन्न भागों में आई चेतना के कारण जन-जीवन की हलचलें जहाँ समाचार-पत्रों का आधार बनीं वहीं साहित्यिक और सांस्कृतिक रूप भी निखर कर सामने आये । कुछ ऐसे प्रकाशन भी रहे जो सरकार के संरक्षण में पनपे लेकिन कई अवसरों पर इनकी भूमिका प्रशंसनीय रही । इनमें से एक पत्र सर्वहित का प्रकाशन बूँदी से 20 फरवरी, 1890 को किया गया । इसके सम्पादक पं. रामप्रताप शर्मा थे । इसका पहला अंक राजा रामसिंह के कार्यालय में प्रकाशित हुआ था । इसमें सम्पादकीय टिप्पणियाँ, देशी-विदेशी और स्थानीय समाचार, विज्ञापन, पुस्तक समालोचना, आदि सामग्री प्रकाशित होती थी । सम्पादकीय में संस्कृत श्लोक व सूक्तियों का उल्लेख होता था । सर्वहित के एक सम्पादकीय का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है :-

"यहा के लोगों का यश रूपी झंडा आकाश में फहराता था । यहाँ के विद्वान न्याय, मीमांसा, गणित शास्त्र, भूगोल, खगोल, ज्योतिष आदि विधाओं में पूर्ण थे और अन्य देशवासी यहाँ तालीम पले को आते थे । यह वही देश है जहाँ किसी समय में अनेक आश्चर्योत्पादक काम होते थे । ये सब उद्योग के ही फल थे ।..... जब यहाँ के वासी आलस्य के वश में हो गए तो वे कान हिलाने तक को असमर्थ हो गए । ईश्वर से हमारी यही प्रार्थना है कि वो भारतवासियों पर कृपा करके भूले हुओं को मार्ग पर लगाये । " -सर्वहित पृ.5. मई, 1894 का अंक यह अंक इस बात को प्रभावित करता है कि राजस्थान की हिन्दी पत्रकारिता पर पुनरुत्थानवादी विचारों का गहरा प्रभाव था । लेकिन इसी दौरान ऐसे भी पत्र प्रकाशित हुए जिसमें राजस्थान की रियासतों के शासकों की दमनकारी नीतियों की आलोचना और उनके विरुद्ध चलाए जा रहे आंदोलनों का प्रभाव था ।

22.5 पत्रकारिता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

मिशनरी पत्रकारिता राजस्थान में ऐसे स्वरूप में उभरी जिसके जनक राजस्थान के कई भागों में उभरे जन-आन्दोलन ही थे । 1920 में विजयसिंह पथिक के सम्पादन में राजस्थान

केसरी' नामक पत्र निकला । अर्जुनलाल सेठी, केसरीसिंह बारहठ, विजयसिंह पथिक तीनों ने मिलकर संघर्ष के बीच इस पत्र की ज्योति को जलाए रखा । 1922 में 'नवीन राजस्थान' पत्र का आरम्भ हुआ । यह ऐसी संस्था का प्रमुख पत्र था जो रियासतों में अनेक क्रांतिकारी आन्दोलन चलाती थी । इनका आदर्श वाक्य था :

''यश वैभव सुख की चाह नहीं परवाह नहीं जीवन न रहे । यदि इच्छा है यह हो जग में स्वेच्छानुसार दमन न रहे ।"

- आई. एफ. डज्यू जे. सोविनियर 1958, पृष्ठ 24-25

इस पत्र ने विजयसिंह पथिक द्वारा चलाए गए 'बिजौलिया सत्याग्रह' को पूरा समर्थन दिया । स्वाधीनता आंदोलन को गति देने वाले पत्रों की श्रृंखला में ऋषिदत्त मेहता द्वारा सम्पादित राजस्थान ' भी सुपरिचित पत्र रहा । राजस्थान के प्रमुख पत्रों में से कुछ का विवरण इस प्रकार है :-

(1) 1937 अगीवाण (ब्यावर से छपा) सम्पादक जयनारायण व्यास

(2) 1930 'मीरा' (अजमेर से छपा) सम्पादक जगदीश प्रसाद दीपक

(3) (3) 1 938 'प्रभात' (जयपुर से छपा) सं. लाडली नारायण गोयल

(4) 1936 'नवज्योति' (अजमेर से छपा) सं. रामनारायण चौधरी

(5) 1939 'नवजीवन' (अजमेर से छपा) पं. ठाकुर नारायण सिंह

(6) 1940 'जयभूमि' (जयपुर से छपा) सं. गुलाब चन्द काला

(7) 1943 'लोकवाणी' (जयपुर से छपा) सं. देवीशंकर तिवाड़ी ।

15 अगस्त, 1947 को भारत की आजादी के साथ ही एक नए अध्याय की शुरूआत हुई । 1950 में देश का संविधान बना और लोकतान्त्रिक प्रणाली को शासन के लिए स्वीकार किया गया । ऐसी शासन व्यवस्था में देश के हर नागरिक की भागीदारी संभव है । संविधान के द्वारा मौलिक अधिकारों के रूप में वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान की गई है । वह इस शक्ति का सदुपयोग कर देश के हित को नई दिशा दे सकता है ।

स्वतंत्रता के पहले के समाचार-पत्र राष्ट्रीय उद्बोधन, सामाजिक सुधार, हिन्दी सेवा, मिली-जुली संस्कृति का विकास, अन्याय के विरूद्ध संघर्ष जैसे बड़े लक्ष्यों के साधक थे । तब का पत्रकार देश की आजादी के लिए अलख जगाता था । कुप्रथाओं और कुरीतियों को दूर करने का प्रयास करता था । इस महत्वपूर्ण मिशन को पूरा करने के लिए वह प्रखर जुझारू मानसिकता तथा आत्मबल द्वारा हिन्दी पत्रकारिता को सक्रिय व जीवित रखने हेतु प्रयासरत था। तब पत्रकारिता के मापदंडों में निष्ठा का तत्त्व सर्वोपरि था । न उसमें पद का कोई ग्लैमर था, न वेतन का लालच । न ही कोई ग्लैमर या व्यक्तिगत हित उस पर हावी था ।

22.6 हिन्दी पत्रकारिता का वर्तमान पक्ष

1947 में भारत की स्वतंत्रता के साथ ही हमारे लोक और राष्ट्र के जीवन में बुनियादी अन्तर आया । संविधान में दी गई अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता मौलिक अधिकार बन गई । जनता की आवाज से सत्ता को परिचित कराना एक पत्रकार की बुनियादी जरूरत बन गई ।

अनेक विषयों पर प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं ने समाज के सामने अभिनव आयाम दिए और साथ ही हिन्दी के विकास को भी बहुमुखी आयाम मिला ।

स्वतंत्रता के पश्चात् दैनिक पत्रों की संख्या तेजी से बढ़ी और अनेक प्रतिष्ठित समूहों जैसे राजस्थान पत्रिका, दैनिक भास्कर, जागरण, नवभारत टाइम्स, पंजाब केसरी आदि के कई-कई नगरों से संस्करण निकलने लगे । लेकिन तकनीकी क्षेत्र के विकास, पूँजीवाद के प्रभाव, ओछी व घिनौनी -राजनीति, विज्ञान के बढ़ते कदमों के कारण पत्रकारिता के क्षेत्र में स्पर्धा व अनैतिक मूल्यों का बोलबाला बढ़ा है । पत्रकारिता पहले की तरह 'मिशन' नहीं रही वह अब एक उद्योग में बदल गई है । पत्रकारिता पर धर्म, अर्थ, राजनीति, आदि के कई प्रभाव अपना असर दिखाने लगे हैं । चूँकि पत्र-पत्रिकाएँ बिना विज्ञापनों के नहीं चल सकती हैं । इसलिए विज्ञापन इन पर हावी हो रहे हैं । मानवीय कल्याण और लोकमंगल की कारक पत्रकारिता अब लाभ-हानि के सौदे वाला उद्योग बन गया है ।

दूसरे दृष्टिकोण से देखें तो आज पत्र-पत्रिकाओं की पाठक-संख्या में भरपूर वृद्धि हुई है । आज अनेक विषयों, अनुशासनों, विधाओं की पत्र-पत्रिकाओं की भरमार है । इन सभी में युगीन विचार और चेतना दिखाई देती है । लेखन, सम्पादन, मुद्रण व चित्रों की प्रस्तुति में भी क्रांतिकारी परिवर्तन आया है । हिन्दी का प्रयोग उसके मानक रूप न होने लगा है । पत्र-पत्रिकाओं का स्वरूप चाहे कुछ भी हो पर उसमें सभी वर्ग के पाठकों का ध्यान रखा जाने लगा है । समाचार, साहित्य, धर्म-दर्शन, महिलाएँ प्रकृति, बच्चे, उद्योग, खेल, शिक्षा, सूचना, संगीत आदि के स्तम्भ प्राय: हर पत्र-पत्रिका में उपलब्ध है ।

पत्रकारिता को विदेशी समाचार समितियों पर निर्भर रहना पड़ता था और अब भी कुछ हद तक यह बात सही है । यूनिवार्ता और 'भाषा' दो हिन्दी की समाचार-समिति भले ही हों पर ये मात्र अंग्रेजी अनुवाद तक ही सीमित हैं । पत्रकारिता में खोजपूर्ण व शोध-सामग्री का अभाव है । चटपटी-रोचक, मसाला सामग्री ही पत्रकारिता का वर्तमान आधार है । आम पाठक की भूमिका उसमें नगण्य है । यदि कोई घटना का विवरण उसमें होता है तो भी वह सनसनी फैलाने और जुगुप्सा जगाने तक ही सीमित रहता है । 21 वीं सदी ' का भारत आज भी आने बाले समय की नींव 'बच्चों' के लिए कुछ खास नहीं कर सका है । ग्रामीण महिलाएँ, मजदूर, आम-आदमी बेबस, बेसहारा आज भी जिन समस्याओं से जूझ रहे हैं, उनकी प्रस्तुति यदा-कदा ही देखने को मिलती है । पत्रकारिता को आज भी सांस्कृतिक चेतना, इतिहास की गौरवमय प्रस्तुति, जन-जागृति, प्रगतिशील सांस्कृतिक चेतना की आवश्यकता है और साथ ही जरूरत है उन सभी मूल्यों की जिनके अपनाने से पत्रकारिता जन-जागरण व लोक-चेतना की दिशा में अपना महत्वपूर्ण योग दे सके ।

वर्तमान में मुद्रण एवं रंगीन चित्रों से भरी पत्रिकाएँ और पत्रों को चलाना सीमित आय में सम्भव नहीं है । विज्ञापन के अभाव में पत्र बिन पानी के पौधे की तरह सूख जाते है । पत्र-सम्पादकों को विज्ञापन के लिए उद्योगपतियों अथवा सरकार का मुँह देखना पड़ता है । पत्रकार की मूल प्रतिज्ञा लोकमंगल हेतु जनता को जगाना, कर्त्तव्य व अधिकारों के लिए चेताना,

अन्याय के खिलाफ जगाना था । वर्तमान में पत्रकार मात्र एक वेतनभोगी कर्मचारी है । उन्हें अखबार की रीति-नीति के अनुरूप ही कार्य करना होता है । पत्र-पत्रिकाएँ भी अनेक विषयों, विधाओं, अनुशासनों से प्रकाशित हो रही हैं । अभिनव स्वरूप में सकारात्मक पहलू यह भी है कि पत्र-पत्रिकाएँ भ्रष्टाचार, पक्षपात, लालफीताशाही, सत्ता दुरूपयोग के विरुद्ध भी कुछ हद तक सही भूमिका निभा रही हैं । लेखन, सम्पादन व छपाई में भी क्रांतिकारी स्वरूप उभरा है । आकर्षक गैटअप, रंगीन चित्र एवं पारदर्शियां पत्र-पत्रिकाओं की बिक्री में सहायक बनी हैं । कुल मिलाकर यह तथ्य निकलता है कि समाज का हर वर्ग समन्वित रूप से इस दिशा में सकारात्मक पहल करे ।

22.7 प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं का विवरण

आजादी के पूर्व अंग्रेजों को बाहर निकालना ही पत्रकारिता का मिशन था । तम कहावत भी प्रचलित हुई थी कि ' 'जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो । " इसी मिशन के चलते भारत आजाद हुआ । आज 'प्रेस' की महत्ता पूरे समाज के सामने है । वर्तमान में समाचारपत्र व पत्रिकाओं की भारी भीड़ है । हर विषय, हर वर्ग और हर नीति का इसमें समावेश है । स्वतंत्रता के बाद वैसे भी देश को गति और दिशा देने का भार पत्रकारों के कन्धों पर आ गया। राष्ट्र के हर क्षेत्र के समुचित विकास के लिए सहयोगी बनना पत्रकारों का दायित्व बन गया । अंग्रेजी शासन के समाप्त होने के साथ ही समस्त अंग्रेजी समाचारपत्रों के संस्थान भारतीय औद्योगिक प्रतिष्ठानों के हाथों में आ गए । अब समाचार पत्र-पत्रिकाएँ उद्योग की तरह चलने लगी । इससे एक नवीन स्थिति यह पनपी कि जहाँ पहले पत्रकारों का एक वर्ग ही सम्पादक और प्रकाशक था वह धीरे-धीरे गायब होने लगा । अब संचालक कोई अलग व्यक्ति है, सम्पादक कोई अलग और पत्रकार वेतनभोगी कर्मचारी । हालांकि अब पत्रों की प्रसार संख्या बढ़ी है । मुद्रण की उत्तम व्यवस्था भी है, नए-नए विषयों पर पत्रिकाएँ निकल रही हैं । 21 वीं सदी के आरंभ में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति इस प्रकार हैं:

हिन्दी भाषा की पत्र-पत्रिकाएँ

दैनिक	:	2393
सप्ताह में 2-3 बार	:	125
साप्ताहिक	:	9910
पाक्षिक	:	2994
मासिक	:	3389
त्रैमासिक	:	628
छमाही	:	213
वार्षिक	:	33
कुल योग:	:	**19685**

हिन्दी के दैनिक पत्रों की पृष्ठ संख्या में भी वृद्धि हुई है । पहले 4-6 पृष्ठों में छपने वाले समाचारपत्र 10 -12 पृष्ठों और आगे तक भी बढ़ गए है । स्थानीय और अंचल के

समाचारों को प्रमुखता दी जाने लगी है । विषयों में विविधता की शुरूआत हुई है । खेल, राजनीति, कला-संस्कृति, साहित्य, सृजन, पर्यावरण, पर्यटन, समीक्षाएँ, महिला व बाल विकास सूचना प्रौद्योगिकी आदि अनेकानेक विषयों का इनमें समावेश हुआ है । आज का सम्पादक अपनी पत्रिका को विशिष्ट वर्ग तक सीमित न रखकर हर प्रकार के पाठक की रूचि को ध्यान में रखता है । यहाँ तक कि खेल व वाणिज्य जैसे विषयों के लिए एक पृष्ठ प्राय: हर समाचारपत्र ने नियत कर दिया है । पहले हाथ से कंपोजिंग किया जाता था अब कम्प्यूटर और आफसैट मशीनों से छपाई होने लगी है । मुद्रण-तकनीक में फोटो कम्पोजिंग के कारण क्रांति आ गई है । रंगीन चित्रों और पारदर्शियों ने इनकी काया ही पलट दी है । एक से बढ़कर एक आकर्षक व कलात्मक पृष्ठ तैयार होने लगे हैं । वैसे भी छपाई में यह माना जाता है कि एक अच्छा चित्र सैकड़ों शब्दों पर भारी पड़ता है । इसलिए श्वेत-श्याम के साथ रंगीन छायाचित्रों को पूरा स्थान मिलने लगा है । शीर्षक, सामग्री व प्रस्तुति की दृष्टि से भारतीय पत्र-पत्रिकाएँ विश्व के समाचार पत्र-पत्रिकाओं से होड़ ले रहे हैं ।

22.8 सारांश

आपने 'हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास' इकाई का अध्ययन किया है । इस अध्ययन के माध्यम से आप यह जान चुके हैं कि हिन्दी पत्रकारिता की शुरुआत के प्रेरक तत्व क्या रहे और किस प्रकार बीज रूप में पनपा यह पक्ष अपने विस्तृत आकार और परिधियों को प्राप्त कर सका । साथ ही इसके माध्यम से यह भी जान चुके हैं कि पत्रकारिता के मार्ग को सुगम बनाने में किन-किन विभूतियों का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा और पत्रकारिता ने अपने बदलते कलेवर के साथ किस प्रकार समाज और उसके दैनिक जीवन में अपना योगदान दिया । यहाँ यह पक्ष भी प्रस्तुत किया गया है कि किस प्रकार पत्रकारिता ने देश को तत्कालीन नकारात्मक परिस्थितियों से उबार कर देश को स्वाभिमान और निष्ठा की विरासत पुन: प्रदान की । यह पत्रकारिता ही है जिसने अपने वृहद पक्षों में देश को न केवल व्यापक सूत्रों में जोड़ा बल्कि गुलामी की परंपरा को खत्म करने का सूत्र बिंदु भी बना । आज पत्रकारिता के माध्यम से ही देश का जनसमूह अपने समाज और नियंताओं के संदर्भो को समझ पाता है । पत्रकारिता के पुरोधाओं ने अपने-अपने समय की माँग के अनुरूप न केवल समाज को सटीक मार्ग पर अग्रसर किया बल्कि उन्होनें अपनी लेखनी और कृतित्व के बल पर उस समाज की नींव रखी जिस समाज में हम आज साँस ले रहे हैं और जहाँ आज विकास और प्रगति की संभावनाओं के सभी सार्थक आयाम मौजूद हैं ।

22.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. स्वतंत्रता-पूर्व की हिन्दी पत्रकारिता की शुरूआत किन परिस्थितियों में हुई और इसका भावी हिन्दी पत्रकारिता पर किस तरह का प्रभाव पड़ा? बताइए ।
2. हिन्दी पत्रकारिता के महत्त्व और प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए ।
3. हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास पर एक निबंध लिखिए ।
4. अंग्रेजी और हिन्दी पत्रकारिता का तुलनात्मक विवेचन कीजिए ।
5. राजस्थान की हिन्दी पत्रकारिता का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत कीजिए ।

22.10 सन्दर्भ ग्रंथ

1. रॉबिन जेफ्री; भारत की समाचारपत्र क्रांति, 2004; भारतीय जनसंचार संस्थान, नयी दिल्ली- 110067
2. जे. नटराजन; भारतीय पत्रकारिता का इतिहास-200 2, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली- 110001
3. आलोक मेहता; भारत में पत्रकारिता; 2006, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली- 110016
4. सुरेश गौतम और वीणा गौतम; भारतीय पत्रकारिता- कल आज और कल, 2001, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली- 110006
5. बच्चन सिंह; हिन्दी पत्रकारिता का नया स्वरूप : 2003; विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

इकाई-23 : भाषायी पत्रकारिता

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य
23.1 प्रस्तावना
23.2 भाषायी पत्रकारिता का अर्थ और स्वरूप
23.3 भाषायी पत्र और भाषागत विकास
23.4 भाषायी पत्रों की जनमत निर्माण में भूमिका
23.5 भारतीय भाषाओं में समाचारपत्र-पत्रिकाएँ
23.6 सारांश
23.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
23.8 सन्दर्भ ग्रंथ

23.0 उद्देश्य

पाठ्यक्रम-6 के अंतिम खंड की यह अंतिम इकाई है । इस इकाई में भारत की भाषायी पत्रकारिता का परिचय दिया गया है । इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप

- भाषायी पत्रकारिता का अर्थ और उसका स्वरूप जान सकेंगे ।
- भाषायी पत्रों के विकास की जानकारी आपको मिल सकेगी ।
- भाषायी पत्रों की संप्रेषण शक्ति और जनमत में उनकी भूमिका के विषय में जान सकेंगे ।
- भाषायी पत्रकारिता की भारत में स्थिति और उसके महत्त्व से आप परिचित हो सकेंगे ।
- भारत की भाषायी पत्रकारिता के विषय में आप अपने विचार सुझाव रूप में व्यक्त कर सकेंगे ।

23.1 प्रस्तावना

'पत्रकारिता का स्वरूप ओर विकास' नामक इस खंड में आपने पत्रकारिता के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया है । इस इकाई में भारत की भाषायी पत्रकारिता के विभिन्न पक्षों के बारे में पढ़ेंगे । इनमें हमने हिन्दी पत्रों को शामिल नहीं किया है क्योंकि हिन्दी पत्रकारिता का अध्ययन इकाई 22 में कर चुके हैं । भारत में जहाँ हिन्दी-अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं का वर्चस्व है, वहाँ भाषायी पत्रकारिता का भी कोई कम महत्त्व नहीं है । यहाँ एक ओर जहाँ उन्नीस प्रमुख भाषाओं में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होता है, दूसरी ओर वहाँ सौ से अधिक उपभाषाओं, छोटी भाषाओं, और बोलियों में भी बड़ी संख्या में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जाता है । इनकी प्रसार संख्या भी काफी विशाल है । अन्य भाषाओं की बहुत्सी पत्र-पत्रिकाएँ सामग्री, स्तर, प्रसार की दृष्टि से ।३म्हा-अंग्रेजी की पत्र-पत्रिकाओं के समकक्ष हैं । वे किसी भी रूप में कम

नहीं है । हिन्दी और अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाएँ उच्चस्तरीय है और उनकी प्रसार संख्या भी विशाल है । हिन्दी पत्रों की प्रसार संख्या जहाँ पाँच करोड़ और अंग्रेजी पत्रों की प्रसार संख्या दो करोड़ को छूने जा रही है, वहीं मलयालम, उर्दू मराठी, बांग्ला, गुजराती, तमिल आदि पत्र-पत्रिकाओं की प्रसार संख्या स्वतंत्र रूप से एक-एक हु. की ओर बढ़ रही है। भाषायी पत्रकारिता की दृष्टि से यह शुभ लक्षण है । यह सब भारत की भाषायी पत्रकारिता के उच्च स्तर, विशालता और महत्त्व का परिचायक है ।

23.2 भाषायी पत्रकारिता का अर्थ और स्वरूप

भाषायी पत्रकारिता से तात्पर्य विभिन्न भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता से है । (इसके अंतर्गत हिन्दी-अंग्रेजी के अलावा देश की प्रमुख भाषाओं और उपभाषाओं की पत्रकारिता शामिल है । भारत में भाषायी पत्रकारिता की परंपरा अत्यंत समृद्ध है । एक ओर जहाँ हिन्दी-अंग्रेजी की प्रतिष्ठित और व्यापक पत्रकारिता है, तो दूसरी ओर, मलयालम, गुजराती, मराठी, बांग्ला, तमिल, कन्नड, तेलुगु, उड़िया, पंजाबी, उर्दू आदि भाषाओं की समृद्ध पत्रकारिता का भी कोई कम महत्त्व नहीं है । इनके अलावा अन्य भाषाओं और उपभाषाओं में भी उल्लेखनीय पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होता है ।

भाषायी पत्रकारिता का स्वरूप विशाल है । बंगाल, असम आदि से राजस्थान तक तथा जम्मु-कश्मीर से केरल तक भाषायी पत्रकारिता का विराट क्षेत्र है । विभिन्न भाषाओं के हजारों पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जाता है । इसकी प्रसार संख्या करोड़ों में है । बड़े, मध्यम और लघु पत्रों की समृद्ध परंपरा है ।

भाषायी अखबारों की संख्या भले ही अधिक हो लेकिन आज भी बहुत से पाठक पत्रकार भाषायी अखबारों को कम विश्वसनीय मानते हैं । इस संदर्भ में 'दैनिक आनन्द बाजार पत्रिका' के कार्यकारी संपादक सुमन चट्टोपाध्याय का मत है कि - अखबारों की पाठक संख्या और उनका प्रसार भले ही अंग्रेजी अखबारों की तुलना में ज्यादा हो, लेकिन यह कोई तसल्लीबख्श बात नहीं है । अहम सवाल यह है कि क्या भाषायी अखबारों की प्रबुद्ध पाठकों में वैसी ही विश्वसनीयता है जैसाकि अंग्रेजी अखबारों की है या विज्ञापनदाता भी ऐसा ही सोचते हैं । यदि किसी घटना को भिन्न-भिन्न ढंग से अंग्रेजी अखबारों में और भाषायी प्रेस में रिपोर्ट किया गया हो, तो वे किसे अधिक विश्वसनीय मानेंगे? निस्संदेह अंग्रेजी में छपी खबरों को । राजस्थान पत्रिका या आनन्द बाजार पत्रिका जैसे कुछ भाषायी अखबारों ने अपनी विश्वसनीयता और प्रामाणिकता की छाप अपने पाठकों में भले ही छोड़ी हो पर कुल मिलाकर विश्वसनीयता के लिहाज से अंग्रेजी प्रेस काफी आगे है । यह एक बहुत बड़ी चुनौती है ।' लेकिन यह पूरा सच नहीं है । संसाधनों का अभाव और व्यावसायिकता की कमी भाषायी पत्रकारिता में अवश्य रही है लेकिन कई भाषायी पत्र अपनी स्तरीय सामग्री और जनता के व्यापक हिस्सों की आवश्यकता की सही समझ के कारण काफी लोकप्रिय रहे हैं । यह नहीं भूलना चाहिए कि भाषायी ने आजादी की लड़ाई और समाज-सुधार के आंदोलन में अहम भूमिका निभाई है। भाषायी अखबारों ने भारतीय साहित्य को व्यापक मंच प्रदान किया है ।

पुराने भाषायी पत्र

भारत में भाषायी पत्रकारिता 200 वर्षों से अधिक पुरानी है । शुरूआत में अखबार अंग्रेजी और फारसी में प्रकाशित हुए । ऐसा ही पहला फारसी अखबार 1833 में 'जुब्दत-उल-अखबार', 1839 में 'सदत्त-उल-अखबार' प्रकाशित हुआ । अंग्रेजों के भारत आगमन से पहले फारसी भारतीय राजकाज की प्रमुख भाषा थी, इसलिए यह बहुत जरूरी था कि अंग्रेजी के अलावा फारसी में भी अखबार प्रकाशित होते । फारसी में निकलने वाले अधिकांश अखबार उत्तर भारत के दिल्ली, लखनऊ, आगरा, बरेली और कलकत्ता जैसे शहरों से निकले । बाद में उर्दू और हिन्दी में भी अखबार निकलने लगे । शुरू में निकलने वाले हिन्दी अखबारों की भाषा पर उर्दू का काफी प्रभाव होता था लेकिन धीरे-धीरे हिन्दी और उर्दू के अखबारों की भाषा में अंतर आता चला गया । हिन्दी के समाचारपत्रों में संस्कृत, के तत्सम शब्दों का प्रयोग ज्यादा होने लगा और उर्दू में अरबी-फारसी के शब्दों का । हिन्दी, उर्दू के अलावा मराठी, गुजराती, कन्नड, तमिल, मलयालम और बांग्ला भाषा में भी शुरुआती समाचारपत्र प्रकाशित हुए । इस इकाई में आगे इन प्रमुख भाषाओं में प्रकाशित होने वाले आरंभिक समाचारपत्रों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है । यहाँ 19वीं सदी, में निकलने वाले कुछ पत्रों का उल्लेख किया जा रहा । गुजराती का दैनिक ' बॉम्बे समाचार' मुंबई से सन् 1822 में निकलने लगा था । गुजराती का दूसरा दैनिक मुंबई से ही 'जाम-ए-जमशेद' शीर्षक से 1832 में प्रकाशित होने लगा था । इसी भाषा का साप्ताहिक 'खेडा वर्तमान' कायरा से 1861 में, सूरत से दैनिक गुजरात मित्र और गुजरात दर्पण 1663 में, भड़ौच से साप्ताहिक 'भड़ौच समाचार' 1879 में, भावनगर से मासिक 'श्री जैन धर्मप्रकाश' 1884 में या त्रैमासिक 'अमलदार' मुंबई से 1882 में निकले।

इसी प्रकार तमिल मासिक तिसनेलेवली से 'लिसनेलवेली डायसेशन' शीर्षक से प्रकाशित हुआ । मराठी में बेलगाँव से साप्ताहिक 'बेलगाँवसमाचार' 1863 में, रत्नागिरि से साप्ताहिक 'सत्यशोधक' 1871 में, जलगाँव से साप्ताहिक 'प्रबोध चन्द्रिका' 1880 में, पुना से 'दैनिक केसरी' 1881 में, मुंबई से मासिक ।'सिंहनाद' 1882 में प्रकाशित हुए । मलयालम में कोट्टायम से दैनिक 'दीपिका मलयालम' 1887 में, दैनिक 'मलयाला मनोरमा' 1890 में तथा तेलुगू में मासिक 'युद्ध धावनी मद्रास (अब चेन्नई) से निकले । बांग्ला में मुर्शिदाबाद से साप्ताहिक 'मुर्शिदाबाद हितैशी' 1893 में, हुगली से 'चिन्नारिया बर्तामा' 1893 में प्रकाशित हुए । उर्दू में हैदराबाद से दैनिक 'मुशीरे डेकन' 1894 में तथा दिल्ली से साप्ताहिक आर्य गजट 1884 में निकले ।

हिन्दी में लश्कर से पाक्षिक 'मध्यप्रदेश संदेश' और साप्ताहिक 'जैन गजट' लखनऊ से 1895 में निकले । अंग्रेजी में 'द टाइम्स ऑफ इण्डिया' (मुंबई) 1868 में, त्रैमासिक 'कलकत्ता रिव्यू' (कोलकाता) 1844 में साप्ताहिक, एक्जामिनर (मुंबई) 1850 में पाक्षिक, गार्जियर (चेन्नई) 1851 में, मासिक 'न्यूमैंस इंडियन ब्राइशा' (कोलकाता) 1865 में, अमृत बाजार पत्रिका (कोलकाता) 1868 में, त्रैमासिक यू.एस.आई. जर्नल (मदुराई) 1870 में, 'इंडियर विटनैस (दिल्ली) 1871 में, साप्ताहिक बिहार हेराल्ड (पटना) 1874 में, दैनिक स्टेट्स मैन (कोलकाता)

1875 में, मासिक 'सब-स्टाफ' (चेन्नई) 1876 में, 'हिंदू, (चेन्नई) 1878 में, दैनिक 'ट्रिब्यून' (चण्डीगढ़) 1881 में, साप्ताहिक न्यूजलीडर (कोलकाता) 1887 में, साप्ताहिक कैपिटल (कोलकाता) 1888 में प्रकाशित हुए । द्विभाशी पत्रों में मासिक सेतिया वर्तमान (मदुराई, 1870), पाक्षिक सुबोध पत्रिका (मुंबई, 1873) साप्ताहिक सत्यनादम (कोच्ची, 18761 प्रकाशित हुए । इनके अलावा पुर्तगाली भाषा में 1661 में मडगाँवसे 'एन इंडियन' तथा गोरो भाषा में मेघालय से 'अछकनी रिपेनो ,1881 में प्रकाशित हुए ।

23.3 भाषायी पत्र और भाषागत विकास

भाषायी पत्रों ने आधुनिक भाषाओं के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । इस संबंध में वरिष्ठ पत्रकार और दैनिक 'आनन्द बाजार पत्रिका' कलकत्ता के कार्यकारी सम्पादक सुमन चट्टोपाध्याय द्वारा एक व्याख्यान में कहे गए ये विचार उल्लेखनीय है - "भाषा के विकास के संदर्भ में मैं पहले भारतीय भाषायी मीडिया की चर्चा करना चाहूंगा । क्योंकि यदि भाषा समुन्नत स्थिति में न हो तो पत्रकारिता या साहित्य अभीष्ट स्तर तक नहीं पहुँच पाएंगे । जैसाकि पहले कहा जा चुका है, भारतीय भाषाओं के विकास के साथ-साथ साहित्य के विकास में भाषायी पत्रकारिता की अहम भूमिका रही है । साहित्य के विकास से भाषा का विकास तो होता ही है, उस भाषा का सांस्कृतिक विकास भी होता है । स्वतंत्रता आंदोलन की पत्रकारिता इसका सबसे बड़ा प्रमाण है ।"

19वी शताब्दी में आधुनिक भारतीय भाषाओं में गद्य का विकास हुआ । गद्य के विकास के पीछे मुख्य कारण मुद्रण की नयी प्रणाली थी । भारत में पहला प्रिंटिंग प्रेस 17वी शताब्दी में शुरू हुआ था। दूसरा प्रेस उसके लगभग 100 साल बाद स्थापित हुआ । प्रिंटिंग प्रेस के माध्यम से भारतीय भाषाओं में प्रकाशन की शुरूआत ओर भी बाद में हुई । एक बार जब भारतीय भाषाओं में प्रकाशन की शुरूआत हो गई तो उसमें गद्य रचना भी आरंभ हो गई । आरंभिक समाचारपत्रों के संपादक और पत्रकार लेखक भी होते थे और समाज सुधारक भी । राजा राममोहन राय से लेकर भारतेंदु हरिश्चंद्र तक जितने भी लेखक भारतीय भाषाओं में हुए उन्होंने या तो पत्र-पत्रिकाओं का स्वयं प्रकाशन किया या किसी न किसी पत्र-पत्रिका से वे अवश्य जुड़े हुए थे । यह कहा जा सकता है कि भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता का इतिहास आधुनिक गद्य साहित्य के विकास से गहरे रूप में जुड़ा है । गद्य के बिना पत्रकारिता संभव नहीं है । चाहे समाचार लेखन करना हो या संपादकीय लिखना हो या किसी भी विषय पर लेख लिखना हो भाषा के गद्य रूप में ही यह संभव होता है । इस तरह साहित्यकारों ने धीरे-धीरे कविता के अलावा अन्य लेखन के लिए गद्य का इस्तेमाल करना आरंभ कर दिया था । यही हिन्दी का उदाहरण लिया जा सकता है जिसमें कविता का लेखन ब्रजभाषा में होता था लेकिन पत्र-पत्रिकाओं के लिए गद्य का लेखन खड़ी बोली में ही किया जाता था । पत्र-पत्रिकाओं में केवल समाचारपत्र या लेख ही प्रकाशित नहीं होते थे, धीरे-धीरे उनमें निबंध, नाटक, कहानी, उपन्यास और कविताएं भी प्रकाशित होने लगी । इस तरह साहित्य पत्रकारिता का एक अनिवार्य हिस्सा बन गया । साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखन होने से भाषा के रचनात्मक रूप का विकास

भी तेजी से होने लगा । आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास पर नजर डालें तो इस बात को आसानी से समझा जा सकता है कि साहित्य की गद्य विद्याओं के साथ भाषा के स्वरूप में भी विकास हुआ । पत्रकारिता के लिए सहज, सुबोध और संप्रेषणीय भाषा का होना जरूरी था । लेकिन साहित्यिक विधाओं के लिए भाषा का रचनात्मक होना भी जरूरी था । एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य आरम्भिक पत्रकारिता ने यह किया कि उसने भारतीय भाषाओं के मानकीकरण की प्रक्रिया भी आरंभ की । मानकीकरण तीनों स्तरों पर इस दौर में हुआ - लिपि के स्तर पर, व्याकरण के स्तर पर और उच्चारण के स्तर पर । 19वीं शताब्दी में भारतीय पश्चिम से आने वाले ज्ञान-विज्ञान के गहरे संपर्क में आ रहे थे । अध्ययन की कई नयी शाखाओं की शुरूआत इस दौर में की गई । मसलन, विज्ञान, सामाजिक-राजनीतिक विज्ञान, अर्थशास्त्र, इंजीनियरिंग, कानून आदि से संबंधित बहुत से नये विषयों और उनके लिए नये पारिभाषिक शब्दों से शिक्षित भारतीय परिचित हो रहे थे । लेकिन उनका यह परिचय अंग्रेजी माध्यम से हो रहा था । भारतीय भाषाओं के लेखक और बुद्धिजीवी इस बात को महसूस कर रहे थे कि अंग्रेजी की ऐसी शब्दावली को उनकी अपनी भाषा में अनुदित करके प्रस्तुत करने से उनकी अपनी भाषा का विकास होगा । यही कारण है कि आधुनिक भारतीय भाषाओं में नयी अवधारणाओं और नये पारिभाषिक शब्दों के लिए नये-नये शब्द रचने की प्रक्रिया तेजी से चलने लगी और इस तरह भाषाओं का विकास भी तेजी से होने लगा ।

इकाई-9 में भाषा और जनसंचार माध्यमों के आपसी संबंधों पर विस्तार से विचार किया जा चुका है। भाषा संप्रेषण का माध्यम भी है और संप्रेषण भी है । जनसंचार माध्यमों के द्वारा जब भाषा का उपयोग किया जाता है तो भाषा उस माध्यम के अनुरूप अपने में कुछ परिवर्तन करती है । कोई भी भाषा नयी चुनौतियों के अनुरूप स्वत: निर्मित नहीं होती लेकिन उसे नयी चुनौतियों के अनुरूप ढालना होता है । जब भाषा के संदर्भ में यह कहा जाता है कि अमुक भाषा अधिक विकसित है और अमुक कम विकसित, तो इसका अर्थ सिर्फ इतना है कि कम विकसित भाषा को अभी नयी चुनौतियों के अनुरूप अपने को ढालना है । इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि कम विकसित भाषा अपने को नयी चुनौतियों के अनुरूप नहीं ढाल सकती । प्रत्येक भाषा में लचीलापन निहित होता है । लेकिन भाषा का व्यवहार करने वाले लोगों पर ही यह निर्भर करता है कि वे अपनी भाषा को किस हद तक नवीनतम आवश्यकताओं के अनुरूप ढाल पाते हैं । इसके लिए भाषा में नये शब्दों का प्रवेश, अभिव्यक्ति के नये तरीकों और नये विचारों और भावों के अनुरूप लिपि और उच्चारण में परिवर्तनों की आवश्यकता होती है । इस संदर्भ में माध्यमों की प्रकृति को समझने की भी जरूरत है। मुद्रण, श्रव्य और दृश्य माध्यमों की जरूरत अलग-अलग होती है । माध्यमों में संदेश की भाषा की प्रकृति तात्कालिकता से भी तय होती है और इस बात से भी तय होती है कि प्रौद्योगिकी भाषा के किस रूप को सहजता से अपना सकती है । उदाहरण के लिए टेलीविजन पर जहाँ दृश्यों की प्रमुखता होती है वही भाषा का वैसा उपयोग नहीं किया जा सकता है जैसा मुद्रण माध्यम में किया जाता है । भारतीय भाषाओं ने अपने को इन नवीन जरूरतों के अनुरूप ढालने में अहम भूमिका निभाई है ।

भाषायी पत्रों की संप्रेषण शक्ति

भाषायी पत्र उन पत्रों के मुकाबले अधिक उपयोगी होते हैं जो किसी दूसरी भाषा में निकाले जाते हैं । मसलन, भारत में अधिकांश लोगों की भाषा अंग्रेजी नहीं है । उनकी मातृभाषा हिन्दी, उर्दू मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु आदि भारतीय भाषायी है । इसलिए यह बहुत स्वभाविक है की अधिकांश लोग समाचारपत्रों में व्यस्त समाचारों, लेखों और अन्य सामग्री को अपनी भाषा में पढ़ना पसंद करे । भाषायी अखबार 'उन लोगों तक भी अपनी पहुँच बना पाते हैं जो कम पढ़े-लिखे हैं लेकिन जिन्हें अपनी भाषा का ज्ञान हैं । भारत जैसे देशों में ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक हैं जो अपनी मातृभाषा ही जानते हैं । इसलिए भाषायी समाचारपत्र अपनी पहुँच ज्यादा व्यापक जनसमुदाय तक बना पाते हैं ।

जब भाषायी पत्रों की संप्रेषण शक्ति की बात की जाती है तो उसके मूल में उसकी यह व्यापक पहुँच तो है ही इसके अलावा लोगों के भाषा संस्कार से भी इसका संबंध है । वह भाषा जिसे व्यक्ति बचपन से अपनी घर और समाज में बोलता आया है वह भाषा उसके लिए सहज ग्रहणीय होती है । वह उसके मुहावरों और लोकोक्तियों से परिचित होता है उस भाषा की सामाजिक-सांस्कृतिक क्षमताओं को वह जानता है । लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि केवल अपनी मातृभाषा का सामान्य ज्ञान भाषायी पत्रों की लोकप्रियता का आधार बन जाता है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है समाचारपत्रों के लिए भाषा की शक्ति को बढ़ाने की जरूरत होती है । समाचारपत्र एक ऐसा माध्यम है जिसमें तरह-तरह के विचारों, भावों, ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों और नवीनतम जानकारियों को प्रस्तुत किया जाता है । भाषायी समाचारपत्र इन सबको सफलतापूर्वक तब ही प्रस्तुत कर सकते हैं जब वे बोलचाल की भाषा से आगे ज्ञान-विज्ञान की भाषा को समझने की क्षमता हासिल करे । यह प्रक्रिया दोतरफा होती है । यानी कि, अगर अखबार पढ़ने वाले पाठक का भाषा ज्ञान सीमित है तो अखबारों को पढ़ते हुए उसके भाषा ज्ञान में वृद्धि होती है और यदि भाषायी पत्र निरन्तर नये-नये विचारों को प्रस्तुत करने में संलग्न रहते हैं तो इस प्रक्रिया में स्वयं भाषा भी समृद्ध होती है ।

भाषा की संप्रेषण शक्ति इस बात से तय होती है कि जनसंचार माध्यमों के जो प्रमुख कार्य बताए गए हैं उन सभी कार्यो को समाचारपत्र और फ्लू चैनलों में पर्याप्त स्थान मिले । यहाँ तक कि समाचारों को प्रस्तुत करने का तरीका विविधतापूर्ण और रोचक होना चाहिए । अखबार की भाषा को व्याकरण सम्मत तो होना ही चाहिए लेकिन उसमें स्वाभाविक किस्म का लचीलापन भी होना चाहिए ।

इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतीय भाषा की पत्रकारिता में कोई अभाव या कमजोरी नहीं है । अगर अंग्रेजी पत्रकारिता से तुलना करें तो हमें इसमें काफी कमजोरियाँ भी दिखाई देंगी। जैसाकि पहले कहा जा चुका है, भाषायी अखबारों का पाठक वर्ग ज्यादा व्यापक होता है । यही व्यापकता का अर्थ संख्या से, नहीं है । यह बिल्कुल संभव है कि किसी अंग्रेजी अखबार की तुलना में भारतीय भाषायी अखबार के पाठक कम हो लेकिन अंग्रेजी अखबार के पाठक ज्यादा बड़े क्षेत्र में फैले हुए होंगे । जबकि भाषायी अखबार के पाठक बहुत सीमित क्षेत्र में लेकिन बड़ी संख्या में होंगे । इस भाषायी अखबारों के पाठक वर्ग में बड़ी संख्या निम्नमध्य वर्ग के कम शिक्षित समुदाय की है । भाषायी अखबार इस वर्ग को आकृष्ट करने के लिए कई ऐसी बातों को अधिक महत्त्व देता है जिन पर अंग्रेजी के राष्ट्रीय अखबारों में उतना महत्त्व नहीं दिया जाता ।

मसलन, रूढ़िवाद, अंधविश्वास, सांप्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषायी संकीर्णता आदि का असर भाषायी अखबारों पर ज्यादा दिखाई देता है क्योंकि बहुत से भाषायी अखबार ऐसा सोचते हैं कि हमारा पाठक वर्ग वैसा ही पिछड़ा हुआ है । यह महज संयोग नहीं है कि अंग्रेजी के न्यूज चैनलों की तुलना में हिन्दी के न्यूज चैनलों पर अंधविश्वास और रूढ़िवाद से संबंधित कपोल-कल्पित घटनाओं की प्रस्तुति ज्यादा होती है । इन चैनलों के मालिकों का यह मानना है कि हिन्दी का दर्शक अंग्रेजी के दर्शकों की तुलना में पिछड़ा हुआ है । अगर तर्क के लिए यह मान भी लिया जाए कि हिन्दी (या भारतीय भाषाओं) का पाठक वर्ग पिछड़ा हुआ है, तो भी भाषायी पत्रकारिता ऐसा क्यों मानती है कि पिछड़े हुए लोगों को पिछड़ा हुआ ही रहना चाहिए । दरअसल, वे इन हथकंडों के द्वारा अपने पाठकों और दर्शकों की संख्या बढ़ाना चाहते हैं । यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है । भारतीय भाषायी पत्रों को इन रूढ़िवादी और संकीर्णतावादी तौर-तरीकों से बाहर निकलकर अपनी पत्रकारिता को ज्यादा जिम्मेदारी पूर्ण और प्रगतिशील दिशा में ले जाना चाहिए । इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतीय भाषायी पत्रकारिता प्रगतिशील नहीं है । निश्चय ही आजादी से पहले भारत में भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता ने ही जनजागरण और आजादी की लड़ाई का झंडा बुलंद रखा था लेकिन आजादी के बाद और विशेष रूप से 1980 के दशक के बाद भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता धीरे-धीरे पतन की ओर अग्रसर हुई और उसमें ऐसी नकारात्मक प्रवृत्तियां जड़ जमाने लगीं जिनका उल्लेख पहले किया गया है ।

23.4 भाषायी पत्रों की जनमत निर्माण में भूमिका

जनमत के निर्माण में भाषायी पत्रों की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है । इस संबंध में वरिष्ठ पत्रकार प्रभात जोशी लिखते हैं - "तीन-चार साल पहले आस्ट्रेलिया से एक सज्जन (रॉबिन जेफ्री) जो कि भारत में पत्रकारिता का अध्ययन करने आए थे, और उनको एक शोध ग्रंथ लिखना था, दफ़तर में आए और काफी देर तक बातचीत करने के बाद उन्होंने कहा कि मैं, एक अंग्रेजी अखबार में गया था, तो वहाँ मैंने पूछा कि आप फलां-फलां चीज क्यों करते हैं? तो उन्होंने कहा कि ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि जनता इनकी मांग करती है । तो उक्त सज्जन ने अंग्रेजी अखबारों से पूछा कि इस देश में कुल ढाई-तीन प्रतिशत लोगों की भाषा अंग्रेजी है, तो आप यह कैसे कह सकते हैं कि जनता यही चाहती है । सुप्रीम कोर्ट ने बहुत अच्छी तरह कहा कि ये क्रीमी लेयर को फीड करने वाले अखबार हैं। मैंने अपने जिंदगी के नौ साल अंग्रेजी पत्रकारिता में व्यर्थ किए हैं । इसलिए मैं सिर्फ एक तथ्य का बयान कर रहा हूँ । इस देश में सचमुच जनमत बनाने में अंग्रेजी अखबारों की भूमिका नहीं हो सकती । हमारे देश में भाषायी पत्रकारों की छह-सात पीढ़ियाँ लगभग इस अवधारणा में अखबार निकालते रहे कि गुड पेपर इज इंग्लिश न्यूज पेपर ।

अगर इस देश में जनमत बनाने का सवाल है तो अंग्रेजी अखबार नहीं बल्कि भारतीय भाषाओं के अखबार ही इस देश का जनमत बनाते हैं । एक तो इस कारण से कि वे उन लोगों के द्वारा पढ़े जाते हैं जिनके लिए दुनिया की तरफ खिड़कियां उनकी भाषा के माध्यम से ही खुलती हैं । अंग्रेजी के अखबार हालांकि देश के दो-तीन प्रतिशत आबादी को ही संबोधित होते हैं लेकिन ये दो-तीन प्रतिशत लोग ही इस देश का शासक वर्ग है । इस वर्ग में बड़े-बड़े

उद्योगपति, नौकरशाह, राजनेता और वह अमीर वर्ग है जो अंग्रेजी में सोचता है, अंग्रेजी में काम करता है और अंग्रेजी के कारण ही जिसे एक खास मुकाम हासिल हो गया है । इसलिए इस बात को मानते हुए भी कि अंग्रेजी के पाठक वर्ग की संख्या बहुत कम है, यह भी हमें मानना चाहिए कि इसका प्रभाव उनकी संख्या से कई गुना ज्यादा है। यह महज संयोग नही है कि भारतीय भाषाओं के अखबारों में छपी बातों की जनता भले-- ही परवाह करती हो, लेकिन शासक वर्गो के लिए आमतौर पर उसका कोई महत्त्व नहीं होता । अगर हम इस दृष्टि से विचार करें तो यह भी पाते हैं कि अंग्रेजी अखबारों और भारतीय भाषाओं के अखबारों की प्राथमिकताओं में भी बहुत बडा अंतर है । अंग्रेजी अखबार कुछ उपवादों को छोड़ कर उस वर्ग के हितों की पैरवी करता है जिनके हित जनता के हितों से मेल नहीं खाते । यह महज संयोग नहीं है कि भूमंडलीकरण, आर्थिक उदारतावाद और पश्चिम समर्थक नीतियां अंग्रेजी अखबारों के माध्यम से ही सामने आती हैं और वे उन्हें इस ढंग से पेश करते हैं कि मानो भारत की गरीब जनता भी ठीक यही चाहती है । इसके बावजूद धीरे-धीरे यह भी देखा जा रहा है कि भारतीय भाषाओं के समाचारपत्र अपनी निजता और विशेषता खोते जा रहे हैं और वे अंग्रेजी अखबारों का अनुकरण करने में ही अपनी भलाई समझ रहे हैं । रॉबिन जेफ्री ने यह स्वीकार किया है कि इन सब कमियों के बावजूद भारतीय भाषाओं के अखबारों ने इस देश को जोड़ने का काम किया है । उन्होंने हर तरह की कमजोरियों के बावजूद इस अहसास को जिलाये रखा कि भारत एक देश है और हम इसके नागरिक हैं । इस एक वजह के कारण ही भारतीय भाषाओं के अखबारों का महत्व काफी बढ़ जाता है और जनमत बनाने में उनकी भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता । जब देश आजाद हुआ था तब से आज तक इन सात सालों में देश की आबादी ही नहीं बढ़ी है शिक्षित लोगों की जनसंख्या में भी कई गुना वृद्धि हुई है । यह जो नया पाठक वर्ग समाचारपत्रों को मिल रहा है उसने भी भारतीय भाषाओं के अखबारों को अपना स्वरूप बदलने के लिए प्रेरित किया है । भारतीय समाज के पिछड़े वर्ग, दलित और स्त्रियों के उत्थान में भारतीय भाषाओं के अखबारों और मीडिया का बहुत बड़ा योगदान है ।

प्रभाश जोशी ने अपने अनुभव के आधार पर कहा था कि, ' 'मैं अंग्रेजी में और हिन्दी में लिखते हुए महसूस करता रहा है मैं हिन्दी में जब लिखता हूँ यानी लोगों से सीधे बातचीत करने की कोशिश करता हूँ तो उसकी जो प्रतिक्रिया पाठकों की तरफ से होती है, वह अंग्रेजी की तरफ से कभी नहीं होती । " यह कहा जा सकता है कि भाषायी अखबार ही ऐसे हैं जो लोगों में राजनीतिक प्रेरणा पैदा कर सकते हैं वे ही जनमत बनाने के सही माध्यम और सही हकदार भी हैं । श्री प्रभाश जोशी का यह भी कहना है कि जो लोग इस देश की राजनीति बनाने वाले है, जो लोग इस देश की राजनीति को दिशा देने वाले हैं, उसको आधार देने वाले लोग हैं, उनसे आज के अंग्रेजी पत्रकार का संवाद नहीं हो सकता । ऐसा इसलिए नहीं कि उनकी जिंदगी के तौर-तरीके अलग हैं और उनका स्तर अलग है, उनकी दुनिया अलग है । बल्कि इसलिए कि उनमें जनता की राजनीति को समझने की क्षमता नहीं होती जबकि भाषायी अखबार बहुत आसानी से जनता की आकांक्षा को व्यक्त करते हुए आपको दिखाई दे सकते हैं ।

श्री प्रभाश जोशी ने भारतीय भाषाओं के पत्रों की भूमिका को और स्पष्ट करते हुए कहा है कि "इस देश की जो समझ भाषायी पत्रकारों को है उतनी अंग्रेजी पत्रकारों को नहीं होती । अंग्रेजी के संपादकीय लिखने वाले सहायक संपादक की दुनिया भी वो दुनिया नहीं है, जोकि इस देश के बड़े राजनीतिज्ञ की दुनिया हो सकती है । आज से 20 -25 साल पहले फिर भी राजनेता ऐसे हुआ करते थे जिनकी जीवन शैली और अंग्रेजी के पत्रकारों और उनकी जीवन शैली लगभग समान होती थी । लेकिन पिछले 15-20 साल में हमारे देश की राजनीति का जो देशीकरण हुआ है या भारतीयकरण हुआ है, उसके कारण अंग्रेजी की दुनिया, अंग्रेजी पत्रकारों की दुनिया और हमारे देश के राजनेताओं की दुनिया दो अलग-अलग चीज हो गई है । उनकी दूरी बहुत बढ़ गई है । इसलिए जब वे लिखते हैं तो कहीं कोई झंकार नहीं होती, टंकार लौटकर नहीं आती । ऐसा नहीं लगता कि कोई चीज गूँज-गूँज कर वापस आ रही है । जबकि आप भाषायी पत्रकारों को देखेंगे तो पाएंगे कि जो वे बोलते हैं, वह बात गूँजती हुई लगातार वापस आती है और यह तो गेज है, यही जनमत बनाती है । मैं पाता हूँ कि राजनीति में तो कम से कम निश्चित है कि भाषायी अखबार की जो भूमिका है, वह अंग्रेजी अखबारों की भूमिका नहीं हो सकती । इस देश का आदमी अपनी आंतरिक भावना से वोट देता है । इसलिए अंग्रेजी अखबारों की राजनीति को लेकर जनमत बनाने में उतनी बड़ी भूमिका इस देश में नहीं है जितनी हमारे भाषायी अखबारों की है । चुनाव के वक्त जिन अखबारों का असर होता है, जिन अखबारों का प्रसार बढ़ता है, वह इस कारण से ही है कि वे अखबार जनता की नब्ज को छू रहे हैं और उसे प्रकट कर रहे हैं । '

23.5 विभिन्न भाषाओं में समाचारपत्र-पत्रिकाएँ

प्रो. रमेश जैन ने भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता का संक्षिप्त लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है । वे लिखते हैं कि भारतीय समाचारपत्रों का अध्ययन करने के बाद विशेष बात उभरकर सामने आई है कि अभी लगभग पचानवे भाषाओं तथा बोलियों में समाचारपत्र प्रकाशित किए जा रहे हैं, जिनमें सोलह मुख्य भाषाएँ भी सम्मिलित हैं । प्रमुख सोलह भाषाएं हैं - हिन्दी, अंग्रेजी, तमिल, मलयालम, मराठी, गुजराती, बांग्ला, उर्दू तेलुगु, कन्नड, पंजाबी, उड़िया, सिंधी, असमिया, संस्कृत और कश्मीरी । अन्य भारतीय भाषाएं हैं - कोंकणी, मणिपुरी, खंसी, मिजो, मैथिली, संथाली, भोजपुरी, गारो, राजस्थानी, डोगरी, बुंदेलखंडी, छत्तीसगढ़ी, हाड़ोती, गोरखाली (नेपाली) आदि । अंग्रेजी के अतिरिक्त कई अन्य विदेशी भाषाओं में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होता है । एक विशेष बात यह है कि प्राय: सभी भारतीय भाषाओं के समाचारपत्रों की संख्या और विक्रय संख्या में लगातार वृद्धि होती गई है ।

प्रमुख भाषाएँ

भारत के प्रमुख भाषाओं के समाचारपत्रों और पत्रिकाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है । यह विवरण निश्चय ही न तो पूर्ण है और न ही प्रामाणिक । इसका उद्देश्य सिर्फ भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता की झलक प्रस्तुत करना है ।

1. हिन्दी

भारत को सभी भाषाओं में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं की संख्या सबसे अधिक है । एक विशेष बात यह है कि अन्य दूसरी प्रमुख भाषाओं की तुलना में हिन्दी के समाचारपत्रों की प्रगति अधिक तेज गति से हुई है । इसी तरह हिन्दी के पत्रों की विक्रय संख्या में भी वृद्धि हुई है । इसका प्रमुख कारण यह है कि हिन्दी भारतीय गणराज्य की राजभाषा भी है और इसको बोलने और समझने वाले लोगों की संख्या भी सबसे ज्यादा है । यही कारण है कि सभी क्षेत्रों में इसके पत्रों का विकास होता जा रहा है।

सन् 1826 में कलकत्ता से 'उदंत मार्तंड' का प्रकाशन हुआ था । हिन्दी के समाचारपत्र देश के प्राय: हर कोने से प्रकाशित हो रहे हैं । इसमें सर्वाधिक पत्र उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, दिल्ली और राजस्थान से प्रकाशित होते हैं ।

देश में प्रमुख हिन्दी दैनिक 'नवभारत टाइम्स', 'दैनिक हिंदुस्तान', 'दैनिक जागरण, 'पंजाब केसरी', 'दैनिक भास्कर', ' नई दुनिया', 'राजस्थान पत्रिका', 'आज', 'जनसत्ता', 'अमर उजाला', 'दैनिक ट्रिब्यून' आदि हैं । 'दिनमान', 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' जो कभी लोकप्रिय साप्ताहिक थे, अब बंद हो 'चुके हैं । अभी हिन्दी में कई पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं जिनमें व्यावसायिक पत्रिकाओं में इंडिया टुडे, आउटलुक, प्रमुख हैं । हंस, कथादेश आदि लोकप्रिय साहित्यिक पत्रिकाएँ हैं।

2. तमिल

तमिल पत्र-पत्रिकाओं का केंद्रीकरण तमिलनाडु और विशेष रूप से मद्रास महानगर में है । तमिलनाडु के अलावा महाराष्ट्र, केरल, पश्चिम बंगाल, पांडिचेरी और दिल्ली से कुछ पत्रिकाएँ तमिल भाषा में प्रकाशित होती हैं । अधिकांश दैनिक तमिलनाडु से प्रकाशित होते हैं । 'तिरुनेलवेली' डायोसेसन मैंगजीन', 'तमिल मासिक' एवं 'तिरुनेलवेली' (1849) तमिल का प्राचीनतम पत्र है । तमिल के प्रमुख दैनिक पत्र हैं - 'दिणामणि', 'डेली थांथी 'अन्ना', दिनाकरण, 'मोक्कुल कुराल एवं 'दिनामालर' । पत्रिकाओं में 'कुमुदम', वारांतरी रानी', 'आनंद विकेतन, 'तुगलक', 'देवी', 'रानी मुथ' आदि उल्लेखनीय है ।

3. मलयालम

मलयालम भाषा के समाचारपत्र मुख्यत: केरल में केंद्रित हैं । तमिलनाडु, महाराष्ट्र, मैसूर, दिल्ली, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल तथा आंध्रप्रदेश से भी मलयालम भाषा के समाचारपत्र प्रकाशित होते हैं । मलयालम भाषा के पत्र-पत्रिकाओं की प्रसार संख्या में लगातार वृद्धि होती जा रही है । केरल में मलयालम पत्र-पत्रिकाएँ नगरों और कस्बों में बिखरी हुई हैं । केरल साक्षरता की दृष्टि से देश का सबसे अग्रणी राज्य है । यही कारण है कि मलयाली भाषा में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाश नही ज्यादा नहीं होता वरन् उसके पाठकों की संख्या अन्य भाषाओं की तुलना में ज्यादा है । दैनिक पत्र 'दीपिका' कोट्टायम का प्राचीनतम पत्र है । इसकी स्थापना सन 1887 में हुई थी । मलयालम के प्रमुख दैनिक पत्रों में मलयाला मनोरमा', 'केरल कौमुदी', 'मातृभूमि', 'दीपिका', 'एक्सप्रेस', देशाभिमानी, 'केरल पत्रिका' केरल 'भूषणम' और 'जनयुगम' हैं । पत्रिकाओं

में 'मंगलम', 'मलयाला मनोरमा साप्ताहिक' , 'मनोराज्यम', 'साखी', 'बलराम', 'कुमारी', 'केरल शब्दम', 'गृहलक्ष्मी', 'स्नेह सेना' आदि हैं ।

4. मराठी

महाराष्ट्र की प्रमुख भाषा मराठी है । मराठी के अधिकांश समाचारपत्र महाराष्ट्र में केंद्रित हैं । लेकिन इसके गोवा, कर्नाटक, दिल्ली, तमिलनाडु, पांडिचेरी, आंध्रप्रदेश, गुजरात और मध्यप्रदेश से भी मराठी के समाचारपत्र प्रकाशित होते हैं । बेलगाँवसे प्रकाशित साप्ताहिक 'पबलगाँच समाचार' प्राचीनतम पत्र है । यह सन् 1863 से प्रकाशित हो रहा है । मराठी के प्रमुख दैनिक पत्रों में - 'लोकसत्ता', 'सकाल, 'महाराष्ट्र टाइम्स', 'केसरी', 'लोकमत', 'तरुण भारत', 'मुंबई सकाल, 'नवाकाल, 'नवशक्ति', 'संध्याकाल', 'प्रभात' गाँवकारी, 'संचार', 'नागपुर पत्रिका' 'मराठवाड़ा' आदि हैं । मराठी पत्रिकाओं में 'शेतकारी', 'लोक प्रभा' 'क्रीडागण, 'व्यापारीमित्र , 'स्वराज्य', 'चंदोबा, 'मार्मिक' आदि उल्लेखनीय हैं । मराठी के दैनिक समाचारपत्र महाराष्ट्र से अत्यधिक ' प्रकाशित हुए । दैनिक समाचारपत्र गोवा और कनार्टक से भी प्रकाशित होते हैं ।]

5. गुजराती

गुजराती राज्य की प्रमुख भाषा गुजराती है । गुजरात में सबसे अधिक पत्र गुजराती भाषा में प्रकाशित हैं । मुंबई एवं अहमदाबाद में आधे से ज्यादा पत्र गुजराती भाषा में निकलते हैं । बंबई का 'बंबई समाचारपत्र' ' का सबसे पुराना पत्र है । यह सन् 1822 में शुरू हुआ था ।

6. बांग्ला

पश्चिम बंगाल की राजधानी कलकत्ता है और यही की प्रमुख भाषा बांग्ला है । बांग्ला भाषाभाशी लोग अपनी भाषा के प्रति अत्यधिक जागरूक हैं । बांग्ला पत्र-पत्रिकाएँ अपेक्षाकृत समृद्ध हैं । बांग्ला पत्रों का अध्ययन करने के बाद एक विशेष बात देखने में आई हैं कि अंग्रेजी के बाद उनका केंद्रीकरण महानगरों में सबसे अधिक है । आधे से अधिक समाचारपत्रों का प्रकाशन कलकत्ता से होता है । पश्चिम बंगाल के अतिरिक्त असम, त्रिपुरा दिल्ली, बिहार, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश एवं अंडमान-निकोबार द्वीप समूह से बांग्ला पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं । कलकत्ता से प्रकाशित दैनिक 'आनंद बाजार पत्रिका' की प्रसार संख्या सबसे अधिक है । साप्ताहिक पत्रों में कलकत्ता से प्रकाशित बांग्ला साप्ताहिक 'देश' की प्रसार संख्या सबसे अधिक रही है । बांग्ला के सबसे पुराने दो पत्र हैं - 'मुर्शिदाबाद हितैषी' (1893) तथा 'चिनौरिया वरतभा' । ये दोनों पत्र क्रमशः मुर्शिदाबाद और हुगली से प्रकाशित होते हैं । बांग्ला भाषा के दैनिक पत्रों में 'आनंद बाजार पत्रिका' जुगांतर, 'आजकल', 'वसुमति', 'उत्तर बैग संवाद', 'गणशक्ति', 'सत्ययुग', 'पश्चिम बंग संवाद' आदि उल्लेखनीय है । बांग्ला पत्रिकाओं में 'देश', 'आनंद मेला', संग्रामी हथियार', 'आनंद लोक', 'सिने एडवांस', 'देश हितैषी' 'वर्तमान', 'सुकताश, 'कॉलेज स्ट्रीट' आदि लोकप्रिय हैं ।

7. असमिया

असम की प्रमुख भाषा असमिया है । असमिया भाषा के समाचारपत्र प्रकाशन संख्या और प्रचार-प्रसार की दृष्टि से अन्य भाषाओं के समाचारपत्रों के मुकाबले बहुत पिछड़े हुए हैं ।

असमिया भाषा के समाचारपत्रों में सबसे अधिक असम से प्रकाशित होते हैं । इसके अलावा पश्चिम बंगाल बिहार, तमिलनाडु तथा दिल्ली से भी प्रकाशित हो रहे हैं । गुवाहाटी से प्रकाशित 'दैनिक असम' असमिया पत्रों में अग्रणी रहा है । जोरहट से प्रकाशित साप्ताहिक पत्र 'जन्मभूमि' प्राथमिक पत्रों में था । वह सन् 1947 में शुरू हुआ था ।

8. कन्नड

कनार्टक राज्य की प्रमुख भाषा कन्नड है और यहाँ से ही इस भाषा के अधिकांश समाचारपत्र प्रकाशित होते हैं । पिछले दशक तक कर्नाटक से कुल मिलाकर छह सौ इकसठ समाचारपत्र प्रकाशित हुए, शेष छब्बीस समाचारपत्र महाराष्ट्र, बारह तमिलनाडु, नौ आंध्रप्रदेश तथा गोवा, केरल, दिल्ली, दमन और दीव एवं पांडिचेरी से एक-एक निकले । सभी कन्नड दैनिक समाचारपत्र, द्वि साप्ताहिक तथा वार्षिक पत्र कर्नाटक, कर्नाटक में स्थित थे । कन्नड भाषा में चौदह बड़े, दस मझोले तथा दो सौ आठ छोटे समाचारपत्र थे । चौदह में से पाँच बड़े समाचारपत्रों की प्रसार संख्या एक-एक लाख प्रतियों से अधिक थी ।

बांग्लोर से प्रकाशित 'प्रजावाणी' ही एकमात्र कन्नड भाषा का दैनिक समाचारपत्र था, जिसकी प्रसार संख्या एक लाख प्रतियों से अधिक थी । बांग्लोर से ही प्रकाशित साप्ताहिक पत्र 'सुधा' प्रसार संख्या की दृष्टि से सबसे अग्रणी था । धारवाड़ से प्रकाशित 'सुबोध चंद्रिका' मासिक (1907) प्राचीनतम समाचारपत्र था । प्रजावाणी, 'कन्नड प्रभा', उदयवाणी, 'संयुक्त कर्नाटक' कोडंभा, संजेवाणी तथा दिनाचारी दैनिक' कन्नड पत्रों में महत्त्वपूर्ण हैं । पत्रिकाओं में 'सुधा', 'तरंग', प्रजामाता, 'लंकेश पत्रिका', 'मयूरा', उदयवाणी, रूपाधारा आदि उल्लेखनीय हैं ।

9. उड़िया

उड़ीसा राज्य की प्रमुख भाषा उड़िया है और इस भाषा की प्रमुख पत्र-पत्रिकाएँ इसी राज्य से प्रकाशित होती हैं । उड़िया में पत्रों की संख्या कम है । पिछले दशक तक उड़िया में तीन सौ बारह समाचारपत्र प्रकाशित हुए । इनमें सत्रह ऐसे दैनिक पत्र सम्मिलित थे जो सभी उड़िया राज्य में प्रकाशित हुए । गैर दैनिक पत्रों में बयालीस साप्ताहिक, चौंतीस पाक्षिक तथा एक सौ पचपन मासिक, सैंतालीस त्रैमासिक और तेरह अन्य आवधिक पत्र थे ।

भारत में प्राचीनतम समाचारपत्रों में से एक कटक से प्रकाशित उड़िया दैनिक 'समाज' ने उड़िया समाचारपत्रों में अपना प्रमुख स्थान बनाए रखा । यह समाचारपत्र सन् 1915 में शुरू हुआ था । भुवनेश्वर से प्रकाशित 'सुचित्रा' मासिक प्रसार संख्या की दृष्टि से उड़िया भाषा का प्रमुख साप्ताहिक पत्र था । उड़िया भाषा के प्रमुख दैनिक पत्र हैं - 'समाज', 'प्रजातंत्र, 'संवाद', 'खबर कागज', 'प्रगतिवादी आदि । पत्रिकाओं में 'सुचरिता और 'पौरुष लोकप्रिय हैं ।

10. पंजाबी

पंजाबी पंजाब की राज्य भाषा है । पंजाबी भाषा के सबसे अधिक समाचारपत्र पंजाब से प्रकाशित होते हैं । पिछले दशक में पाँच सौ समाचारपत्र निकले । उनमें से उनतीस दैनिक, एक द्वि साप्ताहिक ।पत्र था । अवधिक पत्रों में एक सौ बानबे साप्ताहिक, इकतालीस पाक्षिक, एक

सौ तिहत्तर मासिक, बाईस त्रैमासिक तथा पंद्रह अन्य आवधिक पत्र थे । जालंधर से प्रकाशित पंजाबी त्रैमासिक 'पंजाबी डाइजेस्ट' की प्रसार संख्या आवधिक पत्रों में सबसे अधिक थी ।

अमृतसर से प्रकाशित साप्ताहिक 'खालसा समाचार' सबसे प्राचीनतम पत्र था । सह सन् 1899 में शुरू हुआ था । पंजाबी भाषा के प्रमुख दैनिक पत्र 'अजित', 'पंजाबी ट्रिब्यून', जगवाणी, 'अकाली पत्रिका' आदि हैं । 'कौमी रनजीत' 'संत सिपाही', 'सचित्र पंजाबी पत्रिका' आदि लोकप्रिय पत्रिकाएँ हैं।

11. संस्कृत

संस्कृत भारत की प्राचीनतम भाषा मानी जाती है, लेकिन इस भाषा के बोलनेवालों की सखा लगभग नगण्य है । संस्कृत में समाचारपत्र प्रकाशित नहीं होते और प्राय: पत्रिकाओं के रूप में उनका प्रकाशन होता रहता है ।

पूरे देश में पैंतीस समाचारपत्र राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों से प्रकाशित हो रई हैं । सर्वाधिक संस्कृत समाचारपत्र उत्तर प्रदेश से प्रकाशित हो रहे हैं । उनके बाद महाराष्ट्र का स्थान रहा है । 'संस्कृत साहित्य परिषद' संस्कृत का प्राचीनतम विद्यमान समाचारपत्र है जो कलकत्ता से सन् 1919 में प्रकाशित हुआ था ।

12. सिंधी

भारत विभाजन के बाद काफी संख्या में सिंधी भाषी नागरिक सिंध प्रांत से देश में। आ बसे । उन्होंने व्यापार के क्षेत्र में काफी नाम कमाया और धीरे-धीरे यहाँ की संस्कृति में घुल-मिल गए । पिछले दशक में सिंधी के लगभग उनहत्तर समाचारपत्र प्रकाशित हुए । इनमें सात दैनिक, बाईस साप्ताहिक, सात पाक्षिक तथा उनतीस मासिक, तीन त्रैमासिक और अन्य आवधिक पत्र सम्मिलित थे ।

महाराष्ट्र इकतीस समाचारपत्रों के साथ सिंधी के समाचारपत्रों का सबसे बड़ा प्रकाशक रहा । उसके बाद राजस्थान का स्थान था । सिंधी के दैनिक समाचारपत्रों में चार राजस्थान से, दो महाराष्ट्र से और एक गुजरात से प्रकाशित हुए । बंबई से प्रकाशित 'हिंदवासी' साप्ताहिक पत्र अपनी प्रसार संख्या में शीर्ष स्थान पर था । पूना से प्रकाशित साप्ताहिक 'इयाम' सिंधी भाषा का प्राचीनतम पत्र है । यह सन् 1938 में प्रकाशित हुआ था । अन्य राज्य /संध राज्य क्षेत्र जहाँ से सिंधी पत्र प्रकाशित हो रहे हैं, वे हैं - गुजरात, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा दिल्ली ।

13. तेलुगु

आंध्र प्रदेश की प्रमुख भाषा तेलुगु है और यहीं से सबसे अधिक संख्या में तेलुगु समाचारपत्र प्रकाशित होते हैं । इस समय तेलुगु समाचारपत्रों की संख्या लगभग पाँच सौ पचासी है । इनमें लगभग पाँच सौ उन्नचास तेलुगु समाचारपत्र आंध्रप्रदेश से प्रकाशित हो रहे हैं । हैदराबाद का 'इनाडु तेलुगु के दैनिक पत्रों में सबसे अधिक प्रसार संख्यावाला समाचारपत्र रहा है । साप्ताहिक पत्रों में हैदराबाद से प्रकाशित 'आंध्र भूमि सचित्र बारा पत्रिका' प्रसार संख्या में शीर्ष स्थान पर रहा

है । मद्रास से प्रकाशित दुधवाणी (1887) प्राचीन पत्र है । तेलुगु भाषा के प्रमुख दैनिक पत्र हैं - 'इनाडु, 'आंध्र ज्योति','आंध्र प्रदेश', 'आंध्र प्रभा', 'आंध्र पत्रिका' आदि । पत्रिकाओं में ' आंध्र भूमि सचित्र बारा पत्रिका', 'ज्योति चित्रा', ' आंध्र ज्योति', 'वाला ज्योति', ' आंध्र सचित्र बारा' पत्रिका आदि उल्लेखनीय हैं ।

14. उर्दू

भारत में उर्दू भाषियों की संख्या भी बहुत अधिक है । पिछले दशक में उर्दू समाचारपत्र हिन्दी, अंग्रेजी तथा बांग्ला समाचारपत्रों के बाद देश में चौथा सबसे बड़ा संख्यात्मक समूह बना रहा । उर्दू के समाचारपत्र आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, महाराष्ट्र, बिहार, जम्मु व कश्मीर, पंजाब, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, राजस्थान और तमिलनाडु से भी कमोबेश प्रकाशित हो रहे हैं। पिछले दशक में बिहार उर्दू दैनिक पत्रों का सबसे बड़ा प्रकाशक राज्य रहा ।

जालंधर से प्रकाशित उर्दू भाषा में ' हिंद समाचार' सर्वाधिक प्रसार संख्या वाला दैनिक पत्र रहा है । हैदराबाद से प्रकाशित 'मुशीर-ए-दक्कन' उर्दू भाषा का प्राचीनतम दैनिक पत्र है । यह पत्र सन् 1884 में शुरू हुआ था ।

उर्दू के दैनिक पत्रों में 'प्रताप', 'मिलाप', 'सियासत', 'रहनुमा-ए-दक्कन', 'रोजाना हिंद', ' आजाद हिंद', 'अखबार-ए-मशरिक, 'प्यारी उर्दू आदि हैं । पत्रिकाओं में 'खातून-ए-मशरिक', 'मासिक शमा', 'मस्ताना' एवं कौमी आवाज' लोकप्रिय पत्रिकाएँ हैं ।

अन्य भाषाएं

भारतीय समाचारपत्रों में स्थानीय भाषाओं की अपनी विशेषता है । अभी लगभग साठ विभिन्न स्थानीय भाषाओं में पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं । उनकी विक्रय संख्या यद्यपि कोई उत्साहजनक नहीं है । विशेष रूप से यह पत्र-पत्रिकाएँ स्थानीय अथवा क्षेत्रीय स्तर पर बिकती हैं । जिन क्षेत्रों में इनके प्रकाशन होते हैं वहाँ पाठक वर्ग की संख्या भी बहुत कम है । जन-सामान्य की दिलचस्पी कम होने की वजह से इनके प्रकाशन में अवरोध पैदा होता रहता है । कुछ अन्य भाषाओं में पत्रिकाओं के अतिरिक्त दैनिक पत्रों का भी प्रकाशन किया जाता है, पर वे अधिक नहीं हैं ।

पत्र-पत्रिकाओं की विषय-वस्तु

समाचारपत्रों का प्रमुख उद्देश्य पाठक को किसी घटना की जानकारी देना है । चाहे वह राजनीतिक घटना हो या आर्थिक, सामाजिक हो या सांस्कृतिक । समाचारपत्र अब गांवों की ओर भी मुड़ चुका है । पहले जहाँ खबरों को गाँवों, कस्बों से शहर में पत्रों के दफ़तर तक पहुँचने में सप्ताह-दस दिन लग जाते थे लेकिन जनसंचार के नवीन साधनों ने इनको तीव्र गति से प्रेस तक पहुँचा दिया है । अब गांवों के चप्पे-चप्पे तक संवाददाताओं की पहुँच है । पहले पत्रों की खबरों के लिए सरकारी महकमों पर नजर गड़ाए रहना पड़ता था, पर. अब सामान्य-सी घटना होने पर भी संवाददाता मौजूद हो जाते हैं । अब समाज के हर क्षेत्र की खबरें पत्रों में समाहित होती हैं । इसलिए दैनिक समाचारपत्रों में रोज-रोज की घटनाओं के समाचार होते हैं । लेकिन

दैनिक घटनाओं के अलावा अन्य विषयों की जानकारी भी पाठकों की जरूरत को पूरा करने के लिए दी जाती है । दैनिक समाचारपत्र तो प्रयास करते ही हैं, साथ ही अन्य पत्रिकाएँ भी विविध विषयों की जानकारी एकत्र कर पाठकों तक पहुँचाती हैं । इस प्रकार विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं की विषय-वस्तु भी अलग-अलग होती है ।

ऐसे आवधिक पत्र भी हैं जो समाचार और सामयिक विषयों से संबंधित हैं । साहित्यिक और सांस्कृतिक पत्रिकाओं की संख्या लगभग तीन हजार पचास है । इन श्रेणियों के अतिरिक्त धर्म और दर्शन, वाणिज्य और उद्योग, चिकित्सा और स्वास्थ्य, श्रम, अभियंत्रण और प्रौद्योगिकी, विज्ञान, खेलकूद, महिला शिक्षा, समाज कल्याण, बीमा, बैंकिंग और सहकारिता, कृषि और पशुपालन आदि से संबंधित पत्र-पत्रिकाओं का भी प्रकाशन होता है ।

23.6 सारांश

जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता पाठ्यक्रम की इस इकाई में आपने भारत की भाषायी पत्रकारिता के बारे में जानकारी प्राप्त की । भारत एक बहुभाषी देश है । भारतीय संविधान के आठवें अनुच्छेद में 22 भाषाओं को मान्यता प्रदान की गई है । लेकिन भारत में इन 22 भाषाओं के अलावा भी अन्य कई भाषाओं में पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं । भारत में भाषायी पत्रकारिता का इतिहास पुराना है । भाषायी पत्रकारिता से अभिप्राय विभिन्न भाषाओं की पत्रकारिता से है । भाषायी पत्रकारिता के विविध रूप हैं और इसका क्षेत्र अत्यंत विशाल हैं । हिन्दी अंग्रेजी की पत्रकारिता के साथ-साथ मलयालय, बांग्ला, गुजराती, मराठी, तमिल आदि अनेक भाषाओं की पत्रकारिता भी उच्चस्तरीय और समृद्ध है । विभिन्न उपभाषाओं और बोलियों में निकलने वाली पत्र-पत्रिकाओं का भी कम महत्त्व नहीं है । सूचना, शिक्षा और सभी भाषाओं के पत्र और पत्रिकाएँ, मनोरंजन के साथ-साथ जनचेतन आदि की संवाहक हैं । हर भाषा-उपभाषा, बोली की पत्रकारिता का अपना इतिहास है। कोई भी पत्र या पत्रिका नयी हो या पुरानी जल्दी ही देश की मुख्य धारा से जुड़ जाती है । यह कहा जा सकता है कि भारत की भाषायी पत्रकारिता का अत्यधिक महत्त्व है और यह उम्मीद की जा सकती है कि भविष्य में भी भारतीय भाषायी पत्रकारिता का विकास होगा और न केवल अपनी भाषायी जरूरतों को पूरा करने।, में बल्कि राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने में यह पत्रकारिता अपना योगदान देती रहेगी ।

23.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भाषायी पत्रकारिता से आप क्या समझते हैं? भारत में भाषायी पत्रकारिता की परंपरा पर प्रकाश डालिए ।
2. भारत में अंग्रेजी पत्रकारिता और भाषायी पत्रकारिता की तुलनात्मक विवेचना कीजिए ।
3. राष्ट्रीय स्वाधीनता और नवजागरण काल की भारत की भाषायी पत्रकारिता के योगदान का मूल्याँकन कीजिए ।
4. भाषायी पत्रों की संप्रेषण-शक्ति पर अपने विचार प्रकट करते हुए आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास में साहित्य और पत्रकारिता के योगदान पर प्रकाश डालिए ।

5. 5. 'भारत के भाषायी पत्रों ने जनमत बनाने में अहम भूमिका निभाई है । ' इस कथन की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए ।

23.8सन्दर्भ ग्रंथ

1. रॉबिन जेफ्री; भारत की समाचारपत्र क्रांति. 2004; भारतीय जनसंचार संस्थान, नयी दिल्ली- 110067 ।
2. जे. नटराजन; भारतीय पत्रकारिता का इतिहास-2002, प्रकाशन विभाग,. सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली- 110001
3. आलोक मेहता; भारत में पत्रकारिता; 2006, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली- 110016
4. सुरेश गौतम और वीणा गौतम; भारतीय पत्रकारिता-कल आज और कल; 2001, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली- 110006

ISBN - 13/978-81-8496-111-9